संवर्ग-1 : गद्य साहित्य

इकाई-1 : गोदान (मुंशी प्रेमचन्द)

संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 कथासार

1.3 सप्रसंग व्याख्याएँ

1.4 लघुत्तरात्मक प्रश्न

1.5 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

मुंशी प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास–साहित्य को नई दृष्टि और यथार्थ की नई भूमि प्रदान की थी। 'गोदान' उनकी सर्वश्रेष्ठ उपन्यास–कृति है। इस उपन्यास को भारतीय जनजीवन का व्यापक महाकाव्य भी कहा जा सकता है। 'गोदान' की कथा को प्रेमचन्द ने छत्तीस अनुच्छेदों में विभक्त करके एक सूत्र में गूँथने का प्रयास किया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप–

1. गोदान की रचना के उद्देश्य एवं इसके संबंध में प्रेमचन्द के विचारों को जान सकेंगे।
2. गोदान में चित्रित सामन्ती एवं महाजनों के बीच फंसे निम्न वर्ग के लोगों की स्थिति को जान सकेंगे।
3. गोदान के कथानक में व्याप्त किसानों की स्थिति को जान सकेंगे।
4. गोदान में व्याप्त शहरी और ग्रामीण परिवेश के अन्तर्द्वन्द्व को जान सकेंगे।
5. गोदान के पात्रों तथा उनके चरित्रों को जान सकेंगे।
6. समकालीन समय में स्त्रियों की स्थिति का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
7. इस उपन्यास द्वारा भारतीय जन जीवन को जान सकेंगे।
8. इस उपन्यास के द्वारा प्रेमचन्द के सामाजिक विचारों का आप परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 कथासार

होरी नामक किसान अवध प्रान्त के बेलारी गाँव का रहने वाला है। उसके जमींदार अमरपालसिंह रायसाहब सेमरी गाँव में रहते हैं। होरी की पत्नी धनिया, पुत्र गोबर तथा दो पुत्रियाँ सोना और रूपा उसके परिवार में हैं। एक दिन जमींदार रायसाहब ने होरी को बुलावा भेजा। होरी जमींदार का विशिष्ट परिचित किसान बना रह कर बेदखली–कुर्की से बचा रहना चाहता था। उसकी पत्नी धनिया गृहस्थी की चक्की में पिसकर छत्तीस वर्ष की अवस्था में ही बूढ़ी हो गई थी। उसे जमींदारों के यहाँ जाकर खुशामद करना पसन्द नहीं था। अतः उसने होरी को टोका भी, किन्तु वह मिरजई जूते, लाठी, पगड़ी, तम्बाकू का बटुआ लेकर निकल पड़ा। धनिया अपने पति को अनन्त आशीर्वाद की दृष्टि से देखती रही। होरी मार्ग में सेचता रहा था कि बच्चों को दूध–घी मिलना चाहिए। वह बहुत दिनों से एक गाय खरीदने की सोच रहा था किन्तु पैसे का जुगाड़ हो ही नहीं पाता था। फसल तो महाजन सूद–मूल में ले जाता था। गाय कैसे खरीदता? फिर भी एक सद्गृहस्थ के समान उसके मन में भी गाय रखने और पालने की लालसा चिरकाल से संचित थी। इसी समय उसने देखा कि बेलारी गाँव से लगे हुए पुरवे का निवासी ग्वाला भोला अपनी गायों को लेकर इधर ही आ रहा था।

होरी ने आगे वाली एक गाय को देखा और मन ही मन ललचा गया। सोचा, अगर भोला यह गाय मुझे बेच दे तो रुपये तो आगे–पीछे देता रहूँगा। होरी ने भोला से राम–राम की और आगे वाली गाय की पीठ पर हाथ धर कर भोला की तथा गाय की प्रशंसा की। कीमत पूछने पर भोला ने बताया कि मैं ने इसे अस्सी रुपये में खरीदा है, किन्तु सौ रुपये में बेचूँगा। होरी ने अपनी पत्नी धनिया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की ओर से भोला के चरित्र की प्रशंसा की। विधुर भोला का मन पिघलने लगा। उसकी स्त्री गतवर्ष लू से मर गई थी। होरी ने ठगने की दृष्टि से कहा कि मेरे ससुराल में एक औरत है, मैं तुम्हारे लिए उसे लाने का प्रयत्न करूँगा। भोला के मन में उमंग जागी। उसने होरी को प्रसन्न रखने के लिए, घर बसाने में मदद करने के लिए वही गाय, जो होरी को पसन्द थी, अस्सी रुपये में उसे बेचना स्वीकार कर लिया और कहा, रुपये भी जब चाहो, चुका देना। भोला ने चारा–भूसा की तंगी का भी बखान किया कि मैं चारे की कमी के कारण ही यह गाय बेच रहा हूँ। उसने गाय की पगही होरी के हाथ में दे दी थी। किन्तु अब होरी का मन पिघल गया। मैं तुम्हारी मजबूरी के कारण गाय नहीं लूँगा और गाय के लिए दो खाँचे भूसा भी दूँगा। कल तुम मेरे पास आकर भूसा ले जाना। भोला ने औरत लाने की बात पुनः याद दिलाई। होरी ने आगे कदम बढ़ाया और एक बार उस गाय की ओर देखा जो अन्य गायों की रानी की तरह लग रही थी।

रायसाहब अमरपालसिंह सेमरी में रहते हैं। उन्होंने स्वतन्त्रता–संग्राम में भाग लिया और कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल जाकर यश कमाया। वे अपने इलाके में किसानों और आसामियों से डॉड बेगार भी लेते थे किन्तु बदनामी मुख्तारी के सिर मँढ़ देते थे। रायसाहब की सज्जनता, राष्ट्रवादिता के कारण उनकी आमदनी और अधिकारों में कोई कमी नहीं आई थी। रायसाहब साहित्य और संगीत के शौकीन थे। वे स्वयं नाटक लिखते और उनका मंचन करते थे। वे विधुर थे और हँस–बोलकर अपना समय बिताया करते थे। उन्होंने होरी को विशेष उद्‌देश्य से बुलाया था। दशहरे के अवसर पर धनुष–यज्ञ की तैयारियाँ चल रही थीं। रायसाहब ने अपने पिता से राम की भक्ति पाई थी। रायसाहब का परिवार बहुत बड़ा था। सैकड़ों लोग उनके यहाँ भोजन करते थे। होरी वहाँ पहुँचा और रायसाहब को बुलाना ही चाहता था कि रायसाहब स्वयं ही वहाँ अ निकले और होरी के सामने प्रस्ताव रखा कि इस बार धनुष–यज्ञ में तुम्हें राजा जनक का माली बनना है। पूजा करते समय जानकीजी को गुलदस्ता भेंट करना है।

होरी और धनिया दोनों अपने वैवाहिक जीवन की स्मृति में खो गये। थोड़ी देर में बाँस खरीदने वाले चौधरी ने पन्द्रह रुपये सैंकड़ा के भाव से ही पैसे चुकाये और होरी ने चुपचाप स्वीकार कर लिये। थोड़ी देर में गोबर गाय लेकर आ गया। स्वागत के साथ गाय को घर में अन्दर ही बाँधा गया। होरी तो गाय को बाहर बाँधना चाहता था किन्तु धनिया के आग्रह पर गाय को आँगन में ही बाँधना पड़ा। अब रूपा, सोना गाय के विभिन्न काम का बंटवारा करने लगी। अगले दिन दातादीन ने आकर गाय की प्रशंसा की। सारा गाँव गाय को देखने आया किन्तु हीरा और शोभा दोनों भाई नहीं आये। रात को होरी अपने भाइयों के प्रति अत्यन्त स्नेहशील हो उठा और हीरा को बुलाने के लिए उसके घर की ओर चला। उसने हीरा और शोभा को बात करते सुना। हीरा कह रहा था कि जब हम साझे में थे, तब तो एक बकरी भी नहीं आई और अब पछाई गाय ली गई है। वह अवश्य पहले की कमाई है। भगवान ने चाहा तो बेईमानी के धन से खरीदी गइ गाय बहुत दिनों तक उसके घर न रह पाएगी। होरी ने यह सुना और चुपचाप लौट आया। उसका मन खिन्न हो गया। वह ऐसी गाय को अब रखना ही नहीं चाहता था, जो भाई–भाई में वैमनस्य उत्पन्न कर दे। उसने गाय वापस भोला को लौटाने के लिए खूंटे से खोल ली। धनिया के विरोध–पूर्वक रास्ता रोक लिया। होरी ने कहा कि सारा गाँव मुझ पर आक्षेप करता है कि मैंने भाइयों का हक मारकर गाय खरीदी है। यह सुनकर धनिया ने हीरा को कोसना शुरू कर दिया। धनिया और हीरा में खूब थूक फजीहत हो गई। दातादीन, पटेसरी, झिंगुरीसिंह, दुलारी सहुआइन ने हीरा को बुरा–भला कहा। धनिया के एक अनुचित शब्द ने जनमत को उसके विरुद्ध कर दिया। होरी ने धनिया को डाँटा और घसीट कर घर की ओर ले चला।

रायसाहब के यहाँ जेठ के महीने में शगुन का उत्सव आयोजित हुआ। चारों ओर सजावट, आदर–सत्कार का आयोजन था। रायसाहब के सहपाठी आये–'बिजली' के सम्पादक ओंकारनाथ, बीमा कम्पनी के दलाल एडवोकेट तंखा तथा यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर मिस्टर बी. मेहता। इस उत्सव के अवसर पर धनुष–यज्ञ के पश्चात् एक हास्य नाटिका प्रस्तुत की गई, जिसे रायसाहब ने लिखा था। रायसाहब, तंखा, ओंकारनाथ और मेहता परस्पर सैद्धान्तिक विवाद करने लगे। तंखा ने नाटक की आलोचना की, मिस्टर मेहता ने सिद्धान्त की आड़ में रायसाहब की कथनी–करनी को आड़े हाथों लिया कि किसानों का हितैषी बनना और उनसे बेगार, दण्ड देना अनुचित है। मेहता का विचार है जिसे आप अच्छा समझते हैं, उसे खुलकर कहो और करो, किन्तु कथनी–करनी में अन्तर धूर्तता है। रायसाहब ने बड़ी गम्भीरता से मेहता की बात का समर्थन करते हुए मेहता पर चोट की कि इस गरीब देश में गरीबों के लिए रोटी तक नहीं है और गरीबों की भलाई की डींग हांकने वाले हजारों रुपये फटकारते हैं। यह व्यवस्था का ही दोष है। ओंकारनाथ ने भी विवाद में पड़ते हुए स्पष्ट ही मेहता की बड़ी तनख्वाह पर छींटाकसी की।

धनुष–यज्ञ के पश्चात् प्रहसन हुआ। मेहता और तंखा ने पूरा समय दिया। रायसाहब के नाट्य–लेखन की कुशलता पर मेहता ने उन्हें बधाई दी। अगले दिन शिकार का कार्यक्रम बना। श्रीमती खन्ना और सम्पादकजी इस मण्डली में शामिल नहीं हुए। कारों में काफिला रवाना हुआ। नदी किनारे वृक्षों की छाया में कारें रोक दी गईं और यह तय हुआ कि दो–दो व्यक्तियों की पार्टी बनाकर शिकार पर निकला जाए। बारह बजे तीनों टोलियाँ यहाँ आ जाएंगी। मेहता और मालती, और रायसाहब मिर्जा खुर्शेद और तंखा–तीन पार्टियों में विभिन्न दिशाओं में शिकार खेलने निकल पड़े। जब से होरी के घर में गाय आई थी, उसके घर का वातावरण ही बदल गया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

घर–घर में गाय की चर्चा थी। वर्षा बरसते ही रायसाहब के कारकुन ने बकाया लगान चुकाए बिना किसी को खेत पर हल न ले जाने का आदेश दिया। किसानों में खलबली मच गई, वे महाजनों से उधार लेने दौड़े। होरी को भी लगान चुकाना था। वह झिंगुरीसिंह के पास कर्ज लेने गया। झिंगुरी ने गाय को बेचने के लिए कहा। होरी को शुरू में यह प्रस्ताव अच्छा न लगा, किन्तु बाद में ऊँच–नीच समझाया तो गाय झिंगुरीसिंह के हाथ बेचने को राजी हो गया। वह घर गया और गाय बेचकर लगान चुकाने का प्रस्ताव करने लगा। घर में कुहराम मच गया। बच्चों ने विरोध किया। अन्त में धनिया भी मान गई। निश्चित हुआ कि रात होने पर, बच्चों के सो जाने पर गाय झिंगुरीसिंह के यहाँ पहुँचा दी जाए। जब रात को होरी गाय को लेकर जाने को तैयार हुआ, उसका मन नहीं माना। उसने धनिया से कहा कि हम गाय नहीं बेचेंगे, सूद पर कर्ज लेकर लगान चुका देंगे। धनिया भी प्रसन्न हो गयी। उमस से बचाने के लिए होरी ने गाय को बाहर बाँध दिया। होरी अपने बीमार भाई शोभा से मिलने चला गया। रात को ग्यारह बजे लौटा तो हीरा को गाय के पास खड़ा देखा। पूछने पर उसने कहा कि मैं तुम्हारे कौड़े से आग लेने आया था। होरी यह जानकर प्रसन्न हुआ कि उसका भाई उसके घर आया है।

होरी और धनिया ने गोबर की घर में अनुपस्थिति को चिन्ताजनक बताया। धनिया ने गाँव की चर्चा के विषय में बताया कि वह भोला की लड़की झुनिया मेरे बच्चे को जाल में फँसा रही है। थोड़ी देर में गोबर ने आकर घबराते हुए कहा, दादा, सुन्दरिया को क्या हो गया, वह तड़प रही है। सब बाहर आये। उन्होंने देखा गाय पैर फैला चुकी थी। धनिया ने सिर पीट लिया। सारा गाँव इकट्ठा हो गया। हीरा भी वहाँ उपस्थित होकर सबसे अधिक दुःख प्रकट करने लगा। होरी ने धनिया के सामने अपना सन्देह बताया कि मैंने हीरा को गाय की नांद के पास खड़ा देखा था। फिर क्या था। धनिया ने हीरा को जेल भेजने की धमकियां और गालियां देना शुरू किया।

प्रातःकाल होरी के घर मे पूरा हंगामा हुआ। होरी और धनिया परस्पर भी जोर–जोर से कह रहे थे। धनिया हीरा को गालियाँ निकालती और होरी उस पर दो चार लात घूंसों का प्रहार करता। इस समय शोभा आ गया। पंडित दातादीन आये। लोग इकट्ठे हो गये। धनिया मार खाती जाती थी और गाय को मारने के लिए हीरा को कोसती जाती थी। दातादीन ने हीरा की तलाश कराई तो ज्ञात हुआ, वह घर से गायब है। शाम को थानेदार आ गया। गाँववालों ने उनका सेवा सत्कार किया। दातादीन, नोखेराम, झिंगुरीसिंह, मारूशाह, लाला पटेश्वरी आदि सब एकत्र हुये। धनिया ने थानेदार के सामने कहा– होरी के भाई हीरा ने गाय को विष दिया है। थानेदार ने हीरा के घर की तलाशी लेने की इच्छा प्रकट की। होरी अपने भाई के घर की तलाशी के नाम से घबरा गया। थानेदार तो बिना कुछ लिये दिये ही होरी व हीरा के घर को छोड़कर जाने वाला था, किन्तु पटेश्वरी ने तीस रुपये रिश्वत लेकर तलाशी से हीरा को मुक्त करने का आग्रह किया। उनमें से आधे थानेदार के और आधे मुखियाओं के तय हुए। होरी ने झिंगुरीसिंह से तीस रुपये कर्ज लिये और रुपये रूमाल में बाँधकर थानेदार को देने के लिए ज्यों हीं आगे बढ़ा, धनिया ने झपट्टा मारकर रुपये बिखरा दिये और कहा, ये रुपये जिसके हो ले जावे, हम एक पैसा नहीं चुकायेंगे। थानेदार शौक से तलाशी ले। हमारी ही गाय मरी और हम से ही रिश्वत। धनिया के इस चण्डी रूप से थानेदार ने दबे पाँव वहाँ से प्रस्थान किया और हर्जाना पंचों से वसूल किया। सारे ग्राम–समुदाय में धनिया के देवी रूप की चर्चा होने लगी।

गाय को विष देने की बात खुलने पर हीरा कहीं भाग गया था। होरी ने पुनिया को सहारा दिया। उसके खेतों को अपने से अधिक सम्भाला। फलस्वरूप होरी के यहाँ खरीफ में कम तथा पुनिया के अधिक अनाज हुआ। धनिया और गोबर दोनों ही होरी के प्रति उस दिन से रुष्ट थे, जब से होरी ने धनिया को सबके सामने मारा था। थानेदार के सामने चण्डी रूप धारण करने वाली धनिया आसपास गाँवों में अलौकिक रूप धारण कर रही थी। धनिया को भी अब पुनिया पर दया आने लगी थी। इस बीच होरी को ज्वर आने लगा, तो पति–पत्नी में बोलचाल भी शुरू हो गई। होरी के घर की दरिद्रता कभी जाने का नाम न लेती थी। धनिया के कपड़े भी फट गये थे। खेत में जो पैदा होता, उसे महाजन या जमींदार ले जाते।

एक रात गोबर झुनिया को उसके पिता के घर से ले आया। उसे पाँच महीने का गर्भ था। झुनिया को अपने घर के दरवाजे पर छोड़कर माँ–बाप के क्रोध से बचने के लिए कहीं चला गया। झुनिया को गर्भवती अवस्था में अपने द्वार पर आई देखकर धनिया अपने पति को खेत की मंडैया से ले आयी और होरी ने कहा कि मैं अभी उसे घसीटकर घर से बाहर निकाल दूंगा, तो धनिया ने सौगंध ा दिलाते हुये कहा कि बेटा ही कपूत निकल गया है। जो कलंक लगना था, सो लग गया। अब झुनिया को निकालना मत। झुनिया भी होरी के पाँवों में पड़कर गिड़गिड़ाई। होरी ने आश्वस्त किया कि बिरादरी को भोज–भात देकर लोगों की निन्दा और कोप से बचेंगे।

दूसरे दिन झुनिया को घर में रख लेने पर सारे गाँव में हल्ला हो गया। दातादीन ने होरी से कहा कि ऐसी कुलच्छनी को घर में क्यों रखा? पटेश्वरी ने झुनिया को उसके बाप के यहाँ भेजने की सलाह दी, किन्तु धनिया और होरी ने स्पष्ट कह दिया कि झुनिया गर्भवती है और हम दो–दो की हत्या का दायित्व नहीं ले सकते। पंचों को होरी और धनिया का व्यवहार बुरा लगा। कारकुन नोखेराम, झिंगुरीसिंह, दातादीन, पटेश्वरी ने मिलकर होरी को सबक सिखाने का षड्यंत्र रचा। जो लगान चुका दिया गया था, उसी को दुबारा से वसूल करने की योजना बनी। फिर सौ रुपये तावान लगाने की बात तय हुई। उसी दिन झुनिया के बच्चा हुआ। पंचों ने गाँव को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकट्ठा करके होरी पर दण्ड लगाने की प्रक्रिया निभाई और सौ रुपये नकद तथा तीस मन अनाज होरी पर दण्ड किया। धनिया ने विरोध किया कि ये पंच नहीं, कसाई हैं, जो मेरी जायदाद हड़पना चाहते हैं। हम दण्ड नहीं देंगे, जिसे जो करना हो करे। किन्तु होरी बिरादरी और पंचों से इतना भयभीत था कि खलिहानों से सीधा अनाज ला लाकर पंचों के सामने ढेर करने लगा। जब दो मन अनाज ही शेष रहा तो धनिया ने होरी के हाथ से टोकरी छीन ली। होरी को यही कहना पड़ा कि सारा अनाज यहाँ आ चुका है। अब मेरे पास एक दाना भी नहीं है। होरी का घर भी अस्सी रुपये में झिंगुरीसिंह के यहाँ रहन रख दिया गया। नोखेराम तो होरी के बैल भी बिकवाना चाहते थे, किन्तु पटेश्वरी और दातादीन ने उसका विरोध किया। उधर घर में धनिया अकेली ही पोते के जन्म पर गला फाड़–फाड़कर गीत गाती रही।

मालती इंग्लैण्ड पढ़कर आई थी। मालती के पिता जमीन–जायदाद की दलाली करते थे और अब लकवे से पीड़ित थे। मालती के सरोज और वरदा, दो बहिनें और थीं। सरोज बी.ए. में पढ़ती थी। मालती के पाँच सौ रुपयों में घर का खर्च बड़ी कठिनाई से चल पाता था। मालती कई जगह से कर्ज लेकर भी घर का खर्च चलाती थी। वह बाहर से तितली और भीतर से मधुमक्खी थी। मालती ने 'वीमेन्स लीग' नामक महिला संस्था की स्थापना की थी। उसी संस्था में डॉ. मेहता का भाषण रखा गया था। सभी विशिष्ट व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे। रायसाहब, सम्पादक, मिर्जा, खन्ना, मिसेज खन्ना आदि भी मेहता के विचारों को सुनना चाहते थे। मेहता ने अपने भाषण में नारी को पुरुष से महान् बताया। पुरुष में हिंसा, प्रतिशोध, कठोरता, विध्वंस आदि हैं और नारी में स्नेह, समर्पण, त्याग, सृजन आदि दिव्य गुण हैं। पुरुष किसी भी प्रकार नारी की बराबरी नहीं कर सकता। वोट का अधिकार पाने की बात कहना भी इस युग का मायाजाल ही है। स्वच्छंद प्रेम भी उद्दीप्त वासना ही है। दाम्पत्य–जीवन सेवा और त्याग पर टिका होता है। भाषण समाप्त होने पर सभी ने मेहता को बधाई दी। मेहता मिसेज खन्ना के नारीत्व से बहुत प्रभावित थे। मिर्जा ने मेहता को गोद में उठा कर मुबारक दी। खन्ना और श्रीमती खन्ना का पारस्परिक खिंचाव सबको ज्ञात था। मेहता ने मालती से कहा कि तुम खन्ना को समझाती क्यों नहीं कि पत्नी के साथ सद्व्यवहार किया करे। मालती ने इसमें अपना अपमान महसूस किया। फिर भी मेहता ने इतना तो कह ही दिया कि आप खन्ना के साथ रहना छोड़ दें तो मिसेज खन्ना का संकट हल हो सकता है। मालती को बहुत दुःख हुआ।

बैलों के बिना खेती नहीं हो सकती थी। होरी का परिवार मजदूरी करने लगा। बुवाई के बाद मजदूरी मिलना भी कठिन हो गया। होरी के घर में खाने के लाले पड़ गये। नन्हीं रूपा तो भूखों मरती पुन्नी चाची के घर गई और रोटियाँ खाई। होरी मनमारे बैठा था। आज उसके घर में चूल्हा तक नहीं जला। इसी समय दातादीन ने समझाया कि तुम्हारे पास बैल नहीं है। मैं तुम्हारा हितैषी हूँ। मैंने तुम पर पंचों से कह कर दंड कम कराया था। अब रायसाहब ने सब पंचों को लताड़ा है। मैं तुम्हारे खेतों में मेरे बैलों से जुतवा दूँगा। पैदावार का आधा–आधा हम बाँट लेंगे। होरी यह जानते हुए भी यह घाटे का सौदा है, खेतों को परती न रखने, लगान का प्रबंध करने, बेदखली से बचने के लिए सहमत हो गया। दातादीन ने होरी को अनाज दिया, तब कहीं धनिया ने पीसा और पकाया । दूसरे दिन खेतों में बुवाई शुरू हो गई। दातादीन को सेंत–मेंत के मजदूर मिल गये। उनका पुत्र मातादीन सिलिया चमारिन को रखे हुए था। सारा गाँव जानता था, किन्तु वे अपने धर्म को भोजन तक ही मानते थे। अब साझे की खेती के पश्चात् मातादीन भी होरी के घर आने–जाने लगा और झुनिया को फुसलाने का प्रयत्न करने लगा। झुनिया हँस–बोल कर ही उससे कुछ ऐंठती रहती थी। सोना इस बात को जानती थी। झुनिया और सोना परस्पर रसीली मजाक करती रहती थीं। इलाके में शक्कर मिल खुल जाने से किसानों ने सारा गन्ना मिल को ही तौलने का निश्चय किया था। सभी किसान कर्ज से लदे थे। वे जानते थे कि खेती–गन्ने की सारी कमाई महाजन ले जायेंगे। दातादीन, पटेश्वरी, नोखेराम, झिंगुरीसिंह किसानों को कर्ज देते थे और ब्याज बढ़ाकर कई गुनी रकम वसूलते थे। होरी का गन्ना सवा सौ रुपये का हुआ। झिंगुरी ने मिल में बैठकर रुपये सीधे अपने हाथ में लिये और पच्चीस रुपये होरी को सौंप दिये, जो नोखेराम ने छीन लिये। खाली हाथ होरी घर आया तो धनिया ने सिर पीट लिया। आज उसके पास कथा भागवत पर चढ़ाने को चार पैसे भी नहीं थे।

होरी, धनिया, रूपा, झुनिया अब मजदूर की तरह अपने ही खेत में काम करके दातादीन की डाँट खा रहे थे। दातादीन उन्हें पलभर विश्राम नहीं करने देता था। होरी अपमानित हो, उन्मत्त बना गँडासा उठा उठा कर ईख के टुकड़े कर रहा था। उसका शरीर पसीने से तर हो रहा था। सहसा वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। धनिया पागलों की तरह दौड़ी उसके पास आई। वह रो रही थी। पटेश्वरी उसे धीर बंधा रहा था। होरी ने आँखें खोलीं। लोग उसे उठाकर घर लाये। दातादीन को अब भी अपनी बोआई में देरी का भय था, किन्तु मातादीन इतना निर्दयी नहीं था, वह होरी के लिए दूध ले आया। दूध पीकर होरी में जान आ गई। इसी समय गोबर अपना सामान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लिये आ गया। माँ–बाप, बहिनें सब प्रसन्न हुए। झुनिया आज मान कर रही थी। गोबर ने उसे किनारेदार साड़ी दी। धनिया को भी वैसी ही साड़ी दी। होरी को धोती और दुपट्टा दिया। सब लोग प्रसन्न थे। गोबर के लिए दुलारी से गेहूँ का आटा मांग कर लिया गया। बच्चे ने फ्राक पहनी। झुनिया ने गुबार निकाला कि कोई मिल गई होगी शहर में तुम्हें, मैं ने तुम्हारे सिवा किसी को नहीं जाना। गोबर ने कसमें खाकर उसे आश्वस्त किया। झुनिया ने भोला द्वारा बैल खोल कर ले जाने, पंचों द्वारा दण्ड देने, साझे में खेती होने आदि की दुःख कथा सुनायी। गोबर क्रोध से उबल रहा था कि मैं पटेश्वरी, दातादीन, झिंगुरी आदि के पेट से रुपये निकलवा लूंगा। गोबर ने झुनिया को भी अपने साथ ले चलने का प्रस्ताव रख दिया किन्तु झुनिया दादा और अम्मा से डर रही थी कि वे इजाजत नहीं देंगे।

गोबर ने होली के अवसर पर युवकों को एकत्र करके एक तमाशे का आयोजन किया। आसपास के गाँवों से तमाशा देखने के लिए लोग इकट्ठे हो गये। सबसे पहले तमाशे में झिंगुरीसिंह की दोनों औरतों की लड़ाई, नाज–नखरे, किसानों को कर्जा देकर लूटने पर तीखा व्यंग्य किया गया। झिंगुरीसिंह दस रुपये का कागज लिखा कर किसान को पाँच ही नकद देते थे। इस बेईमानी को गिरधर ने झिंगुरी का स्वांग बनाकर उजागर किया। लोग हँसते–हँसते लोट–पोट हो गये। इसी प्रकार पटेश्वरी, नोखेराम और दातादीन की भी खबर ली गई। सवेरे चारों ओर वही नाटक के संवाद और फिकरे शुरू हो गये। झिंगुरी तो हँसी में उड़ा ले गये, पर पटेश्वरी और दातादीन को यह चुभ गई और दातादीन होरी से काम का हर्जाना मांगने लगे। गोबर ने स्पष्ट कह दिया कि अब हम आपकी मजूरी नहीं करेंगे। दातादीन ने कहा–ब्याज सहित हमारा दो सौ रुपया चुका दो और छुट्टी लो। गोबर ने कहा, एक रुपया सैकड़ा के हिसाब से ब्याज सहित छियासठ रुपयों से अधिक हम एक पैसा भी न देंगे, जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। किन्तु होरी धर्म–भीरू था जो ब्राह्मण दातादीन को पूरे रुपये चुकाना चाहता था। उसने स्वीकार किया कि मैं आपका एक–एक पैसा चुकाऊंगा। गोबर पिता की इस मूर्खता पर झुंझलाकर रह गया। पटेश्वरी और नोखेराम ने भी भौंडी नकल का मजा गोबर और होरी को चखाने का निश्चय किया। नोखेराम ने लगान का दावा करने का निश्चय किया, जिसे होरी ने चुका दिया था, किन्तु नोखेराम ने रसीद नहीं दी थी। गोबर और होरी ऊख का खेत सींच रहे थे। सोना और रूपा लड़ रही थीं। गोबर ने सोना और रूपा को दो थप्पड़ जड़ दिये। वे दोनों रोती हुई खेत से निकलकर घर को चल दीं। सिंचाई का काम रुक गया। पिता–पुत्र में कहा–सुनी हो गई। गोबर ने झुनिया और बच्चे के साथ लखनऊ लौट जाने का निश्चय प्रकट किया। धनिया बच्चे को अकेले नहीं भेजना चाहती थी। उसे भ्रम हुआ कि झुनिया के सिखाने से ही गोबर उन्हें छोड़कर जा रहा है। सास और बहू में भी तकरार हो गया। इससे पूर्व नोखेराम के प्यादे ने होरी को लगान चुकाने की ताकीद की। होरी ने नोखेराम के सामने बार–बार कहा कि मैं तो पाई–पाई लगान पहले दे चुका हूँ। नोखेराम ने रसीद मांगी। होरी निरुत्तर था। यह सुनकर गोबर स्वयं नोखेराम के पास गया और उसने धमकी दी कि रायसाहब के पास ही मैं रहता हूँ, उन्हीं से शिकायत करूँगा कि तुम लगान लेकर रसीद नहीं देते हो। नोखेराम ने परिस्थिति को भाँप लिया और कहा – तुम गर्म क्यों होते हो, लगान चुकाया है तो रसीद कहीं टंगी पड़ी होगी। गोबर ने होरी के सीधेपन को आड़े हाथों लिया। अब वह इस घर में अधिक नहीं रहना चाहता था और धनिया तथा झुनिया में संग्राम छिड़ जाने पर उसने झुनिया और बच्चे के साथ लखनऊ जाने की तैयारी कर ली। धनिया पुत्र के प्रस्थान करने के बाद चुपचाप रोती रही।

रायसाहब अमरपाल सिंह के सामने तीन काम थे। एक – अठ्ठारह वर्षीय पुत्री का विवाह, दो – ससुराल की रियासत के एकमात्र वारिस की मृत्यु के कारण अपने पुत्र को कोर्ट से उत्तराधिकार दिलाना, तीन–राजा सूर्यप्रताप सिंह को चुनाव में हराना। पहली समस्या हल हो गई थी कि उनके भाग्य से कुंवर दिग्विजय सिंह की पत्नी का देहान्त हो गया था। यद्यपि कुंवर साहब समस्त दुर्व्यसनों के शिकार थे, किन्तु यह सगाई रायसाहब ने पक्की कर ली थी। रायसाहब के ससुराल की स्टेट पचास लाख की थी, जिस पर उनके चचेरे सालों ने कब्जा कर लिया था। वकीलों की राय थी कि पचास हजार रुपये कोर्ट फीस खर्च करके यह फैसला निश्चित ही आपके पक्ष में हो सकेगा।

गोबर के जाने के बाद होरी और धनिया प्रायः झुनिया को कोसते और यदा–कदा हँसी–विनोद तथा परिश्रम करते समय बिताते। कभी दुलारी सहुआइन से हँसी–मजाक करते। पंडित दातादीन और झिंगुरीसिंह महाजनों पर बढ़ते सरकारी अंकुश से चिन्तित थे कि सरकार अधिक ब्याज नहीं लेने देगी। दातादीन की इस बात पर झिंगुरी ने कहा कि हम पहले ही ब्याज का रुपया काटकर किसान को कर्ज देंगे। दोनों इस प्रकार बातें करते खलिहान में आये, जहाँ झिंगुरीसिंह ने मातादीन की शादी करने के लिए दातादीन को समझाया कि अब तो बहुत बदनामी हो रही है। दातादीन ने अन्के शास्त्रों का प्रमाण देकर बताया कि ब्राह्मण का खान–पान उत्तम रहना चाहिए, शेष व्यवहार चाहे जैसे हों। ब्राह्मणों ने निम्न जाति की स्त्रियों से सम्बन्ध जोड़े हैं और उनकी सन्तान ब्राह्मण ही कहलाई

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। झिंगुरी ने कहा कि मैं एक अच्छे ब्राह्मण की कन्या का सम्बन्ध लाया था किन्तु तुमने हजार – पाँच सौ मांगकर बात बिगाड़ी। जबकि तुम्हारी स्वयं की हैसियत ही क्या है? सिलिया और मातादीन खलिहानों में काम कर रहे थे। दुलारी सहुआइन इस समय सिलिया से अपने दो पैसे मांगने आ गई। सिलिया ने पैसों के बदले अनाज दे दिया। मातादीन वहाँ से खिसक गया था। सिलिया को अनाज देता देखकर मातादीन ने सिलिया को डाँटा कि तुझे अनाज देने का कोई अधिकार नहीं। सिलिया अपमानित हुई। यह खबर उसके भाइयों तथा अन्य चमारों तक पहुँची। वे इकट्ठे होकर आये और उन्होंने मातादीन को पकड़कर उसके मुँह में एक बड़ी–सी हड्डी का टुकड़ा ठूँस दिया। खलिहानों में लोग जमा हो गये, वे भीतरी मन से मातादीन को बुरा कहते थे और बाहर से चमारों को गालियाँ दे रहे थे। दातादीन उन पर बिगड़ रहे थे। सिलिया अपराधिनी सी खड़ी माँ–बाप और भाइयों पर कुपित थी कि उन्होंने मातादीन का धर्म बिगाड़ दिया। सिलिया ने माँ–बाप के साथ जाने से मना कर दिया। जब मातादीन ने भी उसे साथ आने को मना कर दिया, तब विवशता को देखकर होरी और धनिया उसे अपने घर ले आये।

होरी की बड़ी लड़की सोना का विवाह सोनारी के एक धनी किसान गौरी मेहता के लड़के जमना से निश्चित हो गया। होरी रुपये लेने गोबर के पास जाना चाहता था किन्तु धनिया ने इनकार कर दिया कि गोबर से एक पैसा भी नहीं लेंगे। होरी रुपये का प्रबन्ध करने दुलारी सहुआइन के पास गया, जिसने दो सौ रुपये सोना का विवाह करने हेतु होरी को देने का पक्का वादा किया। यह बात सोना ने सुनी। अतः उसने सिलिया को सोनारी भेजा, जिसने जमना से कहा कि हमारे पास दहेज के लिए एक पैसा भी नहीं है। जमना ने अपने पिता गौरी मेहता से बिना दहेज के लिए विवाह की बात की तो मेहता ने उसे जूतियों से मारा। सोना ने सिलिया से यह उत्तर सुना। अगले दिन गौरी मेहता का पत्र आया कि हम दहेज में कुछ न लेंगे। बरातियों को मोटा–झोटा खिला देना। रसद का इन्तजाम भी हमने कर लिया है। धनिया ने इस पत्र को सुनकर यही कहा कि हम उनसे छोटे नहीं हैं जो अपनी लड़की को कुछ न दें।

जब भोला घर में बहुओं के कारण अपमानित होने लगा तो उसने एक विधवा नोहरी से विवाह कर लिया। नोहरी के आते ही बहुओं का राज खत्म हो गया। उन्हें अखरा। एक दिन भोला के बड़े पुत्र कामता ने भी भोला को मारा और घर से निकाल दिया। पंडित नोखेराम ने जवान स्त्री साथ में देखकर भोला को अपने यहाँ शरण दी। नोहरी का मिजाज आसमान में चढ़ गया। उसने एक दिन शोभा को नोखाराम से डाँट दिलाई। एक दिन लाला पटेश्वर को अपमानित कराया। भोला यहाँ अपने को बहुत अपमानित महसूस करने लगा था। वह अपने पुत्र कामता के साथ रहने को जाना चाहता था, किन्तु नोहरी ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली, मैं पंचायत में न्याय कराऊँगी। बेचारा भोला कहाँ जा सकता था। नोहरी गाँव में नोखेराम के कारण राज करने लगी।

पटेश्वरी कई दिनों से होरी से खार खाये बैठा था। इस वर्ष होरी के खेत में सबसे अच्छी ईख थी। पटेश्वरी ने मगरूशाह को उकसाया कि तुम अपना कर्ज वसूल करने के लिए होरी पर नालिश कर दो। यही हुआ। होरी को पता भी न चला और कुर्की आ गई। डेढ़ सौ रुपये में खडी ईख नीलाम हो गई। होरी की साख चली गई। दुलारी ने इसी ईख के भरोसे सोना के विवाह के लिए दो सौ रुपये देने का वादा किया था, अब उसने भी मना कर दिया। होरी और धनिया चिन्तित थे कि गौरी मेहता के यहाँ शादी की तैयारियाँ चल रही हैं और हमारे पास कुछ भी इंतजाम नहीं है। इसी समय नोहरी उधर से निकली और होरी तथा धनिया से सम्मान–प्रशंसा पाकर सोना के विवाह में दो सौ रुपये देने का प्रस्ताव कर बैठी। होरी का यह संकट अनायास ही हल हो गया, अन्यथा उसे खेत रहन रखने पड़ते। गोबर झुनिया को लेकर शहर में आया, किन्तु शहर के बन्द वातावरण में झुनिया प्रसन्न न रह सकी। उसका पुत्र दस्त की बीमारी से चल बसा। वह बच्चे की स्मृतियों में घुलने लगी। उसे दूसरा बच्चा होने वाला था। प्रसव के समय चुहिया नामक पड़ोस की एक मोटी स्त्री ने झुनिया को सहारा दिया। वही पुत्र होने के बाद भी झुनिया को संभालती रही। गोबर व झुनिया में मनमुटाव रहने लगा। गोबर अब शक्कर मिल में काम करता था। शक्कर पर सरकार ने टैक्स लगा दिया और मिल मालिकों ने मजदूरी कम करने का ऐलान कर दिया। मजदूर संघों ने हड़ताल का आह्वान किया। गोबर मिल के गेट पर हड़तालियों के आगे खड़ा था। मिल में समझौता नहीं हो रहा था। नये मजदूरों की भर्ती की जा रही थी। नये–पुराने मजदूरों के संघर्ष में गोबर घायल हो गया। मिर्जाजी ने उसे घर पर पहुँचा दिया। झुनिया का नारीत्व जाग उठा। उसने गोबर की दिन–रात सेवा की। चुहिया ने झुनिया को पूरा सहयोग दिया, यद्यपि एक दिन गोबर उसे अपने घर न आने का निर्देश दे चुका था। झुनिया की सेवा ने गोबर का दिल जीत लिया। स्वस्थ होने पर वह झुनिया के साथ किये गये दुर्व्यवहार पर लज्जित था।

मि. खन्ना मजदूरों को किसी प्रकार की रियायत देना नहीं चाहते थे। मालती, मेहता, सम्पादक, मिर्जा और स्वयं गोविन्दी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भी इस पक्ष में थे कि मजदूरी कम न की जाए। किन्तु खन्ना को अपने अधिकारों का अभिमान था। नये मजदूर उन्हें सस्ती दर पर उपलब्ध थे। मिल के डाइरेक्टर्स उनका विश्वास करते थे। मिल में हड़ताल की परिस्थितियों में वे डॉ मेहता से परामर्श करना चाहते थे। मालती के घर पर मेहता मिले, जिन्हें मालती ने भोजन पर आमंत्रित किया था। उसने भोजन अपने ही हाथ से पकाया था। मेहता का ही यह प्रभाव था कि मालती में आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया था। डॉ. मेहता ने खन्ना को वही परामर्श दिया कि मजदूरों की मजदूरी कम न की जाए। किन्तु खन्ना यही कहते रहे कि मैं मिल के हिस्सेदारों को नुकसान कैसे पहुँचा सकता हूँ। वहाँ से उनके मिल की चिमनी दिख रही थी। खन्ना मिल को देखकर गर्व से भर रहे थे। अचानक उन्होनें मिल की ओर धुआँ उठते और अनेक लोगों को भागते देखा। मिल में आग लग गई थी। मेहता, मालती और खन्ना भी दौड़कर व्हां पहुँचे , किन्तु सब कुछ नष्ट हुआ देखकर खन्ना की मनःस्थिति विक्षिप्त–सी हो गई थी। गोविन्दी ने ही ऐसे समय में उसके मन को सहारा दिया। उसने कहा कि जीवन का सुख दूसरों को सुखी करने में है, लूटने में नहीं। अब तुम न्याय के सैनिक बन कर जीवन का आनन्द पाओ।

मिल जल जाने के बाद खन्ना और गोविन्दी का दाम्पत्य जीवन भी पटरी पर आ गया था। खन्ना मालती की ओर से निराश हो गये थे और एकमात्र गोविन्दी ही उनके परिवार की धुरी हो गई थी। मालती में सेवा–भाव का विकास हो गया था। एक दिन मालती और मेहता घूमते–घूमते बेलारी गाँव आ पहुँचे, जहाँ वे होरी के यहॉ ठहरे। वह मेहता से पूर्व परिचित था, जब वह धनुष–यज्ञ में माली बना था और पठान बने मेहता को पकड़कर दबोच चुका था। मालती ने गाँव के बच्चों और महिलाओं की स्वास्थ्य की जाँच की। उन्हें अच्छे जीवन की जानकारी दी। संध्या को मेहता गॉववालों की कुश्ती देखते रहे। रात को गाँववालों ने आग्रहपूर्वक मेहता और मालती को वहीं रख लिया। प्रकृति प्रेमी मेहता मालती को लेकर नदी किनारे आ गये और भाऊ की नाव मंगवाकर नौका बिहार करने गये। यहाँ मेहता ने मालती से कहा, यदि मेरा प्रिय मुझसे विश्वासघात करे तो मैं उसे मारकर स्वयं भी अपनी जीवनलीला समाप्त कर लूँ। मेरे लिए प्रेम खूंखार शेर है, जो अपने शिकार पर किसी अन्य का अधिकार देख ही नहीं सकता। डॉ. मालती मेहता की ऐसी हिंसक बात सुनकर सहम गयी। उसने कहा कि मैं प्रेम को गाय की तरह मानती हूँ। तुम्हारे प्रति मैं आदर से पूर्ण हूँ, किन्तु शायद अब मैं प्रेम का व्यवहार न कर सकूँगी।

रायसाहब के पुत्र रुद्रपाल ने कोर्ट में मालती की छोटी बहिन सरोज से विवाह कर लिया। रायसाहब ने राजा सूर्यप्रताप की पुत्री के साथ यह विवाह तय कर लिया था और दहेज में जीतकर मिनिस्टर अवश्य हो गये थे। इसलिए तंखा जैसे चालाक व्यक्ति ने पुनः उनकी खुशामद करने के लिए रायसाहब के घर में पैर रखा। तंखा ने खुशामद की। उनके प्रतिद्वन्द्वी राजा सूर्यप्रताप की बुराइयाँ कीं। उसी समय राजा सूर्यप्रताप भी वहाँ आ गये और तंखा को देखकर क्रोध से बोले, 'तुमने मुझ से सारा पैसा वसूल कर लिया और दावत का पैसा यथास्थान चुकाया नहीं। तुम विश्वासघाती हो।' तंखा नजर न मिला सके। रायसाहब ने भी उन्हें अपमानित करके निकाल दिया। अब रायसाहब ने लज्जित होते हुए कहा कि रुद्रपाल ने मेरी इज्जत मिट्टी में मिला दी। रायसाहब ने सब सुन लिया था। उन्होंने सरोज को गायब करने की योजना सामने रखी, जिसे रायसाहब ने अनुचित मान कर ठुकरा दिया। राजासाहब क्रोधित होकर चले गये। रायसाहब की पुत्री मीनाक्षी की शादी कुंवर दिग्विजय सिंह के साथ हुई, जो विलासी और वेश्यागामी थे और मीनाक्षी पर दुश्चरित्र होने का आरोप लगा रहे थे। अदालत ने मीनाक्षी के पक्ष में फैसला दिया और गुजारा भत्ता भी दिग्विजय सिंह से दिलाने के आदेश दिये। मीनाक्षी उसे सबक सिखाना चाहती थी। अतः वह एक रात हंटर लेकर दिग्विजय सिंह के महल में पहुँची, जहाँ वेश्या का नाच हो रहा था। उसने हंटर से वेश्या की खबर ली और भविष्य में इधर न आने के लिए भरपूर धमकी देकर छोड़ दिया। तब से पति–पत्नी एक–दूसरे की जान के दुश्मन बन गये थे। उधर तंखा ने रुद्रपाल का आश्रय लिया और पुत्र की ओर से पिता पर सम्पत्ति के बँटवारे का दावा किया। दस लाख रुपये की डिक्री हो गई। बेचारे रायसाहब जीवन में पराजित थे। मेहता दार्शनिक थे और गृह–प्रबंध में बिल्कुल शून्य, इसलिए वेतन का हिसाब असंतुलित था। मकान मालिक ने किराया न चुकाने का दावा दिया था। कुर्की आ गई। मालती ने जैसे–तैसे इस बार मकान का किराया चुकाया और तब से मेहता की आमद व खर्च का सारा दायित्व उसी का हो गया। आमदनी से अधिक खर्च देखकर उसने कुछ कठोर निर्णय लिये। कई विधवाओं, छात्रों तथा संस्थाओं को चन्दाबाजी से रोक दिया। मेहता का बजट वह बचत में ले आई। नये बंगले में वे मालती के साथ ही रहते। गोबर को उन्होंने माली रख लिया। झुनिया का बालक मालती से हिल–मिल गया। झुनिया ने अपने गाँव का नाम बेलारी बताया। मालती ने होरी–धनिया के आतिथ्य को याद किया। झुनिया ने बताया, वे मेरे सास–ससुर हैं। झुनिया का बच्चा मंगल मालती और मेहता दोनों के स्नेह का भाजन बन गया। एक बार उसे चेचक निकली, तब भी दोनों ने उसे पल भर नहीं छोड़ा और उसकी सेवा की। मेहता अब मालती की सेवा और त्याग से बहुत प्रभावित हुए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मेहता तो मालती को प्राप्त करने के लिए उतावले थे कि मालती ने कहा कि पति–पत्नी की अपेक्षा मैं मित्र बनकर रहना उचित समझती हूँ। मेहता का रोम–रोम मालती को समर्पित था। वे मालती के चरणों में लिपट गये। मालती ने उन्हें छाती से लगा लिया।

सिलिया का लड़का रामू अब बड़ा हो गया था और रूपा के साथ खेलता था। मातादीन ने सैकड़ों रुपये खर्च करके वापस ब्राह्मण धर्म स्वीकार कर लिया था, किन्तु अब भी जनता उसे अछूत ही मानती थी। उसने आत्मालोचन किया और जनेऊ तोड़ फेंकी। वह सिलिया के लड़के को देखने जाने लगा। उसे गोद में भी लिया एक दिन सिलिया बाजार गई थी। पीछे से ओले पड़े, जिन्हें बालक खाता रहा। फलस्वरूप उसे निमोनिया हो गया और बालक सिलिया की गोद में ही चल बसा। अनेक दिन सिलिया रोती रही। एक दिन मातादीन सिलिया को रास्ते में मिल गया। दोनों बच्चे की बात करते रहे। उसी दिन मातादीन भी समस्त ब्राह्मण तथा जाति–बिरादरी की मर्यादा तोड़ कर सिलिया के साथ ही रहने के लिए चला गया। होरी जीवन से लड़ते–लड़ते थक गया। उसने आप को तीन बीघा खेती के किले में बन्द कर लिया था। उस खेत का भी तीन साल से लगान न चुका पाने के कारण नोखेराम बेदखली के द्वारा अपहरण कर लेना चाहता था। दातादीन ने इससे बचने का उपाय बताया कि विधुर चौधरी रामसेवक के साथ रूपा का विवाह कर दो। रामसेवक होरी से दो–चार साल छोटा था। होरी ने बड़ी–बड़ी चोट सही थी किन्तु यह सबसे गहरी थी। धनिया ने भी बेटी बेचने की योजना को पसन्द नहीं किया। फिर भी होरी इस पर विचार करता रहा। तीन–चार दिन बाद चौधरी रामसेवक उधर से निकला। होरी और धनिया ने उसकी आवभगत की। रामसेवक की उम्र ज्यादा अवश्य थी, किन्तु बुड्ढा नहीं लगता था। दातादीन और होरी के साथ धनिया ने भी सहमति दे दी। गोबर को भी विवाह के अवसर पर बुलाया गया। मालती ने उन्हें सहर्ष भेजा और कन्या के लिए उपहार में एक चर्खा तथा हाथों का कंगन दिया। विवाह हो गया। गोबर ने देखा, घर की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खराब है। सारे गाँव की हालत भी ऐसी ही थी। चौधरी रामसेवक से प्राप्त दो सौ रुपये से होरी ने अपनी बेदखली बचाई। विवाह में मालती भी आई थी। तीन दिन खूब रौनक रही। गोबर भी विदा हो गया। होरी ने रामसेवक से लिये रुपयों का भेद धनिया और गोबर के सामने खोला। अब गोबर क्रुद्ध नहीं हुआ। वह गरीबी का मर्म समझ गया था। रूपा अपने घर खुश थी। रूपा ने मलग के लिए चौधरी से कहकर एक गाय होरी के यहाँ भेज दी। उन्हीं दिनों सड़क ठेकेदार ने काम शुरू किया। होरी ने और धनिया ने रामसेवक के रुपये चुकाने के लिए मेहनत का काम शुरू किया। हीरा भी अब गाँव में आ गया था और माफी मांग रहा था। होरी लू में काम करते–करते बेहोश होकर अचेत हो गया। लोगों ने कहा–गोदान करो। धनिया ने आज की कमाई का सवा रुपया हाथ में लेकर कहा–''यही गोदान है।''

******

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. होरी की पत्नी का क्या नाम था?
2. होरी किस गांव का रहने वाला था?
3. गोबर कौन था?
4. होरी किस विचारधारा का संवाहक था?
5. 'वीमेन्स लीग' नामक संस्था की स्थापना किसने की?
6. होरी की बड़ी लड़की का क्या नाम था?
7. होरी की गाय को जहर किसने दिया?
8. 'यही गोदान है' यह वाक्य किसने कहा है?
9. होरी का गोदान कितने रूपये का था?
10. 'वह बाहर से तितली और भीतर से मधुमक्खी थी' यह किसके बारे में कहा गया है?
11. इस उपन्यास में किन दो सभ्यताओं के अन्तःर्द्वन्द्व को चित्रित किया गया है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.3 सप्रसंग व्याख्याएं

(1)

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव–ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक–एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं। उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान है?

सप्रसंग व्याख्या : भोला महतो की पत्नी मर गई थी। एक दिन होरी का उससे मिलना हो गया, तब उसे यह बात मालूम हुई। होरी ने जाना कि भोला दूसरा विवाह करने का इच्छुक है। होरी ने अपनी ससुराल की एक परित्यक्ता से विवाह कराने का आश्वासन–सा दिया । होरी ने भोला से कहा कि एक गाय खरीदने की बड़ी इच्छा रखता है। भोला दूध बेचने का काम करता था। गायें रखता था। भोला ने गाय ले जाने के लिए कहा और यह भी कि इस बार मेरे पास चारे का बहुत अभाव है, हो सके तो दस–बीस रुपये भूसा खरीदने के लिए दे दो। इसी प्रसंग में लेखक ने किसान के स्वभाव के बारे में कहा है. किसान अपने स्वार्थ का बहुत ध्यान रखता है, इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं है। वह किसी को रिश्वत के नाम पर पैसे आसानी से नहीं देता है, वह सामान की खरीद–बिक्री के मामले में भी बहुत सावधानी रखता है। वह महाजन से ब्याज की एक–एक पाई छुड़ाने का भी बहुत लोभ रखता है और इसके लिए महाजन से घण्टों अनुनय–विनय कर सकता है। वह किसी के फुसलाने, बहकाने में नहीं आता और बात तभी मानता है जब उसे पूरा विश्वास हो जाता है। वह प्रकृति के साथ तालमेल रखता है, प्रकृति के अनुसार प्रकृति की तरह वह किसी को नुकसान देने की बात तो नहीं सोचता। वृक्षों के फल जनता खाती है, खेती से उत्पन्न अनाज को संसार काम मे लेता है, गाय के थनों का दूध भी स्वंय गाय नहीं पीती, दूसरे लोग ही पीते हैं, ऐसी प्रकृति के बीच रहने वाले किसान में घृणित स्वार्थ की भावना कैसे आ सकती है? किसान इतनी ही सावधानी रखता है कि कोई उसे न ठगे, वह स्वयं दूसरों को ठगने, दूसरों को अपना स्वार्थ ऐंठने की बात नहीं सोच सकता, लेखक ने प्रकृति के अनेक उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट किया है कि प्रकृति अपनी वस्तुएँ दूसरों के लिए दिया करती हैं, उनका स्वयं उपयोग नहीं करती है। किसान दूसरों की वस्तु को नहीं लेता, पर अपनी वस्तु उससे कोई आसानी से नहीं ठग सकता, वह एक प्रकार से कजूंस होता है, पैसा खर्च करने में उसे कष्ट होता है।

विशेष : (1) किसान की प्रवृत्ति का चित्रण है।
(2) भाषा में सहज प्रवाह है।

(2)

मैं अगर रोता हूँ, तो दुःख की हँसी उड़ाता हूँ। मैं अगर बीमार होता हूँ, तो मुझे सुख होता है। मैं अगर अपना ब्याह करके घर के कलह नहीं बढ़ाता, तो यह मेरे नीच स्वार्थपरता है, अगर ब्याह कर लूँ तो वह विलासांधता होगी। अगर शराब नहीं पीता तो मेरी कंजूसी है। शराब पीने लगूँ तो वह प्रजा का रक्त होगा। अगर ऐयाशी नहीं करता तो अरसिक हूँ, ऐयाशी करने लगूँ तो फिर कहना ही क्या! इन लोगों ने मुझे भोगविलास में फँसाने के लिए कम चालें नहीं चलीं और अब तक चलते जाते हैं। उनकी यही इच्छा है कि मैं अन्धा हो जाऊँ और ये लोग मुझे लूट लें और मेरा धर्म यह है कि सब कुछ देखकर भी कुछ न देखूँ। सब कुछ जानकर भी गधा बना रहूँ।

सप्रसंग व्याख्या – प्रस्तुत गद्यांश प्रेमचन्द जी के उपन्यास 'गोदान' से लिया गया है। यह कथन जमींदार अमरपाल सिंह का है, जो होरी के प्रति कहा गया है। होरी किसान जमींदार अमरपाल सिंह से मिलने जाता रहा करता था ताकि वे होरी को परेशान न करें। जब होरी जमींदार के पास गया तो वहाँ जेठ के दशहरे के अवसर पर होने वाले धनुष–यज्ञ की तैयारी हो रही थी। जमींदार ने होरी से कहा– तुझे राजा जनक का माली बनना पड़ेगा। वे होरी को अलग ले गये ताकि उससे कुछ बातें कर सकें। उन्होंने जमींदार के जीवन सम्बन्ध ी अनेक बातें बताई, जिनका सार यह था कि तुम्हें हम लोग जितने बड़े और जितने सुखी दिखाई देते हैं, उतने हैं नहीं। अमरपाल सिंह ने होरी को बतलाया कि मैं जमींदार होने के कारण अपने बराबर वालों से अपने मन की बात नहीं कह सकता, क्योंकि वे हमारी विपत्ति पर खुश होते हैं। परन्तु दिखावा आत्मीय व्यक्ति होने का करते हैं। वे हमारे दुःख से दुःखी नहीं होते हैं मैं जो कुछ करता हूँ, वे उसका उल्टा अर्थ लेते हैं। मैं अगर रोता हूँ तो दुःख को हल्का करने के लिए रोता हूँ, मैं यदि बीमार हो जाता हूँ तो वे लोग ऐसा मानते हैं कि मैं सुख पा रहा हूँ। मैं यदि विवाह करके अपने घर में झगड़ा नहीं करता तो वे इसमें मेरा कोई स्वार्थ ही मानते हैं और मुझे नीच व्यक्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मानते हैं। विवाह करूँ तो मुझे विलासी कहेंगे। मैं यदि शराब नहीं पीता, उससे परहेज करूँ तो वे मुझे कंजूस बतायेंगे। यदि मैं शराब पीता हूँ तो वे मुझ पर यह दोषारोपण करेंगे कि मैं प्रजा के खून–पसीने की कमाई को उड़ा रहा हूँ। यदि मै ऐयाशी नहीं करता तो मैं उनकी दृष्टि में अरसिक माना जाऊँगा। यदि मैं ऐयाशी करने लगूँ तब तो मेरे बारे में न जाने क्या–क्या कह डालेंगे। उन लोगों ने मुझे भोग–विलास में फँसाने के लिए, मुझे इस तरह बर्बाद करने के लिए बहुत चालें चली हैं और अब भी चला करते हैं। वे चाहते यह हैं कि मैं सोच–समझकर काम न करूँ ताकि परेशान हो जाऊँ और वे नुकसान पहुँचा सकें। वे चाहते हैं कि मैं उनके द्वारा चली जाने वाली चालों में बाधा न डालूँ, उन्हें समझ न पाऊँ, गधे की तरह नासमझ बना रहूँ। लेखक ने इन लोगों का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है। लेखक ने समाज के बारे में गहराई से अनुभव किया है। लेखक की भाषा–शैली वर्ण्य–विषय के अनुरूप है। यहाँ लक्षणा–व्यंजना शब्द शक्तियों का प्रयोग हुआ है।

विशेष – (1) जीवन के प्रति अमरपाल सिंह का वस्तुस्थितिवादी दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ है।

(2) भाषा सहज व आकर्षक है।

(3)

गरीबों में अगर ईर्ष्या या बैर है, तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या और बैर को मैं क्षम्य समझता हूँ। हमारे मुँह की रोटी कोई छीन ले तो उसके गले में अंगुली डालकर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें तो देवता हैं। बड़े आदमियों की ईर्ष्या और बैर केवल आनन्द के लिए है। हम उतने बड़े आदमी हो गये हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में ही निःस्वार्थ और परम आनन्द मिलता है। हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुँच गये हैं, जब हमें दूसरों के रोने पर हँसी आती है, इसे तुम छोटी साधना मत समझो।

सप्रसंग व्याख्या –रायसाहब अमरपाल सिंह की बातें सुनकर होरी ने कहा कि हम लोग जो ऐसा समझते थे कि बड़े लोगों में हम किसान आदि छोटे स्तर के लोगों की–सी बुराइयाँ नहीं होंगी, परन्तु आपको बातों से पता चल रहा है कि बड़े आदमी भी इन बुराइयों से मुक्त नहीं हैं। तब रायसाहब होरी से कहते हैं कि लोग हमें भले ही बड़े आदमी मानते होंगे, पर जो हमें निकट से देखता, समझता है वही जान सकता है कि हम बहुत गिरे हुए हैं। कारण यह कि तुम गरीब लोगों और हम लोगों की ईर्ष्या में अन्तर है। गरीब यदि अपने दूसरे साथी से ईर्ष्या करता है या बैर रखता है तो वह ईर्ष्या–बैर उसकी एक प्रकार की विवशता के कारण ही होता है। भूखों मरने वाले व्यक्ति में दूसरों को सुखी देखकर ईर्ष्या हो सकती है, किन्तु हमारा आपसी व्यवहार विचित्र है और वह विवशता की उपज भी नहीं है। हम बड़े लोगों की ईर्ष्या और बैर तो हमारे आनंद के लिए है। यदि कोई व्यक्ति हमारी कोई वस्तु ले ले तो हम ऐसा आवश्यक मानते हैं कि उससे वस्तु को प्राप्त करके ही रहें। यदि हम ऐसा न करें तो हमारे बराबर के तथाकथित बड़े हमे देवता मानेंगे, जो आदर की संज्ञा नहीं है, दूसरे शब्दों में, वे हमे कायर कहेंगे। गरीब लोगों की दृष्टि में हम बड़े हैं। हम गरीबों की तुलना में अपने आपको बड़ा मानते भी हैं। इस प्रकार बड़प्पन को बनाए रखने के लिए गरीबों की तुलना में हमारा व्यवहार भी भिन्न प्रकार का होता है, हम बहुत बार नीचता कर बैठते हैं, कुटिलतापूर्ण व्यवहार करते हैं। ऐसा करने पर हमारा कोई स्वार्थ नहीं होता है, वह सब बिना स्वार्थ पूर्ति के लिए किया जाता है। वैसा करने पर हम सब आनन्द का अनुभव करते है। मतलब यह कि हम कुटिल व्यवहार करने के लिए विवश नहीं हैं। हम तो ऐसा अपने आन्नद के लिए करते हैं। यह वैसे ही है, जैसे कि धनी लोगों का शिकार का शौक। भूखा मरने वाला गरीब व्यक्ति यदि शिकार करें तो उसकी तो विवशता समझ में भी आती है, परन्तु धनवान लोग शिकार करे तो स्पष्ट है कि वे ऐसा अपनी इच्छा से, अपने मनोविनोद के लिए, सुख के लिए कर रहे हैं। मनुष्य दूसरों के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होता है। हम दूसरे मनुष्यों के सुख–दुख से सुखी–दुखी नहीं हो पाते। इस दृष्टि से मानो हम तो ऊँचे उठ गये हैं, देवताओं के स्तर के हो गये हैं, तभी तो हमें दूसरे लोगों को रोते देखकर हँसी आती है। हम दूसरों के दुःख से द्रवित नहीं होते। इस दृष्टि से हमें बड़ा साधक माना जा सकता है। लेखक बताना चाहता है कि बड़े माने जाने वाले लोग बड़े कुटिल एवं निर्मम होते हैं। जिन्हें दूसरे के दुःख–सुख से कोई मतलब ही नहीं होता है। बड़े लोग दूसरों के दुःख–सुख से अछूते–से रहते हैं, वे बड़े हृदयहीन होते हैं। 'देवतापन' एक प्रकार से नीचता का अर्थ दे रहा है।

विशेष–(1) वर्गगत प्रवृत्तियों की तुलना है।

(2) कथन का शिल्प विशिष्ट ध्यातव्य है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(4)

जिसकी आत्मा में बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ भी हो आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन के भय के मारे रात को नींद न आती है, जिसके दुःख पर सब हँसे और रोने वाला कोई न हो, जिसकी चोटी दूसरों के पैरों के नीचे दबी हो, जो भोग–विलास के नशे में अपने को बिल्कुल भूल गया हो, जो हुक्काम के तलवे चाटता हो और अपने अध ीनों का खून चूसता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता, वह तो संसार का सबसे अभागा प्राणी है।

सप्रसंग व्याख्या–रायसाहब उसी क्रम में होरी से बातें किये जा रहे हैं, उन्होंने बताया कि हम बड़े लोगों के परिवार में जब कोई बीमार होता है, तो बीमारी को बहुत बढ़ा–चढ़ाकर बताया जाता है और उसके इलाज पर अत्यधिक खर्च किया जाता है। यह खर्च गरीबों से वसूल किया जाता है। रायसाहब कहते हैं कि हम गरीबों को जितना सताते हैं, उसे देखें तो हम सबको नष्ट हो जाना चाहिए था। हम एकदम नष्ट न होकर तिल–तिलकर नष्ट होते हैं, घुटते हैं और उसी कष्ट से छुटकारा पाने के लिए पुलिस, हुक्काम, वकीलों आदि पर खर्च करते रहते हैं। रायसाहब होरी को बता रहे हैं कि तुम जैसे गरीब लोग हमारे महल, सवारियाँ आदि देखकर हमें बड़ा आदमी भले ही मानते हों, परन्तु जिस व्यक्ति की आत्मा मर गई है, दब गई है, वह निर्बल है; वह व्यक्ति तो सच्चे अर्थ में व्यक्ति भी कहलाने का अधिकारी नहीं है। वह व्यक्ति गी क्या, जिराके दुःखी होने पर दूरारे दुःखी न हों, उल्टे प्रराान्नता गनाएं, ऐरा तगी होता है जब उरा व्यक्ति का व्यवहार दूसरों के प्रति अच्छा नहीं होता। अच्छा व्यवहार उसी व्यक्ति का नहीं होता, जो आत्मा की आवाज के अनुसार आचरण नहीं करता। आत्मबलहीन व्यक्ति भीतर से परेशान रहता है। उसे शत्रु से भय लगता है और उस स्थिति में उसे रात को ढंग से नींद भी नहीं आती है। उस व्यक्ति के दुःख में किसी को दुःख नहीं होता, उल्टे लोग उसे दुःख पाते देखकर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। ऐसा व्यक्ति दूसरों का गुलाम होता है। वह दूसरों की खुशामद करता है। जो व्यक्ति भोग–विलास में मस्त रहता हो, जो अपने से बड़े अफसरों, बड़े व्यक्तियों की चापलूसी करता हो और अपने अधीनस्थ व्यक्ति को सताता हो, उनका शोषण करता हो, उसे सुखी व्यक्ति कैसे माना जा सकता है? वह व्यक्ति तो संसार में सबसे अधिक अभागा प्राणी माना जा सकता है।

विशेष :– (1) स्वाभिमान व आत्मबल की महिमा वर्णित है।

(2) भाषा में उर्दू फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। भाषा में 'खून चूसना' जैसे मुहावरों का प्रयोग हुआ है।

(5)

बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो, तो हमें उसकी प्रभुता मानने में कोई आपत्ति नहीं। समाजवाद का यही आदर्श है। हम साधुओं–महात्माओं के सामने इसलिए सिर झुकाते हैं कि उनमें त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथ में अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी, नेतृत्व भी, लेकिन सम्पत्ति किसी तरह नहीं। बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है, लेकिन उसकी सम्पत्ति विषय बोने के लिए, उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बगैर किसी समाज का संचालन नहीं हो सकता। हम केवल इस बिच्छू का डंक तोड़ देना चाहते हैं।

सप्रसंग व्याख्या :– धनुष–यज्ञ के अवसर पर रायसाहब के पास कई व्यक्ति एकत्र थे। संपादक और मेहता जी में सामाजिक विषमता जैसे विषय पर बातें हो रही थीं। तभी रायसाहब ने मेहता द्वारा बुद्धि के बारे में कही गई बात के संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए ऐसा कहा। उन्होंने कहा कि बुद्धि के क्षेत्र में यदि कोई व्यक्ति दूसरों से ऊपर है और साथ ही वह निःस्वार्थ भी है तो हमें उस बुद्धिमान की प्रभुसत्ता स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है। समाजवाद के सिद्धान्त के भी यह बात विरुद्ध नहीं है, जो व्यक्ति किसी क्षेत्र में, किसी गुण में आगे है तो उसका महत्त्व, उसकी प्रभुत्ता तो हमें माननी पड़ेगी ही। उदाहरण के लिए साधु–महात्मा लोग त्याग के बल में दूसरे लोगों से आगे होते हैं, तभी तो हम उनके आगे सिर झुकाते हैं, उन्हें महत्त्व देते हैं। इसी प्रकार जिन व्यक्तियों के पास बुद्धि अधिक हो तो हम उन्हें नेतृत्व, अधिकार सम्मान दे देते हैं, किन्तु उन्हें सम्पत्ति नहीं देना चाहते। कारण यह है कि बुद्धिमान व्यक्ति जब समाप्त हो जाता है, तो उसे मिलने वाला सम्मान और अधिकर बन्द हो जाता है। यदि बुद्धिमान को धन दिया जाता है तो वह तो उस व्यक्ति के समाप्त होने के बाद भी रहेगा ही और उस व्यक्ति के मरने के बाद वह धन बुरे परिणाम दिखाएगा। क्योंकि उस धन पर तब बुद्धिमान की बुद्धि का नियंत्रण नहीं रह जाएगा। बुद्धि समाज का संचालन, नेतृत्व करने की दृष्टि से उपयोगी है, इसमें दो राय नहीं है। हम बुद्धिमान की बुद्धि के विरोधी नहीं हैं। हम तो यह कहना चाहते हैं कि बुद्धिमान को सम्मान भले ही मिले, धन न मिले, क्योंकि धन ही दुष्परिणाम पैदा करता है। यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि सभी व्यक्तियों की बुद्धि समान नहीं होती है। जो व्यक्ति अधिक बुद्धि रखते हैं, वे ही समाज का नेतृत्व करते हैं और बदले में समाज उन्हें सम्मान देता है। उन्हें धन देने की वैसी आवश्यकता नहीं है। धन ही ऐसी चीज है जो समाज के उपद्रवों का कारण बनती है। धन के क्षेत्र में समानता होनी ही चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष :– (1) सामाजिक विषमता पर विचार प्रस्तुत हुए हैं।

(2) मुहावरों से भाषा में अतिरिक्त आकर्षण उत्पन्न हुआ है।

(6)

स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ हैं, जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा, त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं, नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म और अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका, मैं कहता हूँ, उसका सारा अध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।

सप्रंसग व्याख्या – मेहता नारियों के गुणों का , पुरुषों की कमियों का वर्णन कर रहे हैं। उन्होंने यह भी कहा कि नारियों को पुरुषों की हिंसा–प्रवृत्ति में योग नहीं देना चाहिए। रायसाहब को मेहता की बातें अच्छी लगीं। परन्तु सम्पादक ओंकारनाथ ने कहा कि मेहता ने कोई खास बात नहीं कही। मेहता नारी आन्दोलन के विरोध में अपनी बात कहे जा रहे हैं। उनकी यह बात भी उचित नहीं है कि त्याग और प्रेम से संसार ने उन्नति की है। मेहता अपना भाषण दिये जा रहे थे। उन्होंने कहा कि इसमें कोई दो राय नहीं कि पुरुष की तुलना में स्त्री श्रेष्ठ है। यह तथ्य उसी प्रकार से स्पष्ट है जैसे प्रकाश अंधेरे से श्रेष्ठ है। मनुष्य के जीवन में, उसके स्वभाव में अच्छाइयाँ हैं और बुराइयाँ भी। वह यदि अपना जीवन आदर्श बनाना चाहते हैं, तो उसे अहिंसा, क्षमा और त्याग जैसे गुण अपनाने पड़ेंगे। इन गुणों को पाने के लिए मनुष्य धर्म और अध्यात्म का सहारा लेता है। ऋषियों के अनुभव एवं ज्ञान से प्राप्त निष्कर्षों ,शिक्षाओं को अपनाने का प्रयत्न करता है वह ऐसा करने का प्रयास भी लम्बे समय से, शताब्दियों से करता चला आ रहा हैं, परन्तु उसे अपने प्रयास में अभी सफलता नहीं मिली है। मेहता ने कहा कि पुरुष जीवन के उच्चतम आदर्शों को अपने जीवन का अंग बनाने के लिए जिस अध्यात्म तथा योग का सहारा ले रहा है, वह भी कम है। दूसरी ओर नारियों का एक गुण 'त्याग' भी मनुष्य के जीवन को आदर्श बनाने के लिए पर्याप्त होगा। महिलाओं ने उन आदर्शों को प्राप्त भी कर लिया है। इस कारण नारी स्पष्टतः पुरुष से श्रेष्ठ है। नारी का जीवन आदर्श जीवन है। प्रेमचन्दजी ने यहाँ नारियों की उन बहुत बड़ी विशेषताओं की ओर मनुष्य का ध्यान आकृष्ट किया है, जिन्हें प्राप्त करने के लिए मनुष्य शताब्दियों से प्रयास कर रहा है और अभी प्राप्त नहीं कर पाया।

विशेष– (1) नारी की श्रेष्ठता का वर्णन है।

(2) तत्सम प्रधान शब्दावली प्रयुक्त हुई हैं।

(7)

जिसे संसार दुःख कहता है, वही कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि, ये विभूतियाँ संसार को चाहे कितना ही मोहित कर लें, कवि के लिए यहाँ जरा भी आकर्षण नहीं है। उसके मोह और आकर्षण की वस्तु तो बुझी हुई आशाएँ और मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए ह्रदय के आँसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लय हो जाता है।

सप्रसंग व्याख्या– मिस्टर मेहता और खन्ना की पत्नी गोविन्दी में महिलाओं के बारे मे बातें हो रही थीं। गोविन्दी ने कहा था कि मालती में बहुत से गुण हैं जो आपकी पत्नी में होने चाहिए। मेहता ने कहा कि उसमें वह एक भी गुण नहीं है। गोविन्दी ने कहा कि तब तो फिर आज के युग में ऐसे गुणों वाली नारी हो ही नहीं सकती। मेहता ने कहा – ऐसे गुणों से युक्त नारी है और मेरे सामने ही बैठी है। गोविन्दी ने कहा–मेहता जी, आपको तो दार्शनिक बनने के बजाय कवि होना चाहिए था। मेहता ने कहा कि बिना दार्शनिक हुए कोई कवि नहीं हो सकता। गोविन्दी ने कहा कि कवि को कभी सुख नहीं मिलता, तब मेहता कह रहे हैं कि संसार के लोगो की दृष्टि में जो दुःख हैं, कवि के लिए सुख है। जिन धन, ऐश्वर्य, रूप, बल, विद्या, बुद्धि को संसार अच्छा मानता है, उनकी ओर आकर्षण रखता है, उन्हीं के प्रति कवि के भीतर कोई आकर्षण नहीं होता। कवि को अच्छे लगते हैं टूटे हुए निराश, दुखी व्यक्तियों के आँसू, बुझी हुई आशाएँ, मिटी हुई स्मृतियाँ। जब कवि में इन चीजों के प्रति लगाव, आकर्षण न रह जायेगा तब कवि, कवि ही नहीं रहेगा। दार्शनिक और कवि में कुछ अन्तर है। दार्शनिक व्यक्ति जीवन के रहस्यों में पूर्णतया तल्लीन हो जाता है, वह उन्हें बेहद महत्त्व देता है। यहाँ लेखक ने कवि का सामान्य व्यक्तियों और दार्शनिकों से अन्तर स्पष्ट किया है। प्रेमचन्द जी मानते हैं कि कवि के लिए दुःख का महत्त्व है, वह जीवन से अलग नहीं जाता। वह जीवन को अच्छी तरह समझने का प्रयास करता है, उसी के बारे में दूसरों को जानकारी देना चाहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विशेष – (1) कवि हृदय की संवेदनात्मक विशेषता उजागर हुई है।
(2) भाषा में पद्यवत्–प्रवाह है।

(8)

और यह पुरुषों का षड्यंत्र है, देवियों को ऊँचे शिखर से खींचकर अपने बराबर बनाने के लिए, उन पुरुषों का, जो कायर हैं, जिनमें वैवाहिक जीवन का दायित्व सँभालने की क्षमता नहीं है, जो स्वच्छन्द काम –क्रीड़ा की तंरगों में सांडों की भाँति दूसरों की हरी–भरी खेती में मुँह डालकर अपनी कुत्सित लालसाओं को तृप्त करना चाहते हैं। पश्चिम में इनका षड्यंत्र सफल हो गया और देवियाँ तितलियाँ बन गईं। मुझे यह कहते हुए शर्म आती है कि इस त्याग और तपस्या की भूमि भारत में भी कुछ वही हवा चलने लगी हैं। विशेषकर हमारी शिक्षित बहनों पर वह जादू बड़ी तेजी से चढ़ रहा है। वह गृहिणी का आदर्श त्याग कर तितलियों का रंग पकड़ रही हैं।

सप्रसंग व्याख्या–रायसाहब मेहता जी के तर्कों से खुश थे। वे संपादक ओंकारनाथ को कुछ नीचा दिखाना चाहते थे। मेहता जी नारियों के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता, समानता के नाम पर उनके द्वारा चलाये गये आन्दोलन के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट करना चाहते थे कि स्वतन्त्रता को पश्चिम की–सी दिशा में जाना उचित नहीं है। मेहता ने कहा कि पुरुषों ने महिलाओं को स्वतन्त्रता, समानता के लिए आन्दोलन चलाने के लिए प्रेरित करके षड्यंत्र किया हैं। यह षड्यत्र उन पुरुषों का है जो कायर हैं, जो विवाह करके उस वैवाहिक जीवन की जिम्मेदारी सँभालने में अक्षम हैं। वे नारियों को देवी के पद से नीचे लाकर अपने बराबर लाना चाहते हैं वे दूसरों की विवाहित, अविवाहित नारियों को स्वच्छंद देखना चाहते हैं। ताकि उनके साथ अपनी लालसाओं को, वासनाओं को पूरा कर सकें और इस प्रकार स्वच्छंद रहना चाहते हैं जिस प्रकार कि सांड स्वच्छंद रहता है और चाहे जिसकी हरी–भरी खेती में मुँह डाल देता है, फसल को चरता–फिरता है.? । मेहताजी ने कहा कि ऐसे व्यक्तियों का षड्यत्र पश्चिमी देशों में तो सफल हो गया है, क्योंकि वहाँ नारियाँ तितली की तरह स्वच्छंद रूप से आचरण करती हैं। मुझे यह बताने में शर्म का अनुभव होता है कि जो भारत त्याग और तपस्या की भूमि रहा है, जहाँ त्याग और तपस्या को जीवन में ऊँचा स्थान दिया जाता है, उस भारत में भी महिलाएँ पश्चिम की महिलाओं की तरह व्यवहार, मनमानी, स्वच्छंद विचरण करने लगी हैं। यह स्थिति उन महिलाओं में विशेष रूप से देखने को मिलती है, जो शिक्षित हैं, वे गृहिणी के आदर्श को छोड़ रही हैं और तितलियों की तरह स्वच्छंद जीवन बिताने को अच्छा मान रही हैं। यहाँ बताया गया है कि विवाह करके गृहिणी का जीवनयापन न कर स्वच्छंद जीवन व्यतीत करने की पश्चिम की प्रवृत्ति भारत में विशेषतया शिक्षित महिलाओं में बढ़ रही है, यह स्थिति अच्छी नहीं है। ऐसी स्वच्छंदता की प्रवृत्ति पनपने के पीछे कामुक, वासनापूर्ण पुरुषों का षड्यंत्र रहा है।

विशेष – (1) तथाकथित स्त्री–स्वातंत्र्य का खोखलापन उद्घोषित है।
(2) भाषा भाव–प्रवाह के सहज अनुकूल है।

(9)

इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण है। काश! ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते, तो यों न ठुकराये जाते। देश में कुछ भी हो, क्रांति ही क्यों न आ जाए, इनसे कोई मतलब नहीं। कोई दल इनके सामने सबल के रूप में आये, उसके सामने सिर झुकाने को तैयार। उनकी निरीहता जड़ता की हद तक पहुँच गई है, जिसे कठोर आघात ही कर्मण्य बना सकता है, उनकी आत्मा जैसे चारों ओर से निराश होकर अब अपने अन्दर की टाँगें तोड़कर बैठ गई है। उनमें अपने जीवन की चेतना ही जैसे लुप्त हो गई है।

सप्रसंग व्याख्या– चन्द्रप्रकाश खन्ना की मिल में आग लग गई थी। मेहता, गोविन्दी खन्ना को समझा रहे थे। मालती मेहता से प्रभावित होकर गाँव वालों का इलाज करने, उनकी सेवा करने पर ध्यान देने लगी थी और गाँव वालों की बहुत–सी बातें समझती थी। मेहता साहब गाँव वालों की कुश्ती का आनन्द ले रहे थे और गाँव वालों से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में उनके भीतर विचार उठ रहे थे। मेहता गाँव वालों की दयनीय दशा के बारे में सोच रहे थे कि इनका देवत्व ही इनकी गरीबी आदि का मुख्य कारण है। ये लोग दुनिया के तेज तर्रार लोगों की–सी चालें नहीं अपनाते। इनमें भोलापन है, ईमानदारी आदि की विशेषताएँ हैं। इन्हीं के कारण ये तेज व्यक्तियों के जाल में फँसकर कष्ट पाया करते हैं। मेहता सोचते हैं कि अच्छा यह होता कि ये देवता कम, आदमी ज्यादा होते। मतलब दूसरों की चालों, अपने अधिकारों आदि की ओर सचेत रहते तो दूसरे लोग इन्हें परेशान करने का साहस न कर पाते और तब इनकी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ऐसी दुर्दशा न होती। देश में कितने भी बड़े परिवर्तन आ जाएँ, क्रांति भी हो जाए तो भी इन ग्रामीण लोगों पर कोई प्रभाव नहीं होता है, यदि कोई राजनीतिक दल या अन्य संगठन शक्तिशाली हो जाय, ये ग्रामीण उसी के आगे झुक जायेंगे, इनमें ऊपर उठने की, कुछ प्राप्त करने की तमन्ना, इच्छा ही उत्पन्न नहीं होती। ये इस दृष्टि से पत्थर जैसे जड़ हो गये हैं, चेतनाहीन, इनको कर्मठ बनाने के लिए बड़े आघात की आवश्यकता होगी। ये थोड़े–बहुत समझाने से अपने अधिकारों आदि के बारे में सचेत नहीं होंगे। ये लम्बे समय से निराशा का अनुभव करते रहे हैं। इस कारण इनकी आत्मा में आशा, उत्साह, इच्छाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ उत्पन्न ही नहीं होतीं। ये नहीं सोच पाते कि इनका भी अपना जीवन है, इनका भी अपना अस्तित्व है, अपनी आकांक्षाएँ हैं, अधिकार हैं। इनमें इस तरह की चेतना ही नहीं। मेहता के माध्यम से प्रेमचन्दजी ने ग्रामीणों की स्थिति के कारण पर विचार किया है। वे मानते हैं कि ग्रामवासी लोगों में अपने बारे में सोचने की चेतना, जागरूकता नहीं है। वे दूसरों को अपने से श्रेष्ठ मानकर उनके इशारे पर चलते हैं और तेज–तर्रार लोगों के शोषण के शिकार होकर कष्ट पाते हैं। ये देवता के बजाय आदमी बनें और दूसरे आदमियों की तरह सचेत रहें, अपने अधिकारों के लिए प्रयत्न करें तभी अपनी वर्तमान स्थिति से उबर सकते हैं.

विशेष – (1) ग्रामीणों की दुर्दशा के कारणों का चिंतन है।

(2) तत्सम शब्दावली का प्रयोग है।

(16)

आध्यात्मिक प्रेम और त्यागमय प्रेम और निःस्वार्थ प्रेम, जिसमें आदमी अपने को मिटाकर केवल प्रेमिका के लिए जीता है, उसके आनन्द से आनन्दित होता है और उसके चरणों पर अपनी आत्मा समर्पण कर देता है। मेरे लिए निरर्थक शब्द हैं। मैंने पुस्तकों में ऐसी प्रेमकथाएँ पढ़ी हैं, जहाँ प्रेमी ने प्रेमिका के नए प्रेमियों के लिए अपनी जान दे दी है, मगर उस भावना को मैं श्रद्धा कह सकता हूँ, सेवा कह सकता हूँ, प्रेम कभी नहीं। प्रेम सीधी–सादी गऊ नहीं, खूँखार शेर है, जो अपने शिकार पर किसी की आँख भी नहीं पड़ने देता।

सप्रसंग व्याख्या – मेहता ने झाऊ की टहनियाँ काटकर एक नाव–सी बनाई और उसी पर मेहता और मालती ने नदी पार की। इसी दौरान मेहता और मालती में आपसी सम्बन्ध के बारे में बातें हुईं। मालती ने कहा कि तुम मेरी परीक्षा लेते रहे हो, किन्तु मेरा यह दृष्टिकोण नहीं रहा। मालती की बातों से स्पष्ट था कि उसे मेहता पर किसी प्रकार का शक नहीं था। मेहता ने कहा कि यदि मैं विवाह के बाद बेवफा हो जाऊं तो तुम क्या करोगी? मालती ने कहा कि मुझे तो ऐसी सम्भावना नजर नहीं आती। मेहता ने कहा कि असम्भव कुछ भी नहीं है। मालती ने कहा कि तुम हिंसा नहीं अपना सकते। तब मेहता ने कहा कि मेरी दृष्टि में आध्यत्मिक प्रेम, त्यागमय प्रेम और निःस्वार्थ प्रेम इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं है, जिसमें वे प्रेमिका के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने की बात कहते हैं और प्रेमिका के आनन्द को ही अपना आनन्द मानने की बात कहते हैं। मेरे लिए वह बेमानी है। उन्होंने कहा कि मैंने पुस्तकों में ऐसी कई प्रेम–कथाएँ पढ़ी हैं, जिसमें प्रेमी ने अपनी प्रेमिका के लिए अपने प्राण न्यौछावर किये हैं, मैं प्रेमी की उस भावना को प्रेम न कहकर प्रेमिका के प्रति श्रद्धा, सेवा–भावना जैसे नाम ही दे सकता हूँ। कारण यह है कि मैं प्रेम का दूसरा अर्थ लेता हूँ, वह तो भयानक, खतरनाक शेर की तरह है। जैसे शेर अपने शिकार पर किसी दूसरे जीव का अधिकार सहन नहीं कर पाता, उसी प्रकार प्रेम करने वाला प्रेमपात्र पर पूर्णतया अपना अधिकार बनाये रखना चाहता है। वह उसके प्रति समर्पित नहीं होता, वह प्रेमपात्र को सब प्रकार से अपने अधीन देखना चाहता है। प्रेम में प्रेमी प्रेमपात्र को छूट नहीं देना पसन्द करता कि वह जो चाहे करे।

विशेष – (1) प्रेम के प्रति मेहता का नजरिया प्रस्तुत है।

(2) भाषा में व्यवहारगत सरलता व सुबोधता है।

(11)

संसार को तुम जैसे साधकों की जरूरत है, जो अपनेपन को इतना फैला दें कि सारा संसार अपना हो जाए, संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अन्धविश्वास का, कपट धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त्त पुकार सुनी है। तुम भी न सुनोगे, तो सुनने वाले कहाँ से आयेंगे? और असत्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान नहीं बन्द कर सकते। तुम्हें वह भोजन भार हो जाएगा। अपनी विद्या और बुद्धि को, अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोश के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सप्रसंग व्याख्या – मालती ने मेहता से कहा कि विवाह कर गृहस्थी की जिम्मेवारी बढ़ाने से अच्छा होगा कि हम मित्र बनकर रहें, तभी हम समय बचाकर मानव–जाति की सेवा का कार्य कर सकते हैं। मालती कहती है कि मेहता, तुमने साधना की है, अतः तुम संसार को कुछ दे सकते हो, लाभ पहुँचा सकते हो। तुम अपनापन, आत्मीयता, मेलजोल की भावना फैला सकते हो। अतः तुम्हें गृहस्थी के बन्धन में बाँधना उचित नहीं समझती। मालती कहना चाहती है कि मित्र बनकर रहने पर ही तुम संसार के लिए काम करने के लिए अधिक समय दे सकोगे। संसार में अन्याय, आतंक, सर्वत्र विद्यमान है। समाज में अंधविश्वास, कपटपूर्ण व्यवहार, स्वार्थ जैसी बुराइयाँ हैं जिन्हें दूर करने में तुम जैसे साधक व्यक्ति का बड़ा योगदान हो सकता है। तुम्हें अधिक समय मिलना ही चाहिए। तुम जानते हो कि समाज में दुःखी व्यक्ति हैं। हमने उनकी दुःख की आवाज सुनी भी है। अतः दुःखियों का दुःख तुम जैसे लोग दूर करने का प्रयास नहीं करोगे, तो और कौन व्यक्ति करेंगे? कुछ व्यक्ति झूठे होते हैं। जो कहते कुछ और करते कुछ और हैं। तुम उनकी तरह दुःखी जनों की अनदेखी नहीं कर सकते। ऐसा करके तो तुम्हें भोजन भी अच्छा न लगेगा। अतः तुम अपनी विद्या, अपने विवेक का, अपने मानवीय गुणों का पूरे उत्साह के साथ जनता की, दुःखी जनों की भलाई के लिए काम करने में उपयोग करो।

विशेष– (1) मानव की सहजता–भरी जिन्दगी का आकर्षक चित्रण हुआ है।

(2) संवाद –योजना आकर्षक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(12)

बस इतना ही समझ लो कि सुख में आदमी का धरम कुछ और होता है, दुःख में कुछ और। सुख में आदमी दान देता है, मगर दुःख में भीख तक माँगता है। उस समय आदमी का यही धर्म हो जाता है। शरीर अच्छा रहता है, तो हम बिना असनान–पूजा किए मुँह में पानी भी नहीं डालते हैं, लेकिन बीमार हो जाते हैं, बिना नहाए–धोए, कपड़े पहने, खाट पर बैठे पथ्य लेते हैं। उस समय का यही धर्म है। यहाँ हममें–तुममें कितना भेद है, लेकिन जगन्नाथ पुरी में कोई भेद नहीं करता। ऊँचे–नीचे सभी एक पंगत में बैठकर खाते हैं। आपातकाल में श्रीरामचन्द्र ने शबरी के जूठे फल खाए थे, बालि का छिपकर वध किया था। जब संकट में बड़े–बड़ों की मर्यादा टूट जाती है, तो हमारी तुम्हारी कौन बात है।

सप्रसंग व्याख्या – होरी गरीब किसान तो था ही, उस पर पण्डित नोखेराम ने बेदखली का दावा कर दिया था। वह चिंता में बैठा हुआ था, तभी पण्डित दातादीन ने जमीन बचाने के लिए एक उपाय बताने की बात छेड़ी। होरी ने दातादीन के पैर पकड़ लिए और कहा यदि ऐसा कोई उपाय बता दें तो महाराज बड़ा धर्म होगा। यहाँ दातादीन ने होरी से जो कुछ कहा उसी का वर्णन है। पंडित दातादीन ने होरी से कहा कि तुम्हें निराश नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा कि आदमी की सुख की स्थिति में उसका एक धर्म होता है तो दुःख में दूसरा आचरण धर्म माना जा सकता है। इस प्रकार धर्म परिस्थिति सापेक्ष हैं, उदाहरण के लिए दुःख की स्थिति में वह भीख तक माँग लेता है और माँगना ही तब उसके लिए धर्म हो जाता है। जब व्यक्ति स्वस्थ होता है, तो वह बिना स्नान किये, बिना पूजा किए पानी भी नहीं पीता, किन्तु बीमारी की स्थिति में व्यक्ति बिना स्नान किये कपड़े पहने हुए खाट पर बैठकर पथ्य लेता है। उस समय वही उसका धर्म होता है। यहाँ हम छुआछूत, ऊँच–नीच आदि में भेद करते हैं, परन्तु तीर्थस्थान जगन्नाथपुरी में यह सब छोड़ देना पड़ता है। फिर भी हम पर अधर्म करने का आरोप नहीं लगता। वहाँ तो ऊँच–नीच सभी बिना भेदभाव के एक पंक्ति में, एक साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं, इतना ही नहीं भगवान् माने–जाने वाले रामचन्द्र ने शबरी के जूठे बेर खाये थे। राम ने छिपकर बालि का वध किया था। इससे स्पष्ट है कि संकटकाल में बड़े–बड़े लोग भी नियम, मर्यादा त्याग देते हैं, तो हमारी–तुम्हारी छोटे लोगों की बात ही क्या है? पं. दातादीन होरी को अपनी बात मनवाने के लिए यहाँ भूमिका बाँध रहे हैं। वे होरी को लड़की रूपा का अधिक उम्र के रामसेवक महतो से विवाह करने के लिए राजी करना चाहते हैं, क्योंकि तभी होरी की जमीन बची रह सकती है, ऐसा दातादीन का मानना था।

विशेष– (1) सुख–दुख में मानवीय दृष्टिकोण की प्रस्तुति है।

(2) भाषा संस्कृतनिष्ठ है।

(13)

अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा। कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आएगी और उसमें गहरी संवेदना सजग हो उठी है। अब उसमें वह पहले की उद्दंडता और गरूर नहीं है। वह नम्र और उद्योग–शील हो गया है। जिस दशा में पड़े हो, उसे स्वार्थ और लोभ के वश होकर और क्यों बिगाड़ते हो? दुःख ने तुम्हें एक सूत्र में बाँध दिया है। बन्धुत्व के इस दैवी बन्धन को क्यों अपने तुच्छ स्वार्थों

से तोड़े डालते हो? उस बन्धन को एकता का बन्धन बना लो। इस तरह के भावों ने उसकी मानवता को पंख–से लगा दिये हैं।

सप्रसंग व्याख्या–पं. दातादीन ने खेती बचाने के लिए होरी को यह उपाय बताया था कि वह अपनी लड़की रूपा का रामसेवक महतो से विवाह कर दे। रामसेवक महतो मुकदमे की पैरवी के लिए जाते हुए होरी के घर कुछ समय रुके भी थे। उन्होंने सुनाया था कि किस तरह उसी गाँव में डोंडी पिटवाकर जमींदार को अतिरिक्त लगान न देने की बात कही थी और किस तरह अच्छा असर हुआ था, इससे होरी, धनिया सभी रामसेवक से प्रभावित हुए थे और उन्होंने उससे रूपा का विवाह तय कर दिया था। विवाह के अवसर पर गोबर और उसकी पत्नी झुनिया को भी बुलाया था। गोबर कुछ समय से गाँव से बाहर नौकरी पर रहकर बहुत–कुछ बातें जान गया था। उसे घर आकर गाँव वालों की स्थिति बहुत दयनीय लगी। गोबर सोचने लगा कि हम गरीब लोगों को यदि अपनी स्थिति से उबरना है, तो हमें अपने आप प्रयत्न करना पड़ेगा और तभी हमारा भाग्य सुधरेगा। हमें साहस दिखाना पड़ेगा, तभी हम पर आने वाली आफतों से छुटकारा हो पायेगा। कोई देवता या अदृश्य शक्ति आकर गाँव वालों की मदद नहीं कर जायेगी। गोबर ऐसा सोचता हुआ संवेदनशील हो उठा। पहले गोबर का स्वभाव कुछ दूसरे प्रकार का था, किन्तु बाहर रहकर दुनिया देखने का अवसर मिलने से उसमें परिर्वतन आ गया था। अब वह नम्र हो गया था और परिश्रमी भी। वह सोचने लगा कि गाँव वाले अब जिस बुरी स्थिति में हैं। उसे अपने–अपने स्वार्थ और लोभ में पड़कर बदतर न बनायें, सभी दुःख के शिकार हैं, सभी समदुःख भोगी हैं, अतः समान हैं, इन्हें एक हो जाना चाहिए, संगठित। यह बन्धुत्व, यह एकता दैवयोग से, स्वतः उत्पन्न हुई, इसे स्वार्थ के द्वारा नष्ट नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा सोचता हुआ गोबर बड़ा ही मानवतावादी प्रतीत हुआ। वह भेदभाव से ऊपर उठा हुआ लगा। लेखक ने गरीब वर्ग को अपनी उन्नति के लिए आत्मनिर्भरता का गुण अपनाने की प्रेरणा देनी चाही है। लेखक ने स्वार्थ छोड़कर एकता बनाये रखने का सुझाव दिया है।

विशेष– (1) स्वावलम्बन व कर्मनिष्ठा की प्रेरण दी गयी है।

(2) मुहावरों से भाषा में विशिष्ट सौन्दर्य उत्पन्न हुआ है।

*****

1.4 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. ''गोदान'' सामंती उपभोक्तावाद के विभिन्न रूपों का चित्रण करता है।'' अपनी टिप्पणी दीजिए।

उत्तर : सामन्ती समाज के भीतर कृषि और किसान के सम्बन्ध की बहुस्तरीय रूप–विधियाँ हैं, कुछ संगत कुछ असंगत। परिवार, समाज के विघटन की असंगति सम्पत्ति के दोहन की विषमता में है। जमींदारी व्यवस्था ने इस दोहन को असम्भव सीमाओं तक फैला दिया था। छोटे काश्तकारों से उच्छेदन और नाश की प्रकिया में भूमि का पूँजीवादी संकेन्द्रण हो रहा हो, ऐसा भी नहीं दिखता है। ऐसी कोई नियम–संगति हमें भारतीय परिस्थितियों में नहीं दिखाई पड़ती। 'गोदान' में भी प्रेमचन्द ऐसा कुछ नहीं देखते। उल्टे रायसाहब के मुँह से वे उस बाधकता का विस्तार से जिक्र करवाते हैं जिससे भूमि का केन्द्रीकरण महज जमींदार के अपव्यय का साधन बन कर रह जाता है। रायसाहब का उपजीवी कुटुम्ब परिवार इसी बूते पर चलता है, उनका ऐश्वर्य इसी पर आधारित है। अफसरों की डालियाँ इसी पर चलती हैं, मित्रों का मेला इसी पर लगता है। कृषि के पुनर्गठन या कृषि क्रांति की कोई सम्भावना इससे नहीं बनती ।

इस सामन्ती उपभोक्तावाद के कई रूप हैं। प्रेमचन्द के कथा–साहित्य से इन रूपों को पहचानने में मदद मिलती है। इसी उपभोक्तावाद से राष्ट्रवाद का नाटक भी चलता है। सम्पत्ति की रक्षा और यश का लाभ राजनीति में सामंतवादी तत्त्वों के प्रवेश का प्रबल कारण है। इस कारक की सटिप्पण व्याख्या 'गोदान' में रायसाहब के प्रसंग में होती है। आर्थिक राष्ट्रवाद के इस पहलू पर अभी कम विचार हुआ है। हिन्दी भाषी पिछड़े क्षेत्र में यह लगभग बीस वर्षों के बाद 'परती परिकथा'(रेणु) में लक्षित होता है, जब भूस्वामी वर्ग माल–पूँजी के रूप में कृषि के उपयोग के लिए गाँव लौटता दिखाई पड़ता है। फार्मर्स और किसान का भेद दो दशकों के बाद भी केवल लाक्षणिक ही रह जाता है–पंजाब की तरह आम नहीं दिखता। आजादी के चालीस वर्षों बाद भी भारतीय पैमाने पर यह लाक्षणिक ही बना हुआ है।

कृषि के रूपान्तर की किसी जीवित प्रक्रिया के अभाव में सामन्ती परिस्थितियाँ ही अपने को सघन बनाती चलती हैं। परिणामस्वरूप किसान मजदूर होता चला जाता है। मजदूरी के लिए कुछ स्थानान्तरित होते हैं, कुछ सस्ते श्रम बढ़ोतरी करते हैं। इस बढ़ोतरी का लाभ तत्काल होने की सम्भावनाएँ भी नहीं दिखतीं। इससे कृषि पर निर्भरता और बढ़ गई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न 2. 'गोदान' में वर्णित लोकधर्म तथा मानवधर्म का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : लोकधर्म और मानवधर्म प्रेमचन्द के लिए परीक्षित भारतीय तत्त्व की तरह है। सदियों से भारतीय लोक और धर्म की संगति देखने वाले प्रेमचन्द राजनीतिक प्रभुत्वकामी वर्गों को धर्म का प्रतिनिधि मानने से इन्कार करते हैं। हिन्दू–मुस्लिम एकता पर उनका लेख इस बात का वह रूप नहीं है जो साम्प्रदायिकता पर बल देता हो। मिर्जा खुर्शेद का होता सामाजिक–राजनीतिक जीवन का केन्द्र है। साथ ही क्लब, कचहरी और अखाड़ा भी है। कांग्रेस नगर कमेटी का दफ्तर तो वह है ही। इन्हीं मिर्जा साहब से जुड़ा हुआ एक प्रसंग गोबर भी है– बेहद लाक्षणिक और बेहद मार्मिक। मिर्जा साहब की एक कोठरी में गोबर साल भर से मुफ्त रह रहा है। शहर ने उसे बहुत चतुर बना दिया है, इस चतुराई में स्वार्थ का ओछापन भी शामिल है। गाँव में अपने अधिकार के प्रति सचेत युवक किसान को शहर ने छोटा महाजन बना दिया तो उसकी पहचान ही नहीं बदली, व्यवहार का कोण भी बदल गया। राष्ट्र और वर्ग का मतलब समझ कर भी न राष्ट्र की राजनीति से जुड़ पाया है और न वर्ग की राजनीति से। अर्थवाद की एक क्रूर छाया उस पर अवश्य घिर आई। मिर्जा को दो रुपये शराब के लिए उधार देने की बजाय उपदेश देता है, और अपनी अहमन्यता में एक रुपया भूरे को देकर बड़प्पन अर्जित करना चाहता है। पड़ौस के लोग–हिन्दू–मुसलमान उसे छोड़ने आते हैं।

"गोबर ने सबको राम–राम किया। हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे, सभी में मित्रभाव था, सब एक–दूसरे के दुख–दर्द के साथी। रोजा रखने वाले रोजा रखते थे। एकादशी रखने वाले एकादशी। कभी–कभी विनोद भाव में एक–दूसरे पर छींटे भी उड़ा लेते थे। गोबर अलादीन की नमाज को उठा–बैठी कहता, अलादीन पीपल के नीचे स्थापित सैकड़ों छोटे–बड़े शिवलिंग को बटखरे बताता, लेकिन साम्प्रदायिक द्वेश का नाम भी न था। गोबर घर जा रहा था। सब उसे हँसी–खुशी विदा करना चाहते थे।"

प्रश्न 3. 'गोदान' में वर्णित किसान की जिजीविषा पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर : भारतीय किसान जीवन की संघर्षशीलता और विकट जीवन स्थितियाँ 'गोदान' में जिस रूप में व्यक्त हुई हैं, उन्हें आज भी देश में अनेक हिस्सों में देखा जा सकता है। सन्दर्भ बदले हैं, स्थितियों ने नया रूप धारण कर लिया है, पर किसान तो आज भी उसी तरह से छला जा रहा है, अपना जीवन स्वाहा कर रहा है। इसलिए 'गोदान' जैसी रचना को अपने समय से आगे जाकर भी देखने–परखने की जरूरत है। इस अर्थ में 'गोदान' काल की सीमाओं का भी अतिक्रमण करने वाला उपन्यास है। यह प्रेमचन्द की विरल विशेषता है कि उन्होंने किसान जीवन से जुडे समाज को उपस्थित कर किसान और मजदूर की एकता प्रतिपादित की है और सहयोगी तथा विरोधी शक्तियों की पहचान चिह्नित की है। ऐसी रचनाओं को हम 'कालजयी रचना' कहते हैं। किसी भी रचना को 'कालजयी रचना' कह देने का रिवाज चल पड़ा है वह 'गोदान' के मूल्य को कम नहीं कर सकता। भारतीय समाज एक कृषक समाज है। यहाँ उत्पादन का प्रमुख साधन कृषि है। इसलिए भी 'गोदान' का किसान भारतीय समाज का प्रतिनिधि है। उसकी भारतीयता पर किसी प्रकार का सन्देह करने की गुंजाइश नहीं है। 'गोदान' का किसान उपनिवेशकालीन भारत का किसान है, अंग्रेजी सत्ता वाले भारत का किसान है। इस वास्तविकता की भी अनदेखी नहीं की जा सकती। सत्ताएँ बदलती हैं, नैतिकताएँ भी बदलती हैं, पर किसान और जमीन का सम्बन्ध नहीं खत्म होता है। जमीन तो जैसे किसान की प्रेरणा है और किसान का जीवन भी मानो प्रकृति की तरह का जीवन है। इसलिए 'गोदान' में भले ही होरी की मृत्यु होती हो, पर प्रेमचन्द जानते हैं कि किसान मर नहीं सकता। किसान के मरने का अर्थ है, जमीन का बाँझ हो जाना। जमीन कभी बाँझ नहीं होती। इसीलिए वह धरती है। इसलिए किसान को हारा हुआ नहीं मान सकते। भले ही 'गोदान' के लिए गाय न नसीब हो, भले ही उसके घर कफन के भी पैसे न हों।

प्रश्न 4. 'गोदान' में साम्राज्यवादी शक्तियों के विरोध पर टिप्पणी दीजिए।

उत्तर : 'गोदान' में प्रेमचन्द ने साम्राज्यवादी शक्तियों का जिस तरह से विरोध किया है, वह न तो बहुत प्रत्यक्ष है और न ही सपाट, जैसा कि रचना के अतिरिक्त अन्य रूपों में व्यक्त हुआ है। यह सम्भव भी नहीं कि एक सजग–चेतस् रचनाकार अपने समय के इस ज्वलन्त संघर्ष में शामिल न हो। प्रेमचन्द अपने लेखन से ही अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। वे जिस किसान होरी के शोषण की बात करते हैं, वह केवल सामन्ती शोषण ही नहीं है, बल्कि उस शोषण का केन्द्र ब्रिटिश सत्ता है, जिसके लिए रायसाहब जैसा जमींदार बीस हजार रुपये प्रजा से वसूलता है, भेंट के रूप में और होरी की चिन्ता है कि उसे भी तो इन्तजाम करना है, क्योंकि रायसाहब ने उसी से तो सारी बातें बतायी हैं। अपने समकालीन दूसरे लेखकों से प्रेमचन्द इस अर्थ में भिन्न कहे जा सकते हैं कि उन्होंने भारतीय समाज के उस वर्ग को अपने लेखन से प्रतिष्ठा दी, जो अपने श्रम से समाज का पेट भरने के लिए उत्पादन करता है। औद्योगिक उत्पादन और खेती के उत्पादन में यही फर्क है। इस होरी का संघर्ष केवल जमींदार या साहूकार से नहीं, व्यापक भूमि पर वह साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का अंश है। स्वामी सहजानन्द सरस्वती का किसान आन्दोलन केवल सामन्ती या जमींदारी शक्तियों के विरुद्ध नहीं है, राष्ट्रीय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्तर पर वह स्वाधीनता आन्दोलन का ही अंग है। अवध प्रान्त के लखनऊ, प्रतापगढ़, रायबरेली या उन्नाव आदि में यह किसान आन्दोलन ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध एक प्रतिरोधात्मक शक्ति के रूप में खड़ा है। जो किसान सदियों से उत्पीड़न, दमन और शोषण के पाटों में पिस रहा था, वह स्वाधीनता आन्दोलन के साथ जागता है। सेमरी और बेलारी भी इसी अवध प्रान्त में अंग हैं। होरी यह मानने को तैयार ही नहीं कि वह इस जीवन संग्राम में हारा है।

प्रश्न 5 'गोदान' में सामाजिक चेतना के सूक्ष्म चित्रण पर अपना मत दीजिए।

उत्तर : प्रेमचन्द ने सामाजिक चेतना के छोटे–से–छोटे पक्ष को पहचान कर उसे स्वीकार किया है। ऐसा लगता है जैसे संघर्षशील समाज के प्रतिनिधि के रूप में प्रेमचन्द स्वयं मौजूद हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने मेहता और होरी के समवाय व्यक्तित्व में प्रेमचन्द की खोज की है। गरीबी और कर्ज से त्रस्त प्रेमचन्द होरी या किसान–मजदूर की गरीब जीवन त्रासदी को इतनी गहराई से पहचान सके। भारत की गरीब जनता से रूबरू होना यदि यथार्थवाद है तो प्रेमचन्द निश्चय ही यथार्थवादी हैं। उनका यह यथार्थवाद केवल किताबों में पाये गये सैद्धान्तिक विवेचन के रूप में नहीं है और न ही वैचारिक अवधारणाओं के पोषक के रूप में है, बल्कि उनका यथार्थ जीवन–संग्राम से उपजा और पाया गया यथार्थ है। इसीलिए प्रेमचन्द के यथार्थ में हास–परिहास है, मानवीय गुणों–भावना–अनुभूतियों की उपस्थिति है और विकराल जीवन–संघर्ष भी, एक ऐसा सच जो बेटी को बेचने के लिए विवश करता है। व्यक्तिवादी चरित्रों में भी मानवीय सदाशयता को स्वीकार करना प्रेमचन्द के यथार्थ में ही सम्भव हो सका।

डॉ. रामविलास शर्मा ने माना है कि प्रेमचन्द ने 'गोदान' में किसान–महाजन के संबंधों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। साथ ही यह भी कि 'गोदान' की प्रमुख समस्या ऋण की समस्या है। वस्तुतः इस उपन्यास में किसान–जमींदार और किसान–महाजन की समस्याएँ भी प्रमुख हैं। 'गोदान' प्रेमचन्द के समग्र लेखन का शीर्ष है। इसलिए यह अकारण नहीं कि उनकी अनेक पूर्ववर्ती रचनाएँ गोदान के ही छोटे–छोटे अंशों की तरह हैं। 'गोदान' की अतिरिक्त विशेषता यहाँ गाय ही है। कभी आकांक्षा के रूप में, कभी मर्यादा के रूप में और अन्त में बीस आने पैसे के रूप में। यह एक ऐसी त्रासदी है जो भारतीय किसान ही समझ सकता है। ऐसा किसान जो सामाजिक नैतिकता और विधि–विधान को मानता है, जो पण्डित दातादीन के शोषण को सिर झुकाकर स्वीकार करता है, जो दूसरी जाति की लड़की को अपनी बहू बनाकर जातीय पंचायत की सजा कबूल करता है, जो खुशामद भी करता है और हलाल भी होता रहता है।

प्रश्न 6. 'गोदान' में किसान के शोषण की गहराई चित्रित कीजिए।

उत्तर : प्रेमचन्द की साम्राज्यवाद विरोधी चेतना 'गोदान' में रायसाहब और मिस्टर खन्ना को लक्ष्य कर व्यक्त होती है। बिना मिस्टर खन्ना तक पहुँचे वे महाजनी पूंजी का विरोध कर भी कैसे सकते थे। प्रेमचन्द का विरोध उन नीतियों से है जो साम्राज्यवादी–पूंजीवादी हितों की पोषक हैं। रायसाहब और खन्ना अर्थात् सामन्त और पूंजीपति, इन दोनों के तार ब्रिटिश सत्ता तक पहुँचते हैं। शोषण का पूरा जाल इन्हीं दो के इर्द–गिर्द तैयार होता है। लगान की समस्या, कर्ज की समस्या और बढ़ते औद्योगिक साम्राज्य के खतरों की ओर प्रेमचन्द साफ–साफ संकेत करते हैं। वे उन छद्म रूपधारियों की भी पहचान करते हैं जो एक ओर तो स्वाधीनता आन्दोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेने का पाखण्ड करते हैं, जेल जाते हैं, और दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से अपने संबंधों को और अधिक प्रगाढ़ करते हैं, थैलियों और टोकरियों द्वारा। जो किसानों से अधिक लगान लेकर उसे महाजनों का कर्जदार बना देते हैं, विलासमय जीवन व्यतीत करते हैं और खुद महाजनी पूँजी के कर्जदार हो जाते हैं। सामन्तों की इस विडम्बना को प्रेमचन्द ही पहचान सकते थे। यह अकारण ही नहीं कि स्वाधीनता का विरोध करने वाले सामन्त ही आजादी के बाद और ज्यादा मालामाल हुए हैं। इसीलिए प्रेमचन्द सामन्तों की देश–भक्ति की गहरी छानबीन रायसाहब के माध्यम से करते हैं। रायसाहब ऐसे ही खल पात्र हैं, जिनको धनिया तो समझती है, गोबर भी समझता है, पर किसान होरी नहीं समझता। इसीलिए वह रायसाहब के लिए रुपये जुटाने में एक सहायक की तरह काम करता है। जनक का माली वह यों ही नहीं बनाया गया है। वस्तुतः किसान की अपनी विवशताएँ हैं। वह बेदखली, वसूली और कर्ज के निर्मम जुए के नीचे दबा है। उसको चूसने वाले एक से अधिक हैं। सामन्ती अमला तो नोचता–खसोटता है ही, ब्रिटिश साम्राज्य के अनेक पुर्जे अलग से उसे लूटते हैं। यह लूट केवल पैसे की नहीं है, दूध, दही, घी से लेकर लकड़ी–कंडे और जिन्सों तक फैली है। शक्कर के कारखाने में गन्ना बेचकर रुपया उसके हाथ तक नहीं आ पाता, महाजन–साहूकार ऊपर वसूल लेते हैं। तैयार फसल खलिहान से उसके घर तक नहीं आ पाती। खलिहान से ही सारी फसलें कर्ज में तुल जाती हैं। होरी की बनावट उस भारतीय किसान की है, जो पुराने आचार–विचार–रूढ़ियों, परम्पराओं, नैतिकता, आदर्श और मर्यादाओं को छोड़ नहीं पा रहा है। वह जिन कारकों के द्वारा छला और लूटा जाता है, उनको ही छली और लुटेरा मानने को तैयार नहीं है। धर्म का पाखण्ड करने वालों और ऊँची जाति वालों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

को वह अन्यायी मानने के लिए तैयार नहीं। वह कहीं ऊँची जातियों द्वारा बनाये गये विधान को और कहीं जातीय पंचायतों द्वारा बनाये गये विधान को मानने के लिए विवश है। वह धर्म और बिरादरी की अनदेखी नहीं कर सकता। धर्म के पाखण्ड के प्रति उसकी आस्था है। इसका तात्पर्य है कि होरी न केवल पिछड़ी जाति का किसान है, बल्कि वह सभ्यता के पिछड़ेपन की मानसिकता से भी मुक्त नहीं है। उसका बेटा गोबर निरा किसान नहीं है, उसे किसान कहना भी ठीक नहीं होगा। वह एक पिछड़े हुए किसान का बेटा है जो शहर का मजदूर हो गया है। होरी भी किसान से मजदूर हो जाता है, सड़क बनाने वाला मजदूर न कि कारखाने का मजदूर। कारखाने का मजदूर हड़ताल कर सकता है, होरी नहीं। रायसाहब तो बेगार करायेंगे ही, पर यदि बेगार करने वाले खुराक की मांग करेंगे तो उनका माथा गरम हो जायेगा, त्योरियाँ चढ़ जायेंगी। मजदूरी भी मिलनी होगी तो जो बाप–दादों के जमाने से चली आ रही है, वही मिलेगी, ज्यादा नहीं। ऐसे मजदूरों की मजदूरी मारी जाती या कम मजदूरी दी जाती है। मजदूर चूं नहीं कर सकता।

प्रश्न 7 '''गोदान' कई चरित्रों के चेहरे का खोल उतारता है।'' अपने विचार दीजिए।

उत्तर : 'गोदान' में उदित होते पूंजीवाद और सामन्ती प्रभुओं के गठबन्धन को देखा जा सकता है। मिस्टर खन्ना और रायसाहब का संबंध ऐसा ही है। खन्ना बैंक के मैनेजर तो हैं ही, शक्कर मिल के मैनेजिंग डायरेक्टर भी हैं। खन्ना भी अपने को उसी तरह से राष्ट्रवादी बताते हैं, जैसे रायसाहब। राय साहब भी समझने लगे हैं कि यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद ज्यादा दिनों तक नहीं चलेगा। तब एक दिन यह सामन्ती किला भी ध्वस्त हो जायेगा। किसान विद्रोह करेंगे। इसलिए वे खन्ना की शक्कर मिल के हिस्सेदार बनने को तैयार हो जाते हैं। खन्ना रुपये मिलने का रास्ता बताते हैं, पीढ़ियों के लिए इन्तजाम का वास्ता देते हैं।

प्रेमचन्द के समय तक स्वाधीनता आन्दोलन में बुद्धिजीवियों की भूमिका प्रखर रूप में सामने आ चुकी थी। पत्रकार–लेखक स्वाधीनता आन्दोलन का प्रमुख अंग बन गये थे। परन्तु गोदान में बुद्धिजीवियों, किसानों और श्रमिकों का वह समवाय देखने को नहीं मिलता जो रायसाहब या मिस्टर खन्ना के मंसूबों को ध्वस्त कर सके। ओंकारनाथ जैसे पत्रकारों की असलियत प्रेमचन्द सामने ला ही देते हैं। श्यामबिहारी तंखा वकील से अधिक दलाल हैं और मिस्टर बी. मेहता यूनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं। इनमें मेहता ही विचारों से साफ हैं, जो कहते हैं–मैं तो केवल इतना जानता हूँ, हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं हैं तो बकना छोड़ दें। मैं नकली जिन्दगी का विरोधी हूँ। पर मेहता के विचारों को भी बहुत दूर तक स्वीकार नहीं किया जा सकता। 'गोदान' में बुद्धिजीवियों की भूमिका पर उस तरह से विचार भी नहीं किया गया है, भले ही मेहता का चरित्र लेखक की भावनाओं का प्रतिनिधि क्यों न हो।

प्रश्न 8. 'गोदान' में वर्ग–संघर्ष के बारे में मत व्यक्त कीजिए।

उत्तर : 'गोदान' में वर्ग–संघर्ष केवल कहने के लिए है। वर्ग–संघर्ष का वेग यहाँ नहीं है। कोई भी वर्ग यहाँ संगठित भी नहीं है। वर्गों के अस्तित्व को यहाँ अवश्य पहचाना जा सकता है। प्रेमचन्द ने देखा है कि कर्ज किस तरह से किसान को लपेटता है कि वह छटपटा भी नहीं सकता है। पैसा न जाने कितने रास्तों से निकल जाता है। ये रास्ते किसान के टूटने के रास्ते हैं। धनिया का विरोध भी होरी को टूटने से नहीं बचा पाता। टूटती तो वह खुद भी है, पर वह सुराज के पाखण्ड को भी समझती है। रायसाहब सुराज के आन्दोलन में जेल भी हो आते हैं और ब्रिटिश सत्ता को थैलियाँ और टोकरियाँ भी पहुचाते हैं। इस संदर्भ में धनिया का कथन महत्त्वपूर्ण है–''ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले हैं। सूद–ब्याज, डेढ़ी–सवाई, नजर–नजराना, घूस–घास, जैसे भी हो गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से।''

प्रेमचन्द को किसान, जमींदार, महाजन और ब्रिटिश सत्ता के संबंधों की गहरी जानकारी है। वे शोषण के गणित की पहचान कराते हैं। वर्गों की असलियत उन्हें मालूम है। सभी वर्ग अपनी–अपनी हस्ती को खुद अभिव्यक्त करते हैं। होरी अपनी स्थिति का बखान करता है। रायसाहब अपनी सुनाते हैं। प्रेमचन्द रायसाहब से ही कहलाते हैं कि उनके वर्ग की हस्ती मिट रही है। इसे केवल होरी का सहयोग और सहानुभूति पाने का उपक्रम नहीं कहा जा सकता। इसके आशय कहीं अधिक दूर तक जाते हैं। महाजन के सामने जमींदार बौना हो जाता है। बैंक सबको कर्जदार बना देता है। प्रेमचन्द कर्ज की समस्या को आरम्भ से अन्त तक केद्र में रखते हैं। 'गोदान' में अनेक त्रासदियाँ एक साथ हैं। होरी के जीवन में केवल एक ही त्रासदी नहीं है। वह दुःखों के पहाड़ के नीचे दबा है। उसका अन्त भी इन्हीं दबावों से होता है। 'गोदान' एक त्रासदी है।

प्रश्न 9. 'गोदान' में किसान–जीवन का ह्लास किस प्रकार चित्रित है?

उत्तर : किसान–जीवन के ह्लास का अनिवार्य परिणाम है–गाँव छोड़कर शहर की ओर प्रस्थान। दोनों प्रक्रियाएँ उपन्यास की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गहरी–संरचना हैं। एक का अभिकरण होरी है, और दूसरी का गोबर। कहानी की गहरी–संरचना में भौतिक प्रक्रियाएँ यही हैं। पात्रों की मनोवैज्ञानिक गहरी–संरचना हमारी सीमा से बाहर है। 'गोदान' में ऐसे पात्र हैं भी नहीं। कुछ मनोवैज्ञानिक गहराई धनिया के चरित्र में मिलती है, तब जब वह विद्रोह पर अमादा होती है या दया की देवी बन जाती है। होरी चारों तरफ से घिरा हुआ व्यक्ति है। उसके पास कोई विकल्प नहीं, कोई चुनाव नहीं। वह बेहद समंजनकारी होकर संस्थागत नियमों (मर्यादाओं, मरजाद) और कर्त्तव्य–बोध (ध ारम) पर मर मिटता है। निर्धनता में नैतिकता उसकी बरबादी का कारण बनती है। ग्रामीण जीवन किसी तरह भी 'मानवीय संगठन' नहीं लगता।

कहानी की शुरुआत होरी के इस वाक्य से होती है, ''जब दूसरे के पाँव–तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।'' प्रेमचन्द अपनी आवाज में धनिया के विचारों को रखकर कहानी की समस्या निरूपित करते हैं, ''जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों?'' यही प्रश्न, अलाभकारी खेती से उत्पन्न होकर, उपन्यास की थीम बन जाता है। अन्त में होरी से खेती भी छूटती है और जिन्दगी भी। सब कुछ खोकर, कुछ भी न पाने के यथार्थ को प्रेमचन्द ने 'गोदान' में मिथकीय प्रतीक से सृजित किया है।

होरी 'शूद्र' है (दातादीन ने कहा)। अवध प्रान्त के बेलारी गाँव का रहने वाला था। सेमरी गाँव में रहने वाले जमींदार रायसाहब का असामी था। भूमि–सम्बन्ध जमींदारी व्यवस्था के अधीन थे। जमींदार से लगान पर खेत लेकर काश्तकार खेती करता था। उन खेतों पर उसका कोई अधिकार नहीं होता था। जब चाहे जमींदार बेदखल कर सकता था। प्रेमचन्द का अवलोकन है कि, ''किसान पक्का स्वार्थी होता है' मगर होरी ऐसा नहीं था, ''किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था''। लेकिन 'कृषक–बुद्धि' रखता था। विधुर भोला का विवाह कराने का वायदा करता है ताकि भोला उसे गाय उधार दे दे। ऐसा ही हुआ। मगर उसके भाई हीरा ने गाय को जहर देकर मार डाला। गाय तो नहीं रही, मगर होरी पर अस्सी रुपये का कर्ज रह गया। इस तरह होरी ने अपनी बरबादी का सामान कर लिया और 'धर्म' और 'स्वार्थ' के बीच में डूबने–उतराने लगा।

हीरा के घर की तलाशी बचाने के लिए होरी को कर्ज लेकर दारोगा को घूस देनी पड़ी। हीरा घर छोड़कर भाग गया तो पुनिया की खेती–बारी होरी देखने लगा और भाई की पत्नी का रक्षक बन गया। धनिया के मातृ–स्नेह ने झुनिया को अपने घर में शरण दी, और होरी की बरबादी का एक और सामान घर में आ गया।

पंचों ने कहा–झुनिया तेरी बहू नहीं है, हरजाई है। उसे घर से निकाल दे। धनिया राजी नहीं हुई। तावान लगाया गया –सौ रुपये नकद और तीन मन अनाज। गाँव की परम्परागत पंचायत के दबाव में आकर होरी को झुकना पड़ा क्योंकि रहना इन्हीं के बीच था। उसने खलिहान का सारा अनाज दिया और घर गिरवी रखकर नकद भी चुकाया। बैल अभी बचे हुए थे। भोला ने शर्त रखी कि झुनिया को घर से निकाले या तुरन्त गाय का कर्ज चुकाये। वह होरी के बैल खोल ले गया। ग्रामीण व्यवस्था में कर्ज एक ऐसी संस्था है कि जिसे चुकाने की जिम्मेदारी पीढ़ियों तक चलती है या बंधुआ होना पड़ता है। होरी ने कहा 'तुम्हारा धरम कहता है तो खोल ले जाओ'। अपनी बेटी और उसे शरण देने वाले होरी के प्रति भोला का चरित्र–चित्रण किया गया है, उसे देखकर लगता है कि पारम्परिक ग्रामीण सम्बन्धों में स्वार्थ के आगे मानवीय गुण लुप्त हो जाते हैं। जमींदार, अलग हुआ भाई, महाजन, कर्ज देनदार, पंचायत के लोग – सभी मानवता–विहीन हैं। प्रेमचन्द ने गाँव के सामूहिक जीवन का जो चित्रण किया है वह यही बताता है कि गाँव का पारम्परिक संस्थागत–जीवन शोषण और अन्याय का अड्डा है। होरी के पक्ष में एक भी आदमी नहीं है। अगर गुजारे हेतु खेत से फायदा नहीं तो साधनविहीन व्यक्ति के लिए गाँव के सामाजिक जीवन से भी कोई फायदा नहीं। एक असहाय, माँ बनने वाली स्त्री को शरण देने का इतना बुरा अंजाम दिखाकर, प्रेमचन्द ग्रामीण संस्थाओं और सभ्यता पर सवालिया निशान लगा देते हैं। इन्हें भी बदलना होगा।

प्रश्न 10. ''गोदान' में परिवार टूटने का दर्द नयी पीढ़ी सहना नहीं चाहती।'' अपनी सम्मति दीजिए।

उत्तर : होरी के दो भाई और एक जवान बेटा है। अगर परिवार संगठित रहता तो शायद होरी की यह दशा न होती। पारिवारिक सम्पत्ति का बँटवारा और सम्बन्धों की कड़वाहट भी ग्रामीण जीवन का यथार्थ है। सम्बन्ध जहाँ जितने अधिक भावात्मक होते हैं, कड़वाहट वहाँ उतनी ही अधिक होती है। बड़ा भाई होने के नाते, अलग हुए भाइयों पर भी होरी का स्नेह बना रहता है। गाँव में हितों की एकता नहीं होती, बल्कि स्वार्थों का टकराव होता है। बिखरते सम्बन्धों में संघर्ष और ईर्ष्या का कारण, भोला बताता है, ''प्रेम तो संसार से उठ गया'।

पारिवारिक टूटन के बारे में अक्सर बूढ़े लोग आप–बीती सुनाते हैं। प्रेमचन्द का यह अवलोकन ढलती उम्र की सच्चाई को बयान करता है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''बूढ़ों के लिए अतीत के सुखों और वर्तमान के दुःखों और भविष्य के सर्वनाश से ज्यादा मनोरंजक और कोई प्रसंग नहीं होता।''

भोला और होरी मिलकर अपने–अपने परिवार का दुखड़ा कहते हैं। होरी ने अपने दोनों भाइयों (शोभा और हीरा) को पाल–पोसकर बड़ा किया, उनका विवाह किया, बहुओं को गहने बनवाये, मगर वे अलग हो गये। अब वे एक ही जून की रोटी खा पाते हैं। होरी पछताता है–''जिनके पीछे अपनी जवानी धूल में मिला दी, वह मेरे मुद्दई हो गये'' और रात में सोचता है – ''शोभा और हीरा अलग ही हो गये, नहीं आज घर की और ही बात होती। तीन हल एक साथ चलते। अब तीन अलग–अलग चलते हैं .... जिनके लिए लड़ो, वही जान का दुश्मन हो जाता है''।

हीरा गाय को 'माहुर' खिला देता है। होरी पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है। हीरा गाँव–घर छोड़कर भाग जाता है। पागल भिखारी हो जाता है। होरी की अन्तिम घड़ी में लौटकर पछताता है। क्षमा माँगता है। होरी ने कहा– '' मैं कोई गैर थोड़े हूँ भैया।'' हीरा के भाग जाने के बाद पुनिया बहू की खेती–बाड़ी होरी सम्भालने लगा, ''क्या करता, अपना धरम भी तो कुछ है .... कौन था मेरे सिवा बता? मैं न मदद करता, तो आज उसकी क्या गति होती सोच''। पुनिया होरी का अहसान मानती थी और उसने अनाज देकर उसके परिवार की मदद भी की थी।

होरी ने तो परिवारवाद निभाया मगर उसके बेटे ने नहीं। शहर से पहली बार लौटकर गोबर ने साफ कह दिया ।–

''और तुम भी चाहती हो, और दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा करजा चुकाऊँ, लगान दूँ, लड़कियों का ब्याह करूँ। जैसे मेरी जिन्दगी तुम्हारा देना भरने ही के लिए है। मेरे भी तो बाल–बच्चे हैं? .... तुम्हारी गिरस्ती का सारा बोझ मैं नहीं उठा सकता। मुझसे जो कुछ हो सकेगा तुम्हारी मदद कर दूँगा, लेकिन अपने पाँव में बेड़ियाँ नहीं डाल सकता।''

गोबर की ये बातें, नई पीढ़ी की सोच का प्रतिनिधित्व करती हैं। गोबर की जुबान से प्रेमचन्द ने नई पीढ़ी की सच्चाई उगलवा दी है। दूसरों के लिए जीना परम्परावाद है, अपने लिए जीना आधुनिक व्यक्तिवाद है, प्रगति की शर्त है। हो यही रहा है, मगर लोग इसे मूल्य के रूप में स्वीकार नहीं कर पाते है, और पीढ़ियों का संघर्ष बना रहता है। परम्परा निर्वाह में घुटन है, त्याग है, अकेलापन है। प्रेमचन्द ने दोनों पीढ़ियों के सत्य को आमने–सामने लाकर खड़ा कर दिया है। बाप जिस परिवार के लिए मर मिटा, बेटा उसी परिवार से मुँह मोड़कर चला जाता है। गाँव के स्त्री–पुरुष गोबर और झुनिया को पहुँचाने गाँव के बाहर तक गये। धनिया को लगा –''सब कुछ भस्म हो गया हो। बैठकर रोने के लिए भी स्थान न बचा हो''। नई पीढ़ी गाँव छोड़ नगर की ओर प्रवास कर गयी। परिवार की जिम्मेदारियों का बोझ भी छोड़ गई।

प्रश्न 11 '''गोदान' में नारी पुरुष–प्रधान समाज के जुल्मों का जीवंत दस्तावेज है।'' कैसे?

उत्तर : नारी के प्रति क्रूरतापूर्ण व्यवहार 'गोदान' का प्रबल पक्ष हैं। नारी 'परिवार की मर्यादा' का प्रतीक है। अगर उसके कदम गलत गड़ जायँ तो परिवार की इज्जत नष्ट हो जाती है। प्रेमचन्द ने नारी–जीवन के इसी पक्ष को उभारकर पुरुष –प्रधान सत्तातंत्र की क्रूर प्रतिक्रियाओं का उल्लेख किया है। पत्नी को घसीट–घसीट कर मारना–पीटना, गालियाँ देना तो साधारण–सी बात है। बाँस की बिक्री के प्रश्न पर उलझने पर पुन्नी को सबके सामने लातों से पीटा गया। वह कह रहा था, 'तू छोटे–छोटे आदमियों से लड़ती फिरती है, किसकी पगड़ी नीची होती है बता।' पुनिया रो–रो कर कहती रही, ''भाग फूट गया कि तुम जैसे कसाई के पाले पड़ी। लगा दे घर में 'आग'''। होरी अपने भाई पर गोहत्या का अपराध नहीं लगाना चाहता। यह भी नहीं चाहता कि दारोगा उसके घर की तलाशी ले। मगर ध ानिया उसे 'जेहल' भिजवाने पर आमादा थी। होरी उसे सबके सामने मारने–पीटने लगा। वह कहती जा रही थी–''मार तो रहा है, और मार ले''। जो, तू अपने बाप का बेटा होगा तो आज मुझे मारकर तब पानी पियेगा'' उसे यह दुख सता रहा था कि जिस आदमी की गृहस्थी चलाने में उसने इतना बलिदान किया, उसका यह पुरस्कार! पुरुष–प्रधानता का अंहवाद अमानवीय हद तक जाता है। बाप, भाई, चाचा, पति और आस–पास के लोग भी अपने चरित्र का मानवीय कोमल पक्ष खो देते हैं। मार डालना, जला देना, अंग–भंग कर देना, त्याग देना, असहाय कहीं छोड़ आना– ऐसी घटनाएँ तो होती ही रहती हैं। नारी का निजी अस्तित्व नकारा जाता है।

झुनिया माँसल, स्वस्थ, सुगठित अंगों वाली, जल्द ही विधवा होने वाली, भोला की बेटी थी। गोबर से उसकी आशनाई हो गयी, पेट रह गया, मगर गोबर उसे रास्ते में छोड़कर रात के अंधेरे में भाग गया। धनिया ने उसे आश्रय दिया। भोला ने शर्त रखी थी कि या तो झुनिया को अपने घर से निकाल दे, या गाय का दाम चुकाये। बेटी के प्रति बाप का रवैया पितृतंत्र की क्रूरता का अविश्वनीय नमूना है, मगर प्रेमचन्द ने ड्रामाई अन्दाज से उसे रखा है। भोला ने कहा कि झुनिया को अपने घर में रखना उसकी छाती पर मूँग दलना है, ''उसने मेरी नाक कटाई हैं, तो मैं उसे ठोकरें खाते देखना चाहता हूँ ....वह मेरी बेटी हैं...... लेकिन आज उसे भीख माँगते और घूरे पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दाने चुनते देखकर मेरी छाती सीतल हो जायेगी'' । धनिया ने कह दिया कि ऐसा नहीं होगा, ''तुम अब बूढ़े हो महतो! पर आज भी तुम्हें सगाई की धुन सवार है। फिर वह तो अभी बच्चा है। धनिया ने पुरुष और बाप दोनों को लताड़ा। झुनिया बाहर निकल कर बोली,''काका लो, मैं इस घर से निकल जाती हूँ..... और अगर भीख भी न मिली, तो कहीं डूब मरूँगी।'' धनिया ने उसे दौड़कर पकड़ लिया। दूसरी घटना सिलिया के साथ घटती है। पंडित दातादीन के पुत्र मातादीन का सिलिया (चमारन) से सम्बन्ध था। चमारों ने मिलकर मातादीन के मुँह में हड्डी का टुकड़ा डालकर उसे चमार बना दिया। सिलिया मातादीन के साथ रहना चाहती थी। माँ ने कोसा, भाइयों ने घसीटकर पीटा। सिलिया बाप के पैरों से लिपट कर बोली–'' मार डालो दादा, सब जने मिलकर मार डालो। हाय अम्मा, तुम इतनी निर्दयी हो, इसीलिए दूध पिलाकर पाला था?'' धनिया उसे भी अपने घर ले आयी। सोना और रूपा, होरी की दो बेटियाँ विवाह योग्य थीं। लड़की के विवाह को लेकर अगर घर पर तबाही आने वाली है तो सोना कहती हैं,'' कन्या का धरम यही है कि डूब मरे''। होरी की दशा दिन–दिन बिगड़ती जा रही थी। कमजोर होती जा रही थी। अपने खेत बचाना चाहता था। कुछ रुपयों के लिए उसने अपनी बेटी रूपा का विवाह एक अमीर विधुर रामसेवक से कर दिया। रामसेवक होरी से चार साल छोटा 'बूढ़ा ठूँठ' था। यह प्रस्ताव लड़की बेचने के समान था। मगर होरी और धनिया दोनों ही मजबूर थे। लड़की जिसके पल्ले बाँध दी गयी, चली गयी। घर की मजबूरियों का शिकार लड़कियाँ होती हैं। होरी यहाँ भी हारता है।

प्रश्न 12 'गोदान' की समान्तर कथा–धाराओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : 'गोदान' में दो समानान्तर कहानी–धाराएँ हैं। एक तो ग्रामीण जीवन से जुड़ी हुई है, और दूसरी कुछ शहरी पात्रों से जुड़ी है। दोनों में आवश्यक परस्पर सम्बन्ध नहीं है । कहीं–कहीं होरी का प्रवेश होता है। शहरी भाग अगर न होता तो भी होरी की कहानी पर कोई असर नहीं पड़ता। एक रोटिरियन की तरह लेडी डाक्टर मालती उपन्यास के आखिर में गाँव में स्वास्थ्य–सेवा करने लगती है और होरी के घर पहुँचती है। गोबर उनके यहाँ नौकरी करता है।

आदर्श नारी खन्ना की पत्नी गोविन्दी है या मालती जो 'बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी'आदर्श और यथार्थ में अन्तर की समस्या सुलझाने का प्रयास भी है। अपने समय के कुछ मुद्दों पर प्रेमचन्द ने अपनी ही आवाज में वाद–विवाद कराया है। मगर दोनों कथानक एक सूत्र में नहीं बँधते। न घटनाओं के स्तर पर, न मूल्यों के स्तर पर।

प्रश्न 13 'गोदान' में वर्णित जाति–सामंती व्यवस्था पर टिप्पणी दीजिए।

उत्तर : जाति–सामन्ती व्यवस्था संस्थागत कठोर नियमों पर चलती है। उसमें एकता के सूत्र नहीं है, विभाजन ही विभाजन है। साधन–सम्पन्न और तिकड़मी आदमियों की प्रभुता बनी रहती है। जमीन ही जमींदार के अधीन है और सारा गाँव उसके आधीन है। काश्तकार आसामी उसके चंगुल में हैं। लगान के अलावा वह कोई भी नजराना या तावान वसूल कर सकता है। वह संरक्षक होने का स्वांग रचता है, मगर वास्तव में शोषक ही रहता है। सरकारी हुक्काम से ईनाम–इकराम का सम्बन्ध रखता है। चुनाव में भागीदारी भी करता है। 'राष्ट्रीय' भी है।

गाँव में रहने वाले तिकड़मी लोग– पटवारी, कारिंदा, पंडित, महाजन–सब छोटे किसान की मजबूरियों से फायदा उठाने की ताक में लगे रहते हैं। परम्पराओं द्वारा ग्रामीण संस्कृति परिभाषित होती है। गाँव की सिविल सोसायटी होरी को न समर्थन देती है, न रक्षा करती है। जो लोग किसी को सहारा देते हैं, उन्हें तरह–तरह से सताया जाता है। संस्थागत नियमों के आगे मानवीय मूल्यों का कोई मतलब नहीं है। 'गोदान' ग्रामीण जीवन की विफलता की भी कहानी है। आज अगर कोई होरी के गाँव बेलारी का दौरा करे तो पायेगा कि सारा गाँव गुटबाजी और माफिया के अधीन है। ग्रामीण सिविल–सोसायटी के असफल होने का गुमान प्रेमचन्द को था। ग्रामीण जीवन की सुन्दरता के सारे भ्रम' गोदान' उपन्यास तोड़ देता है। परम्परागत नियमों और मूल्यों का आडम्बर उजागर करता है। किसी हद तक, इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह के अंकुर भी उगाता है।

प्रश्न 14 'गोदान' में आदर्श तथा यथार्थ का समन्वय कैसे है? बताइए।

उत्तर : साहित्य में दोनों धाराएँ सदैव रही हैं कि समाज का कैसा चित्रण करना चाहिए, जैसा वह है वैसा या जैसा उसे होना चाहिए, वैसा। जो जैसा है, उसे वैसा ही प्रस्तुत कर देना यथार्थवाद कहा जाता है। जैसा होना चाहिए, वैसी प्रस्तुति को आदर्शवाद कहते हैं। जैनेन्द्र के अनुसार प्रेमचन्द ने आदर्शवाद और यथार्थवाद का समन्वय किया है। डॉ गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार 'गोदान' का लेखक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी के स्थान पर शुद्ध यथार्थवादी रह गया है। हाँ, नग्न यथार्थवादिता से वह अवश्य दूर है। गोदान से पहले के उपन्यासों पर यह आरोप लगाया जाता है कि प्रेमचन्द आदर्शवादी दृष्टिकोण अपनाकर समस्या का समाधान थोप देते हैं। वैसे प्रेमचन्द

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की विवशता भी थी। देश में अंग्रेजों का शासन था और महाजन, पुलिस, पटवारी आदि अंग्रेजी प्रशासन के अंग थे। गाँधीजी सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन, अहिंसा आदि को प्रयुक्त कर रहे थे। प्रेमचन्द की सोच पर गाँधीजी का पूर्ण प्रभाव था। 'गोदान' में प्रेमचन्द ने किसानों की समस्याओं का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया है, उनकी समस्या की विश्लेषणात्मक व्याख्या की है।

प्रेमचन्द ने 'गोदान' का मूल ढाँचा यथार्थवादी ही तैयार किया है। प्राकृतिक वर्णन हो या फिर ग्राम्य जीवन की विविध झाँकियों का वर्णन, सभी में प्रेमचन्द ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाए रखा है, ग्रामीण पात्रों के नाम भी तद्भव और देशज रूप में लिये हैं, जैसे–होरी, गोबर, धनिया, पुनिया, झुनिया, मतई, हरखू, सिलिया, मँगरू, साह आदि। शहरी पात्रों के नामों का स्वरूप तत्समप्रधान है, जैसे–मालती, वेदप्रकाश खन्ना, सूर्यप्रताप, ओंकारनाथ आदि। पात्रों के नाम ही नहीं, बल्कि उनकी वेशभूषा के चित्रण में भी यथार्थवादी दृष्टिकोण काम में लिया है, पात्रों के कपड़ों के अलावा अन्य चीजें, जैसे–लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी, तम्बाकू आदि। धनिया की साड़ी पैबन्द लगी है, तो सोना की साड़ी सिर पर फटी है। होरी की आर्थिक स्थिति यह थी कि उम्र भर की मेहनत के बाद भी एक गाय तक रखने की इच्छा पूरी नहीं कर सका। इसका मूल कारण यह कि भारत का किसान जमींदार, कारिन्दा, महाजन, पटवारी, पुलिस, पुरोहित आदि के हाथों शोषण सहन करता रहता है। जैसे रायसाहब होरी से शगुन लाने को कहते हैं। कारिन्दा नोखेराम बेदखली करवा देता है। इसके साथ ही लगान चुकाने की रसीद भी नहीं देता हैं. महाजन वर्ग मनमाना ब्याज लगाकर ईख का रुपया रख लेते हैं। विधवा झुनिया को पुत्रवधु बनाये जाने पर पंचायत के माध्यम से सौ रुपये और तीस मन अनाज दण्ड लगा देते हैं। किसानों को इस शोषण से बचाने के लिए पुलिस, थाना, कचहरी कोई नहीं आता, उल्टे ये भी शोषकों से मिलीभगत करके शोषण ही करते हैं। ग्रामीण ही नहीं, प्रेमचन्द ने शहरी यथार्थ का चित्रण भी किया है। रायसाहब और राजा सूर्यप्रताप में प्रतिष्ठा की भूख व पारस्परिक ईर्ष्या–भाव है। इस कारण रायसाहब व्यायामशाला के लिए उतने रुपये देते हैं, जितने राजासाहब ने दिये। ये लोग झूठी शान रखने के लिए कर्ज पर कर्ज लेते जाते हैं। ये लोग कोठियाँ खरीदते हैं,नौकर रखते हैं, मुकदमे लड़ते हैं व दावतें देते हैं।

प्रेमचंद ने 'गोदान' में कहीं–कहीं थोड़ा यथार्थ से हटकर भी मोड़ दिया है। यह आदर्श का रूप है। विलासिता का जीवन जीने वाली मालती गाँव वालों की सेवा करती है तथा मेहता को भी त्याग करने को कहती है। वह मेहता के साथ पत्नी के रूप में नहीं, बल्कि मित्र के रूप में रहती है। यह गांधी के ब्रह्मचर्य के आदर्श की प्रतीति है। इसके अलावा मेहता के माध्यम से नारी के त्याग, समर्पण, मातृत्व, सहनशीलता, प्रेम आदि आदर्शों की महिमा बतायी है। इससे पहले के नारी के वर्णन में यथार्थ है, जबकि यहाँ आदर्श है। मजदूरों की हड़ताल के संबंध में मिल मालिक खन्ना को मेहता की कही बातें व्यावहारिक आदर्शवाद ही तो हैं। इस प्रकार 'गोदान' में प्रेमचंद ने एक ओर यथार्थ का चित्रण किया है, तो दूसरी ओर आदर्श का अंकन भी किया है। प्रेमचंद सदैव यथार्थ व आदर्श के समन्वय के पक्षधर रहे हैं और यही दृष्टिकोण 'गोदान' में उभरकर आता है।

प्रश्न 15 : 'गोदान' के प्रमुख पात्रों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर : अपने उपन्यासों के पात्रों के बारे में स्वयं प्रेमचंद का मानना है कि मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलमंत्र है। प्रेमचंद ने मानव–जीवन को बहुत निकटता से देखा था। इस कारण उनके उपन्यासों के पात्र सारा जीवन ही हमारे समक्ष उपस्थित कर देते हैं। 'गोदान' से पहले के प्रेमचंद के उपन्यासों के पात्र मात्र वर्गगत बनकर रह गये थे, उनकी कोई व्यक्तिगत पहचान नहीं बनी; किन्तु 'गोदान' में ऐसी बात नहीं। 'गोदान' के पात्र जहाँ एक ओर वर्गगत स्वरूप लिये हुए हैं, तो वहीं दूसरी ओर व्यक्तिगत स्वरूप लिये हैं। 'गोदान' के प्रमुख पात्र के रूप में सबसे पहले होरी को लें। यह ठेठ किसान है। दरिद्र है। अपनी विवशता भी अनुभव करता है। विवशता में वह झूठ भी बोल लेता है तो कभी–कभी बेशर्मी भी ओढ़ लेता है। मानवता होरी के स्वभाव में कूट–कूट कर भरी हुई है। उसके व्यवहार से किसी को कष्ट नहीं पहुँचे, इसका वह पूरा ध्यान रखता है। मजबूर भोला की गाय खरीदने के स्थान पर वह उसे मुफ्त में चारा देने को तैयार हो जाता है। साथ ही वह कहता है, "भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे और मैं लूँगा। मेरे हाथ न कट जायेंगे।"

'गोदान' में पात्रों की बहुतायत है। होरी पुरुष–पात्रों में प्रथम है तो धनिया स्त्री–पात्रों में प्रथम है। विमल हृदय धनिया पतिव्रता, धर्मभीरू, भाग्यवादी एवं ममत्व से लबालब थी। यह बिना लाग–लपेट के बोलती थी। इस कारण इसके मुँह से कड़वी बात भी निकल जाती थी। विधवा झुनिया को जब इसका बेटा गोबर ब्याह लाता है तो यह सभी की आँखों में खटकने लगती है, लेकिन यह स्पष्ट कर देती है कि झूठी मान–मर्यादा के नाम पर वह मानवीयता का परित्याग नहीं करेगी। यह अपने पति से बहुत प्रेम करती है, किन्तु इसके प्राकट्य में पारम्परिक मर्यादा का पूरा ध्यान रखती है। गोबर होरी का पुत्र है। इसे नवयुग के आक्रोशित युवा वर्ग का प्रतीक कह सकते हैं। यह शोषण सहने से इनकार कर देता है तथा इसके विरोध में बिगुल बजा उठता है। यह प्रेम के रास्ते में आड़े आने वाली झूठी मर्यादा,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्यर्थ के आदर्श और मान की धज्जियाँ उड़ाकर झुनिया का हाथ पकड़कर अपने घर ले जाता है। विधवा झुनिया से विवाह कर गोबर एक नवीन आदर्श प्रतिस्थापित करता है। गोबर को एक अवसर पर तो होरी रोक देता है, अन्यथा वह शोषण की व्यवस्था में पहली बार बारूद फोड़ ही देता।

दातादीन जन्म और जाति से तो ब्राह्मण है, किन्तु इनके व्यवहार में अंधविश्वास एवं धूर्तता अधिक है। ये समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो धर्म के नाम पर समाज का जमकर शोषण करता है। लोगों को लगाई–बुझाई करना इनका प्रिय कार्य था। धर्मभीरू ग्रामीण जनता को लूटना ही इनका कार्य था। धर्म, मर्यादा आदि इनके लिए ढोंग रचाने के साधन थे। 'गोदान' के प्रमुख शहरी पात्रों में रायसाहब अमरपाल सिंह आते हैं। ये सभ्य, सुसंस्कृत और शिक्षित हैं। बड़े से बड़ा अपमान भी ये अत्यन्त धीरता से सहन कर लेते हैं। ये मानवता व समाज के लिए अपने कर्त्तव्य पूरा नहीं करने वाले को मनुष्य तक नहीं मानते। शोषण और भोग की व्यवस्था के प्रति विरक्ति की घोर अवस्था मन में होने के बाद भी विवशतावश ही उसका भाग बने रहते हैं। मालती शहरी स्त्री–पात्रों में प्रमुख है। यह आरम्भ में तो विलासिता भरा जीवन जीती है, किन्तु बाद में समस्त भोग–विलास त्यागकर गाँव के लोगों की सेवा करने में जुट जाती है। इतना ही नहीं, बल्कि मेहता को भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित भी करती है। इसका मेहता के साथ प्रेम भी है। यह मेहता के साथ विवाह नहीं करती, किन्तु मित्र के रूप में रहती है। इसके मतानुसार विवाह करने से व्यक्ति बन्धनों में बंध जाता है, जबकि मित्रता मुक्त रखती है। इनके अतिरिक्त मिर्जासाहब, नोखेराम, पटेश्वरी, मेहता, भोला आदि भी गोदान के पात्र हैं, किन्तु ये मुख्य पात्र न होकर सहायक पात्र हैं। ये सभी पात्र मिलकर प्रमुख पात्रों के चरित्रांकन में व कथानक के उद्घाटन में सहायक बनते हैं। प्रेमचंद ने अपने महाकाव्यात्मक उपन्यास 'गोदान' में पात्रों की बड़ी भीड़ को लेकर जो कथानक रखा है, वह अप्रतिम एवं अद्भुत है।

******

1.5 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. 'गोदान' की युगचेतना समझाइए।

उत्तर : गोदान का रचना काल 1934–36 के बीच का है। यह वह समय है जब अंग्रेजी शासन के शोषण में भारत खोखला हो रहा था। यह शोषण और खोखलापन प्रेमचन्द के ही शब्दों में देखने योग्य है।'गोदान' का एक पात्र कहता है," थाना, पुलिस, कचहरी, अदालत सब हैं, हमारी रक्षा के लिए। लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है। जो गरीब है, बेबस है, उसकी गर्दन काटने के लिए सभी तैयार रहते हैं। .....यहाँ तो जो किसान है, वह सबका नरम चारा है।पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दे, तो गाँव में रहना मुश्किल। जमींदार के चपरासी और कारिन्दा का पेट न भरे तो निबाह न हो। थानेदार और कांस्टेबल तो जैसे उसके दामाद हैं। जब उनका दौरा गाँव में हो जाय, किसानों का धर्म है कि वे उनका आदर सत्कार करें, नजर–नियाज दें, नहीं एक रिपोर्ट में गाँव का गाँव बंध जाय। कभी कानोनगो आते हैं, कभी तहसीलदार, कभी डिपटी, कभी जंट, कभी कलक्टर, कभी कमीशनर–किसान को उनके सामने हाथ बाँधे हाजिर रहना चाहिए। उनके लिए रसद, चारे, अंडे, मुर्गी, दूध, घी का इन्तजाम करना चाहिए।" गोबर जब शहर से गाँव आता है तो सारा गाँव उसे अन्धकार में, निराशा में डूबा दिखायी देता है,"ऐसा एक आदमी भी नहीं जिसकी रोनी सूरत न हो, मानो उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते–फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तकदीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गये हों और सारी हरियाली मुरझा गयी हो। जेठ के दिन हैं, अभी तक खलिहानों में ही अनाज मौजूद है, मगर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहान में ही तुलकर महाजनों और कारिन्दों की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों का है। भविष्य अन्धकार की भाँति उनके सामने है। उसमें उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। उनकी सारी चेतनाएँ शिथिल हो गयी हैं। द्वार पर मानो कूड़ा जमा है, दुर्गन्ध उड़ रही है मगर उनकी नाक में न गन्ध है, न आँखों में ज्योति । सरेशाम द्वार पर गीदड़ रोने लगते हैं, मगर किसी को गम नहीं। सामने जो कुछ मोटा–झोटा आ जाता हैं, वह खा लेते है, उसी तरह जैसे इंजन कोयला खा लेता है। उनके बैल चूनी चोकर के बगैर नाद में मुँह नहीं डालते, मगर उन्हें केवल पेट में कुछ डालने को चाहिए। स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है। उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है।उनसे धेले–धेले के लिए बेईमानी करवा लो, मुट्ठी भर अनाज के लिए लाठियाँ चलवा लो। पतन की वह इन्तहा है, जब आदमी शर्म और इज्जत को भी भूल जाता है।" गोदान से इतना लम्बा उद्धरण पेश करने का मतलब सिर्फ यही है कि प्रेमचन्द के शब्दों में ही उनके समय के भारतीय गाँवों का साक्षात्कार कराया जाय। कहना न होगा कि ऊपर के उद्धरण में भारतीय किसान के शोषण, उसकी असली हालत और उसके भविष्य की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। गाँव जिसका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शोषण जमींदार कर रहा है, उसके कारिन्दे और महाजन कर रहे हैं, ब्रिटिश नौकरशाही कर रही है तथा भीतर से खुद जो अपनी परम्पराओं और रूढ़ियों में जकड़ा हुआ चरमरा रहा है।'गोदान' में अपने समय के भारतीय जीवन को प्रेमचन्द ने इस प्रकार समेट लिया है कि वह एक साहित्य का ग्रन्थ होते हुए भी, इतिहास और समाजशास्त्र के ग्रन्थ से भी अधिक प्रामाणिक हो गया है।उस समय के भारतीय मनुष्य के हालात को जानने के लिए, 'गोदान' से अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ दूसरा शायद ही मिले। प्रेमचन्द ने जिस जिन्दगी को उपन्यास का विषय बनाया, उसकी सारी सम्भावनाओं को इस कदर निचोड़ लिया कि फिर उस थीम पर आगे के उपन्यासकारों के लिए कुछ भी लिख पाना कठिन हो गया। 'गोदान' का नायक न केवल उपन्यास का नायक है बल्कि भारतीय किसान का प्रतिनिधि ा चरित्र भी है। वह व्यवहारकुशल है, खुशामदी, ईश्वरवादी है, भाग्यवादी है, परम्पराओं और रूढ़ियों को मानने वाला है, भीरू है तथा जरूरत पड़ने पर छल और चोरी भी करने वाला है। प्रेमचन्द ने कहीं भी होरी को छिपाया नहीं हैं, कहीं से भी उसे गौरवान्वित करने की कोशिश नहीं की है। सूरदास, प्रेमशंकर, अमरकांत, चक्रधर आदि पात्र प्रेमचन्द के द्वारा गौरवान्वित किये गये हैं। निष्कलुष हैं, गरीबों की सेवा करने वाले हैं और मनुष्य से अधिक देवता लगते हैं। उनकी रचना करते समय प्रेमचन्द के ऊपर एक आदर्शवादी आवरण है उनके भीतर एक सुधारवादी लक्ष्य है। लेकिन 'गोदान' में यह सब ध्वस्त हो गया है। मालती और मेहता यहाँ भी आदर्शवादी चरित्र हैं, लेकिन उपन्यास की मूलकथा को प्रेमचन्द प्रश्नों मे छोड़ते हैं, आदर्शवादी समाधान में नहीं। उनके अन्य उपन्यासों में आदर्श है, सुध ार है, समाधान है। लेकिन 'गोदान' का अन्त किसी सुखद समाधान में नहीं होता, नायक की पराजय में होता है। 'गोदान' में प्रेमचन्द की खामोशी रेखांकित करने के योग्य है। वे कहीं भी अतिरिक्त उत्साह नहीं दिखाते। कहीं भी होरी को जैसा चाहते हैं कि 'वह हो' वैसा नहीं बनाते। स्थितियाँ बहुत सहज ढंग से चलती हैं। उनको लेखक नहीं, बल्कि वे स्थितियाँ ही लेखक को परिचालित करने लगती हैं। वह कहीं भी अपने अतिरिक्त जोश या करुणा या प्रेम या भावुकता का प्रदर्शन नहीं करता। अन्य उपन्यासों में प्रेमचन्द जो उल्लास दिखाते हैं, वह यहाँ नहीं मिलेगा। यहाँ मिलेगी एक विचित्र खामोशी और तटस्थता। ऐसा लग रहा है जैसे वे एक ठण्डे हो रहे जीवन का बड़ा ठण्डा चित्र खींच रहे हैं। 'गोदान' में क्रान्ति के बीज तो हैं। गोबर के व्यक्तित्व में वह कहीं–कहीं अंकुरित भी होता है। वह कहता है,''दादा का ही कलेजा है कि यह सहते हैं, मुझसे तो एक दिन नहीं सहा जाय।'' इसी प्रकार रामसेवक मेहता भी कहते हैं, ''संसार में गऊ बनने से काम नहीं चलता, जितना दबो, उतना ही लोग दबाते हैं...... भगवान न करे, कोई बेईमानी करे। यह बड़ा पाप है, लेकिन हक और न्याय के लिए न लड़ना उससे भी बड़ा पाप है।'' इन वाक्यों से जाहिर है कि 'गोदान' के पात्र अपनी परिस्थितियों की असलियत समझ रहे हैं और उन्हें क्या करना चाहिए, यह भी समझ रहे हैं। लेकिन प्रेमचन्द की मध्यवर्गीय मानसिकता उन्हें क्रांतिकारी नहीं बना पाती। गोबर भी थोड़ा बहुत कुनमुनाकर रह जाता है। दरअसल क्रान्ति के प्रति यह संदेहवादी रवैया लेखक का ही है। मदानजी को लिखे पत्र में वे कहते हैं,''अच्छे तरीकों के असफल होने पर ही क्रान्ति होती है.... क्रान्ति का परिणाम हमारे लिए क्या होगा वह सन्देहास्पद है। हो सकता है कि वह सब प्रकार की व्यक्तिगत स्वाधीनता को छीनकर तानाशाही के घृणित रूप में हमारे सामने आ खड़ी हो।'' तात्पर्य यह है कि 'गोदान' तक पहुँच कर भी प्रेमचन्द क्रान्ति की चिनगारी तो नहीं जला पाते लेकिन उनका मोह जरूर भंग हो जाता है। 'गोदान' का रचना काल प्रेमचन्द के जीवन का अन्तिम काल है। यह वह काल है जब वह 'कफन' जैसी कहानी लिख रहे थे। जब वे 'प्रगतिशील लेखक संघ' से जुड़ रहे थे। जब वे 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक लेख लिख रहे थे। वे इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे थे कि 'महाजनी सभ्यता' मनुष्य सभ्यता को नष्ट करने वाली सभ्यता है। यह पैसे की सभ्यता है। होरी कहता है, ''कौन कहता है कि हम–तुम आदमी हैं, इसमें आदमियत है कहाँ ? आदमी वह जिसके पास धन है, आख्तियार है, इलम है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं।'' प्रेमचन्द की यह स्वीकृति यथार्थ की स्वीकृति है। 'गोदान' तक पहुँचते–पहुँचते प्रेमचन्द के गाँधीवादी विचार टूटकर बिखर जाते हैं । इन्द्रनाथ मदान के अनुसार 'सेवासदन' से 'गोदान' तक आते–आते प्रेमचन्द आधुनिकता की चुनौती को स्वीकार करने लगते हैं। इस आधुनिकता के मूल में वैज्ञानिक यथार्थवादी दृष्टि है। ऐसा लगता है कि प्रेमचन्द के पिछले उपन्यास इस मंजिल तक पहुँचने के लिए थे। 'गोदान'उनके विचारों का चरम विकास है और उनकी कला का भी।

प्रश्न 2. 'गोदान' के कथाशिल्प की विवेचना कीजिए।

उत्तर : 'गोदान' के कथाशिल्प को लेकर हिन्दी में खासा मतभेद रहा है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार 'गोदान' के दोनों (ग्रामीण और नागरिक) कथानक परस्पर सम्बद्ध नहीं हैं और उनमें वास्तविक ऐक्य की कमी है। वाजपेयी जी के विचार से 'गोदान' में नगर की कथा का सम्पूर्ण उपन्यास के उद्देश्य से सीधा सम्बन्ध नहीं है। उन्हीं के शब्दों में, ''गोदान के नागरिक और ग्रामीण पात्र एक बड़े मकान के दो खण्ड में रहने वाले दो परिवारों के समान हैं, जिनका एक–दूसरे के जीवनक्रम से बहुत कम सम्पर्क है। वे कभी–कभी आते–जाते मिल लेते हैं, और कभी–कभी किसी बात पर झगड़ा कर लेते हैं, परन्तु न तो उनके मिलने में और न झगड़ने में ही कोई ऐसा सम्बन्ध स्थापित होता है, जिसे स्थायी कहा जा सके।'' वाजपेयी जी सुझाव देते हैं, ''यदि इन दोनों (कथानकों) को अलग–अलग दो कृतियों में न रखकर एक में मिलाने की आवश्यकता समझी गई तो यह मिलाप का कार्य अधिक समन्वित रूप में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तथा अधिक कलापूर्ण रीति से करना चाहिए था।'' 'गोदान' की कथा को लेकर वाजपेयी जी ने जो आक्षेप किये हैं, वे निराधार नहीं हैं और उनका सुझाव भी सार्थक है। यद्यपि वाजपेयी जी के इस मत के विरोध में काफी कहा गया है। कई आलोचनों ने 'गोदान' के कथानक के पार्थक्य को उसका गुण बताया है। ऐसे आलोचकों के अनुसार 'गोदान' में गाँव के साथ शहर का कथानक रखकर प्रेमचन्द अपने समय के समाज का सम्पूर्ण चित्र पेश करना चाहते हैं। उनका लक्ष्य भारतीय जीवन की विशाल धारा को चित्रित करना है। गाँव की पुरानी व्यवस्थाएँ छिन्न–भिन्न हो रही हैं। किसान और जमींदार दोनों टूट रहे हैं। होरी न अपने 'मरजाद' की रक्षा कर पाता है, न अपनी जमीन की। उसका बेटा गोबर शहर की शरण लेता है। जमींदार भी गाँव और नगर दोनों से जुड़ा है। टूटती हुई सामंतवादी व्यवस्था में वह गाँव और नगर दोनों से जुड़ा है। वह एक ओर गाँव का शोषण करता है और दूसरी ओर स्वयं शहर के 'महाजनों' द्वारा शोषित होता है। होरी जिस प्रकार 'झूठी मरजाद' की रक्षा के लिए संघर्ष करता है, उसी प्रकार रायसाहब भी अपनी झूठी शान–शौकत की रक्षा में लड़खड़ा रहे हैं। प्रेमचन्द महसूस कर रहे हैं कि कृषि व्यवस्था और सामंतवादी व्यवस्था का विघटन हो रहा है और पूँजीवादी व्यवस्था तथा औद्योगिक व्यवस्था उस पर हावी हो रही है। इस बात को वे रायसाहब, गोबर तथा खन्ना आदि पात्रों के माध्यम से चित्रित करना चाहते हैं। सम्भवतः इसीलिए वे गाँव के साथ शहर का कथानक भी लाते हैं। गाँव और शहर दोनों को एक साथ रखकर वे अपने समय के समाज को सम्पूर्णता में अंकित करना चाहते हैं। लेकिन यह सही है कि प्रेमचन्द शहर के चित्रण में उत्साह नहीं दिखा पाते। नगर और गाँव, दोनों कथानकों के कलापूर्ण संयोजन का अभाव ही प्रेमचन्द की कथा–शिल्प की कमजोरी है। इस कमजोरी के पीछे सबसे बड़ा कारण यह है कि प्रेमचन्द का अधिकांश लेखन प्रायः जल्दबाजी का लेखन है। प्रेमचन्द एक संवेदनशील लेखक थे – अपने चारों ओर की दुनिया में ही दिलचस्पी रखने वाले। वे बहुत कुछ करना चाहते थे। छोटी से छोटी घटना, समस्या उन्हें तुरन्त लिखने के लिए प्रेरित करती थी। उन्होंने अपनी रचनाओं के कलात्मक परिष्कार पर न तो विशेष ध्यान दिया और न उसके लिए ज्यादा इन्तजार किया। हालाँकि 'गोदान' अत्यन्त प्रौढ़ कृति है फिर भी उसमें कथाशिल्प की कमजोरियाँ रह गयी हैं। इसकी तुलना में प्रेमचन्द के अन्य उपन्यास तो बहुत ही कमजोर दिखाई पड़ेंगे। उनमें तो आकस्मिक संयोग, विचित्र घटनाएँ, अविश्वसनीय परिस्थितियाँ भी मिलेंगी। अतिनाटकीय प्रसंग मिलेंगे और लम्बे–लम्बे वक्तव्य तथा निरर्थक वर्णन भी बहुत मिल जायेंगे। यह उनके शिल्प–विधान की कमजोरी है। लेकिन यहाँ हमें स्मरण रखना होगा कि प्रेमचन्द को विरासत में क्या मिला था? देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी के उपन्यास। आकस्मिक संयोगों वाली कथा, कुतूहल को बढ़ाने वाली परिस्थितियाँ, लम्बे–लम्बे विवरण, एक काल्पनिक दुनिया। प्रेमचन्द को इस जमीन पर अपना ढाँचा गढ़ना था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द को अपना शिल्प खुद निर्मित करना पड़ा और इसके लिए भी उनके संघर्षों की कल्पना की जा सकती है। 'गोदान' के बारे में बहुत लिखा गया है। जब कोई कृति चुनौती के रूप में सामने आती है तो उस पर बार–बार विचार स्वाभाविक भी है। लेकिन आलोचक कभी–कभी रचनात्मक कृतियों में अपने मन की दुनिया तलाशने लगता है। 'गोदान' में भी इस प्रकार की तलाश हुई है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं, ''हमारे देश में पिछले समय जो राष्ट्रीय संघर्ष हो रहा था, जिसके परिणामस्वरूप देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, वह अभूतपूर्व था। 'गोदान' में इस सामाजिक उत्थान का कोई निर्देश नहीं है।'' वाजपेयी जी के अनुसार 'गोदान' राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास की उन शर्तों को पूरा नहीं करता जिसे टालस्टॉय का 'वार एण्ड पीस' पूरा करता है। मेरी दृष्टि में 'गोदान' से वाजपेयी जी की यह माँग अनुचित है। आलोचक का मुख्य काम यह नहीं है कि वह किसी कृति में 'क्या नहीं है' इसकी तलाश करे बल्कि उसका धर्म यह देखना है कि किसी कृति में क्या है। 'गोदान' राष्ट्रीय संघर्ष का या भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का चित्र प्रस्तुत करने वाला उपन्यास नहीं है। हाँ, वह भारतीय ग्रामीण जीवन का चित्र प्रस्तुत करने वाला उपन्यास जरूर है। अतः यह देखना है कि 'गोदान' भारतीय ग्रामीण जिन्दगी का कितना प्रामाणिक और विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत करता है, 'गोदान' को सही दृष्टि से देखना होगा। बल्कि यह कहना चाहिए कि 'गोदान' के बारे में सही निर्णय होता यदि देखा जाता कि 'गोदान' ने आगे के उपन्यासकारों को कौन–सी जमीन दी? क्या प्रेरणा दी? कहा जा चुका है कि प्रेमचन्द को विरासत में आकस्मिक संयोगों वाली कथा, कुतूहल जगाने वाली परिस्थितियाँ, लम्बे–लम्बे विवरण और एक काल्पनिक दुनिया मिली थी। प्रेमचन्द ने बहुत संघर्ष किया। अपनी कला को एक यथार्थवादी दृष्टि दी। जिस ग्रामीण जिन्दगी को अपना विषय बनाया उसकी सभी सम्भावनाओं को निचोड़ा और आगे की कथा–पीढ़ी को एक नयी जमीन दी। ज्ञातव्य है कि प्रेमचन्द जब लिख रहे थे, उसी समय प्रसाद भी लिख रहे थे और जब प्रेमचन्द 'गोदान' लिख रहे थे तभी प्रसाद 'कामायनी' लिख रहे थे लेकिन आगे की पीढ़ी ने कामायनी के स्थान पर 'गोदान' का चुनाव किया। शायद इसीलिए कि 'गोदान' की जमीन वास्तविक अनुभवों की जमीन है। उसमें दर्शन न हो, लेकिन जीवन की धड़कन है। उसमें किसी सिद्धान्त का लेबुल न हो लेकिन चारों ओर की विराट जिन्दगी की पहचान जरूर है। वास्तविकता की यह पहचान 'गोदान' उपन्यास का अर्थ और मूल्य है।

प्रश्न 3 'गोदान' का होरी सही अर्थों में साधारण इंसान मात्र है।'' आप इससे कहाँ तक सहमत हैं?

उत्तर : होरी के व्यक्तित्व में अनेक कमजोरियाँ हैं। वह व्यवहारवाद से जीवन चलाना चाहता है। क्या यह होरी जैसे किसान की बनावट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की विवशता नहीं है। वह छोटी–छोटी चालाकियाँ करता है, छल करता है। पर ये छल उसकी आत्मा को मलिन नहीं करते । वह पीड़ा का भी अनुभव करता है। यही कारण है कि अवसर मिलने पर वह अपने स्वार्थ को त्याग कर दूसरों के काम आता है। ऐसा नहीं है कि उसके जीवन की यातना कम है, पर उसके भीतर एक विनोदी मन भी है। इस विनोदी प्रकृति में उसके जीवन की यातना ही क्यों न जोर मार रही हो। होरी के व्यक्तित्व की ये सीमाएँ दूसरे की भावनाओं का अपमान नहीं करतीं। वह भी अपनी जाति–बिरादरी की परम्पराओं से अलग नहीं है। होरी की मनोदशा पर विचार करें तो हम पायेंगे कि वह केवल अनिश्चित नियति चक्र से ही नहीं उलझा है, बल्कि वह वर्तमान की भयावहता और असुरक्षा के भाव से भी ग्रसित है। वस्तुतः प्रेमचन्द होरी के माध्यम से समाज की व्यवस्था के खोखलेपन को भी प्रकट करना चाहते हैं। इसलिए वे दयनीय प्रसंगों में भी मानवीय संवेदना की अनदेखी नहीं कर सके। क्योंकि होरी के व्यक्तित्व के माध्यम से उन्होंने जिस संसार की रचना की है, वह उनके दीर्घ जीवनानुभव से ही पाया गया संसार है। इसीलिए उन्होंने महान् व्यक्तित्वों के स्थान पर जनसमाज के चरित्रों में अधिक रुचि ली। सामन्ती मनोवृत्ति के विपरीत प्रेमचन्द एक लोकतन्त्र का स्वप्न देखते हैं। प्रेमचन्द का यह स्वप्न भविष्य के लिए देखा गया स्वप्न है, जो मानव युक्ति का राग रचता है। बहुत सारी बातें वे संकेतों से ही कह जाते हैं। गोबर का विद्रोही स्वभाव परिवार और समाज की स्थितियों के बीच निर्मित होता है। परिस्थितियाँ उसके व्यक्तित्व को अशान्त भी करती हैं। आरम्भ से ही वह देखता है कि होरी जिन रायसाहब की उदारता और धार्मिक प्रवृत्ति की प्रशंसा करता है, वही शोषण की बुनियाद है। इसीलिए वह अपने पिता का भी विरोध करता है। झुनिया से अन्तरजातीय विधवा विवाह को भी बिरादरी से विद्रोह के रूप में देख सकते हैं। होरी का अपने भाइयों तथा परिवार के अन्य सदस्यों के बीच जो संबंध है वह कितना ही कटु हो, पर वह मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। अलगौझा हो जाने पर भी होरी अपने भाइयों के लिए मरने–मारने को तैयार हो जाता है। इसी तरह होरी के भाइयों हीरा और शोभा ने भी होरी की गरिमा को आंच नहीं आने दी। गाय को हीरा ही माहुर (जहर) देता है, पर घर की तलाशी की बात आती है तो होरी ही उसकी रक्षा के लिए आगे आता है। कई ऐसे प्रसंग हैं, जहाँ भावना की पवित्रता रिश्तों को मजबूत बनाती है। बेलारी से लेकर लखनऊ तक गोबर का विद्रोह भाव एक सीधी रेखा में नहीं चलता। बीच–बीच में स्थितियाँ नया मोड़ लेती हैं। होरी के बैल चले जाते हैं, घर गिरवी रखना पड़ता है, खाने की समस्या आ जाती है। गोबर शहर के श्रमिक से छोटे–मोटे होटल का स्वामी बन जाता है। होरी और होरी जैसे अन्य किसानों की स्थिति निरन्तर बिगड़ती जाती है। होरी की चिन्ताओं से हम उसकी स्थिति का अनुमान लगा सकते हैं। दमड़ी बसोर को बाँस बेचने के पश्चात् होरी का आत्मचिंतन स्थितियों की विकरालता का ही संकेत करता है। इस फसल में सब कुछ खलिहान में तोल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ कर्ज था, जिस पर कोई सौ रुपये सूद के बढ़ते जाते थे .... अगर संतोष था तो यही कि यह विपत्ति अकेले उसी के सिर न थी। प्रायः सभी किसानों का यही हाल था। अधिकांश की दशा तो इससे भी बदतर थी।

'गोदान' में केवल किसान की समस्याओं पर ही विचार नहीं किया गया है, यहाँ प्रेमचन्द मजदूरों की समस्याओं पर भी विचार करते हैं। वस्तुतः प्रेमचन्द ने होरी जैसे जिस किसान को 'गोदान' का आधार बनाया है, उसमें मजदूर को तो आना ही था। असंगठित किसान को संगठन की सीख श्रमिक संगठन से ही मिलती है। यहाँ शहर, कारखाने के मजदूर की भी स्थितियाँ हैं। 'गोदान' नवजागरण की रचना है। यहाँ किसान जाग रहा है, मजदूर जाग रहा है, युवक जाग रहा है और नारी की सोई हुई चेतना जाग रही है। बुद्धिजीवी जागरण का यह कार्य कर रहे हैं। धनिया अपने ढंग से कार्य करती है, मालती अपने ढंग से। गोबर और मेहता यह कार्य अपने–अपने ढंग से करते हैं। बढ़ते पूँजीवाद और महाजनी सभ्यता के खतरे ने 'गोदान' को एक नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। यहाँ शोषण आधारित व्यवस्था के सम्भावित युग का संकेत किया गया है। आज ये चीजें ज्यादा साफ ढंग से देखी जा सकती हैं। उद्योगों से विकसित होने वाली नयी सामाजिक जटिलताओं की पहचान अब संदेहास्पद नहीं रह गयी है। यहाँ पश्चिम की अनेक अवधारणाओं को साफ–साफ खारिज किया गया है।

प्रश्न 4 'गोदान' में शोषण की भयानकता वर्णित कीजिए।

उत्तर : सबसे पहले तो उपन्यास में होरी के माध्यम से किसान आता है और फिर राय साहब के रूप में जमींदार। होरी एक सीमान्त किसान है। वह खुद बैलों के लिए सानी–पानी लगा रहा है, बेटे गोबर को खेत में ऊख तोड़ने के लिए भेजता है और उसकी पत्नी ध ानिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। पूरा परिवार मेहनतकश है। होरी रायसाहब की खुशामद में लगा रहता है, फिर भी शोषण कम नहीं होता। जिस समय रायसाहब अमरपाल सिंह दोस्तों के बीच भाषण करते हुए कह रहे हैं–''सम्पत्ति और सहृदयता में बैर है'' उसी समय चपरासी आकर कहता है कि बेगारों ने भोजन लिए बिना काम करने से इन्कार कर दिया है और रायसाहब आँखें निकाल कर बोले –''चलो, मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूँ। जब कभी खाने को नहीं दिया तो आज यह नई बात क्यों ? एक आना रोज के हिसाब से मजूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है। और इस मजूरी पर काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।'' यह तो आम तौर से मजूरों का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शोषण है। किसानों के शोषण का एक प्रसंग तो ड्योढी पर रामलीला के आयोजन पर देखने को मिलता है। पूरे तालुका में किसानों को निर्देश दिया गया है रामलीला में सलामी देने का। उन्हीं की कीमत पर रामलीला होती है। गोबर इस सचाई को समझ लेता है कि ड्योढी का भजन–भाव किसानों की कीमत पर ही चलता है। होरी की ड्योढी–भक्ति की कलात्मक उपयोगिता इस बात में है कि उसकी भक्ति के बावजूद उसके प्रति भी कोई रियायत नहीं की जाती। वर्षा होने पर अन्य किसानों की तरह होरी भी हल–बैल लेकर खेत की ओर चला, तभी रायसाहब के कारकुन ने कहला भेजा, ''जब तक बाकी न चुक जाएगी, किसी को खेत में हल न ले जाने दिया जाएगा। किसानों पर जैसे वज्रपात हो गया । होरी पर कोई अपवाद नहीं है। वह भी सोचने को मजबूर–अभी उस दिन राय साहब ने कैसी दया और धर्म की बातें कही थीं और असामियों पर यह जुल्म। किसान पहले से कर्ज में डूबे हैं। लगान का बकाया अदा करना मुश्किल है। उपन्यास पढ़ते हुए प्रश्न उठता है कि कथा में कहीं किसानों के भयानक शोषण का विस्तृत चित्रण नहीं किया गया है, जैसा टालस्टॉय ने किया है या बंगला के कई उपन्यासों में मिलता है। ध्यान से देखने पर 'गोदान' में ही इसका उत्तर मिल जाता है–रायसाहब जेल हो आये हैं, कौंसिल की मैम्बरी छोड़ दी, असामियों से हँस–हँस कर बोलते हैं।''सिंह का काम तो शिकार करना है; अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता है, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता।'' यह जमींदार उस दौर का है, जब वह स्वाधीनता संग्राम और किसान–आन्दोलन की ताकत को समझ चुका है और दूसरा चरित्र अपना चुका है। दूसरा कारण है किसानों पर जुल्म करने जमींदार तो जाते नहीं थे, सारा मुख़्तारों के जिम्मे था, बदनामी भी उन्हीं के सिर जाती थी। रायसाहब निष्कलंक रह जाते थे। यह था व्यवस्था का कमाल। एक और बात यह है कि यह सामन्ती व्यवस्था भी क्रमशः अवसान की ओर बढ़ रही है। रायसाहब भी मिल मालिक खन्ना के सामने बैंक–कर्ज के लिए गिड़गिड़ाते हैं।

प्रेमचन्द ने जमीदारों और महाजनों के द्वारा किसानों के शोषण के अलावा सामाजिक प्रथाओं को भयानक शोषण–कर्त्ता के रूप में चित्रित किया है। महाजन तीन तरह के हैं, जो शोषण करते हैं–सहुआइन, मँगरू और पंडित दातादीन। किसानों के जीवन में कर्ज को प्रेमचन्द ने ऐसा अतिथि बताया है, जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता। होरी की जीवन–कथा इसका दारुण दृष्टान्त है। जब ऊख कटने लगी तो दुलारी सहुआइन,मँगरू साहू, दातादीन, पटेश्वरी, झिंगुरी आदि के प्यादे पहुँच गये। होरी की ऊख तो घर पहुँचने ही नहीं पाई; तब भी कर्ज से मुक्ति नहीं मिलती। होरी के पास पाँच बीघा जमीन है,लेकिन इस संक्रमण की प्रक्रिया को और तेज कर देती है जाति–बिरादरी की प्रथा। प्रेमचन्द ने 'बिरादरी' को अत्यन्त रौबदार शोषक के रूप में चित्रित किया है। दारोगा को धनिया ने ऐसा झिड़का कि वह सटक गया, लेकिन बिरादरी को नहीं झिड़क सकी। ब्रिटिश राज में दारोगा का ऐसा रौब था कि मशहूर है कि एक बुढ़िया ने गवर्नर को आशीर्वाद दिया था कि 'जा बेटा, दारोगा बनना'। उस दारोगा को झिड़कने वाली धनिया बिरादरी के सामने नतमस्तक तो नहीं है, लेकिन उसे नकार नहीं सकी। इस बिरादरी ने होरी के जीवन में कहर ढा दिया–एक सौ रुपये नगद और तीस मन अनाज। होरी का कसूर क्या है? गोबर की प्रेमिका और पत्नी झुनिया को होरी ने घर में रख लिया है, बस। होरी पंचों के फैसले को मान लेता है, यह समझकर कि 'पंच में परमेश्वर रहते हैं। उनका जो न्याय है, वह सिर आँखों पर। अगर भगवान् की यही इच्छा है कि हम गाँव छोड़ कर भाग जायँ तो हमारा क्या बस'। होरी की समझ बिरदारी के बारे में यह है–'' हम सब बिरदारी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो डाँड़ लगाती है, उसे सिर झुका कर मंजूर कर।.......... आज मर जायँ तो बिरादरी ही इस मिट्टी को पार लगाएगी।'' भगवान और बिरादरी दोनों एक साथ हैं। होरी की दुर्दशा के लिए सामन्ती और महाजनी शोषण के अलावा होरी की चेतना में जमी विचारधारा भी जिम्मेवार है। उस विचारधारा में ईश्वरवाद और बिरादरीवाद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। धनिया होरी का, बिरादरी का, पंचों का प्रतिवाद करती है और साहस के साथ कहती है –''हमें नहीं रहना बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुत न हो जाएगी। अब भी पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी पसीने की कमाई खाएँगे।'' धनिया कह रही है कि बिरादरी से हमारा पेट नहीं चलता, हमारी मेहनत से चलता है। लेकिन परिवार में होरी का निर्णय मान्य हुआ। और ''बिरादरी का आतंक था कि होरी अपने सिर पर अनाज लादकर ढो रहा था मानो अपनी कब्र खोद रहा था।'' जाहिर है कि बिरादरी का आतंक जमींदार, साहूकार, सरकार आदि से भी बढ़कर था।

यह प्रेमचन्द के समग्र चिंतन का और शोषण से मुक्ति की राह खोजने की उनकी बेचैनी का नतीजा है कि वे संघर्ष को आर्थिक से लेकर सामाजिक और वैचारिक स्तर पर चलाने की जरूरत महसूस कराते हैं। 'गोदान' की कथा के महत्त्व को इस दृष्टि से देखने की जरूरत है। गोबर और झुनिया का सम्बन्ध अन्तरजातीय है। इससे वे सब परेशान होते हैं, जो शोषण की व्यवस्था के पुर्जे हैं। दातादीन का बेटा मातादीन चमारिन में फँसा है। ठाकुर झिंगुरीसिंह ने तीन शादियाँ की थीं। एक मर गयी, दो बची थीं और दोनों के बारे में तरह–तरह की कहानियाँ प्रचलित हैं। लेकिन उनको दण्ड नहीं दिया जाता। वे सामन्ती व्यवस्था के अलम्बरदार हैं। ध्यान देने की बात है कि बिरादरी भूख की समस्या पर कभी विचार नहीं करती। अशिक्षा या बीमारी पर कभी विचार नहीं करती। वह रूढ़ियों की रक्षा

के लिए हमेशा तैनात रहती है। बिरादरी पिशाच की तरह सर पर सवार रहती है। खलिहान का सारा अनाज चला झिंगुरीसिंह की चौपाल में और नगद के बदले मकान गिरवी रखा गया। बेटी की शादी में भी होरी को ऐसी त्रासदी नहीं झेलनी पड़ी।

प्रश्न 5. 'गोदान' में गाँव तथा शहर का अन्तर्विरोध दर्शाइए।

उत्तर : वर्गीय एवं सामाजिक (बिरादरी) अन्तर्विरोध के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने 'गोदान' में गाँव और शहर के अन्तर्विरोध का भी प्रासंगिक चित्रण किया है। इसका कहीं प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं किया गया है। यह प्रेमचन्द की रचनात्मकता का कलात्मक सौन्दर्य है कि परिस्थिति और पात्रों के माध्यम से अपनी बात कहते हैं। इसी शैली और पद्धति से गाँव और शहर का अन्तर्विरोध व्यक्त हुआ है। गोबर गाँव से भाग कर शहर चला गया। झुनिया के साथ जो उसने सम्बन्ध कायन किया, उसका जो नतीजा गाँव में होना था, उसे वह समझता था। उस नतीजे से बचने के लिए वह लखनऊ चला गया। गोबर का शहर जाना एक प्रकार का पलायन तो है, लेकिन उससे अधिक वह जीवन के नये रास्ते की तलाश का उपक्रम है। वह इस तलाश की आवश्यकता इसलिए महसूस करता है कि अपने बाप होरी की रूढ़िवादी सज्जनता से कतई सहमत नहीं। इसकी झलक प्रेमचन्द ने शुरू में ही दे दी है। उसके चेहरे पर प्रसन्नता की जगह असंतोष और विद्रोह दिखाई पड़ता था। जब होरी रायसाहब का जिक्र करते हुए कहता है–''हम लोग समझते हैं कि बड़े आदमी बहुत सुखी होंगे, लेकिन राच पूछो तो वह हगरो गी अधिक दुखी हैं। हगें अपने पेट की चिंता है, उन्हें हजारों चिंताएँ घेरे रहती हैं।'' तो इरा पर गोबर कहता है–''तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते! हम अपने खेत, बैल, हल, कुदाल सब उन्हें देने को तैयार हैं। करेंगे बदला?'' गोबर की यह चेतना उसके व्यक्तित्व को ऐसा रूप देती है, जिसका निबाह गाँव के समाज में सम्भव नहीं। आखिर उसी के प्रेम–सम्बन्ध और अन्तरजातीय विवाह के कारण होरी को बिरादरी के पिशाच का जान–मारू दण्ड भोगना पड़ा। होरी और गोबर का टकराव पिता–पुत्र का नहीं, पुरानी और नयी पीढ़ी का नहीं, बल्कि पुरानी व्यवस्था और नयी चेतना का टकराव है। शहर में गोबर चाय की दूकान करके गाँव की तुलना में अच्छी कमाई कर लेता है। यहाँ वह किसी का गुलाम नहीं है। वह साल भर के बाद गाँव लौटता है। वह झुनिया को शहर चलने के लिए कहता है। इस प्रसंग में उसका कथन ध्यान देने योग्य है– ''यहाँ बैठकर क्या करूँगा? कमाओ और मरो, इसके सिवा यहाँ और क्या रखा है? थोड़ी–सी अकल हो और आदमी काम करने से न डरे, तो वहाँ भूखों नहीं मर सकता। यहाँ तो अकल कुछ काम ही नहीं करती।'' यह कथन किसी समाज–वैज्ञानिक अध्ययन का निष्कर्ष नहीं, बल्कि होरी और गोबर के जीवन के अलग–अलग अनुभवों का निचोड़ है। दोनों के अनुभवों के पीछे दो प्रकार की व्यवस्थाएँ हैं। वास्तव में उन्हें ग्रामीण और शहरी व्यवस्था नहीं, बल्कि, सामन्ती और पूँजीवादी व्यवस्था कहना उचित होगा। गाँव में अक्ल काम नहीं करती; क्योंकि यहाँ लोग शोषक वर्ग की कर्मकाण्डी–पुरोहितवादी विचारधारा से सहमत होते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता होने से अक्ल का उपयोग करने की छूट रहती है, सुविधा रहे या न रहे।

गोबर ने गाँव भर में घूम कर अपने शहरी अनुभव में कुछ नमक–मिर्च मिलाकर लोगों को चकित कर दिया। गोबर स्वतन्त्र श्रमिक की चेतना से लैस है, इसीलिए दातादीन को फटकार देता है। होली में सामन्ती और महाजनी का मजाक उड़ाने वाला प्रहसन खेलता है, जिसके माध्यम से युवकों में नयी चेतना का प्रसार करता है। प्रेमचन्द का गाँव मैथिलीशरण गुप्त की कविता के गाँव से बहुत भिन्न है। यों शहर में सब कुछ ठीक–ठाक है, ऐसा नहीं। वहाँ व्यापार मुख्य है और ''व्यापार एक दूसरा क्षेत्र है। यहाँ कोई किसी का दोस्त नहीं, कोई किसी का भाई नहीं ।''

मेहता, मालती, शेख मिर्जा, गोविन्दी आदि की जिन्दगी शहर की व्यवस्था के ही उदाहरण हैं। ये उच्च मध्यवर्गीय चरित्र हैं और उदार विचारों के हैं, इसलिए उनके जीवन में जो संकट है, वह साधनों की कमी से उत्पन्न नहीं, बल्कि आदर्शवादी परिकल्पना से उत्पन्न है, जिसका यथार्थ से कम सम्बन्ध है। उच्च मध्य वर्ग के इन पात्रों का स्वाभाविक और वैचारिक आदर्श उन्होंने प्राप्त किया है, उनकी प्रेरणा से वे कभी–कभी मजदूरों और किसानों या अन्य निम्नवर्गीय चरित्रों से मिलते हैं, उनके प्रति सहानुभूति रखते हैं और उसी प्रेरणा से गाँव भी जाते हैं। वे देहात–सुधार संघ भी बनाते है। हालाँकि उसका कोई कार्यक्रम दिखायी नहीं पड़ता। ऐसा नहीं कि प्रेमचन्द ने अपने किसी आग्रह से उन्हें दबा दिया हो, बल्कि बौद्धिक सहानुभूति रखने वाले ऐसे पात्रों का व्यावहारिक कार्यक्रम बहस से आगे बढ़ता ही नहीं, यह भी एक यथार्थ है। हमारे देश के चौथे दशक में वामपंथी विचारों का जो प्रभाव विभिन्न आन्दोलनों पर था, उसी को ये पात्र प्रतिबिम्बित करते हैं। उनके विचार और आचार में जो अन्तर्विरोध है, उसका पर्दाफाश एक तो इस बात से होता है कि वे किसी आन्दोलन से जुड़े नहीं हैं, दूसरे आपस में एक–दूसरे की आलोचना के जरिये भी ऐसा करते हैं। एक मिर्जा साहब हैं, जो मजदूर–आन्दोलन से जुड़े हैं। प्रो. मेहता कहते हैं–''मुझे उन लोगों से जरा भी हमदर्दी नहीं है, जो बातें तो करते हैं कम्यूनिस्टों की–सी, मगर जीवन है रईसों का–सा, उतना ही विलासमय, उतना ही स्वार्थ से भरा हुआ।'' फिर वे कहते हैं– ''मैं तो केवल इतना जानता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हूँ, हम या तो साम्यवादी हैं, या नहीं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं तो बकना छोड़ दें।'' ऐसे कथन यह बताते हैं कि प्रेमचन्द अपने समय की बौद्धिक प्रवृत्तियों और सामाजिक जरूरतों से कितना गहरा लगाव रखते थे। प्रेमचन्द सम्पादक ओंकारनाथ के चरित्र के दुहरेपन को भी सामने लाते हैं।

इन अन्तर्विरोधों का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द बखूबी उन स्थितियों को सामने ला देते हैं, जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि गाँव और शहर के अन्तर्विरोध के बावजूद गाँव के धनी और शोषक राय साहब शहर के शोषक खन्ना आदि के साथ है। गाँव के शोषण से बचकर शहर आये गोबर जैसे पात्र शहर में भी शोषण के शिकार हैं। यह पूँजी के विकास का सामाजिक–आर्थिक प्रभाव है, नये वर्गों और नये अन्तर्विरोधों के उद्भव का प्रभाव है। यह सामाजिक–आर्थिक प्रक्रिया ध्यान देने योग्य है।

प्रश्न 6. 'गोदान' का परिप्रेक्ष्य स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : 'गोदान' का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व उसके परिप्रेक्ष्य के कारण है। लेकिन प्रेमचन्द अपनी ओर से कोई परिप्रेक्ष्य पेश नहीं करते। वह पात्रों के अनुभवों और सपनों में, उन्हीं के जरिये प्रकारान्तर से व्यंजित होता है। यह उपन्यास का कलात्मक सौन्दर्य है।

'गोदान' का परिप्रेक्ष्य जीवन के यथार्थ के प्रति रुख से बनता है। जीवन को यथास्थिति में तो कोई पात्र कबूल नहीं करता, होरी भी नहीं, गोविन्दी भी नहीं । पुरुषों में होरी और नारियों में खन्ना की पत्नी गोविन्दी ऐसे चरित्र हैं, जिनके चेहरे पर प्राय असंतोष दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन उनके अपने सपने तो हैं ही। होरी ऊख के खेतों के बीच से गुजरते हुए सोचता है–'' भगवान कहीं गौ से बरखा कर दे और डाँडी भी सुभीते से रहे तो एक गाय जरूर लेगा।.... गऊ से ही तो द्वार की शोभा है।'' पौष्टिक भोजन और सामाजिक प्रतिष्ठा दोनों का स्रोत्र है गाय। यह होरी के जीवन की 'साध' है। गोबर के मन में असन्तोष और विद्रोह उमड़ता रहता है। वह केवल सपना नहीं देखता, उसके लिए प्रयत्न और संघर्ष भी करता। रूढियों को तोड़ता है। होरी अपनी 'साध' की पूर्ति के लिए भगवत्– कृपा और समय की प्रतीक्षा करता है । गोबर प्रतिरोध करता है और सबसे पहले होरी की रूढिवादी सज्जनता का ही प्रतिरोध करता है। हीरा ने गाय को जहर खिला दिया। वह डर से गाँव छोड़कर भाग गया। पुलिस आ गयी। हीरा के घर की तलाशी रोकने के लिए होरी लोगों के कहने पर कर्ज लेकर घूस देने को तैयार हो जाता है। धनिया प्रबल प्रतिरोध करती है, होरी जैसा शान्त व्यक्ति उसे मारने को उतारू हो जाता है, तभी गोबर कहता है–''अच्छा दादा, अब बहुत हुआ। पीछे हट जाओ, नहीं तो कह देता हूँ मेरा मुँह न देखोगे। तुम्हारे ऊपर हाथ न उठाऊँगा। ऐसा कपूत नहीं हूँ। यहीं गले में फाँसी लगा लूँगा।'' इस पूरे कथन का निहितार्थ यह है कि गोबर इस जीवन को अब और बर्दाश्त नहीं कर सकता। धनिया, गोबर, झुनिया, गोविन्दी आदि का जीवन के प्रति असन्तोष, राय साहब जैसों के जीवन के भविष्य के धूमिल होने और मेहता, मालती, तंखा आदि के विचारों में निहित जीवन की परिकल्पना और स्वयं प्रेमचन्द के आदर्शों के समन्वय से 'गोदान' का परिप्रेक्ष्य निर्धारित होता है।

जीवन और समाज–व्यवस्था के अन्तर्विरोधों में फँसे पात्र कहीं–न–कहीं अपमानित होते हैं, संकट महसूस करते हैं। व्यक्ति की प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व के विकास के लिए व्यक्ति–स्वातंत्र्य का राग अलपाने वाले गौर करें–होरी अपमानित होता है, राय साहब, मातादीन, पटेश्वरी, नोखेलाल से, पूरी बिरादरी से। राय साहब अपमानित होते हैं बैंकर खन्ना और सम्पादक तंखा से। उन्हें खन्ना से मिलने के लिए एक घंटा और तंखा से मिलने के लिए आधा घंटा बैठना पड़ता है, उनके सामने गिड़गिड़ाना पड़ता है। खन्ना भी अपमानित महसूस करता है पूँजीवादी व्यवस्था के संकट में, या कभी गोविन्दी से, कभी मालती से, कभी मेहता से। दातादीन और मातादीन अपमानित होते हैं चमारटोली के सदस्यों की नयी संघ–चेतना से। उसी तरह धनिया, झुनिया आदि का अपमान होता रहता है। कहने का अर्थ यह कि व्यक्तिवादी व्यवस्था, धन पर आधारित व्यवस्था मनुष्य को मानवीय सम्मान दे नहीं सकती। ऐसे में 'गोदान' के बुद्धिजीवी पात्र आपस में बहस करते हैं, जिनसे उस परिप्रेक्ष्य का पता चलता है, जो 'गोदान' का कथ्य है। प्रेमचन्द अपनी रचना 'गोदान' में वैचारिक अन्तर्विरोधों से मुक्त हैं। वे पुरोहितवाद के खिलाफ हैं, सामन्तवाद के खिलाफ हैं, पूँजीवाद के खिलाफ हैं, साम्राज्यवाद के खिलाफ, कथनी–करनी में असंगति के खिलाफ हैं। वे 'गोदान' में प्रकारान्तर से ऐसे मनुष्य की, ऐसे पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्ध ा की कल्पना व्यंजित करते हैं, जिसमें शोषण न हो, पाखण्ड न हो, दुःख न हो, जीवन भौतिक और आत्मिक जरूरतों के अभाव से पीड़ित न हो। कोई आदर्श चरित्र उपन्यास में नहीं है, जिसे प्रेमचन्द की कल्पना का प्रतीक या प्रतिनिधि कहा जा सकता है। लेकिन उपर्युक्त पात्रों के जरिये जीवन के आदर्श और प्रेमचन्द की कल्पना की अभिव्यक्ति होती है। वे रूमानी ढंग से समाजवाद की वकालत नहीं करते, लेकिन सामंतवाद में मनुष्य की दुर्गति दिखा देते हैं, सामंतवाद के गर्भ से पनपते हुए प्रसंगों के माध्यम से शोषण और रूढ़ियों से युक्त समाज की, प्रेमपूर्ण स्त्री–पुरुष सम्बन्ध की, आत्मीयतापूर्ण भ्रातृत्व, पिता–पुत्र सम्बन्ध की जरूरत महसूस कराते हैं। जाहिर है कि सन् '36 में जब यह उपन्यास लिखा गया, तब भारत में समाजवाद का स्वर गूँज रहा था। प्रेमचन्द की चेतना में 'गोदान' का परिप्रेक्ष्य समझने के लिए 'महाजनी सभ्यता' को पढना समझना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'गोदान' के परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से देखने पर स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द का यथार्थवाद जीवन के गतिशील यथार्थ की अगली अवस्था की परिकल्पना करता है। अतः उनका यथार्थवाद मात्र आलोचनात्मक यथार्थवाद नहीं है। प्रेमचन्द के यथार्थवाद को 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कहने वाले यह नहीं समझ पाते कि यथार्थ की अगली अवस्था की परिकल्पना करना जीवन के आदर्शों के बिना सम्भव नहीं हो सकता। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में प्रत्येक अवसर पर धन की अमानवीय भूमिका का चित्रण किया है। यथार्थवादी लेखन में मनुष्य पर, क्षमता और पुरुषार्थ पर भरोसा होता है। ऐसे में धन पर भरोसा नहीं रहता। मिल में आग लगने के बाद अधीर खन्ना को गोविन्दी समझाती है–'' सत्पुरुष धन के आगे सिर नहीं झुकाते। वह देखते हैं, तुम क्या हो, अगर तुम में सच्चाई है, न्याय है, पुरुषार्थ है, तो वे तुम्हारी पूजा करेंगे,नहीं तो तुम्हें समाज का लुटेरा समझकर मुँह फेर लेंगे, बल्कि तुम्हारे दुश्मन हो जायेंगे।'' 'गोदान' की कथा में बखूबी दिखाया गया है कि धन के लिए लोग कैसे–कैसे पाप करते हैं, एक–दूसरे के प्रति कितने निर्मम हो जाते हैं। धन वाले बड़े लोग समझे जाते हैं और धनहीनों की दुर्दशा होती है। गोबर शहर से कमाकर लौटा है, तो गाँव के युवक उसे घेर रहते हैं। गाँव में होरी की भी इज्जत कुछ बढ़ गयी है। लेकिन धन का लोभ अमानुषिकता का स्रोत है। इसीलिए प्रेमचन्द के पात्र जो मानवीय मूल्यों के हिमायती हैं, वे धन की सत्ता को दुत्कारते हैं। प्रेमचन्द एक ऐसे मनुष्य का विकास करना चाहते हैं, जिसमें इंसानियत हो। जिसकी कथनी–करनी में एकता हो। गोविन्दी कहती है–''न्याय के सैनिक बनने का अर्थ है अपने आदर्शों को चरितार्थ करना। जीवन के परिप्रेक्ष्य तक पहुँचने के लिए यह आवश्यक है।''

प्रश्न 7: 'गोदान' में ग्रामीण तथा नगरीय जीवन का निरूपण दर्शाइए।

उत्तर : प्रेमचन्द सतर्क, व्यापक व सूक्ष्म दृष्टि वाले लेखक थे। उनकी दृष्टि समग्र वातावरण की पृष्ठभूमि में ही कथानक और विचारों का विकास करने वाली थी। 'गोदान' प्रेमचन्द का वह विशाल उपन्यास है, जिसमे उत्तर भारत के सम्पूर्ण सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। 'गोदान' में ग्रामीण और शहरी जीवन की ऐसी जीवन्त झाँकियाँ हैं, जो तात्कालिक परिवेश को साकार करती हैं। इसकी कथा गाँव तथा शहर, दोनों के जीवन से जुड़ी है। ग्रामीण समाज के जीवन और शहरी जीवन के परिवेश का विभिन्न पहलुओं के साथ प्रेमचन्द ने जीवन्त चित्रण किया है। 'गोदान' उपन्यास 1932–1946 के बीच लिखा गया है। इस कारण इसमें अंग्रेजकालीन भारत चित्रण है।

राजनीतिक पृष्ठभूमि

(1) शहर की– उस समय भारतीय स्वाधीनता संग्राम पूर्ण प्रकर्ष पर था। धारा–सभाओं का गठन कर राष्ट्रवासियों के लिए अधिकार माँगे जा रहे थे। एकमात्र सशक्त राजनीतिक पार्टी के रूप में कांग्रेस थी। इस दल पर धनपतियों ने अपना प्रभुत्व बना रखा था। रायसाहब अमरपाल सिंह जैसे कुटिल प्रवृत्ति के लोग किसानों का रक्त चूसने के साथ ही कांग्रेस के आन्दोलनों में भी भाग ले रहे थे। यह इनकी दुधारी चाल थी। ये लोग स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़कर राष्ट्रभक्ति भी साबित कर रहे थे। राजा सूर्यप्रताप सिंह व अमरपाल सिंह की राजनीतिक होड़ में चुनावी हथकंडे भी शामिल हैं। शहर में मालती, मेहता, खन्ना ,तंखा, मिर्जा ख़ुर्शीद आदि लोग भी हैं, जो देश की समसामयिक राजनीति और स्वाधीनता संग्राम से परिचित हैं।

(2) गाँव की – उस समय तक गाँवों में स्वाधीनता संग्राम का उतना जोर नहीं था। राजनीतिक चेतना के नाम पर इतना ही था कि कुछ जागरुक नवयुवक जमींदारों व महाजनों द्वारा किए जा रहे अत्याचारों व शोषण के विरुद्ध बोलने लगे थे। कुछ लोगों ने इनके अत्याचारों को शहर तक उजागर करने के लिए समाचार–पत्रों का सहारा लेने की सोची। नोखेराम व पटेश्वरी ने 'बिजली' अखबार के सम्पादक को रायसाहब के अत्याचार लिखे। इनके अतिरिक्त गाँव राजनीतिक चेतना से शून्य थे। धनिया एक बार अवश्य 'सुराज' की बात करती है, ''जेल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से'' उस समय धनिया रायबहादुर जैसे लोगों के गाँव के मुखिया होने को भी धिक्कारती है। वह इसे गाँव की विडम्बना बताती है।

सामाजिक पृष्ठभूमि

(1) शहर की – 'गोदान' का शहरी जीवन दो वर्गों में विभाजित है–1. उच्च वर्ग तथा 2. निम्न वर्ग। शहर में इन दोनों वर्गों के जीवन में खाई काफी चौड़ी है। एक वर्ग में मिल मालिक खन्ना साहब व रायसाहब हैं, तो दूसरे वर्ग में मिल–मजदूर या रायसाहब के यहाँ बेगार करने वाले। उच्च वर्ग में स्वार्थग्रस्त होकर ही आपस में मिलते हैं। ये लोग एक–दूसरे को गिराने में लगे हैं। जैसे–रायसाहब खन्ना की जी हुजूरी इसलिए करते हैं, क्योंकि उन्हें ऋण लेना है, तंखा परम स्वार्थी व बेईमान है। सम्पादक ओंकारनाथ 'पीत पत्रकारिता' करता है, जो रायसाहब को ब्लैकमेल करने के चक्कर में है। शहर में लोग एक–दूसरे के दुःख में दुःखी होने की अपेक्षा प्रसन्न होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्वार्थ, ईर्ष्या, कामुकता, विलासिता आदि नगरीय जीवन की रीति–नीति के हिस्से हैं। झुनिया दूध–दही बेचने जाती है, तो तिलकधारी पंडित उससे बलात्कार का प्रयास करता है। शहरी युवक–युवतियाँ मुक्तभोग के चाहक हैं। महिला–कल्याण के नाम पर राजनीति करने वाली स्त्रियाँ भी मुक्तभोग, गृहस्थ को जंजाल मानने वाली, स्वेच्छाचार की चाहक हैं।

(2) गाँव की – प्रेमचन्द ने 'गोदान' में ग्रामीण समाज में परिवारों की स्थिति, जातिगत बन्धन, विधवा–विवाह, बेमेल विवाह, वर्ण व्यवस्था, धार्मिक विकृतियाँ आदि का सूक्ष्म व सटीक चित्रण किया है। तात्कालीन भारतीय समाज अशिक्षित था। गोबर जैसे सामान्य वर्ग के युवकों को स्कूल जाने का सौभाग्य नहीं मिला। दूसरी ओर धनी वर्ग के पटेश्वरी जैसे शहर पढ़ने जाते हैं। उस समय के समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा थी। इसमें कुछ वर्षों बाद बँटवारा व जमीनों का झगड़ा शुरू हो जाता था। होरी का सगा भाई हीरा ईर्ष्यावश उसकी गाय को विष देकर मार देता है, फिर भी संकट पड़ने पर परिवार की मर्यादा की रक्षा के नाम पर उसकी सहायता की जाती है। हीरा के घर छोड़ जाने पर होरी उसके परिवार की बहुत सहायता करता है। इतना होने पर भी सामाजिक संघर्ष में होरी के परिवार का साथ उसके सम्बन्धी नहीं देते हैं। गोबर के झुनिया से विवाह प्रकरण में होरी के परिवार को दण्ड भुगतना पड़ता है। जाति व वर्ण के बन्धन बहुत दृढ़ थे। प्रेमचन्द ने मातादीन ब्राह्मण व सिलिया चमारिन के विवाह के माध्यम से प्रेम–विवाह को वर्ण व जाति से मुक्ति का मार्ग बतलाया है। उस समाज में दहेज की भारी माँग की जाती थी। सोना का विवाह धनिया बिना दहेज के नहीं करती है, जबकि उसके ससुराल वाले दहेज रहित विवाह के लिए तैयार थे। दहेज नहीं होने के कारण लड़कियाँ वृद्धों के गले मढ़ दी जाती थी; जैसे रूपा। स्त्रियाँ शुद्ध रूप से गृहिणियाँ ही थीं, पुरुष वर्ग उन पर अत्याचार भी करता था। गाँव का समाज दो भागों में बँटा हुआ था। एक वर्ग तो शोषकों का था, जिसमें मातादीन, झिंगुरीसिंह, पटेश्वरी, नोखेराम आदि थे, तो दूसरा वर्ग शोषितों का था, जिसमें होरी, हीरा, शोभा, गोबर, भोला आदि थे।

आर्थिक पृष्ठभूमि

(1) शहर की – आर्थिक दृष्टि से दो वर्ग थे – शोषक व शोषित। मजदूर व कामगार वर्ग शोषित वर्ग था। शोषक वर्ग शोषितों में फूट डालने का हर यत्न करता है। खन्ना की मिल के मजदूर एक होकर संगठन बनाते हैं, तो बेरोजगार युवक संगठित होकर उनसे संघर्ष करते हैं। रायसाहब के बेगार वालों द्वारा रोटी माँगे जाने पर उन्हें मार पड़ती है। भूख से शोषितों का जीवन दयनीय हो रहा है। गोबर के दूसरा बच्चा होने के अवसर पर घर में कुछ नहीं है, तब चुहिया किसी तरह खाने की व्यवस्था करती है। दूसरी ओर धनी वर्ग है, जो मिलो का मालिक है, वह वर्ग बड़ी–बड़ी कम्पनियों व ऊँचे सरकारी पदों पर काम करता है। इस वर्ग के लोग जमींदार हैं। चुनाव में ये लोग लाखों खर्च करते हैं। यह वर्ग शराब–पार्टियों, खेल–तमाशों व शिकार में उलझा रहता है। अपनी सन्तानों की शादियों में पैसा पानी की तरह बहाते हैं।

(2) गाँव की – परतन्त्र भारत का किसान जमींदार व महाजन के क्रूर पंजों में फँसा शोषण सहन करता था। 'गोदान' का प्रमुख पात्र होरी भारतीय किसान का प्रतिनिधि है। इसे सीधे तौर पर दातादीन, नोखेराम, पटेश्वरी, झिंगुरीसिंह लूटते हैं, तो रायसाहब भी लूटते हैं। अशिक्षा व असंगठित स्वरूप के कारण किसान ऋण से दबते जाते हैं। महाजन दीमक की भाँति ग्रामीण जीवन को खोखला कर रहे थे। दातादीन तीस रुपए को लेकर दो सौ रुपये वसूल कर लेता है। झिंगुरीसिंह होरी की गन्ने की कमाई से अपने रुपए काट लेता है और बाकी रुपए उसे देता है। इस पर होरी कुछ नहीं कर पाता है। इतने के बाद भी किसान भेंट, बेगार, नजराना, दण्ड–जुर्माना आदि भी देता है। होरी प्रबल इच्छा होने के बाद भी जीवन पर्यन्त एक गाय नहीं रख सका। भोला से ली गयी गाय का उधार न चुका पाने के कारण भोला होरी के बैल खोलकर ले गया। एक ऋण चुकाने के लिए दूसरा ऋण, दूसरा चुकाने के लिए तीसरा ऋण, इस प्रकार धीरे–धीरे प्रतिष्ठित किसान से मजदूर बन जाता है। होरी की गाय मरने पर थानेदार की रिश्वत व पंचों का भाग भी माँगा जाता है। धनिया की बहादुरी ने उसे थोड़ा तो बचा लिया। मगर पंच उस पर फिर भी सौ रुपए और तीस मन धान का दण्ड लगा देते हैं। प्रेमचन्द ने गाँवों की दशा का यथार्थ चित्रण किया है।

धार्मिक पृष्ठभूमि

(1) शहर की – 'गोदान' में शहर का धार्मिक वातावरण भी चित्रित है; किन्तु जितना व्यापक वर्णन गाँवों के धार्मिक परिवेश का है, उतना शहर का नहीं है। शहर में निम्नवर्ग ही धार्मिक जीवन जीता है। यह निम्न वर्ग धर्मभीरू है। उच्च वर्ग में यह धार्मिक जुड़ाव अधिक नहीं है। नगर के लोग दुराचारी एवं दुश्चरित्र हैं। ये धर्म से भयभीत नहीं होते हैं।

(2) गाँव की – प्रेमचन्द आँखों वाले धर्म में विश्वास करते थे। अंधे धर्म में उनका विश्वास नहीं था। पराधीन भारत के धार्मिक व कर्मकाण्डी जीवन का 'गोदान' में विशद चित्रण है। होरी आम किसान का प्रतिनिधि है। यह अत्यन्त धर्मभीरू प्रवृत्ति का है। वह ध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ार्म के नाम पर डरता था। जब गोबर दातादीन का हिसाब सत्तर रुपए में करना चाहता है, तो दातादीन अपने ब्राह्मण होने की बात करता है। उसके ब्राह्मण होने व धर्म की बात सुनकर होरी बेटे को डाँटता है तथा दातादीन की पाई–पाई चुकाने का वचन देता है। धर्म के नाम पर जात–पाँत, खानपान, पंचायत आदि का बोलबाला था। दातादीन के बेटे मातादीन के सिलिया चमारिन से अवैध सम्बन्ध के बारे में ये कहते हैं कि ब्राह्मण का धर्म उसके खानपान, रसोईचौका में है। जब तक ब्राह्मण शुद्ध है, तब तक उसका धर्म शुद्ध है। सिलिया के घरवालों द्वारा मातादीन के मुँह में हड्डी ठूँसे जाने पर दातादीन हवन–यज्ञ करवाकर उसे शुद्ध करवा लेते हैं, गोहत्या अधर्म है, किन्तु गोहत्या कर गंगा में डुबकी लगाने से प्रायश्चित हो जाने का विचार उस समाज में भी प्रचलित था। उसकी धर्मभीरुता के कारण होरी पंचों, थानेदार व अन्य के समक्ष विवश हो जाता है।

उस समाज में धार्मिक आडम्बर, पूजा, कर्मकाण्ड, भाग्यवाद, कर्मफल, परलोक, ब्राह्मण–पूजा आदि का बोलबाला था। जो समर्थ व बड़े थे, उनके लिए धर्म का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। वे जब चाहे धर्म का उल्लंघन कर सकते थे। एक ओर तो मातादीन सिलिया चमारिन को रखैल बनाए रहता है जो उचित है, किन्तु दूसरी ओर गोबर विधवा से विवाह कर सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है किन्तु उसे फिर भी दण्ड भुगतना पड़ता है। इस व्यवहार–विभेद का कारण यह है कि मातादीन ब्राह्मण है और गोबर निम्न वर्ग का है। किसान घर में गाय धार्मिक कारणों से रखता है। इसी कारण वह गोदान द्वारा ही परलोक सुधार की सोचता है। इस परिवेश में ध ानिया ऐसी महिला है, जो इस सारे पाखण्ड को समझती है।

'गोदान' में प्रेमचन्द ने शहर व गाँव के जीवन का तुलनात्मक चित्रण किया है। गाँवों की गरीबी, अशिक्षा, धार्मिक अंधविश्वास, जात–पाँत, धर्मभीरुता, रूढ़िग्रस्त जीवन के साथ–साथ शहर के भोग–विलास, मुक्त भोग, स्वेच्छाचारिता आदि का भी सटीक तथा सूक्ष्म चित्रण उपस्थित है। 'गोदान' में गाँव के जीवन का ठोस रूप है, तो शहर के जीवन का खोखलापन भी है। 'गोदान' का राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक इतिहास अत्यन्त यथार्थपरक है। ग्रामीण जीवन के विशद चित्रण के कारण इसे 'ग्रामीण जीवन का महाकाव्य' कहते हैं।

प्रश्न 8 'गोदान' के औपन्यासिक शिल्प की विवेचना कीजिए।

उत्तर : प्रेमचन्द ने उपन्यासों के कथानक को लेकर एक ऊर्ध्वगामी चेतना का परिचय दिया है। यही बात उनके उपन्यासों के शिल्प के बारे में कही जा सकती है। वे न तो संस्कृतमय क्लिष्ट हिन्दी के पक्षधर हैं और न ही अरबी–फारसी के मकडजाल में फँसी उर्दू के। प्रेमचन्द सीधे तौर पर आम आदमी से जुड़े हुए थे। इस कारण उनके उपन्यासों की भाषा जनभाषा है। यह भाषा प्रेमचन्द के विचारों का पूर्णतः प्रतिनिधित्व करती है। स्वयं प्रेमचन्द के शब्दों में, साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सचाई प्रकट की गयी हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो, जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो।''वे अत्यधिक परिष्कृत, मंजी हुई, सरल और जनप्रचलित स्वरूप वाली भाषा के पक्षधर थे। सम्प्रेषण में सक्षम भाषा ही उनकी दृष्टि में सशक्त व उपयुक्त भाषा थी। प्रेमचन्द भाषा में बोलचाल के शब्दों के समावेश के समर्थक थे।

शिल्पगत विशेषताएँ

वैसे तो प्रेमचन्द के सभी उपन्यास प्राञ्जल व प्रौढ़ भाषा वाले हैं, किन्तु 'गोदान' की भाषा तथा शिल्प का अनूठापन अपरिमेय है। इस दृष्टि से यह प्रेमचन्द का श्रेष्ठतम उपन्यास है। इसमें सहज मौलिकता का जीवन्त प्रवाह है। इसकी शिल्प विशेषताओं को निम्नानुसार समझा जा सकता है–

(1) शब्द प्रयोग– प्रेमचन्द का शब्दों के प्रयोग में भाषा सम्बन्धी किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं है। उनके यहाँ शब्द सहज प्रवाह के साथ आते हैं। ग्रामीण जीवन की सम्बद्धता के कारण 'गोदान' में ठेठ ग्रामीण शब्द भी पर्याप्त रूप में आए हैं। इसके साथ ही तत्सम, तद्भव व अर्द्ध तत्सम शब्द भी प्रचुरता से हैं। भाषा दृष्टि से 'गोदान' का विस्तार बहुत अधिक है। इसमें संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी के साथ –साथ अन्य देशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। इनके साथ अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जो कि तत्कालीन नगरीय पात्रों के चित्रण को सहज व स्वाभाविक बनाता है। अंग्रेजी के कौंसिल, वूमेन, ड्रामा, कॉलेज, ग्रेजुऐट, मेकअप, यूनिवर्सिटी , डॉक्टर, मिनिस्टर, केबिनेट, कोर्टफीस, होम मेम्बर, प्रेक्टिस, स्टेज, इलेक्शन, डायरेक्टर, मिल आदि शब्द प्रयुक्त हुए है। उर्दू–फारसी के शब्द–मयस्सर, साफगोई, हकीकत, असबाब, मुर्दादिल, अहमक, मुबारक, दखल, बेदर्द, नाजोअंदाज, हुस्न, जाहिल आदि प्रयुक्त हुए हैं। तत्सम शब्दों में– सर्वांश, रूपासक्त, उज्ज्वल ,सम्पन्न, सहिष्णु, आकर्षक, ईर्ष्या, विश्राम, पुरुषत्व, चिह्न, समर्पण, अशिष्टता, सहानुभूति, आक्षेप, अस्थिर, स्वर्गारोहण, प्राणान्त, तेजस्विता, अन्तस्तल, मनोराज्य, मनोवृत्ति आदि हैं, तो तद्भव शब्दों में–असनान, परसाद, परानी, गिरस्त, दरसन, तीरथ, बरत, लहास, सरबस, सराप, सासतर, उरिन, सरग आदि हैं। देशज व आंचलिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दों में –धामड़ ,महाबअ, अरबान, बौडा, चंगेरी, टिकौना, दौगड़ा, रूंखडा, डाडी, गड्ड्डड, पुच्छला, पलोथन आदि भी हैं। 'गोदान' में भाषागत प्रयोग की विविधता ही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। गाँव के पात्रों और नगरीय पात्रों द्वारा गाँव व नगर के परिवेश के अनुरूप सहयोगी शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे – डेढ़ी–सवाई, नजर –नजराना, घूस–घास , जमीन–जैजात, चना–चबेना (ग्रामीण पात्र) तथा घात–प्रतिघात, मान–मर्यादा , सेवा–सत्कार (नगरीय पात्र) आदि। इसी प्रकार आवृत्तिमूलक शब्द भी पर्याप्त रूप से उपस्थित हैं, यथा –दवा दारू, लू–लपट, ठीक–ठाक, डील–डौल, पत्ती–वत्ती, भाव–ताव, रस–वस आदि।

(2) कहावतें तथा मुहावरे– आम आदमी के साथ सीधे–सीधे जुड़ाव के कारण प्रेमचन्द की भाषा में जनजीवन के सटीक चित्रण को प्रस्तुत करने वाले मुहावरों व कहावतों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। यह प्रयोग ग्रामीण पात्रों के साथ अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होता है। जैसे–धनिया का यह कथन, ''वह भुग्गा, वह बहत्तर घाट का पानी पिए हुए है। इसे उंगलियों पर नचा रही है और यह समझा है कि उस पर जान दे रही है। तुम उसे समझा दो, नहीं कोई ऐसी–वैसी बात हो गयी, तो कहीं के न रहोगे।'' इसके अतिरिक्त निम्न द्रष्टव्य हैं–

(क) कितनी ही कतर–ब्योंत करो।
(ख) मर्द साठे पर पाठे होते हैं।
(ग) सोना के मुँह में दही जमा हुआ है।
(घ) भोला की लार टपक पड़ी।
(ड) क्या खिचड़ी पक रही है।

(3) शैली की जीवंतता– प्रेमचन्द की भाषा का आकर्षण उनकी शैली के अनूठेपन के कारण कई गुना हो जाता है। शैली की सजीवता के कारण प्रेमचन्द की भाषा सीधे–सीधे पाठक के हृदय में उतरती है। वे अपनी वैचारिक दृष्टि का पूर्ण प्रतिबिम्ब अपने पाठक के मानस पटल में उतारने में पूर्ण सक्षम हैं। भाषागत सहजता तथा स्वाभाविकता ने ही उसे सम्प्रेषण योग्य बना दिया है। प्रेमचन्द की शैली की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सहजता है। वह कही से भी थोपी हुई नहीं है। अवसर की आवश्यकता के अनुसार व्यंग्यात्मकता, क्षिप्रता, मन्दता, विचार प्रधानता, भावात्मकता आदि प्रेमचन्द की शैलीगत विशेषताएं हैं।

(4) सरलता–'गोदान' की भाषा में बनाव–सिंगार का बोझ नहीं है। जनसाधारण के उपन्यासकार ने अपनी भाषा को जनसाधारण के निकट रखा है। साधारण भाषा के प्रयोग की सादगी ने 'गोदान' को अनोखी सुन्दरता प्रदान की है। भाषा की गति सहज एवं प्रच्छन्न है। यह सीधे तौर पर अपना सादा रूप पाठकों के दिल में अंकित कर देती है। गाँव के निश्छल, सहज व सादे जीवन के अनुरूप ही इस उपन्यास की भाषा सुगम, सरल तथा सहज बोधगम्यता–सम्पन्न है। प्रेमचन्द इस भाषागत प्रयोग के कारण ही पाठकों के समक्ष अत्यन्त सशक्त व सक्षम उपन्यासकार के रूप में उभरकर आते हैं।

(5) पात्रानुरूपता –'गोदान' का भाषा –शिल्प इसलिए भी अनूठा है, क्योंकि यह पात्रानुरूप है। प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों की भाँति 'गोदान' में ग्रामीण व शहरी पात्रों के बीच अधिक अन्तर नहीं है इस उपन्यास के ग्रामीण पात्र ठेठ गँवई भाषा काम में नहीं लेते हैं, तो इसके शहरी पात्र भी कोई विशेष तत्सम शब्दावली भाषा प्रयुक्त नहीं करते हैं। इनके प्रयोग में देशज शब्द भी सहज प्रयोग के रूप में आये हैं, खींचकर नहीं लाये गये हैं। ग्रामीण शब्दों का प्रयोग होकर भी बहुलता नहीं है। इस उपन्यास में मुस्लिम पात्र भी हैं, किन्तु वे भी फारसी मिश्रित गरिष्ठ उर्दू नहीं बोलते हैं। यहाँ भाषागत स्वरूप यथार्थ के अधिक निकट है। पात्रानुरूप होने के साथ ही भाषा वातावरण व परिस्थितियों के भी अनुरूप है। पात्र हिन्दू हो या मुसलमान, सभी सामान्य धरातल पर आकर ही भाषा बरतते हैं। इसी भाँति ग्रामीण पात्र भी इस पूर्वाग्रह से मुक्त रखे गये हैं कि वे ठेठ गँवई भाषा प्रयुक्त करें। इन पात्रों पर जाति या धर्म का रंग नहीं चढाया गया है।

(6) जीवनानुभवरूपी सूक्तियों का प्रयोग– प्रेमचन्द ने जीवन के साक्षात अनुभवों को निचोड़कर सूक्तियों के रूप में प्रस्तुत किया है। लेखक के विचारों ने ही सूक्तियों का स्वरूप ग्रहण कर लिया है–

1. देवता बनकर तुम मनुष्य न रहोगे।
2. विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर पार कर रही थी।
3. हार की लज्जा तो पी जाने की वस्तु है।
4. ब्याह आन्नद का नाम नहीं, वह तो तपस्या है।
5. पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है, नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं, तो वह कुलटा हो जाती है।
6. स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान् है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7. वैवाहिक जीवन के प्रभाव में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है।

(7) अलंकारों का सौन्दर्य— 'गोदान' की भाषा में कहीं—कहीं अवसर के अनुकूल अलंकारों का प्रयोग भी मिलता है। इससे भाषा के आकर्षण में वृद्धि हुई है। अधिकतर उपमा, उत्प्रेक्षा व रूपक अलंकार प्रयुक्त हुए हैं, यथा—

1. सेवा ही वह सीमेण्ट है, जो दम्पत्ति को जीवनपर्यंत स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है।
2. गाय मन मारे उदास बैठी थी जैसे कोई वधू ससुराल आयी हो।
3. हरखू सूखी मिर्च की तरह चिपका हुआ था।
4. यह बात उसके पेट में इस तरह खलबली मचा रही थी, जैसे ताजा चूना पानी में पड़ गया हो।
5. तुम्हारा जीवन यज्ञ था, जिसमें स्वार्थ के लिए बहुत थोड़ा स्थान था।

(8) भाव—व्यंजना—'गोदान' की भाषा में भावों को सूक्ष्म और समर्थ बनाकर प्रस्तुत करने की शक्ति है। भाषा में कुछ ऐसे प्रयोग किये गये हैं कि उनमें भावों की सरस व स्पष्ट व्यंजना होती है,यथा—

1. उसे पाँच महीने का पेट है। 2. पाँव भारी हैं। 3. मातादीन ने चमारिन बैठा ली।
4.रात भीग गयी। 5. गाँव में काँव—काँव मच गयी। 6. छाती बिल्कुल सूख गयी थी।

इस प्रकार प्रेमचन्द ने भाषा को काव्यात्मक स्वरूप प्रदान कर भावों की सरस व्यंजना की है। कहीं—कहीं तो प्रेमचन्द ने इस भाषा में शिखर छू लिया है।

(9) चित्रात्मकता— अनेक स्थानों पर प्रेमचन्द द्वारा किया गया वर्णन इतना सटीक व जीवंत है कि दृश्य आँखों के सामने उभर जाता है तथा घटनाओं व पात्रों की विश्वसनीयता बढ़ती है। वर्षा के समय पर न आने का वर्णन देखिए—''मगर जब चौमासा आ गया और वर्षा न हुई तो समस्या अत्यन्त जटिल हो गयी। सावन का महीना आ गया था और बगूले उठ रहे थे। कुओं का पानी भी सूख गया था और ऊख ताप से जली जा रही थी। नदी से थोड़ा—थोड़ा पानी मिलता था, मगर उसके पीछे आए दिन लाठियाँ निकलती थीं, यहाँ तक कि नदी ने भी जवाब दे दिया।''

अस्तु 'गोदान' में भाव—परिवर्तन के साथ ही भाषा और शैली में परिवर्तन हो जाता है इस उपन्यास की भाषा और इसके शिल्प में न तो बाजारू सस्तापन है और न ही वर्णन—प्रधानता तथा क्लिष्टता। भाषा की सजीवता के कारण उपन्यास में गतिशीलता आई है। 'गोदान' में अवसरानुसार व्यंग्य—प्रधान, आलंकारिक , काव्यमय, हास्य—व्यंग्यपूर्ण शैलियों का निर्वाह पूर्ण कौशल के साथ हुआ है।

******

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–2 : नाटक : चन्द्रगुप्त (जयशंकर प्रसाद)

संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
(i) नाटक की शास्त्रीय विवेचना
(ii) नाटक के तत्त्वों पर प्रकाश
2.2 नाटक के प्रमुख अंश का वाचन
2.3 कथा का सारांश
2.4 नाटक की समीक्षा – नाटकीय तत्त्वों के आधार पर
2.5 कथावस्तु
2.6 चरित्र–चित्रण
2.7 संवाद
2.8 रचनात्मक शिल्प (भाषा, शैली व रंगमंच कौशल)
2.9 प्रतिपाद्य
2.10 सारांश
2.11 प्रमुख स्थलों की व्याख्या

2.0 प्रस्तावना

इस इकाई में आप नाटक विधा को समझ सकेंगें। संस्कृत काव्यशास्त्र में साहित्य को काव्य की संज्ञा दी गयी है और 'काव्येषु नाटकम् रम्यम्' कहकर काव्य में नाटक को सर्वाधिक रम्य माना गया है। काव्य के प्रमुख दो भेद माने गये हैः– श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। जिस साहित्य का सुनकर आनन्द लिया जाता है उसे श्रव्य काव्य कहते है और जिस साहित्य को देखकर आनन्द लिया जाता है उसे दृश्य काव्य कहते है। इस प्रकार उपन्यास, कहानी, कविता आदि श्रव्य काव्य के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि उनका आनन्द सुनकर या पढ़कर लिया जाता है और नाटक की गणना दृश्य काव्य के अन्तर्गत होती है क्योंकि उसका आनन्द देखकर लिया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि नाटक की रचना रंगमंच पर प्रस्तुति के लिए होती है जहाँ नाटक खेला जाता है। नाटक को अभिनेताओं द्वारा खेला जाता है। अभिनेता वे पात्र होते है जो नाटक की कथा को उसी के अनुरूप मंच पर प्रस्तुत कर देते है दर्शक इस प्रस्तुति को (थियेटर) रंगशाला में बैठकर देखते हैं। नाटक की यही रंगमंचीय प्रस्तुति दर्शक को आनंदित करती है।

नाटक व एकांकी में वही भेद होता है जो कहानी व उपन्यास में है। जिस नाटक में सिर्फ एक अंक होता है उसे एकांकी कहते है। कथा की दृष्टि से कहानी व उपन्यास की भांति एकांकी में एक कथा होती है और नाटक में एक प्रमुख कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाएँ होती है। नाटक के एक अंक में अनेक दृश्य हो सकते है। दृश्य परिवर्तन के साथ नाटक कथा में भी स्थान, समय व कार्य की दृष्टि से परिवर्तन होता है। नाटक में कुछ प्रमुख पात्र होते हैं तथा कुछ गौण पात्र होते हैं। उनके जीवन की घटनाएँ रंगमंच पर घटित होती हैं। उसे प्रस्तुत करते हुए पात्र परस्पर जो वार्तालाप करते हैं उन्हें संवाद कहते हैं। पात्रों के पारस्परिक संवाद में घटना का विस्तार होता है। ये घटनाएँ विशेष परिवेश में घटित होती हैं उसे देशकाल कहते हैं। इस प्रकार उपन्यास व कहानी की तरह कथावस्तु, चरित्र–चित्रण, संवाद योजना, देशकाल व वातावरण, भाषाशैली व प्रतिपाद्य नाटक के प्रमुख तत्त्व होते हैं। नाटक में एक तत्त्व रंगमंच विशेष रूप से जुड़ जाता है।

इस इकाई में आप सुप्रसिद्ध नाटककार जयशंकर प्रसाद के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगें तथा चन्द्रगुप्त नाटक के प्रमुख अंश का वाचन करेंगे जिसके आधार पर नाटक की विशेषताओं का विश्लेषण करेंगे।

जयशंकर प्रसाद (1889–1937) छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि, नाटककार, उपन्यासकार व कहानीकार के रूप में जाने जाते है। उनकी कालजयी रचना कामायनी विश्व विख्यात है और आधुनिक युग का श्रेष्ठ महाकाव्य है। प्रसाद जी ने अनेक ऐतिहासिक, पौराणिक और प्रतीकात्मक नाटकों की रचना की है। प्रसाद जी की नाट्य प्रतिभा को तीन चरणों में देखा जा सकता है। प्रारम्भिक रचनाओं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में सज्जन, करूणालय और प्रायश्चित है जो संक्षिप्त व एकांकी रूप में है। दूसरे चरण में 'राजश्री' और विशाखा नाटक को रखा जा सकता है जिसमें विषय व पात्र संख्या में विस्तार है। इसके पश्चात् प्रौढ़ नाट्य रचनाएं सामने आती है जिनमें अजातशत्रु, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, एक घूंट, चन्द्रगुप्त स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि। 'चन्द्रगुप्त' नाटक प्रसादजी की प्रौढ़ नाट्य रचना है जिसमें उन्होंने विषय का विस्तश्त फलक, पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व तथा नाट्य रचना शिल्प के नये प्रयोग किये हैं।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम प्रसादजी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' को नाटकीय तत्त्वों के आधार पर समझ सकेंगे। इस इकाई में हम नाटक का प्रमुख अंश भी वाचन के लिए दे रहे है। इस इकाई को पढ़ने व समझने के बाद आप :

- क्र नाटक विधा के तत्त्वों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- क्र नाटक की प्रमुख विशेषताओं का चित्रण कर सकेंगे।
- क्र प्रसादजी द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' की कथा का सारांश बता सकेंगे।
- क्र प्रमुख व गौण पात्रों के चरित्र का विश्लेषण कर सकेंगे।
- क्र 'चन्द्रगुप्त' नाटक के आधार पर उस युग की परिस्थितियों को समझ सकेंगें।
- क्र नाटक की भाषा, शैली और रंगमंच व अभिनेयता संबंधी विशेषताएँ बता सकेंगे।
- क्र नाटक के प्रमुख स्थलों की व्याख्या कर सकेंगे।

2.2 नाटक का वाचन

स्थान – तक्षशिला के गुरूकुल का मठ

(चाणक्य और सिंहरण)

तक्षशिला के विद्याकेन्द्र में कथा का प्रारम्भ

चाणक्य : सौम्य, कुलपति ने मुझे गृहस्थ–जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। केवल तुम्हीं लोगों को अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए ठहरा था, क्योंकि इस वर्ष भावी स्नातकों को अर्थशास्त्र का पाठ पढ़ाकर मुझ अकिंचन को गुरू दक्षिणा चुका देनी थी।

सिंहरण :– आर्य, मालवों को अर्थशास्त्र की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी अस्त्रशास्त्र की। इसीलिए मैं पाठ में पिछड़ा रहा, क्षमाप्रार्थी हूँ।

चाणक्य :– अच्छा, अब तुम मालव जाकर क्या करोगे?

सिंहरण :– अभी तो मैं मालव नहीं जाता। मुझे तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा मिली है।

चाणक्य :– मुझे प्रसन्नता होती कि तुम्हारा अर्थशास्त्र पढ़ना सफल होता। क्या तुम जानते हो कि यवनों के दूत यहाँ क्यों आये है? देश की अन्दरूनी अव्यवस्था और विदेशी हमले का खतरा

सिंहरण :– मैं उसे जानने की चेष्टा कर रहा हूँ। आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारण की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही हैं। उत्तरापथ के खण्ड राज–द्वेष से जर्जर हैं। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा।

(सहसा आम्भीक और अलका का प्रवेश)

आम्भीक :– कैसा विस्फोट? युवक, तुम कौन हो?

सिंहरण :– एक मालव।

आम्भीक :– नहीं, विशेष परिचय की आवश्यकता है।

सिंहरण :– तक्षशिला गुरूकुल का छात्र।

आम्भीक :– देखता हूँ कि तुम दुर्विनीत भी हो।

सिंहरण :– कदापि नहीं राजकुमार। विनम्रता के साथ निर्भीक होना मालवों का वंशानुगत चरित्र है और मुझे तो तक्षशिला की शिक्षा का भी गर्व है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आम्भीक :– परन्तु तुम किस विस्फोट की बातें अभी कर रहे थे और चाणक्य, क्या तुम्हारा भी इसमें कुछ हाथ है?

(चाणक्य चुप रहता है)

आम्भीक (क्रोध से)– बोलो ब्राह्मण, मेरे राज्य में रहकर, मेरे अन्न से पलकर, मेरे ही विरूद्ध कुचक्रों का सश्जन।

चाणक्य :– राजकुमार, ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत हो कर जीता है। यह तुम्हारा मिथ्या गर्व है। ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी, स्वेच्छा से इन माया–स्तूपों को ठुकरा देता है, प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है।

आम्भीक :– वह काल्पनिक महत्व मायाजाल है, तुम्हारे प्रत्यक्ष नीच कर्म उस पर पर्दा नहीं डाल सकते।

चाणक्य :– सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय। इसी से दस्यु और म्लेच्छ साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य जाति पतन के कगार पर खड़ी एक धक्के की राह देख रही है।

आम्भीक : और तुम धक्का देने का कुचक्र विद्यार्थियों को सिखा रहे हो।

सिंहरण : विद्यार्थी और कुचक्र ! असम्भव। यह तो वे ही कर सकते हैं, जिनके हाथ में अधिकार हो – जिनका स्वार्थ समुद्र से भी विशाल और सुमेरू से भी कठोर हो, जो यवनों की मित्रता के लिए स्वयं वाल्हीक तक ....

आम्भीक : बस–बस दुर्धर्ष युवक ! बता, तेरा अभिप्राय क्या है?

सिंहरण : कुछ नहीं।

आम्भीक : नहीं, बताना होगा। मेरी आज्ञा है।

सिंहरण : गुरूकुल में केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है, अन्य आज्ञाएँ अवज्ञा के कान से सुनी जाती है राजकुमार!

अलका : भाई! इस वन्य निर्झर के समान स्वच्छ और स्वच्छन्द हृदय में कितना बलवान वेग है! यह अवज्ञा भी स्पश्हणीय है । जाने दो।

आम्भीक : चुप रहो अलका, यह ऐसी बात नहीं हैं, जो यों ही उड़ा दी जाय। इसमें कुछ रहस्य है।

(चाणक्य चुपचाप मुस्कुराता है)

सिंहरण : हाँ–हाँ रहस्य है! यवन–आक्रमणकारियों के पुष्कल–स्वर्ण से पुलकित होकर, आर्यावर्त की सुख–रहनी की शान्त निद्रा में, उत्तरापथ की अर्गला धीरे से खोल देने का रहस्य है। क्यों राजकुमार! सम्भवतः तक्षशिलाधीश वाल्हीक तक इसी रहस्य का उद्‌घाटन करने गये थे?

आम्भीक : (पैर पटक कर)– ओह, असह्य! युवक, तुम बन्दी हो।

सिंहरण : कदापि नहीं, मालव कदापि बन्दी नहीं हो सकता।

(आम्भीक तलवार खींचता है)

चन्द्रगुप्त : (सहसा प्रवेश करके)– ठीक है, प्रत्येक निरपराध आर्य स्वतन्त्र है, उसे कोई बन्दी नहीं बना सकता है। यह क्या राजकुमार ! खड्‌ग को कोश में स्थान नहीं है क्या?

सिंहरण : (व्यंग्य से)– वह तो स्वर्ण से भर गया है।

आम्भीक : तो तुम सब कुचक्र में लिप्त हो। और इस मालव को तो मेरा अपमान करने का प्रतिफल – मृत्यु–दण्ड अवश्य भोगना पड़ेगा।

चन्द्रगुप्त : क्यों, यह क्या, एक निस्सहाय छात्र तुम्हारे राज्य में शिक्षा पाता है और तुम एक राजकुमार हो– बस इसलिए?

(आम्भीक तलवार चलाता है। चन्द्रगुप्त अपनी तलवार पर उसे रोकता है, आम्भीक की तलवार छुट जाती है। वह निस्सहाय होकर चन्द्रगुप्त के आक्रमण की प्रतीक्षा करता है। बीच में अलका आ जाती है)

सिंहरण : वीर चन्द्रगुप्त, बस! जाओं राजकुमार, यहाँ कोई कुचक्र नहीं है, अपने कुचक्रों से अपनी रक्षा स्वयं करो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चाणक्य : राजकुमारी, मैं गुरूकुल का अधिकारी हूँ। मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम क्रोधाभिभूत कुमार को लिवा जाओ। गुरूकुल में शस्त्रों का प्रयोग शिक्षा के लिए होता है, द्वंद्व–युद्ध के लिए नहीं। विश्वास रखना इस दुर्व्यवहार का समाचार महाराज के कानों तक न पहुँचेगा।

अलका : ऐसा ही हो। चलो भाई!

(क्षुब्ध आम्भीक उसके साथ जाता है।)

चाणक्य : (चन्द्रगुप्त से) –तुम्हारा पाठ समाप्त हो चुका है आर आज का यह काण्ड असाधारण है। मेरी सम्मति है कि तुम शीघ्र तक्षशिला का परित्याग कर दो और सिंहरण, तुम भी।

चन्द्रगुप्त : आर्य, हम मागध है और यह मालव। अच्छा होता कि यहीं गुरूकुल में हम लोग भास्त्र की परीक्षा भी देते।

चाणक्य : क्या यही मेरी शिक्षा है? बालकों की सी चपलता दिखलाने का यह स्थल नहीं। तुम लोगों को समय पर भास्त्र का प्रयोग करना पड़ेगा। परन्तु अकारण रक्तपात नीति–विरूद्ध है! भास्त्र

चन्द्रगुप्त : आर्य संसार भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यहो समझा है कि आत्म सम्मान के लिए मर–मिटना ही दिव्य जीवन है। सिंहरण मेरा आत्मीय है, मित्र है, उसका ही मान है।

चाणक्य : देखूँगा कि इस आत्म–सम्मान की भविष्य परीक्षा में तुम कहाँ तक उत्तीर्ण होते हो।

सिंहरण – आपके आशीर्वाद से हम लोग अवश्य सफल होंगे।

चाणक्य : तुम मालव हो और यह मागध, यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परन्तु आत्म–सम्मान इतने ही से सन्तुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा। क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्यावर्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनन्तर दूसरे विदेशी विजेता से पददलित होंगे? आज जिस व्यंग्य को लेकर इतनी घटना हो गयी है, वह बात भावी गांधार–नरेश आम्भीक के हृदय में, शल्य के समान चुभ गयी हैं। पंचनद–नरेश पर्वतेश्वर के विरोध के कारण यह क्षुद्र–हृदय आम्भीक यवनों का स्वागत करेगा और आर्यावर्त का सर्वनाश होगा।

चन्द्रगुप्त – गुरुदेव, विश्वास रखिए, यह सब कुछ नहीं होने पावेगा। यह चन्द्रगुप्त आपके चरणों की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता है कि यवन यहाँ कुछ न कर सकेंगे।

चाणक्य : तुम्हारी प्रतिज्ञा अचल हो। परन्तु इसके लिए पहले तुम मगध जाकर साधन–सम्पन्न बनो। यहाँ समय बिताने का प्रयोजन नहीं। मैं भी पंचनद नरेश से मिलता हुआ मगध आऊँगा और सिंहरण, तुम भी सावधाान।

सिंहरण आर्य, आपका आशीर्वाद ही मेरा रक्षक है।

(चन्द्रगुप्त और चाणक्य का प्रस्थान)

सिंहरण : एक अग्निमय गन्धक का स्रोत आर्यावर्त के लौह–अस्त्रागार में घुसकर विस्फोट करेगा। चंचला रण–लक्ष्मी इन्द्र–धनुष–सी विजयमाला हाथ में लिये उस सुन्दर नील–लोहित प्रलय–जलद में विचरण करेगी और वीर–हृदय मयूर–से नाचेंगे। तब आओ देवि! स्वागत!।

(अलका का प्रवेश)

अलका : मालव–वीर, अभी तुमने तक्षशीला का परित्याग नही किया?

सिंहरण : क्यों देवी? क्या मैं यहां रहने के उपयुक्त नहीं हूं?

अलका : नहीं, मैं तुम्हारी सुख शान्ति के लिए चिन्तित हूँ! भाई ने तुम्हारा अपमान किया है, पर वह अकारण न था, जिसका जो मार्ग है उस पर वह चलेगा। तुमने अनाधिकार चेष्टा की थी। देखतीं हूँ कि प्रायः मनुष्य, दूसरो को अपने मार्ग पर चलाने के लिए रूक जाता है, और अपना चलना बन्द कर देता है।

सिंहरण : परन्तु भद्रे, जीवन–काल में भिन्न–भिन्न मार्गो की परीक्षा करते हुए, जो ठहरता हुआ चलता है, वह दूसरों को लाभ ही पहुँचाता है। यह कष्टदायक तो है, परन्तु निष्फल नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अलका : किन्तु मनुष्य को अपने जीवन और सुख का भी ध्यान रखना चाहिए।

सिंहरण : मानव कब दानव से भी दुर्दान्त, पशु से भी बर्बर और पत्थर से भी कठोर, करूणा के लिए निरवकाश हृदयवाला हो जायेगा, नहीं जाना जा सकता। अतीत सुखों के लिए सोच क्यों, अनागत भविष्य के लिए भय क्यों और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूंगा, फिर चिन्ता किस बात की?

अलका : मालव, तुम्हारे देश के लिए तुम्हारा जीवन अमूल्य है, और वहीं यहॉ आपति में हैं।

सिंहरण : राजकुमारी, इस अनुकम्पा के लिए कृतज्ञ हुआ। परन्तु मेरा देश मालव ही नहीं, गांधार भी है। यहीं क्या, समग्र आर्यावर्त है, इसलिए मैं ....

अलका (आश्चर्य से) क्या कहते हो?

सिंहरण : गांधार आर्यावर्त से भिन्न नहीं है, इसीलिए उसके पतन को मैं अपना अपमान समझता हूँ।

अलका : (निःश्वास लेकर) इसका मैं अनुभव कर रही हूँ। परन्तु जिस देश में ऐसे युवक हो, उसका पतन असम्भव है। मालववीर, तुम्हारे मनोबल में स्वतंत्रता है और तुम्हारी दश्ढ़ भुजाओं में आर्यावर्त के रक्षण की शक्ति है, तुम्हें सुरक्षित रहना ही चाहिए। मैं भी आर्यावर्त की बालिका हूँ–तुमसे अनुरोध करती हूँ कि तुम शीघ्र गांधार छोड़ दो। मैं आम्भीक को शक्ति भर पतन से रोकूंगी, परन्तु उसके न मानने पर तुम्हारी आवश्यकता होगी। जाओ वीर!

सिंहरण : अच्छा राजकुमारी, तुम्हारे अनुरोध से मैं जाने के लिए बाध्य हो रहा हूँ। शीघ्र ही चला जाउँगा देवी! किन्तु यदि किसी प्रकार, सिन्धु की प्रखर धारा को यवन–सेना न पार कर सकी ....।

अलका : मैं चेष्टा करूँगी वीर, तुम्हारा नाम?

सिंहरण : मालवगण के राष्ट्रपति का पुत्र सिंहरण।

अलका : अच्छा, फिर कभी।

(दोनों एक–दूसरे को देखते हुए प्रस्थान करते है।)

नाटक के इस अंक को पढ़कर हमने जो समझा है उसे जांचने का प्रयास करेंगे –

1. चन्द्रगुप्त नाटक में जिस युग की कथा उठायी है, वह है –

(अ) पुराण काल (ब)वीरगाथा काल
(स) मौर्य काल (द)आधुनिक काल

2. चन्द्रगुप्त शासक था

(अ) मालव वंश का (ब)गांधार वंश का
(स) मौर्य वंश का (द)मगध वंश का

3. चाणक्य चन्द्रगुप्त के सहयोग से चाहते थे –

(अ) प्राचीन वैभव की रक्षा (ब) भारतीय संस्कृति की रक्षा
(स) राष्ट्र को एक सूत्र में बांधना (द) विदेशी आक्रमण से रक्षा

लघुत्तर प्रश्न

1. प्रथम अंक की कथा में किन प्रमुख प्रदेशों को समेटा है –

उत्तर – प्रथम अंक की कथा में मगध से लेकर मालव प्रदेश तक को समेटा है।

2. प्रथम अंक के प्रमुख पात्र कौन है ?

उत्तर – प्रथम अंक में चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिंहरण, अलका व आम्भीक प्रमुख पात्र हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.3 कथासार

चन्द्रगुप्त नाटक के प्रथम अंक का प्रथम दृश्य आपने पढ़ा है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में जिस युग की कथा उठाई गई है उस युग में ब्राह्मण और शुद्र जाति में परस्पर संघर्ष विद्यमान था जो लम्बे समय में चल रहा था। ऐसी स्थिति में चाणक्य ने विदेशी आक्रमण से रक्षा करने के लिए राष्ट्र को एक सूत्र में बांधा तथा भारत के प्राचीन वैभव और भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम पैदा किया।

जिस समय 'चन्द्रगुप्त' नाटक की रचना हुई तब भारत में हिन्दू–मुस्लिम सम्प्रदायों में कट्टरपंथियों के बीच धार्मिक–आंदोलन तेज हो गया था। उस समय विदेशी शासन से मुक्ति व स्वाधीनता की प्राप्ति हेतु असहयोग आंदोलन, सत्याग्रह और अन्य राष्ट्रीय आंदोलन चल रहे थे। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में इसका संकेत मिलता है।

चन्द्रगुप्त मौर्यवंश का पहला शासक था। ईसा से लगभग 300 वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य की स्थापना की थी। चन्द्रगुप्त के शासन से कुछ समय पहले ही भारत पर सिकन्दर का आक्रमण हुआ था और स्वयं चन्द्रगुप्त के काल में विदेशी आक्रमण का खतरा मिटा नहीं था। चन्द्रगुप्त ने तक्षशिला के स्नातक विष्णु गुप्त (जिसे चाणक्य और कौटिल्य के नाम से जाना जाता है) की सहायता से न केवल विदेशी अक्रमणों से देश की रक्षा की वरन् मगध के विलासी राजा नंद को हटा कर वहाँ का शासक भी बना। चाणक्य की दूरदर्शिता व सहयोग से चन्द्रगुप्त ने अपने राज्य का विस्तार दक्षिण में मैसूर राज्य से आगे और पश्चिम में गांधार तक कर लिया था। इसी इतिहास प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त और महान् कूटनीतिज्ञ चाणक्य को केन्द्र बनाकर इस नाटक की कथा का निर्माण किया गया है।

इस नाटक में मुख्य कथा के साथ–साथ अनेक प्रासंगिक घटनाऍं भी हैं लेकिन मुख्य घटनाऍं तीन ही है – अलक्षेंद्र (सिकन्दर) का आक्रमण, नंदवंश का नाश और सिल्यूकस की पराजय । ये तीनों घटनाऍं ऐतिहासिक है और प्रसाद जी ने इन्हीं को आधार बनाकर कथा का निर्माण किया है।

यह नाटक चार अंकों में विभाजित है। पहले अंक में कथा से संबंधित प्रमुख पात्रों का परिचय प्राप्त होता है। तक्षशिला के गुरूकुल में ही युवाओं का एक ऐसा समूह है जो बाहरी आक्रमणकारियों से देश की रक्षा करना चाहता है। इनमें चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिंहरण शामिल है इनके साथ गांधार की राजकुमारी अलका भी है। दूसरी ओर आम्भीक है जो क्षुद्र स्वार्थ के कारण यवनों की सहायता करता है। इस अंक में कथा मगध से लेकर गांधार तक फैली है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य मगध के शासक नंद के विरूद्ध विरोध को उकसाते हैं क्योंकि नंद अत्याचारी राजा है। दूसरी ओर सिंधु प्रदेश में संघर्ष की स्थितियाँ बनी हुई है। ऋषि दाण्डयायन के आश्रम में अलक्षेंद्र और चन्द्रगुप्त का आमना–सामना होता है वहीं दाण्ड्यायन अलक्षेंन्द्र को भारत से लौट जाने की सलाह देते हैं और चन्द्रगुप्त के भावी सम्राट होने की भविष्यवाणी करते हैं।

दूसरे अंक में मुख्य कथा पंचनंद के शासक पर्वतेश्वर और अलक्षेंद्र के बीच युद्ध की हैं। इस युद्ध में चाणक्य, चन्द्रगुप्त, अलका और सिंहरण पर्वतेश्वर का साथ देते हैं। युद्ध में यद्यपि पर्वतेश्वर हार जाते हैं, लेकिन पर्वतेश्वर और अलक्षेंद्र में संधि हो जाती है। अपने देश वापस लौटने से पहले अलक्षेंद्र क्षुद्रों एवं मालवों के राज्य पर आक्रमण करता है। मालव युद्ध में चन्द्रगुप्त और अलक्षेंद्र का परस्पर युद्ध होता है, अलक्षेंद्र, चन्द्र गुप्त के हाथों अचेत हो जाता है। चन्द्रगुप्त उदारतापूर्वक उसे यवन सेनापति को सौंप देता है।

चन्द्रगुप्त अपने आत्म–सम्मान व देशप्रेम के लिए प्रत्यक्ष संघर्ष करने के हेतु प्रस्तुत हो जाता है। चाणक्य कूटनीति का प्रयोग करना चाहता है। वह कहता है–''पौधे अंधकार में बढ़ते है और मेरी नीतिलता भी उसी भांति विपत्तितम में लहलहाती होगी, हाँ केवल शौर्य से काम नहीं चलेगा। एक बात समझ लो चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन नहीं।''

पर्वतेश्वर सिकन्दर से पूरी वीरता के साथ लड़ता है किन्तु युद्ध में पर्वतेश्वर घायल हो जाता है। इसका बदला आगे चलकर चन्द्रगुप्त लेता हैं इससे चन्द्रगुप्त और सिल्यूकस के बीच संघर्ष की स्थितियाँ बनने लगती है।

चाणक्य की कूटनीति से चन्द्रगुप्त ऐन्द्रजालिक के वेश में सिकन्दर की सेना में नंद की विशाल सेना होने के भय का प्रसारण करता है जिससे यवन सैनिकों में विद्रोह फैल जाता है और सिकन्दर जलमार्ग से देश लौटने का प्रयास करता है। ऐसे समय में चन्द्रगुप्त विद्रोह प्रकट करते हुए कहता है – ''मेरी इच्छा है कि इस जगत विजेता का ढोंग करने वाले को एक पाठ पराजय का पढ़ा दिया जाय।''

चन्द्रगुप्त इसके लिए छोटे–छोटे गणराज्यों तथा मगध–सेना की सहायता लेता है। कल्याणी चन्द्रगुप्त के प्रति अपने प्रेम के कारण उसकी सहायता करने को तैयार हो जाती है। इस बीच मालविका का चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेमभाव प्रकट होता है वह कहती है – ''स्नेह से हृदय चिकना हो जाता है परन्तु बिछुड़ने का भय भी होता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चन्द्रगुप्त, सिंहरण तथा चाणक्य के प्रयास से मालव–क्षुद्रक गणराज्य एकत्रित होकर सिकन्दर का प्रतिरोध करते है। सिकन्दर का मालव सेना से भीषण युद्ध होता है। चन्द्रगुप्त सिकन्दर की सेना को पराजित कर देता है। सिकन्दर का भारत अभियान समाप्त हो जाता है।

तीसरे अंक के आरम्भ में राक्षस का नंद के प्रति आन्तरिक द्वन्द्व प्रकट होता है–"नंद! क्रूरता और मूर्खता की प्रतिमूर्ति नंद। .. सुवासिनी ! मैं सुवासिनी के लिए मगध बचाना चाहता था। कुटिल विश्वासघातिनी राज–सेवा। तुझे धिक्कार है।"

अलका और सिंहरण का परस्पर विवाह हो जाने के कारण पर्वतेश्वर निराश हो जाता है तथा आत्महत्या करने को उद्धत होता है। चाणक्य उसे पुनः राज्य ग्रहण करने तथा चन्द्रगुप्त की सहायता करने हेतु तैयार कर लेता है। चन्द्रगुप्त का कार्नेलिया के प्रति आकर्षण प्रेमभाव में बदलने लगता है। फिलिप्स कार्नेलिया के प्रति प्रणय भाव रखने के कारण चन्द्रगुप्त का प्रतिद्वन्द्वी बन जाता है और उसे द्वन्द्व युद्ध के लिए आमंत्रित कर देता है। उधर मगध में नंद के प्रति विद्रोह का वातावरण बनने लगता है। उसका अन्याय चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाता है। वह मौर्य अमात्य वररूचि व सेनापति को अंधकूप में भिजवा देता है। राक्षस उसको सुवासिनी के साथ अभद्र व्यवहार करते देखकर धिक्कारता है। इधर नंद का विद्रोही शकटार भी प्रतिशोध की ज्वाला में जलता हुआ बदला लेने की प्रतीक्षा में है। नंद के चारों और विद्रोह की ज्वाला भड़कने लगती हैं।

चन्द्रगुप्त के नेतत्त्व में नंद के विरूद्ध खुला संघर्ष होता है। नंद शकटार के हाथों मारा जाता है और सभी एकमत से चन्द्रगुप्त को मगध का सम्राट घोषित करते हैं इस समय चाणक्य स्वेच्छाचारी राज्य के दुष्परिणाम की ओर संकेत करता है –"स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है, परन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता वहीं तक दी जा सकती है जहॉ दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा न पड़े। यही राष्ट्रीय नियमों का मूल है।"

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में कल्याणी व पर्वतेश्वर के अन्तर्द्वन्द्व की प्रतिक्रिया सामने आती है। दोनों ही अपने अन्तर्संघर्ष से उद्विग्न होकर परस्पर संघर्ष करने लगते है। कल्याणी पर्वतेश्वर की हत्या कर देती है तथा स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है।

दूसरे दभश्य की कथा में नवीन मोड़ उस समय आता है जब सुवासिनी राक्षस के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा देती है जिससे निराश होकर राक्षस प्रतिहिंसा के द्वन्द्व से घिर कर देशद्रोही बन जाता है। वह इसका कारण चाणक्य को मानता है क्योंकि सुवासिनी और चाणक्य में बाल्यावस्था से पहचान होती है। वह चाणक्य के विरूद्ध मगध में विद्रोह उत्पन्न करता है। इधर बाहरी शत्रु के आक्रमण की आशंका बढ़ जाती है। चाणक्य अपनी कूटनीति से नवीन चाल चलता है। उधर चन्द्रगुप्त के मन में अतिशय द्वन्द्व उत्पन्न होता है। चन्द्रगुप्त के मन मे एक ओर माता–पिता का प्रेम, दूसरी तरफ गुरू चाणक्य के प्रति कर्तव्य प्रेम और तीसरी ओर राष्ट्र के प्रति दायित्व भावों की टकराहट होने लगती है। उसकी विचलन बढ़ जाती है जिसे देखकर चाणक्य असन्तुष्ट होकर मगध से निकल जाता है। चन्द्रगुप्त और सिल्युकस में युद्ध होता है। सिल्यूकस की पराजय होती है। चन्द्रगुप्त उसे बंदी बना लेता है। कार्नेलिया अपने प्राण देने का यत्न करती है पर चन्द्रगुप्त उसकी रक्षा करता है। वह सिल्यूकस को भी स्वतंत्र कर देता है। कार्नेलिया सिल्यूकस के समक्ष चन्द्रगुप्त के प्रति प्रणय को स्वीकार करती है। चाणक्य के प्रयास से चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया विवाह सूत्र में बंध जाते है। ग्रीक व भारत के मध्य संधि हो जाती है। चन्द्रगुप्त को निष्कंटक राज्य प्राप्त होता है। सभी प्रतिद्वन्द्वी छुप जाते है। राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बना दिया जाता है। इस प्रकार चाणक्य चन्द्रगुप्त को निष्कंटक साम्राज्य दिलाकर स्वयं कर्त्तव्यमुक्त हो जाता है और राजनीति से अलग हो जाता है, इस प्रकार उद्देश्य की प्राप्ति होती है।

2.4 नाटक की समीक्षा

कथावस्तु, चारित्र चित्रण, परिवेश, भाषा शैली, उद्देश्य।

2.5 कथावस्तु

पहले अंक के अन्य दृश्यों में कई नये पात्रों से हमारा परिचय होता है। सिन्धु देश की राजकुमारी मालविका, शकटार की कन्या सुवासिनी, पंजाब का राजा पर्वतेश्वर, मगध का आमात्य राक्षस, तपस्वी दाण्डयायन, अलक्षेन्द्र का सेनापति सिल्यूकस आदि हमारे सामने आते हैं। प्रथम अंक में ब्राह्माणत्व पर गर्व करने वाले चाणक्य की राजनीतिक सूझ–बूझ, नंदवंश के नाश की प्रतिज्ञा, चन्द्रगुप्त की गुरूभक्ति, आत्मविश्वास, गौरव व साहस, सिंहरण का देशप्रेम व निर्भीकता तथा अलका की देशभक्ति का आभास मिलता है। घटना रूप में सिंहरण व आम्भीक की झड़प, चन्द्रगुप्त व आम्भीक का द्वन्द्व युद्ध, चन्द्रगुप्त की वीरोचित प्रतिज्ञा, सिंहरण व अलका के बीच प्रेम का आभास, गांधार नरेश का यवनों के समक्ष आत्मसमर्पण, अलका की देश भक्ति का आभास हमें इसी अंक में मिलता है।

दूसरे अंक में अलक्षेन्द्र के पर्वतेश्वर पर आक्रमण से कथा का विकास होता है। इस अंक में पंचम दृश्य में नंद के कठोर अपमान से पीड़ित होकर चाणक्य नंदवंश के समूल नाश की प्रतिज्ञा करता है। "सावधान नंद"। तुम्हारी धर्मान्धता से प्रेरित राजनीति आंधी की

तरह चलेगी, उसमें नंद वंश का समूल नाश होगा। ... समय आ गया है कि शूद्र राज–सिंहासन से हटाए जाए और सच्चे क्षत्रिय मूर्धाभिसिक्त हों।

छठे दृश्य में गांधार नरेश यवनों के समक्ष आत्मसमर्पण कर उनसे संधि कर लेता है। यद्यपि अपने कृत्य पर उनका मन आत्मग्लानि से पीड़ित रहता है अन्त में अपनी पुत्री अलका व आम्भीक के परस्पर द्वन्द्व से कुण्ठित राज्य के उत्तराधिकारत्व से पलायन कर जाते हैं। इसी दृश्य में अलका की देशभक्ति उजागर होती है। वह मानचित्र की रक्षा के लिए प्राणप्रण से प्रयत्न करती है।

सातवें दृश्य में मगध के बन्दीगृह में चाणक्य का बंदी रूप मे अन्तर्द्वन्द्व प्रदर्शित हुआ है वह कहता है कि "एक बार निकल जाता तो बताता कि इन दुर्बल हाथों में साम्राज्य उलटने की शक्ति है"। चन्द्र गुप्त आकर चाणक्य को बंधन मुक्त करता है।

प्रथम अंक के अन्तिम दृश्य में सिकन्दर, चाणक्य, चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया को दण्ड्यायन आश्रम में मिलाकर लेखक ने संकेत द्वारा चन्द्रगुप्त के प्रति कार्नेलिया के आकर्षण का आभास दिया है चन्द्रगुप्त के भावी सम्राट होने की घोषणा से सिकन्दर व चन्द्रगुप्त के बीच संघर्ष की संभावना का संकेत मिलता है।

कथा का विकास : दूसरे अंक में अलक्षेंद्र के पर्वतेश्वर पर आक्रमण से कथा प्राप्त्याशा की ओर बढ़ती है। चन्द्रगुप्त अपने आत्म–सम्मान व देशप्रेम के लिए प्रत्यक्ष संघर्ष करने के हेतु प्रस्तुत हो जाता है। चाणक्य कूटनीति का प्रयोग करना चाहता है। वह कहता है "पौधे अंधकार में बढ़ते है और मेरी नीतिलता भी उसी भांति विपत्ति में लहलहाती होगी, हॉ केवल शौर्य में काम नहीं चलेगा। एक बात समझ लो चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन नहीं"।

पर्वतेश्वर सिकन्दर से पूरी वीरता के साथ लड़ता है किन्तु युद्ध में पर्वतेश्वर घायल हो जाता है। दूसरा बदला आगे चलकर चन्द्रगुप्त लेता है। इसमें चन्द्रगुप्त और सिल्यूकस के बीच संघर्ष की स्थितियॉ बनने लगती है। चाणक्य की कूटनीति से चन्द्रगुप्त ऐन्द्रजालिक के वेश में सिकन्दर की सेना में नंद की विशाल सेना होने के भय का प्रसारण करता है। जिससे यवन सैनिकों में विद्रोह फैल जाता है और सिकन्दर जलमार्ग से देश लौटने का प्रयास करता है। ऐसे समय में चन्द्रगुप्त विद्रोह प्रकट करते हुए कहता है– "मेरी इच्छा है कि इस जगत विजेता का ढोंग करने वाले को एक पाठ पराजय का पढ़ा दिया जाय"।

तीसरे अंक में मुख्य घटनाचक्र मगध राज्य पर केन्द्रित होता है। चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में नंद के विरूद्ध खुला संघर्ष होता है। नंद शकटार के हाथों मारा जाता है और सभी एकमत से चन्द्रगुप्त को मगध का सम्राट घोषित करते है। इस समय चाणक्य स्वेच्छाचारी राज्य के दुष्परिणाम की ओर संकेत करता है– "स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है परन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता वहीं तक दी जाती है जहॉ दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा न पड़े।

चतुर्थ अंक में कथा उद्देश्य प्राप्ति की ओर बढ़ती है चन्द्रगुप्त और सिल्यूकस में युद्ध होता है। सिल्यूकस की पराजय होती है। चन्द्रगुप्त उसे बंदी बना लेता है। कार्नेलिया अपने प्राण देने का यत्न करती है पर चन्द्रगुप्त उसकी रक्षा करता है। वह सिल्यूकस को भी स्वतंत्र कर देता है। कार्नेलिया सिल्यूकस के समक्ष चन्द्रगुप्त के प्रति प्रणय को स्वीकार करती है। चाणक्य के प्रयास से चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया विवाह सूत्र में बंध जाते हैं। ग्रीक व भारत के मध्य संधि हो जाती है चन्द्रगुप्त को निष्कंटक राज्य प्राप्त होता है। इस प्रकार उद्देश्य की प्राप्ति होती है।

चन्द्रगुप्त नाटक काफी बड़ा नाटक है। इसमें चार अंक है और प्रत्येक अंक में अनेक दृश्य है जिनकी कुल संख्या 44 है। कथावस्तु में प्रमुख तीन घटनाएँ हैं– 1. सिकन्दर का आक्रमण 2. नंदवंश का नाश और 3. सिल्यूकस की हार। इन तीन घटनाओं के साथ लगभग 8 अन्य गौण या प्रासंगिक कथाएँ है। ये कथाएँ हैं –

1. चन्द्रगुप्त एवं कल्याणी का प्रणय
2. चन्द्रगुप्त एवं कर्नेलिया का प्रणय
3. चन्द्रगुप्त तथा मालविका का प्रणय
4. सिंहरण और अलका का प्रणय
5. राक्षस और सुवासिनी का प्रणय
6. पर्वतेश्वर का पतन

इस मुख्य कथा के साथ–साथ अन्य कई कथाएँ भी नाटक में चलती हैं जिनमें प्रणय कथाएँ बहुत हैं। मालविका – अलका – सुवासिनी द्वारा प्रसाद ने गीत भी बहुत गवाएँ हैं। इन प्रणय कथाओं से गीतों से तथा दृश्यों की अधिकता से नाटक का अनावश्यक विस्तार हो गया है तथा कथावस्तु में बिखराव आ गया है। नाटक का चौथा अंक भी अनावश्यक प्रतीत होता है क्योंकि नंदवंश के विनाश के बाद चंद्रगुप्त के मगध का राजा बनने के साथ ही नाटक का उद्देश्य पूरा हो जाता है।

यह नाटक ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है। इसलिए इस नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक यथार्थ पर निर्मित हुई है किन्तु प्रसाद जी के सामने मुख्य उद्देश्य यह था कि वे इस ऐतिहासिक विषय वस्तु के द्वारा राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रचारित करें। इसीलिए

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वे कथा को इस ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि ऐतिहासिक यथार्थ की भी रक्षा हो सके और लेखक के उद्देश्य की पूर्ति भी हो सके। प्रसादजी के इस नाटक को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे इस के द्वारा यह बताना चाहते थे कि बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा तभी की जा सकती है जब देश के सभी राज्य पारस्परिक द्वेष को भूलकर, एकता स्थापित करें। पूरे नाटक की कथावस्तु में आप पायेंगे कि चाणक्य इसी एकता को स्थापित करने की कोशिश करता है। दूसरी ओर प्रसाद ने यह भी बताया है कि अत्याचारी शासक कभी भी राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता, इसीलिए इस नाटक में नंदवंश के उन्मूलन को इतना महत्व दिया गया है।

चन्द्रगुप्त नाटक में ऐतिहासिक एवं काल्पिनिक दोनों प्रकार के पात्र हैं। नाटक के केन्द्र में अनेक ऐतिहासिक पात्र हैं जिनमें चाणक्य व चन्द्रगुप्त महत्वपूर्ण है। नाटक के समग्र कथासूत्र का संचालन चाणक्य करता है परन्तु अन्त में फलागम चन्द्रगुप्त के माध्यम से होता है। अतः नाटककार कथा नायक के रूप में चन्द्रगुप्त को सामने लाते है और नाटक का नाम भी चन्द्रगुप्त के नाम से ही जोड़ते है। चाणक्य भी चन्द्रगुप्त को ही केन्द्र में रखकर उद्देश्य प्राप्ति चाहता है। चाणक्य कथा का अन्य महत्वपूर्ण व प्रमुख पात्र है जो प्रारम्भ से अन्त तक नाटक में उपस्थित रहता है। इसके अतिरिक्त मगध सम्राट नंद, सिंहरण, पर्वतेश्वर, राजकुमार आम्भीक, राक्षस, मालविका, अलक्षेन्द्र, अलका, सुवासिनी आदि चरित्र महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय पद्धति के अनुसार एक नायक में जिन गुणों की अपेक्षा होती है वह सभी गुण चन्द्रगुप्त में हैं। उसमें स्वाभिमान, साहस, निष्ठा, वीरता, संकल्पशक्ति, दृढ़निश्चय, विनयशीलता के साथ निर्भीकता का भाव विद्यमान हैं। सिकन्दर के द्वारा यह कहे जाने पर कि ''हमारी सेना तुम्हारी सहायता करेगी'', यह सुनकर वह जिस निर्भीकता भरे आत्मविश्वास से उसे उत्तर देता है वह सर्वथा उसके अनुकूल है। वह कहता है ''मुझे आपकी सहायता नहीं चाहिए। मैं यहाँ यवनों को अपना शासक बनने को आमंत्रित करने नहीं आया हूँ..... मुझे लोभ में पराभूत गांधार राज आम्भीक समझने की भूल न होनी चाहिए। मैं मगध का उद्धार करना चाहता हूँ पर यवन लुटेरो की सहायता से नहीं''।

इस निर्भीकता के साथ चन्द्रगुप्त में दृढ़संकल्प और पूर्ण स्वावलम्बी प्रवृति विद्यमान है। युद्ध क्षेत्र के निकट सैनिकों के सम्मुख कहे गये उसके वीरोत्तेजक शब्द उसकी प्रवृति के अनुकूल ही है।'' मैं आज सम्राट नहीं सैनिक हूँ,चिन्ता क्या? सिंहरण और गुरूदेव साथ न दें। डर क्या? सैनिकों ! सुन लो, आज से मैं सेनापति हूँ कह देना सिंहरण से चन्द्रगुप्त कायर नहीं है।''

चन्द्रगुप्त में सम्राट होने के साथ न्यायप्रियता व मानवोचित गुण भी सराहनीय है। गुरूदेव चाणक्य के सम्मान के लिए न्याय की कसौटी पर वह अपने पिता को भी दण्ड देने की घोषणा कर देता है। चन्द्रगुप्त के चरित्र का दूसरा पक्ष देखने से सिद्ध होता है कि वह केवल वीर योद्धा ही नहीं वरन् भावुक सहृदय प्रेमी भी है। परन्तु उसकी कर्तव्यनिष्ठा व संयम प्रेम के भावुक क्षणों में उसे दुर्बल नहीं बनने देती। इस प्रकार नायक चन्द्रगुप्त के चरित्र में धैर्य, मित्रता, दृढ़ता, विनयशीलता, उपकार के प्रति कृतज्ञता, कर्तव्यपरायणता आदि गुण सम्राटोचित हैं।

2.6 चरित्र–चित्रण

- क्र चन्द्रगुप्त नाटक के सम्पूर्ण घटनाक्रम के केन्द्र में चाणक्य ही है। उसमें आत्मत्याग, कर्मनिष्ठा, निर्भीकता, साहस एवं विद्वता प्रखर रूप से विद्यमान है।
- क्र उसके दुर्बल हाथों में साम्राज्य उलट देने की शक्ति है और कोमल हृदय में प्रलय की आंधी चला देने की कठोरता है।
- क्र तक्षशिला विश्वविद्यालय का स्नातक चाणक्य स्वयं अर्थशास्त्र का प्रणेता और कुशल व्यवस्थापक, दूरदश्भटा व बुद्धिमान है।

ब्राह्मणत्व की नैतिक चेतना

चाणक्य के मन में ब्राह्मणत्व की नैतिक चेतना विद्यमान है। वह कहता है कि ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी स्वेच्छा से इन माया स्तूपों को ठुकरा देता है।

कर्त्तव्य के प्रति सजग

चाणक्य अपने कर्त्तव्य को भली–भांति जानता है। इसके लिए वह निज सुखों व स्वार्थो का परित्याग कर देता है। कठिन परिस्थितियों में भी उनका नैतिक अन्तर्द्वन्द्व उसे झुकने नहीं देता है –''समीर की गति अवरूद्ध है, शरीर का फिर क्या कहना? परन्तु मन में इतने संकल्प–विकल्प? एक बार निकलने पाता तो दिखा देता कि इन दुर्बल हाथों में साम्राज्य उलटने की शक्ति है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निर्भीक, साहसी एवं सिद्धान्तवादी

चाणक्य की राजनीतिक सफलता का कारण उसकी निर्भीकता, साहस एवं कठोर सिद्धान्तवादिता है। वह एकाकी होकर भी नंद, पर्वतेश्वर, राक्षस, सिकन्दर और सिल्यूकस आदि महान शक्तियों से टक्कर लेता है और अपने बुद्धि कौशल से उन्हें पराजित करता है। वह कहता है "जिस प्रकार पौधे अंधकार में बढ़ते है, उसी प्रकार मेरी नीतिलता विपति काल में भी लहलहाती है। वह घोर विपत्ति में भी न किसी के सामने झुकता है और न ही दया की भीख मांगता है बल्कि अधिकार मिलने पर सभी विरोधियों को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा पूरी करता है।

कूटनीतिज्ञ एवं कर्मयोगी

चाणक्य साम, दाम, दण्ड, भेद सभी नीतियां अपनाते हुए राजनीतिक सफलता प्राप्त करता है। वह केवल सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसा भी हो।

क्रूर एवं कठोर होने पर भी राष्ट्रचिंतक

यद्यपि चाणक्य की स्वार्थपरता व क्रूरता राज्य सुख भोगने में नहीं वरन् केवल राष्ट्र के हित में शासन का नियमन करने में है। वह सुवासिनी से कहता है –मैं क्रूर हूँ केवल वर्तमान के लिए, भविष्य के सुख और शान्ति के लिए, परिणाम के लिए नहीं।" यही कारण है कि वह निर्भय होकर सर्वत्र विचरता है।

संक्षेप में चाणक्य का चरित्र ब्राह्मण के गर्व से परिपूर्ण, कूटनीतिपूर्ण, निर्भीक, साहसी, दृढ़प्रतिज्ञ एवं कठोर सिद्धान्तवादी, कर्मयोगी व राष्ट्रहित चिंतक के रूप में अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। प्रेम व कर्त्तव्य के द्वन्द्व में उसकी नैतिक चेतना कर्त्तव्य का साथ देती है और उदार प्रवृत्तियां अन्ततः उसे सफलता दिलाती है।

सिंहरण

सिंहरण मालव गणपति का पुत्र व चन्द्रगुप्त का दूसरा प्रतिरूप है। वह परम वीर, निर्भीक व पराक्रमी है। उसके चरित्र में स्वदेशानुराग व आत्म सम्मान सबसे बड़ी विशेषता है।

प्रारम्भ में ही अपनी दूरदर्शिता से आर्यावर्त का भविष्य पढ़कर राष्ट्रीय भावना का परिचय देता है। वह अनुभव करता है कि उत्तरापथ के खण्डराज्य द्वेष से जर्जर हैं। उसके जीवन में छल व प्रपंच का कोई स्थान नहीं। उसका वीर हृदय राष्ट्ररक्षा के लिए न्यौछावर रहता है तभी तो सिकन्दर के दूत की सूचना सुनकर निर्भीकता से रहता है –"भेंट करने के लिए सदैव प्रस्तुत है, चाहे संधि परिषद में चाहे रणभूमि में।"

इस प्रकार सिल्यूकस के मानचित्र की चाह को वह तलवार की नोंक पर तोलता हुआ कहता है "मानचित्र के अधिकारी का निर्वाचन करेगा, सावधान।"

राक्षस

राक्षस विवेकशील व बुद्धिमान है परन्तु चाणक्य के वात्याचक्र में फंसकर स्वयं उसके हाथों की कठपुतली बनता हैं किन्तु अंत में चाणक्य द्वारा उसी को मैत्री के आसन में बिठा देने में उसकी दूरदर्शिता व सहजता का परिचय मिलता है।

पर्वतेश्वर

पर्वतेश्वर प्रारम्भ में साहसी स्वतंत्रताप्रिय तथा आत्माभिमानो क्षत्रीय के रूप में सामने आता है जो अपने बल पर दुर्दमनीय ग्रीक वाहनी से लोहा लेने को तत्पर है। उसका आत्माभिमान दंभ की कोटि तक पहुंचकर अंततः उसके नाश का कारण बनता है।

आम्भीक

आम्भीक प्रारम्भ में उद्त्त, उदण्ड व क्रोधी रूप में दिखाई देता है। बाद में महापुरूषों का सानिध्य, कृपादृष्टि व आत्ममंथन के पश्चात् उसमें विवेक जागृत होता है। यवनों के अत्याचार से देशवासियों को पीड़ित देखकर उनकी सहायता करना चाहता है –"मैं केवल एक बार यवनों के सम्मुख अपना कलंक धोने का अवसर चाहता हूँ।

नंद

चन्द्रगुप्त नाटक का सर्वाधिक कुटिल, क्रूर, विलासी, मद्यप, निरंकुश और क्रोधी पात्र नंद है। इतिहास प्रसिद्ध है कि वह शुद्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाति का राजा था व समाज में उसे प्रतिष्ठा व सम्मान प्राप्त नहीं हो सका। जिससे संभवतः उसके मन में हीन भावना का समावेश हुआ है और उपेक्षावश वह निरंकुश व विलासी शासक बन गया।

कार्नेलिया

इनके अतिरिक्त नारी पात्रों में यवन कुमारी कार्नेलिया, जो सिल्युकस की पुत्री है उसका विवाह चन्द्रगुप्त से होता है। कार्नेलिया के चरित्र में सह्रदयता, दृढ़ता, सहानुभूति, भावुकता, विद्वता, स्वाभिमान व आत्मगौरव का भाव विद्यमान है। उसमें छिपी हुई वीर भावना उस समय प्रकट होती है जब वह सिल्युकस को पराजित करने यवन सैनिक शिविर में प्रविष्ट होकर कहती है–''चिन्ता नहीं, ग्रीक बालिका भी प्राण देना जानती है।''

मालविका

मालविका प्रेम की कोमलता व सरलता से युक्त है वह भारतीय संस्कृति की परम् पुजारी है। उसके स्वगत कथन में जीवन की समस्याओं की कहीं कचोट नहीं वरन् स्वाभाविक सहजता एवं स्वीकारोक्ति दिखाई देती है। ''फूल हंसते हुए आते है, फिर मकरन्द गिराकर मुरझा जाते हैं, आंसू से धरती को भिगोकर चले जाते हैं एक स्निग्ध समीर का झोंका आता है, निःश्वास फेंककर चला जाता है। क्या पश्थ्वीतल रोने के लिए।'' निःसंदेह मालविका नाटककार की कल्पना की अत्यन्त भव्य और कोमल मूर्ति है।

पुरूष पात्रों के अतिरिक्त इस नाटक के नारी पात्रों – मालविका, अलका, कल्याणी, कार्नेलिया आदि में राजनीतिक चेतना, सक्रियता, कर्त्तव्यपरायणता, सच्चा प्रेम व देश के प्रति समर्पण का भाव विद्यमान है।

2.7 चन्द्रगुप्त नाटक की संवाद योजना

- क्र इस अध्याय में 'चन्द्रगुप्त' नाटक की संवाद योजना चित्रित हुई है।
- क्र संवाद ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके सहारे नाटककार अप्ने लक्ष्य की सिद्धि करता है। सफल संवाद वहीं कहे जाते हैं जो चरित्र–चित्रण व उद्देश्य प्राप्ति में पूर्ण सहयोग प्रदान करें। 'चन्द्रगुप्त' नाटक संवाद या कथोपकथन की दृष्टि से सार्थक हैं।
- क्र 'चन्द्रगुप्त' नाटक में पात्रों के मनोभाव व अन्तःसंघर्ष को व्यक्त करने के लिए कथोपकथन शैली के विविध रूपों का उपयोग किया गया है।
- क्र स्वगत कथन के माध्यम से :–'चन्द्रगुप्त' नाटक में स्वगतकथन परिस्थिति को स्पष्ट करने में तथा मनोभावों एवं अन्तःसंघर्ष को अभिव्यक्त करने में सक्षम है यथा अलका कहती है –'चली जा रही हूँ। अनन्त पथ है, कहीं पाथ्यशाला नहीं और न पहुंचने का निर्दिष्ट स्थान। शैल पर से गिरा दी गयी स्रोतवाहिनी के सदृश अविराम भ्रमण, ठोकरें और तिरस्कार। कानन में कहां चली जा रही हूँ? यहॉ अलका के भावुकतापूर्ण उद्‌गार उसके मानसिक संघर्ष को अभिव्यक्त करते हैं। मालविका का यह कथन कि ''स्नेह से ह्रदय चिकना हो जाता है परन्तु बिछड़ने का भी भय रहता है अन्तः बाह्म गरिस्थिति को उजागर करता है।

कथा के विकास के लिए कथोपकथन :

कथानक के विकास के लिए कथोपकथन एक दूसरे से गुम्फित श्रश्ंखला की तरह दिखाई पड़ते है इस प्रकार कथा का विकास होता है।

'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम दृश्य में ही चाणक्य व सिंहरण का वार्तालाप बड़े स्वाभाविक रूप से भारतवर्ष की तत्कालीन स्थिति तथा भविष्य में होने वाली भीषण घटना (सिकन्दर का आक्रमण) का संकेत देता है। नाटक का मूल बीज भी इसी कथोपकथन में निहित है।

चाणक्य के राजनीतिक जीवन का उद्देश्य उत्तरापथ के द्वेष से जर्जर खण्डराज्यों को मिटाकर एक साम्राज्य की स्थापना करना ही है। इसी अवसर पर सिंहरण की उपस्थिति घटनाचक्र में गति पैदा करती है – सिंहरण– ''आर्य, मालवों को अर्थशास्त्र की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी अस्त्रशास्त्र की।''

कथानक के विकास के साथ–साथ कथोपकथन भावी घटनाचक्र की सूचना देने में सहायक हैं। ''आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रताड़ना की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तराखण्ड के खण्डराज्य द्वेष से जर्जर हैं। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चरित्र–चित्रण में सहायक संवाद

ऐसे कथोपकथनों में पात्रों का आन्तरिक परिचय, अन्तर्द्वन्द्व और विशिष्ट कार्य–योजना का परिचय मिलता है।

दूसरे अंक में चन्द्रगुप्त व चाणक्य के संवाद में चन्द्रगुप्त की निर्भीकता, साहस तथा चाणक्य की दूरदर्शिता व देशभक्ति प्रकट होती है।

इसी प्रकार एक संवाद में चन्द्रगुप्त की वीरता, शौर्य, देशभक्ति, विवेकशीलता आदि एक साथ उजागर होती है। ''आर्य! संसार भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा है कि आत्म–सन्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है।''

संक्षिप्त एवं वाक्चातुर्यपूर्ण संवादों में स्निग्धता, कोमलता व भावप्रबलता के साथ नाटकीय कौशल भी विद्यमान है–

फिलिप्स – कुमारी प्रणय के सम्मुख क्या साम्राज्य तुच्छ है?

कार्नेलिया – यदि प्रणय हो

फिलिप्स – प्रणय को तो मेरा हृदय पहचानता है।

कार्नेलिया – ओ हो! यह विचित्र बात है

फिलिप्स – कुमारी, क्या तुम मेरे प्रेम की हंसी उड़ाती हो

कार्नेलिया – नहीं, सेनापति, तुम्हारा उत्कट प्रेम तो बड़ा भयानक होगा, उससे तो डरना चाहिए।

प्रतीकात्मक रूप में भी कुछ स्थलों पर अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति हुई है–''चतुर सेवक के समान संसार को जगाकर अंधकार हट गया'' इस दृष्टि से 'चन्द्रगुप्त' नाटक क संवाद–सफल संवाद हैं।

2.8 रंगमंच व भाषिक संरचना

प्रसाद हिन्दी के ऐसे नाटककार है जिनमें भारतीय शास्त्रीय व सांस्कृतिक पराम्पराएँ ही नहीं बल्कि समूचा राष्ट्रीय संघर्ष, चरित्र और आधुनिक भारतीय द्वन्द्व चेतना अन्तर्निहित है। परन्तु प्रसाद के नाटकों को रंगमंच के लिए अनुपयुक्त कहकर प्रारम्भ से ही नकार दिया गया।

डॉ. गिरिश रस्तोगी के अनुसार ''प्रसाद के नाटक सुसंस्कत, निपुण, नाट्य बल मांगते हैं जिनका वर्णन भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। इसलिए नहीं कि उनकी भाषा जटिल है, या काव्य बोझिल है, या उसमें दर्शन भरा है बल्कि इसलिए कि उनकें नाटकों की प्रस्तुति के लिए आन्तरिक प्रशिक्षण, भावात्मक संस्कार और व्यक्तित्व की अपेक्षा हैं। विदेशी प्रशिक्षण से हम प्रसाद के नाटकों के दृश्यों को तो पकड़ सकते है –आत्मा को नहीं।''

वस्तुतः प्रसाद के नाटकों में जो महाकाव्य हैं, जो संवेदनशीलता है उसे सहसा किसी उत्सुकतावश अभिनीत नहीं किया जा सकता। उसके लिए सुनिश्चित, सुनियोजित व्यवस्था, संवेदनपूर्ण वातावरण एवं व्यापक दृष्टि की मांग उपेक्षित है। स्वयं प्रसाद ने भी स्वीकारा है – 'रंगमंच के संबंध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जायें। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हो जो व्यावहारिक है।'' प्रसाद के उक्त कथन से असहमत हुए आलोचको ने कहा कि ''नाटकों के अनुरूप रंगमंच का निर्माण नितान्त अस्वाभाविक व अव्यवहारिक है।'' इसका प्रमुख कारण नाटक का बड़ा कलेवर और कुछ असंगतियों का होना भी है।

चन्द्रगुप्त में मुख्यतः तीन घटनाऍं है – सिकन्दर का अभियान, नंद का नाश और सिल्यूकस की पराजय। ये तीनों अलग–अलग अपने में पूर्ण तो है परन्तु उनका आन्तरिक संगठन न होने से रंगमंच पर उनका संयोजन प्रभावोत्पादक नहीं हो पाता है। रंगमंच पर पात्रों की बहुत बड़ी संख्या अभिनय में सबसे बड़ी बाधा है।

दूसरा कारण केन्द्रीय पात्र की अनिर्णीत स्थिति का बने रहना। 'चन्द्रगुप्त का मुख्य पात्र कौन है? चन्द्रगुप्त या चाणक्य? कहने को तो चन्द्रगुप्त है परन्तु जब नाटक की सारी नीतियां, विकास, संघर्ष, निर्णय चाणक्य के द्वारा संभव होते हैं, नाटक के अन्य पात्र, यहां तक कि स्वयं चन्द्रगुप्त भी चाणक्य के इशारे पर कार्य करते हैं।

रंगमंच पात्रों के कार्य व्यापार का क्षेत्र हैं। पात्रों का आकस्मिक प्रवेश व प्रस्थान अस्वाभाविक लगता है। 'चन्द्रगुप्त' के संवादों में ऐसे शब्द उच्चरित होते हैं जिसे सुनते ही पात्र मंच पर आकस्मिक प्रवेश कर चमत्कृत कर देते हैं। प्रथम दृश्य में सिंहरण कहता है –'शीघ्र ही विस्फोट होगा, तभी आम्भीक यह कहते हुए प्रविष्ट होता है ''कैसा विस्फोट?''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आत्महत्या के प्रसंग पूर्व निश्चित लगते है। कल्याणी व मालविका की आत्महत्या फिल्मी अंदाज में पूर्व निर्धारित सी लगती है मानो कार्नेलिया के मार्ग से हट गई हों। जहां लम्बे संवाद, अलंकृत भाषा व समास बहुल शब्दावली का प्रयोग हुआ है वहाँ अभिनेता व श्रोता दोनों को कठिनाई होती है। दृश्य विधान में एक साथ अत्यधिक दृश्यों का होना तथा युद्ध, प्रकृति, जलाशय आदि के दृश्यों का होना रंगमंच पर कष्टसाध्य हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक को लेकर अनेक रंगकर्मी प्रयोग हुए उनमें नाटक के कलेवर में व्यापकता, भाषा की क्लिष्टता स्वगत कथनों की अधिकता, दृश्यों व पात्रों की बहुलता आदि कारणों से रंगमंच व अभिनेयता की दृष्टि से बाधक है।

संवादों में तुकान्त गद्य और पद्य तथा स्वगत कथनों को भी अनभिनेय कहा गया।

2.9 'चन्द्रगुप्त' नाटक की विशेषताएँ

इस इकाई में हम 'चन्द्रगुप्त नाटक की विशेषताएँ समझेंगे।

'चन्द्रगुप्त' नाटक आकार–प्रकार में महाकाव्यात्मक रूप लिए हुए हैं। यह प्रसाद जी की प्रौढ़ रचनाकाल की कृति होने के कारण अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ रचना हैं। 'चन्द्रगुप्त' का कथानक इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं के आधार पर विकसित हुआ है।

प्रसाद ने तत्कालीन भारतीय जनता में देशाभिमान और देश–प्रेम का उदात्तभाव भरने की कोशिश की है। इस हेतु उन्होंने इतिहास में कल्पना का रंगभर कर कथा को रोचक, जीवन्त व काव्यमय बना दिया है।

'चन्द्रगुप्त' के कथानक का शिल्प गरिमापूर्ण व उत्कृष्ट हैं। इसमें बड़ी सफलता के साथ व्यापक फलक पर जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन हुआ है अतः अनेक स्थलों पर पात्रों का आन्तरिक बहिर्द्वन्द्व प्रकट हुआ है।

यथा – सिंहरण का आन्तरिक संघर्ष उसे आम्भीक के साथ बाह्य द्वन्द्व में उलझा देता है– "आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रताड़ना की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खण्ड राज्य द्वेष से जर्जर हैं शीघ्र ही भयानक विस्फोट होगा।"

मानव मन के सरल व जटिल दोनों प्रकार के मनोभावों से प्रेरित अन्तर्द्वन्द्व के दर्शन इस नाटक में हो जाते हैं। नाटक की शिल्प योजना अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यंजना में सहायक है।

प्रसाद की भाषा संवेदना का बोध एकदम आधुनिक है। यही कारण है कि कथ्य पुराना होते हुए भी नवीन लगता है। भाषा की प्रतीक योजना, बिम्ब ग्राह्यता, अर्थ, गर्भ सम्पन्ना इतनी विलक्षण है कि अन्तर बाह्य स्थितियों को साकार कर देती है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने के लिए शैली के विविध रूपों का प्रयोग किया गया है। जहां अन्तर्द्वन्द्व का उद्घाटन स्वगत कथनों के माध्यम से किया है वहां भावात्मक शैली प्रस्तुत हुई है। एक संवाद में अलका कहती हैः–

"मैं चली जा रही हूँ। अनन्त पथ है, कहीं पाथ्यशाला नहीं और न पहुंचने का निर्दिष्ट स्थान है। शैल पर से गिरा दी गयी स्रोतस्विनी के सदृश अविराम भ्रमण, ठोकरे और तिरस्कार।"कृ कई स्थलों पर भाषा आलंकारिक व संवाद दीर्घ बन गए हैं। परन्तु वहां भी भाषा भावों की वेगपूर्ण अभिव्यंजना में बाधक नहीं बनी है।

'चन्द्रगुप्त' नाटक में एक साथ श्रृंगार व वीर रस का अद्भुत समन्वय मिलता है। इसके साथ गीत संयोजन व संगीत तत्व की प्रधानता से सरसता का संचार हुआ है।

इसमें अभिनेयता व रंगमंच की दृष्टि से सुरूचिपूर्ण वातावरण, सहृदय दर्शक और कुशल अभिनेता की मांग है। इस संबंध में प्रसाद का कथन व्यावहारिक व स्पष्ट है कि 'नाटक रंगमंच के लिए नहीं वरन् नाटक के लिए रंगमंच हो।'

2.10 सारांश

'चन्द्रगुप्त' नाटक में भावों का उफान, अन्तर्द्वन्द्व व सांस्कृतिक चेतना आद्यन्त व्याप्त है। भाषा शास्त्रीय की अपेक्षा रोमान्टिक तत्त्वों से आपूरित है। समग्रतः अन्तर्द्वन्द्व का विधान, घटना और पात्र के अनुरूप चरित्र का विकास तथा व्यापक उद्देश्य की पूर्ति आदि के सम्मिश्रण से यह नाटक महत्वपूर्ण व श्रेष्ठ हैं।

2.11 प्रमुख स्थलों की व्याख्या

इस इकाई में हम अधोलिखित गद्यांशों की ससंदर्भ व्याख्या करेंगे।

1. ब्राह्मण ने किसी के .... ज्ञान का दान देता है।

उपर्युक्त अवतरण 'चन्द्रगुप्त मौर्य' नाटक के प्रथम दृश्य से लिया गया है। चाणक्य, सिंहरण और चन्द्रगुप्त के वार्तालाप के बीच सहसा आम्भीक आ जाता है और अपने प्रति किसी भाडयंत्र की आशंका से चाणक्य से अपमानपूर्वक पूछता है –बोलो ब्राह्मण !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मेरे राज्य में रहकर, मेरे अन्न से पलकर, मेरे ही विरूद्ध कुचक्रों का सृजन !" वह इस प्रश्न का उत्तर देता है। चाणक्य का उत्तर वस्तुतः ब्राह्मण की दार्शनिक व्याख्या करता है।

संसार के माया–मोह से मुक्त पुरूष को गीता में कर्मयोगी कहा गया है। कर्मयोगी मनुष्य न कुछ इच्छा करता है और न आकांक्षा। उसका न कोई स्वार्थ होता है, न कमाना। अतः उसका प्रत्येक कर्म व्यक्तिगत हित के हेतु न होकर विश्वकल्याण के हेतु होता हैं। कर्मयोगी निःशक्त नहीं होता। वह अपने कर्मयोग द्वारा संसार का सबसे बड़ा ऐश्वर्य उपलब्ध कर सकता है किन्तु वह उस भौतिक जगत से इतना उँचा उठ जाता है कि भौतिक ऐश्वर्य उसके लिए कोई आकर्षण नहीं रखते। चाणक्य ब्राह्मण का यही आदर्श मानता है और इसी आदर्श का उल्लेख वह आम्भीक के सम्मुख करता है। ब्राह्मण ब्रह्मवेता होने के कारण अपना संबंध इस शरीर से नहीं मानता। अतः अन्न–वस्त्र से रक्षित शरीर की सीमाएँ उसकी अत्मा को नहीं बाँध पातीं। चाणक्य इसीलिए कहता है कि –"ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है।" वह ब्रह्मानन्द में विचरण करता है जिसे चाणक्य स्वराज्य में विचरण करना, कहता है। सब कुछ सामर्थ्य रखते हुए भी वह अपने लिए कुछ भी नहीं चाहता। संसार के वैभव को मायाजाल समझकर ठुकरा देता है। उसका दिव्य जीवन विश्व कल्याणार्थ होता है। वह जो कुछ सोचता अथवा करता है वह जगत के कल्याण के लिए ही। ऐसे ही ब्रह्मज्ञानी (चाणक्य के शब्दों में ब्राह्मण) संसार को सच्चा ज्ञान दान देकर उसे सुमार्ग पर चलाते हैं।

2. प्रसाद ने ब्राह्मण के लोकातीत गौरव की स्थापना की है।

हाँ, हाँ रहस्य है .... उद्‌घाटन करने गए थे?

उक्त अवतरण 'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दश्श्य से लिया गया है। आम्भीक जिस समय क्रुद्ध होकर अपनी बहन अलका से कहता है कि चाणक्य तथा सिंहरण की बातों में कुछ रहस्य है तो सिंहरण व्यंग्यपूर्ण उत्तर देता है कि रहस्य अवश्य है। किन्तु वह अपनी बातचीत के रहस्य के स्थान पर उलटा आम्भीक के भाड्‌यंत्र के रहस्य का उद्‌घाटन करने लगता हैं आम्भीक ने राज पुरू से अपने व्यक्तिगत अपमान का बदला लेने के लिए सिकन्दर को पुरू के ऊपर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया था। सिकन्दर से मिलने के लिए वह वाल्हीक देश तक गया था। सिकन्दर ने आम्भीक को अपनी ओर मिलाने के लिए बहुत–सी स्वर्ण मुद्राएँ भी भेंट के रूप में दी थीं। सिंहरण को, जिसे मालव गणतंत्र की ओर से तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने का आदेश मिला था, इस भाड्‌यंत्र का किसी प्रकार पता लग गया अतः वह आम्भीक को मुहँतोड़ उत्तर देता हुआ कहता है कि –

विदेशी आक्रमण से निर्भय होकर इस समय सम्पूर्ण उत्तरी भारतवर्ष सुख की नींद सो रहा है। तक्षशिला का राज्य अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण उत्तरी भारत रूपी दुर्ग की अर्गला है – फाटक की सांकल है। आम्भीक का आक्रमणकारी से मिलकर तक्षशिला का मार्ग खोल देना, भारत के लिए उतना ही खतरनाक है जितना दुर्ग के फाटक की साँकल खोलकर आक्रमणकारी को उसमें प्रवेश की सुविधा दे देना।

सुख–शान्ति की आनन्द–निद्रा में मग्न भारतवर्ष पर अचानक विदेशी आक्रमण उतना ही भयावह होगा जितना किसी दुर्ग के ऊपर असावधानी में उस समय आक्रमण करना, जब दुर्गरक्षक शान्ति के साथ निर्भय हो सो रहे हों। अतः आम्भीक का वल्हीक जाकर सिकन्दर से मिलना, उससे प्रचुर स्वर्ण पाकर आक्रमणकरियों को तक्षशिला होकर आक्रमण करने देनादेश के साथ वैसा ही विश्वासघात है जैसे एक द्वाररक्षक द्वारा फाटक की साँकल खोलकर लुटेरों को दुर्गप्रवेश की सुविधा देना और आम्भीक ने वही किया है।

3. मानव कब दानव से भी दुर्दान्त .... चिन्ता किस बात की।

उक्त गद्यांश नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दश्श्य से अवतरित है। अलका सिंहरण को देखते ही उसके निर्भीक व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाती है। वह आम्भीक के चले जाने पर उसे प्रेमपूर्वक समझाती है कि सिंहरण को अपनी सुरक्षा तथा अपनी व्यक्तिगत शांति का भी ध्यान रखना चाहिए। उसने तक्षशिला के कुमार आम्भीक को जितना अपमानपूर्वक उत्तर दिया, उतना नहीं देना चाहिए था क्योंकि सिंहरण उसी के राज्य में निवास कर रहा है। सिंहरण अलका को उत्तर देते हुए पहले आम्भीक के पतन की ओर संकेत करता है फिर उसकी बात का उत्तर देता है।

वस्तुतः सिंहरण के शब्दों में प्रसादजी मानव–जीवन के अधःपतन और मानवस्वभाव की अस्थिरता की ओर संकेत करते हैं। मनुष्य साधारणतः एक शांतिप्रिय प्राणी है। वह अकारण किसी को न कष्ट पहुँचाता है और न क्रूर बनना चाहता है। किन्तु मनुष्य का स्वभाव इतना दुर्बल है कि थोड़े से प्रलोभन में पड़कर वह नीच कर्म कर सकता है। अतः मानव के विषय में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि किस परिस्थिति में यह राक्षस से भी अधिक क्रूर और जंगली जानवर से भी अधिक भयानक बन जाएगा। उसका ह्रदय कब पत्थर से अधिक कठोर हो जायेगा कि करूणा, दया, प्रेम आदि मानवीय भावनाओं को कोई स्थान ही नहीं रह जायेगा। सिंहरण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उक्त बातों द्वारा स्पष्ट ही अलका के भाई आम्भीक की नीचता की ओर संकेत करता है। सिकन्दर जिस समय भारत पर आक्रमण करेगा उस समय न मालूम कितना रक्तपात होगा, कितनी मांगों का सिन्दूर धुलेगा, कितनी गोदियाँ खाली होंगी और कितने हृदय अनाथ होंगे। इस कार्य का प्रेरक आम्भीक है जिसका सिकन्दर के साथ मिल जाना– पाश्विक समझे जाने वाले कार्यो से भी बुरा है।

सिंहरण अपने प्रति प्रकट की गयी सहानुभूति का उत्तर देता हुआ कहता है कि मैं अपने बीते हुए सुखों के बारे में नहीं सोचता और न भविष्य वाली कठिनाईयों की आशंका से ही अधीर होता हूँ। मेरे अन्दर आत्मविश्वास हैं कि मेरे सामने बड़ी से बड़ी कठिनाई भी आ जाये तो मैं उसे अपने पराक्रम से दूर कर लूँगा अतः मैं अपने विषय में कोई चिन्ता नहीं करता।

4. ब्राह्मणात्व एक सार्वभौम .... दोष ही क्या?

उक्त अवतरण प्रथम अंक के नवें दृश्य से लिया गया है। चाणक्य पर्वतेश्वर से चन्द्रगुप्त का समर्थन करने के लिए कहता है कि नन्द शूद्र है और चन्द्रगुप्त क्षत्रिय है, अतः पर्वतेश्वर को नन्द के विरूद्ध आक्रमण करने में चन्द्रगुप्त की सहायता करनी चाहिये। पर्वतश्वर चन्द्रगुप्त के क्षत्रियत्व पर शंका करता हुआ उत्तर देता है कि पिप्पलि कानन के मौर्य भी तो वैसे ही (नन्द के समान) वृभाल हैं, उनको राज्यसिंहासन किस प्रकार दिया जा सकता हैं? चाणक्य इस शंका का निवारण करने के लिए पहले तो पर्वतश्वर को यह समझाता है कि पिप्पलि कानन नामक स्थान पर निवास करने वाले मौर्य वास्तव में क्षत्रिय ही थे किन्तु उनके वैदिक संस्कार छूट गए अतः उनको वृभाल कहा जाने लगा। इसके अतिरिक्त वह ब्राह्मणों की सामर्थ्य के विषय में भी संकेत करता है कि जिन शास्त्रों द्वारा वर्ण–व्यवस्था बनायी गयी है उन शास्त्रों का निर्माण ब्राह्मणों के बुद्धिवल द्वारा ही हुआ है। ब्राह्मण की यह सामर्थ्य तो कभी समाप्त नहीं हो सकती। वह प्रत्येक स्थान पर मान्य, हर युग, हर समय में मान्य होंगी। अतः ब्राह्मणत्व सार्वभौम तथा शाश्वत हैं। जिसको समाज की रक्षा के योग्य समझता है, उसे वैश्य के रूप में स्वीकार करता हैं तथा जिसे समाज की सेवा योग्य समझता है उसे शूद्र के रूप में। किन्तु यह शक्ति उसे किसी पाशविक शक्ति द्वारा प्राप्त नहीं हुई अपितु अपने बुद्धिबल द्वारा प्राप्त हुई है। ब्राह्मण का बुद्धिबल उसका व्यक्तिगत वैभव नहीं अपितु मानो समाजरूपी शरीर का वह विवेकशील मस्तिष्क है। और जिस प्रकार मस्तिष्क शरीर के संरक्षण, भरण–पोषण आदि के लिए विभिन्न अंगो को आदेश देता है, स्वयं कोई कार्य नहीं करता, उसी प्रकार समाज में ब्राह्मण की स्थिति है– जैसे मनुष्य की बुद्धि के ऊपर उसका शेष शरीर कोई नियंत्रण नहीं लगा सकता उसी प्रकार ब्राह्मण के निर्णय पर कोई बन्धन नहीं हो सकता।

चाणक्य स्वयं ब्राह्मण है। वह चन्द्रगुप्त को राजकीय वंशोचित संस्कृति–सभ्यता से युक्त मानता है अतः उसका निर्णय मान्य होना चाहिए। उसको राज्य सिंहासन देने में कोई दोष नहीं।

5. भूमा का सुख और उसकी महत्ता .... नहीं बन सकता।

ऊपर लिखा हुआ गद्यांश नाटक के प्रथम अंक के ग्यारहवें दश्श्य से अवतरित है। इसमें महात्मा दाण्डयायन यूनान दूत को उत्तर देते हुए अपनी स्थिति स्पष्ट कर रहे हैं। यूनानी दूत–दाण्डयायन के पास सिकन्दर का सन्देश लेकर आया था। सिकन्दर ने उन्हें दूत द्वारा अपने पास बुलवाया था। दण्डायन का कथन है कि जिसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है उसे सांसारिक वैभव प्रभावित नहीं कर सकता अतः उसके ऊपर सिकन्दर के बलवैभव का कोई प्रभाव नहीं है इसलिये वह सिकन्दर की आज्ञा मानकर कहीं जाने को प्रस्तुत नहीं है।

जिस मनुष्य को विश्वव्याप्त ब्रह्म की असीम आनन्ददायक अनुभूति का रंचमात्र परिज्ञान हो जाता है उसे भौतिक ऐश्वर्य–साम्राज्य, धन, पराक्रम आदि – जो स्वभाव से सीमित और क्षणिक है; प्रभावित नहीं कर सकते। वह अपरिमेय है और अनन्त है। उसकी तुलना में भौतिक नश्वर है। ब्रह्मानन्द की तुलना कभी भी भौतिक साधनों से प्राप्त सुखों से नहीं की जा सकती। अतः जिसे उस आनन्द का आभास प्राप्त हो चुका है उसे भौतिक सुखों का सागर तक उस आनन्द की तुलना में नगण्य प्रतीत होता है। इसलिए ब्रह्मानन्द में मग्न दण्डायन को सिकन्दर का वैभवशाली रूप प्रभावित नहीं कर सकता। ब्रह्मज्ञानी मनुष्य का अन्तःकरण भौतिक भोग–विलासों से शून्य हो जाता है। उसके अन्तःकरण में परमात्मा प्रेरक के रूप में निवास करता ह। वह जो कुछ भी कार्य करता है उसी अन्तःस्थ ईश्वर की प्रेरणा से। ऐसा मनुष्य इच्छा की पूर्ति के लिए कोई कार्य नहीं कर सकता। दाण्डयायन भी ईश्वरेच्छा के अतिरिक्त किसी भी अन्य की इच्छा अथवा आज्ञा से काई कार्य नहीं कर सकते।

6. ''समीर की गति भी .... वज्र के समान भयानक बनूंगा।''

प्रस्तुत गद्यांश प्रसादजी के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक का सातवां दृश्य है। मगध के बन्दीगृह में पड़ा हुआ चाणक्य विचारकर रहा है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चाणक्य सोच रहा है कि इस समय वायु भी नहीं चल रही है। जब प्रकृति के उपादान वायु तक की गति स्तब्ध है फिर शरीर का तो कहना ही क्या? उसकी तो न जाने कितनी सीमाएँ हैं। किन्तु शरीर की इन सब सीमाओं के रहते हुए भी मन में इतने संकल्प और विकल्प क्यों उठ रहे हैं। चाणक्य के कथन का भाव यह है कि जब शरीर बन्दी है वह कुछ कर नहीं सकता। अतः शरीर की ऐसी निःसहायावस्था में मन के भीतर भी संकल्प–विकल्प नहीं उठने चाहिए। फिर दूसरे ही क्षण चाणक्य सोचता है कि यदि मैं एक बार कारागार से निकल पाता तो दिखा देता कि मुझ दुर्बल ब्राह्मण के हाथों में शक्तिशाली नन्द–साम्राज्य को उलट देने की कितनी शक्ति है और विश्व को यह दिखा देता कि ब्राह्मण का ह्रदय कोमल होने पर भी उसमें कर्त्तव्य के लिए प्रलय का झंझावात चला देने की कठोरता भी हैं। पुनः चाणक्य उन लोह–श्रंश्खलाओं पर दृष्टिपात करता है जो उसके हाथ–पैर और समस्त शरीर को जकड़े हुए हैं। वह उन से फूलों की माला के समान कोमल बन जाने का अनुरोध करता है और कहता है कि यदि ये लौह–श्रंश्खलायें फूलों की माला की भांति कोमल बन जायें तो जिस प्रकार मदोन्मत विलासी युवक विलास के समय कोमल पुष्पों को कुचलकर उनके सौन्दर्य को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार मैं भी इन श्रंश्खलाओं को भग्न कर दूँ। फिर सोचता है कि क्या अपनी इस दीन–हीन अवस्था पर अश्रु बहाऊँ? क्या निर्दय यातनाओं की कठोरता से घबराकर नन्द से दया की भीख मांगू? क्या मैं यह कहूं कि मुझे जीवित रखने के लिए जो तुम मुझे मुठ्ठी चने खाने को देते हो उसे बन्द कर दो, किन्तु मुझे स्वतंत्र कर दो। दूसरे ही क्षण वह अपने में साहस का संचय करता हुआ कहता है कि नहीं, नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं कारागार की यातनाओं से घबराकर नन्द से दया की भिक्षा नहीं माँग सकता? वह अपने से कहता है – ऐ चाणक्य! तुम ऐसा कभी मत करना, क्योंकि ऐसा करना कायरता है। यदि तूने इतनी सी ही यन्त्रणाओं से अपना साहस खो दिया तो तेरी स्थिति दीमकों की ठीक उस वामी के समान होगी जो थोड़ी सी ठोकर लगने पर ही चूर–चूर हो जाती है। साहस को अपने में बटोरकर चाणक्य कहता है कि आज से मैं किसी भी व्यक्ति से दया की भीख न मांगूँगा और जब मुझे अधिकार और अवसर मिलेंगे तो किसी पर दया करूँगा भी नहीं। फिर एक क्षण के लिए चाणक्य ऊपर देखता है, जिससे लगता है, कदाचित् उसने ठीक प्रतिज्ञा नहीं की और इसीलिए वह अपने से प्रश्न करता है कि क्या अधिकार और अवसर मिलने पर मैं कभी किसी को क्षमा नहीं करूँगा। फिर दृढ़ संकल्प करता हुआ कहता है कि हाँ मैंने प्रतिज्ञा ठीक ही की है, मै कभी किसी भी व्यक्ति पर दया नहीं दिखाऊँ और न ही कभी किसी को क्षमा करूँगा। वह कहता है कि मेरी गति उसी प्रकार अवरूद्ध होगी, जिस प्रकार प्रलय की होती है और मैं अपने कर्त्तव्य में उसी प्रकार कठोर और भयानक बनूँगा जिस प्रकार इन्द्र का बज्र होता है।

7. त्याग और क्षमा, तप .... की आवश्यकता है।

प्रस्तुत प्रक्तियां प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के सांतवाँ दृश्य से अवतरित हैं। चाणक्य मगध के बन्दीगृह में बन्द हैं। नन्द का अमात्य राक्षस और वररूचि (वार्तिककार कात्यायन) चाणक्य के पास उसे मुक्त कराने के लिए जाते है। चाणक्य की इस मुक्ति से राक्षस अपनी स्वार्थ–सिद्धि चाहता है। किन्तु चाणक्य यह प्रतिज्ञा कर चुका है कि वह किसी की दया का पात्र नहीं बनेगा। इसीलिए राक्षस द्वारा मुक्ति का प्रश्न रखे जाने पर चाणक्य उसे अस्वीकृत कर देता है। वररूचि अपने वार्तिक को पूरा करने के लिए चाणक्य का सहयोग चाहता है। इसीलिए वह चाणक्य से अनुरोध करता है कि अमात्य राक्षस द्वारा रखी हुई शर्तो को तुम मान लो। वह चाणक्य से शत्रुता को विस्मृत कर देने के लिए कहता है और कहता है कि चाणक्य, तुम ब्राह्मण हो और ब्राह्मण को त्याग और क्षमा का अधिकार होता है, इसलिए उसे सभी को क्षमा कर देना चाहिए। इस प्रकार चाणक्य कहता है।

यह ठीक है कि ब्राह्मण त्याग और क्षमा, तप और विद्या क आगार होता है; किन्तु ब्राह्मण के ये सब गुण चरित्र से तेजस्वी बने व्यक्ति का सम्मान करने के लिए हैं– कारागार के भय से अथवा धन के लालच से सिर झुका देने के लिए हम ब्राह्मण नहीं बने हैं। हम ब्राह्मण ही तो राजा का अभिषेक करते हैं, हमारे बल पर ही वे राज्य करते हैं और फिर हमारा ही अपमान किया जाय? नहीं, वररूचि, ऐसा कभी नहीं हो सकता। पुनः वह वररूचि को संबोधित करता हुआ कहता है कि हे कात्यायन! इस समय पाणिनी की आवश्यकता नहीं, इस समय तो दण्ड–नीति की आवश्यकता है। चाणक्य के कथन का अभिप्राय यह है कि इस समय इतनी आवश्यकता भाषा को सुधारने की नहीं है, जितनी आवश्यकता मनुष्यों को सुधारने की है और इसीलिए चाणक्य वररूचि से कहता है कि मैं इस समय वार्तिक लिखने में तुम्हारा योग न दे सकूँगा, वरन् इस समय मैं नन्द–वंश को उच्छेद कर मगध–साम्राज्य की पुनः स्थापना करना चाहता हूँ।

8. चन्द्रगुप्त, मैं ब्राह्मण हूँ .... कितने नीचे हूँ।

'चन्द्रगुप्त' नाटक के चतुर्थ अंक का पाँचवा दृश्य। संदर्भ यह है कि चन्द्रगुप्त विजयी होकर लौट रहा है। उसके माता–पिता चाहते हैं कि उसकी विजय के उपलक्ष्य में उत्सव मनाया जाना चाहिए, किन्तु चाणक्य मना कर देता है। चन्द्रगुप्त को यह जानकर क्षोभ होता है। वह राजा होकर भी अपने को परतन्त्र–सा अनुभव करता है– वह समझता है कि मैं चाणक्य के हाथ का खिलौना–भर हूँ। इस विचार से एक तीव्र प्रतिक्रिया उसके मन में जागृत होती है। वह चाणक्य को बुलाता है और बड़े ही खीझ–भरे, किन्तु साथ ही विनययुक्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्वर में चाणक्य पर आरोप लगाता हुआ कहता है कि आपने केवल राज्य का नियन्त्रण ही अपने हाथों में नहीं ले रखा है, वरन् आप तो मेरे कुटुम्ब का नियन्त्रण भी करते जा रहे है; क्योंकि आपने मेरे माता–पिता को भी निर्वासित कर दिया है। चन्द्रगुप्त द्वारा लगाये गये इस आरोप के उतर में चाणक्य उससे कहता है–

चन्द्रगुप्त, तुम जानते हो कि मैं ब्राह्मण हूँ और ब्राह्मण का साम्राज्य करूणा और प्रेम का होता है, अर्थात् ब्राह्मण तो सबके प्रति दयालु तथा सबसे प्रेम करने वाला होता है। मुझे भी ऐसा ही होना चाहिए था। आनन्द रूपी सागर में शान्ति रूपी द्वीप का रहने वाला मैं ब्राह्मण था; अर्थात् मुझे तो सदैव आत्मानन्द में लीन रहकर शांति अनुभव करते रहना चाहिए था। मेरे लिए तो चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र ही दीपक का कार्य कर सकते थे, मुझे तो सामान्य दीपक तक की आवश्यकता न थी; अनन्त आकाश ही मेरा मण्डप था; अर्थात् रहने के लिए मुझे किसी वितान की आवश्यकता न थी। खुले आकाश के नीचे भी सो सकता था; शस्य की हरीतिमा से युक्त, विश्व का भरण–पोषण करने वाली कोमल भूमि ही मेरे लिए शस्य का काम कर सकती थी। मेरा वास्तविक कर्म बुद्धि संबंधी कार्य करना था, अर्थात् अध्ययन में निरत रहना ही मेरा धर्म था और संतोष ही मेरे लिए सबसे बड़ा धन था; अर्थात् सन्तोष को प्राप्त करके मुझे किसी प्रकार के धन की कामना नहीं करनी चाहिए थी। किन्तु अपनी इस स्वाभाविक वृत्ति को छोड़कर मैं यहाँ कहाँ राजनीति के दलदल में फँस गया। ब्राह्मण का कर्त्तव्य सबसे प्रेम करना होता है; किन्तु मैंने प्रेम के स्थान पर कुचक्र रचे। मुझे चाहिए था कि मैं प्राणी–जगत् को पुरूषों के समान सुख पहुँचाऊ; किन्तु उसे मैंने केवल दुःख दिया। प्रेम के स्थान पर मैं भय का कारण बना रहा। मुझे चाहिए था कि मैं लोगों को ज्ञान का अमृत पिलाता; किन्तु उसके बदले मैंने न जाने कितनी कुमन्त्रणाएँ की। मेरा पतन इससे अधिक और कहां तक हो सकता है। अपने गत–जीवन पर इस प्रकार आक्रोश व्यक्त करने के उपरान्त वह चन्द्रगुप्त से कहता है कि चन्द्रगुप्त, तुम अपने अधिकार ले लो। यदि तुम मुझसे अपना अधिकार छीनते हो तो उसे मैं अपना पुनर्जन्म मानूँगा। मेरा अपना सारा जीवन अपने द्वारा रचे गये कुचक्रो से निन्द्य और कलुषित बन गया है। मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं किसी छाया–चित्र या किसी काल्पनिक महत्व के पीछे व्यर्थ की खोज करते हुए भागा जा रहा हूँ। मेरे ह्रदय में शान्ति नहीं। ब्राह्मण का कार्य स्वरूप की खोज करना होता है, वह भी मैं भूल गया। वस्तुतः अब मुझे पता लगा कि मैं कितना नीचे गिर चुका हूँ।

मध्ययुग की वीरांगनाऍं : एक साहित्यिक विमर्श

डॉ. सुमन बिस्सा

नारी व पुरुष का संबंध सनातन है। सृष्टि के आदिकाल से ही नारी पुरुष की प्रेरणाशक्ति व सहचरी रही है। वह अपनी ममता, दया, वात्सल्य, करूणा एवं त्याग–समर्पण के लिए सामाजिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग रही है। वैदिक काल में उसे समान अधिकार एवं सम्मान मिला किन्तु कालान्तर में उसका यह रूप सुरक्षित नहीं रह सका। विदेशी शासकों के आक्रमणों से उसकी स्वतंत्रता अपकृहत हुई। जीवन के रंगमच में वह पुरूषों के हाथ की कठपुतली बन गई। परन्तु ऐसे विषम संघर्षमय क्षणों में भी अपनी ऊर्जस्विनी चेतना एवं उदात्त गुणों को अंकित करने का सफल प्रयास किया। साहित्यकारों एवं कवियों ने ऐसी नारियों के चरित्र को महिमा मंडित कर उनके साथ किंचित न्याय किया हैं।

किसी भी क्षेत्र में विख्यात एवं विशिष्ट नारियों ने साहित्य में सम्मान प्राप्त किया हैं। पौराणिक पृष्ठों में अंकित आदर्श नारियों से लेकर इतिहास विश्रुत वीरांगनाओं के गरिमामय चरित्र ने, प्रेम एवं कर्त्तव्य की प्रतिमाओं एवं साहित्यिक साधिकाओं ने कवियों के मुक्तक काव्यों के लघु कलेवर में गौरवमय स्थान प्राप्त किया है। मध्यकाल की वीरांगनाओं में वीरता व साहस की मूर्तियॉं दुर्गावती, अहिल्याबाई, चांदबीबी, नीला देवी, पद्मिनी, रानी लक्ष्मीबाई जैसी साहसी महिलाओं को तो साहित्यिक साधिकाओं में मीरां जैसी भक्ति व प्रेम की साकार प्रतिमाओं का यशोगान स्तुत्य है।

इतिहास साक्षी है कि स्वभाव से शांतिप्रिय नारी ने भी अनेक बार समय की पुकार सुनकर शस्त्र धारण कर संहार शक्ति का परिचय दिया है। गढ़मंडला की वीर रानी विधवा होने पर भी अपनी वीरता, साहस, शासन कुशलता एवं योग्यता से राज्य की रक्षा व उन्नति करती है।

वियोगी हरि की 'वीर सतसई' में शत्रुओं का दलन करने वाली दुर्गावती की देशभक्ति व शक्तिमय रूप का चित्रण हुआ है–

छत्राणी हूँ बिन मारे मरे भूमि न दूंगी
दम रहते रणभूमि से पग पीछे न धरूंगी

चंदेल की बेटी नहीं तलवार से डरती
मंडला की महारानी नहीं रण में पछरती।

मालवे की महारानी अहिल्या की राजनीतिक कुशलता, साहस एवं उदारता की महिमा मंडन तोरन देवी 'लली' ने किया है।

'अबला कहा के मान रख लिया मालवे का
नीति से ही शत्रु का ह्रदय पिघला गयी
राजनीति में भी दृढ़ प्रेम ही की नीति मान
दान धर्म सत्य की छटा सी दिखला गयी।

हिन्दू महिलाएँ ही नहीं अपने साहस व सद्‌गुणों का परिचय देने वाली मुस्लिम महिलाओं को भी मुक्तक काव्य में पर्याप्त सम्मान मिला है। अपने तेज, पराक्रम व युद्ध कौशल से मुगल सेना से लोहा लेने वाली चांदबीबी से अकबर को भी संधि करनी पड़ी थी। वियोगी हरि एवं कामता प्रसाद के काव्य में इस मुस्लिम महिला की वीरता का वर्णन किया है–

मुगलनु में झपटी मनो रणसिंहणी तजि मांद
अकबर मद मर्दन कियो धनि सुलताना चांद।

पद्‌मिनी जैसी वीरांगनाओं युद्ध क्षेत्र में सीधे न जूझकर भी अपनी मर्यादा एवं विचारों की रक्षा के लिए स्वयं को ही अग्नि में होम दिया। पद्‌मिनी के साथ चित्तौड़ वंश की अनेक क्षत्राणियों ने क्षात्र धर्म एवं वंश मर्यादा की तथा मुगल शासकों की हवस का शिकार बनने की अपेक्षा जौहर की ज्वाला में जलना श्रेयष्कर समझा।

मुगलों का उपहास करते हुए वियोगी हरि ने पद्‌मिनी के सतीत्व रक्षा का आदर्श प्रस्तुत किया है –

वह चित्तौड़ की पद्‌मिनी, किमि पैहो सुलतान
कब सिंहनु अघरान को, किथो स्वान मधु–पान।

पुरूषोत्तम दास ने उसे रणचण्डी कहा है – उसके आत्म–बलिदान के अनुप्रेरक कारणों का वर्णन किया है –

रणचंडी जौहर की रानी, पति वतन के पूजन में
आजादी बलि के जीवन में, तप–त्याग धधकती ज्वाला में
जौहर प्रिय अमृत–चिंतन में
जो अमर बेल बनकर फेली, वह आजादी की दीवानी।

क्रांतिचेतना की अग्रदूत व स्वाधीनता की पुजारिन रानी लक्ष्मीबाई की कीर्तिपताका इतिहास के पन्नों में ही नहीं कवियों के मुक्तम काव्यों में भी सुवासित है। अपनी वीरता से अनेक पुरूषों के छक्के छुड़ा देने वाली झांसी की रानी लक्ष्मीबाई अपने आत्म–सम्मान व देश की रक्षा के लिए जुझने में पुरूषों से कहीं कम दृष्टिगत नहीं होती। वियोगी हरि व सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवियों ने लक्ष्मीबाई के साहस का गौरवगान किया है –

धन झांसी गढ़ लच्छमी, राजति त्रिविध अनूम
गति चपला दुति चन्द्रिका, समर चण्डिका रूप

सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता 'झांसी की रानी' में लक्ष्मीबाई स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में हर भारतीय के कण्ठ का हार बनी थी।

'लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता का अवतार
देख मराठे पुलकित होते, उसकी तलवारों के वार
नकली युद्ध व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना, ये तो उसके प्रिय खिलवार
हमको जीवित करने आयी, वह स्वतंत्रता की रानी
तेरा स्मारक तू ही देगी, तूं खुद अमिट निशानी

युद्ध को नारी ने कहीं विवशतावश या पत्नीत्व के आदर्श की रक्षा हेतु अथवा अवसर की आवश्यकता को समझकर स्वीकारा। युद्ध करना उसकी प्रवृत्ति नहीं परन्तु समय की मांग थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–3 : आषाढ़ का एक दिन

संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 नाटककार मोहन राकेश : व्यक्तित्व एक कृतित्व
3.2.1 जन्मस्थान एवं परिचय
3.2.2 जीवन यात्रा एवं घटनाएं
3.2.3 रचना संसार
3.2.4 बोध प्रश्न
3.3 नाटक की महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्याएं
3.3.1 बोध प्रश्न
3.4 आषाढ़ का एक दिन नाटकीय तत्वों के आधार पर
3.4.1 कथासार
3.4.2 चरित्र चित्रण
3.4.3 संवाद योजना
3.4.4 नाटक का उद्देश्य
3.4.5 भाषाशैली
3.4.6 अभिनियता
3.5 सारांश
3.6 अभ्यास के प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

आधुनिक युग के नाटककारों में मोहन राकेश का एक महत्वपूर्ण स्थान है। 'लहरों के राजहंस' और 'आधे–अधूरे' के साथ 'आशाढ़ का एक दिन' इनका जगत प्रसिद्ध नाटक है। इनके नाटकों के कथानक आधुनिक परिवेश से जुड़े हुए होते हैं। प्रस्तुत नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' तीन अंकों में विभक्त है। इस नाटक के पात्र कालिदास एक ऐतिहासिक पात्र हैं किन्तु नाटककार ने अपनी कल्पना के अनुसार उसे एक अलग रूप दिया है। कालिदास के माध्यम से साहित्यकारों की समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन से हम–

1. नाटककार मोहन राकेश के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की जानकारी कर सकेंगे।
2. व्याख्या लिखने का ज्ञान कर सकेंगे।
3. आशाढ़ का एक दिन नाटक का कथानक समझ सकेंगे।
4. नाटकीय तत्त्वों के आधार पर आशाढ़ का एक दिन की विवेचना कर सकेंगे।

3.2 मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व

3.2.1 जन्म, स्थान एवं परिचय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, सन् 1925 में अमृतसर में एक सामान्य परिवार में हुआ। उनका पूरा नाम था–मदन मोहन गुगलानी, परंतु बाद में उन्होंने अपनी दीदी के सुझाव पर स्वयं ही अपना नाम मोहन राकेश कर दिया। कहते हैं कि अल्पायु में ही व्यक्ति के बारे में पूर्वाभास हो जाता है कि वह क्या बनेगा। मोहन राकेश भी छोटी सी उम्र से घर से अलग अपनी एक दुनिया बसाने लगे। उन्हीं के शब्द देखें–

"कभी चींटियों की पंक्तियों के साथ दीवार के सुराखों की यात्रा करता हूँ। कभी धूप में उड़ते ज़र्रों को आपस में लड़ाया करता हूँ। दीवारों के टूटते पलस्तर से लेकर हौज के बहते पानी में तरह–तरह के चेहरे खोजता हूँ। पलस्तर के चेहरों को बदलने के लिए आँख का कोण बदलता हूँ। पानी के चेहरों को हाथ से बदल देता हूँ। बहाव मेरे बनाये चेहरों को बिगाड़ने लगता तो उनमें नये रूप भर देता हूं।"1

3.2.2 जीवन यात्रा एवं घटनाएं

उपर्युक्त कथन ही यह सिद्ध करने को काफी है कि एक भावुक और चिन्तक बालक कैसे आगे चलकर श्रेष्ठ नाटककार, कथाकार, कवि बनता है। हालांकि उनका पारिवारिक जीवन संघर्षों से मुक्त नहीं रहा। मात्र 16 वर्ष की उम्र में पिता की मृत्यु के हादसे ने उन किशोर कंधों पर परिवार की जिम्मेदारी डाल दी। लेकिन इन सबको उन्होंने अपनी पढ़ाई पर हावी नहीं होने दिया। पंजाब यूनिवर्सिटी से उन्होंने सन् 1944 में संस्कृत में एम. ओ. एल. की परीक्षा उत्तीर्ण की और सन् 1952 में हिन्दी में प्रथम श्रेणी में एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनका व्यावसायिक जीवन स्थिर नहीं रहा। सन् 1944 में वे फिल्मी दुनिया में किस्मत आजमाने मुम्बई पहुँचे। लगभग एक वर्ष पटकथाकार के रूप में कार्य किया, परन्तु फिर स्वाभिमान के चलते इस्तीफा दे दिया। कुछ समय 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' समाचार पत्र में कार्य किया, परंतु यह भी अधिक नहीं हो पाया। सन् 1950 से 1957 के बीच जालंधर के डी. ए. वी. कॉलेज और शिमला के बिशप कॉटेज विद्यालय में अध्यापन कार्य किया, इस बीच लेखन भी जारी रहा। सन् 1957 में दिल्ली आए। पहले 'अक्षर प्रकाशन' से जुड़े, बाद में सन् 1962 में 'सारिका' पत्रिका का लगभग एक वर्ष तक संपादन किया। उनका स्वतंत्र लेखन तो जारी रहा ही, सन् 1971 में उन्हें 'फिल्म वित्त निगम' का सदस्य बनाया गया। सन् 1972 में उन्हें शोधकार्य हेतु एक लाख रूपये की नेहरू फैलोशिप मिली, शोध का विषय था– "नाटक में सही शब्द की खोज"। 3 दिसम्बर सन् 1972 को हृदयगति रूक जाने से उनका निधन हो गया।

3.2.3 रचना संसार

मोहन राकेश का साहित्यिक योगदान कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि कई विधाओं में रहा है। इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं – मलबे का मालिक, इंसान के खंडहर, नये बादल, एक और जिन्दगी, मिले–जुले चेहरे, एक–एक दुनिया, चेहरे आदि। उपन्यासों में प्रमुख हैं – अँधेरे बंद कमरे, न आने वाला कल, नीली रोशनी की बाँहें, अन्तराल आदि। प्रमुख निबंध–संग्रह हैं – परिवेश, समय–सारथी, बकलम खुद। संस्मरणों में प्रमुख नाम हैं – आखिरी चट्टान तक, ऊँची झील, पतझड़ का रंगमंच। इनके अतिरिक्त पटकथा लेखन, डायरी, अनुवाद, शोध और संपादन से भी ये जुड़े रहे।

मोहन राकेश के नाट्य साहित्य में नाटक, एकांकी और अनुवाद है। नाटकों में 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे–अधूरे', एकांकी विधा में 'अण्डे के छिलके', 'बीज तथा अन्य एकांकी' और अनुवाद के अंतर्गत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' एवं 'मृच्छकटिकम्' नाटकों के अनुवाद शामिल हैं।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक 1958 ई. में प्रकाशित मोहन राकेश का पहला नाटक है जो बेहद चर्चित रहा। इस पर उन्हें "संगीत–नाटक अकादमी" का सर्वोत्तम नाटककार का पुरस्कार भी मिला। तीन अंक और बारह पात्रों वाले इस नाटक के नायक हैं–संस्कृत के विख्यात कवि–नाटककार कालिदास। कालिदास के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं और स्थितियों के संयोजन से इस नाटक की कथा बुनी गई है, लेकिन नाटककार ने इसमें कल्पना और मौलिकता का पर्याप्त समावेश किया है।

3.2.4 बोध प्रश्न

1. मोहन राकेश का 1958 में कौन सा नाटक प्रकाशित हुआ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.3 नाटक के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्याएँ

1. माँ, आज के वे क्षण मैं कभी नहीं भूल सकती। सौन्दर्य का ऐसा साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौन्दर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी। तभी मुझे अनुभव हुआ कि वह क्या है जो भावना को कविता का रूप देता है। मै जीवन में पहली बार समझ पायी कि क्यों कोई पर्वत–शिखरों को सहलाती मेघ–मालाओं में खो जाता है, क्यों किसी को अपने तन–मन की अपेक्षा आकाश में बनते–मिटते चित्रों का इतना मोह हो रहता है। क्या बात है माँ? इस तरह चुप क्यों हो ?

संदर्भ एवं प्रसंग :–

हिन्दी नाटककारों में मोहन राकेश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके नाटकों में पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व, नारी–मन की भावना आदि सशक्त रूप से उजागर हुए हैं। उपर्यक्त अंश उनके 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक से लिया गया है। इसका प्रकाशन काल 1958 ई. है।

यह अंश नाटक के पहले अंक से उद्धृत है। मल्लिका आषाढ़ के पहले ही दिन हुई धारासार वर्षा में भीगकर घर लौटती है। वर्षा में प्रकृति के अद्भुत सौन्दर्य को देखकर वह अपने अनुभव को अपनी माँ अम्बिका के साथ बाँटती है।

व्याख्या :–

मल्लिका बाहर से बारिश में भीगकर घर आयी है। भावुक मन की उस सौन्दर्यमयी अनुभूति को वह माँ से कहती है। वर्षा के कारण दूर–दूर तक की उपत्यकाएँ भीग गयी थीं। चारों ओर बादलों का दृश्य था। मल्लिका अपनी माँ को संबोधित कर इस मोहक सौन्दर्य का बखान करती है कि ऐसा अद्भुत सौन्दर्य उसने पहले कभी नहीं देखा। वे पल जीवन में यादगार बन गए और वह सौन्दर्य भी कोई ऐसा–वैसा नहीं था, मल्लिका के अनुसार अस्पृश्य होते हुए भी मांसल था। अर्थात् कहने को तो दिखाई नहीं देता था, स्पर्श नहीं किया जा सकता था, लेकिन मन की भावना से, मन की अनुभूति से मल्लिका उसे छू सकती थी, देख सकती थी, और तो और उसे पी सकती थी, उसका आनंद उठा सकती थी। अपने मन के इस अनुभव से मल्लिका को उन भावों की अनुभूति हुई जिससे भावना कविता में बदल जाती है। कविता कहीं बाहर से जन्म नहीं लेती, मन के ही सूक्ष्म भाव कविता के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। मल्लिका को यह अनुभूति जीवन में पहली बार हुई थी, जब मन कल्पना के पंख लगाकर उड़ने लगता है। तब उसे समझ आया कि ऊँचे–ऊँचे पर्वतों के ऊपर मेघ मालाओं का सुन्दर दृश्य देखकर क्यों कोई आकर्षित होता है, क्यों उस सौन्दर्य में मग्न हो जाता है। कई कल्पनाशील लोग अपने तन की, मन की सुधबुध खो बैठते हैं, उन्हें आकाश में बनते–मिटते चित्रों का इतना मोह रहता है कि वे उन दृश्यों की ओर निहारते रहने से अपने आपको रोक नहीं पाते, अर्थात् मल्लिका को स्वयं जब उस अद्भुत प्राकृतिक सौन्दर्य का साक्षात्कार हुआ, विलक्षण अनुभूति हुई, उसका मन कल्पना में खोने लगा, तब उसे यह बात समझ में आई कि ऐसा ही अनुभव भावना को कविता का रूप देता है। यही प्रतीति किसी को प्राकृतिक सौन्दर्य के रूप में लुभाती है, आकर्षित करती है और वह अपनी वास्तविक स्थिति से दूर कहीं कल्पनालोक में खोने लगता है, परन्तु मल्लिका की माँ अम्बिका इन भावुक बातों को एक तटस्थ श्रोता की तरह सुनती है। इसलिए मल्लिका कोई प्रत्युत्तर न पाकर माँ से चुप रहने का कारण पूछती है।

विशेष :–

(1) नाटक का यह अंश काव्यात्मकता से पूर्ण है। इसमें नीरस गद्य न होकर एक रस प्रवाह की प्रतीति होती है।

(2) इन पंक्तियों में मल्लिका द्वारा माँ को संबोधित अवश्य किया गया है, पर वास्तव में यह अपने–आप में मग्न मल्लिका का एकालाप कहा जा सकता है।

(3) पंक्तियों की भाषा साहित्यिक, काव्यात्मक होते हुए भी रंगमंच के निकट है।

2. मैं जानती हूँ माँ, अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख की बात भी जानती हूँ। फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह संबंध और सब संबंधों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है ....।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संदर्भ एवं प्रसंग –

मोहन राकेश हिन्दी–नाट्य साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनके नाटक पाठक को आनंदित तो करते ही हैं, रंगमंच के संदर्भ में भी पर्याप्त प्रभावी सिद्ध होते हैं। उद्धृत अंश उनके बेहद चर्चित नाटक "आषाढ़ का एक दिन" से लिया गया है। यह अंश नाटक के प्रथम अंक से लिया गया है। जब मल्लिका को उसकी माँ अम्बिका, उसके और कालिदास के संबंध में होने वाले अपवाद की बात कहती है, तब मल्लिका माँ के सामने अपना पक्ष रखती है। अंबिका चाहती थी कि मल्लिका भावुकता में न पड़कर किसी और से विवाह कर ले, कालिदास और मल्लिका को लेकर होने वाला अपवाद भी उसे सह्य नहीं हो रहा था, परन्तु मल्लिका माँ को अपनी विवशता बताती है।

व्याख्या –

मल्लिका अपनी माँ द्वारा, स्वयं के और कालिदास के संबंध को लेकर लोगों में अपवाद होने की बात कहने पर यह तो स्वीकार करती है कि अपवाद हो रहा है। वह यह भी मानती है कि इससे माँ को दुःख हो रहा है। परंतु साथ ही वह यह भी कहती है कि इस सबके बावजूद उसे अपराध या गलती का अनुभव नहीं होता, क्योंकि उसने भावना में एक भावना का वरण किया है, अर्थात् अपनी कल्पना में, मन में कालिदास के प्रति जुड़े भावों का वरण किया है, अपने मन में कालिदास के प्रेम का वरण किया है। मल्लिका यह भी कहती है कि भावना का यह संबंध उसके लिए दूसरे सारे रिश्तों से बड़ा है, उसे अपवाद की भी कोई परवाह नहीं है। माँ की चिन्ता स्वाभाविक होते हुए भी मल्लिका को उस संबंध से विमुख नहीं कर सकती। वह कहती है कि उसे अपनी उसी भावना से (कालिदास के प्रति प्रेम–भाव) ही प्रेम है जो पवित्र है, कोमल है और अनश्वर भी है। उस भावना को कोई मिटा नहीं सकता है, वह मन में स्थिर हो चुकी है। मल्लिका लोकापवादों से बेपरवाह उसी भावना में, कल्पना में प्रसन्न रहना चाहती है, माँ की चिन्ता या वास्तविकता को वह जानकर भी अनजान बने रहना चाहती है।

विशेष :–

(1) नाटक की पात्र मल्लिका की भावुकतापूर्ण मनः स्थिति की व्यंजना होती है।

(2) भाषा में कृत्रिमता और जड़ता नहीं है, बल्कि शब्द स्वयं क्रिया का कार्य करते हैं। भाषा और मनःस्थिति का गहरा संबंध दिखाई पड़ता है।

(3) इस गद्यांश के द्वारा मल्लिका के चरित्र की दृढ़ता दृष्टिगोचर होती है।

3. मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही संबंध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति नहीं हो? तुम्हारे प्रति उसका या तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं है? कल तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा, और घर में एक समय के भोजन की व्यवस्था भी नहीं होगी, तो जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा, उसका तुम क्या उत्तर दोगी। तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी? फिर कह दो कि यह मेरी नहीं, विलोम की भाषा है।

संदर्भ :–

मोहन राकेश हिन्दी–नाट्य साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनके नाटक पाठक को आनंदित तो करते ही हैं, रंगमंच के संदर्भ में भी पर्याप्त प्रभावी सिद्ध होते हैं। उद्धृत अंश उनके बेहद चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' से लिया गया है। यह अंश नाटक के प्रथम अंक से लिया गया है।

प्रसंग :–

नाटक के प्रथम अंक में जब मल्लिका को यह सूचना मिलती है कि उज्जयिनी से आचार्य वररूचि कालिदास को लेने आये हैं, क्योंकि उज्जयिनी के राजा उन्हें 'राजकवि' का आसन देना चाहते हैं तो वह बड़ी प्रसन्न होती है। वह इस खुशी को माँ से बाँटना चाहती है, परंतु अंबिका उससे कहती है कि अगर तुम दोनों का भावना का संबंध है तो कालिदास तुमसे विवाह क्यों नहीं करता है। इस पर मल्लिका उत्तर देती है कि उसके अभावग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना नहीं की जा सकती। तब अंबिका व्यंग्य करती है कि अब तो कालिदास का जीवन अभावपूर्ण नहीं रहेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या –

अंबिका अपनी बेटी मल्लिका को कालिदास के संबंध में सचेत करती है कि वह ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह जानती है। कालिदास को सिर्फ अपने आप से प्रेम है, मल्लिका उसके लिए मात्र एक साधन है जिसके माध्यम से वह स्वयं से प्रेम कर सकता है, स्वयं पर गर्व कर सकता है। अंबिका मल्लिका से कहती है कि वह कोई साधन नहीं, सजीव व्यक्ति है जिसकी अपनी भावनाएँ होती हैं तो कालिदास का मल्लिका के प्रति भी तो कोई कर्तव्य होना चाहिए या स्वयं मल्लिका को अपने विषय में सोचना चाहिए। क्योंकि जब अंबिका नहीं रहेगी, तब घर में एक समय भोजन की व्यवस्था भी नहीं होगी। तो ऐसे में मल्लिका क्या करेगी, क्योंकि भावना तो इस प्रश्न का उत्तर नहीं हो सकती। अर्थात् भावना ही से तो भूख नहीं मिट सकती। अंबिका बेटी को इस कड़वी सच्चाई को समझाते हुए कहती है कि यह भी उसे विलोम की भाषा लगती है, अपनी माँ की नहीं। उक्त अंश में एक माँ ने अपनी व्यथा बेटी के सामने रखी है जो कल्पना की दुनिया में जी रही है और भविष्य से बेखबर है।

विशेष :–

(1) अंबिका की व्यथा अभिव्यक्त होती है।

(2) अंबिका ने नाटक के नायक कालिदास की स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ति की ओर संकेत किया है।

(3) इन पंक्तियों में प्रश्न–शैली रंगमंच के संदर्भ में प्रभावी जान पड़ती है।

4. तुम पूरी तरह नहीं समझ रहीं, मल्लिका। प्रश्न तुम्हारे घेरने का नहीं है। ...... मैं अनुभव करता हूँ कि यह ग्राम–प्रान्तर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और ये मेघ हैं, यहाँ की हरियाली है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं।..............यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊँगा।

संदर्भ –

मोहन राकेश हिन्दी–नाट्य साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनके नाटक पाठक को आनंदित तो करते ही हैं, रंगमंच के संदर्भ में भी पर्याप्त प्रभावी सिद्ध होते हैं। उद्ध्‌ त अंश उनके बेहद चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' से लिया गया है। यह अंश नाटक के प्रथम अंक से लिया गया है।

प्रसंग –

उपर्युक्त अंश नाटक के प्रथम अंक से उद्धृत है। कालिदास जब उज्जयिनी जाने की अनिच्छा जाहिर करता है, तब मल्लिका उसे समझाती है। मल्लिका को लगता है कि कालिदास उसके कारण नहीं जाना चाहता, इसलिए वह उसे अपना वास्ता देकर दबाव डालती है।

व्याख्या –

मल्लिका जब कालिदास से कहती है कि वह उसे घेरना नहीं चाहती, वह तो चाहती है कि कालिदास उज्जयिनी जाए। तब कालिदास अप्रत्याशित रूप से कहता है कि मल्लिका पूरी तरह समझ नहीं रही है। प्रश्न यह नहीं है, बल्कि वह सोचता है कि यह ग्राम प्रान्त ही उसकी वास्तविक भूमि है। वह कई सूत्रों के द्वारा, संबंधों के द्वारा इस भूमि से जुड़ा है। उन सूत्रों में मल्लिका भी है, हरिणों के बच्चे और पशुओं को पालने वाले निवासी भी हैं। अर्थात् उसे इस समूची भूमि से लगाव है, जुड़ाव है जिसमें उसकी यादें संचित हैं। उन्हीं में मल्लिका भी है, प्राकृतिक दृश्य, हरिण–शावक आदि भी हैं। यदि वह इस ग्राम – प्रदेश से गया तो अपनी भूमि से उखड़ जाएगा।

विशेष :–

(1) कालिदास के इस कथन से यह संकेत मिलता है कि मल्लिका भी उसके लिए अन्य पदार्थों की तरह है, एकमात्र आलंबन नहीं।

(2) कालिदास का आत्म–मोह व्यंजित होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. राजनीति साहित्य नहीं है। उसमें एक–एक क्षण का नहत्त्व है। कभी एक क्षण के लिए भी चूक जायें, तो बहुत बड़ा अनिष्ट हो सकता है। राजनीतिक जीवन की धुरी में बने रहने के लिए व्यक्ति को बहुत जागरूक रहना पड़ता है। .... साहित्य उनके जीवन का पहला चरण था। अब वे दूसरे चरण में पहुँच चुके हैं। मेरा अधिक समय इसी आयास में बीतता है कि उनका बढ़ा हुआ चरण पीछे न हट जाय। ....बहुत परिश्रम पड़ता है इसमें।

संदर्भ एवं प्रसंग –

मोहन राकेश हिन्दी नाट्य–जगत् के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनके नाटकों में रंग–शिल्प, सजीव परिवेश, प्रभावी कथ्य सभी आकर्षक रूप में हैं।

उपर्युक्त अंश मोहन राकेश कृत नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के द्वितीय अंक से उद्धृत है। मातृगुप्त (कालिदास) की राजमहिषी प्रियंगुमंजरी मल्लिका से मिलती है। मल्लिका से वह कहती है कि उन्हें (कालिदास को) इस ग्राम–प्रदेश से, यहाँ के वातावरण से बड़ा मोह है। इसीलिए काश्मीर जाते हुए यहाँ का वातावरण साथ ले जाना चाहती हूँ। इसी संदर्भ में प्रियंगुमंजरी बताती है कि इस प्रदेश की स्मृति होने पर कालिदास राजनीतिक कार्यों से उखड़ जाते हैं, ऐसे में उनका मन स्थिर रखने का बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है।

व्याख्या –

प्रियंगुमंजरी मल्लिका से कालिदास के विषय में, अपने ग्राम की स्मृति हो आने पर राजनीति के कार्यों से उखड़ने के संदर्भ में कहती है कि राजनीति साहित्य नहीं है। उसमें हर क्षण का महत्त्व है। अर्थात् साहित्य में लंबे समय तक भावमग्न या आत्मस्थ अवस्था में रहा जा सकता है, वहाँ भावना का, अनुभूति का महत्त्व है। परन्तु राजनीति में तो एक–एक पल कीमती है। किसी कार्य में एक पल की भी देरी से बड़ा संकट उपस्थित हो सकता है। और राजनीतिक जीवन में यदि व्यक्ति को सफल होना है तो उसे बहुत ही जागरूक रहना होता है, दूरदर्शी रहना होता है। प्रियंगुमंजरी आगे कालिदास के विषय में कहती है कि साहित्य उनके (कालिदास के) जीवन का पहला चरण था। वे पहले मात्र साहित्यकार थे। परन्तु अब वे जीवन के दूसरे चरण अर्थात् राजनीति में आ चुके हैं। साथ ही वह यह भी कहती है कि इसी प्रयास में मेरा काफी समय बीतता है कि राजनीति के क्षेत्र में उनका बढ़ा हुआ कदम पीछे नहीं हट जाय। अर्थात् वे राजनीति में आ तो चुके हैं, परन्तु कवि और भावुक भी हैं, इसलिए उन्हें राजनीति से जोड़े रखने में भी अच्छी–खासी मेहनत करनी होती हैं। इस तरह से उनके मन को संतुलित रखने के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। कवि भावना के स्तर पर जीता है, परन्तु राजनीतिज्ञ को चारों ओर का, प्रत्येक स्थिति का ध्यान रखना पड़ता है। इसलिए शासन जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य के लिए मन को बड़ा संतुलित और संयमित रखना जरूरी है, वहाँ भावों के प्रवाह से काम नहीं चलता।

विशेष –

(1) प्रियंगुमंजरी के कथन से उसके राजनीतिक चातुर्य की व्यंजना होती है।

(2) कालिदास के कवि–जीवन और राजनीतिक जीवन के अन्तर्द्वन्द्व का संकेत मिलता है।

6. मुझसे कोई पूछे तो मैं कहूँगा कि राज–प्रासाद में रहने से अधिक कष्टकर स्थिति संसार में हो ही नहीं सकती। आप आगे देखते हैं, तो प्रतिहारी जा रहे हैं। पीछे देखते हैं, तो प्रतिहारी आ रहे हैं। सच कहता हूँ, मुझे कभी पता ही नहीं चल पाया कि प्रतिहारी मेरे पीछे चल रहे हैं या मैं प्रतिहारियों के पीछे चल रहा हूँ। कृ और इससे भी कष्टकर स्थिति यह थी कि जिन व्यक्तियों को देखकर मेरा आदर से सिर झुकाने को मन करता था, वे मेरे सामने सिर झुका देते थे। मेरे सामने कृ ?

संदर्भ एवं प्रसंग –

उद्धृत अंश मोहन राकेश के अर्थात नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' से लिया गया है। तृतीय अंक के अंतर्गत यह मातुल के मल्लिका से संवाद का अंश है। मातुल पूर्व में ग्राम छोड़कर राज–प्रासाद गया था, परन्तु पाँव टूटने पर वह पुनः गाँव आ जाता है। राज–कर्मचारियों ने उसका गाँव का घर भी चिकने शिला–खण्डों वाला बन दिया है, जिस पर पाँव टिकता ही नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक रात धारासार वर्षा से बचने के लिए बैसाखियों के सहारे वह मल्लिका के घर पहुँचता है। उसी समय मल्लिका से बातचीत करते हुए वह अपने राज–प्रासाद के अनुभव बताता है।

व्याख्या –

मातुल, मल्लिका से कहता है कि राज–प्रासाद में रहने से अधिक कष्टदायक स्थिति संसार में दूसरी नहीं हो सकती। अर्थात् राजमहल में रहना सबसे कष्ट भरा है। यदि चलते हैं तो आगे भी प्रतिहारी जाते हुए दिखते हैं और पीछे भी प्रतिहारी आते हुए दिखते हैं। मातुल इसी स्थिति को बताते हुए कहत है कि उसे तो यह समझ ही नहीं आया कि प्रतिहारी उसके पीछे चल रहे हैं या वह प्रतिहारियों के पीछे चल रहा है। मातुल के इस कथन से यह व्यंजित होता है कि राजमहल में व्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं रहती। वह न तो अपनी इच्छा से कोई कार्य कर सकता है, न ही राजकर्मचारियों की चौकस दृष्टि से दूर एकान्त पल गुज़ार सकता है। जहाँ देखो, पहरा ही पहरा। यही नहीं, मातुल को सबसे अधिक कष्टदायक स्थिति तो वह लगती है कि जिन व्यक्तियों को देखकर उसका मन करता था कि वह आदर से उन्हें नमन करे, सिर झुकाये, वे व्यक्ति स्वयं उसके सामने सिर झुका देते थे। इसी विसंगति को देखकर मातुल आश्चर्य करता है कि आदरणीय व्यक्ति स्वयं उसके सामने सिर झुकाते थे, जबकि वह तो कोई बड़ा आदमी नहीं था–न देवता, न पण्डित, न राजा। सिर्फ यही कि वह काश्मीर के शासक मातृगुप्त (कालिदास) का रिश्तेदार है। यही स्थिति मातुल को क्षुब्ध करती थी।

विशेष :–

(1) मातुल के कथन से यह ध्वनित होता है कि लोग गुणों को नहीं, पद या रुतबे को नमन करते हैं। किसी व्यक्ति के सत्ता में होने पर उसके परिवारजन, रिश्तेदार भी कितने महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

(2) इस अंश से यह भी पता चलता है कि राजनीति या शासन व्यक्ति को अधिकार तो देते हैं, पर उससे उसका सहज–स्वच्छंद जीवन छीन लेते हैं।

7. एक राजनीतिक जीवन दूसरे कालिदास। मैं आज तक दोनों में से किसी की भी धुरी नहीं पहचान पाया। मैं समझता हूँ कि जो कुछ मैं समझ पाता हूँ, सत्य सदा उसके विपरीत होता है। और मैं जब उस विपरीत तक पहुँचने लगता हूँ, तो सत्य उस विपरीत से विपरीत हो जाता है। अतः मैं जो कुछ समझ पाता हूँ, वह सदा झूठ होता है। इससे अब तुम निष्कर्ष निकाल लो कि सत्य क्या हो सकता है कि उसने संन्यास ले लिया है, या नहीं लिया।

संदर्भ एवं प्रसंग –

उपर्युक्त अंश मोहन राकेश कृत नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के त तीय अंक से लिया गया है। यह उस समय का प्रसंग है जब मातुल बारिश में भीगने से बचने के लिए मल्लिका के घर आता है। बातों ही बातों में मातुल मल्लिका को काश्मीर के समाचार देता है। वह बताता है कि कालिदास के काश्मीर छोड़ने की चर्चा हो रही है, वहाँ के लोग तो कहते हैं कि उसने संन्यास ले लिया है और काशी चला गया है। साथ ही मातुल यह भी कहता है कि उसे विश्वास नहीं होता, किन्तु राजनीति में सब संभव है।

व्याख्या –

मातुल, मल्लिका से कहता है कि एक तो राजनीतिक जीवन और दूसरे कालिदास, वह आज तक इन दोनों में से किसी को नहीं जान पाया। अर्थात् राजनीति में जिस तरह की अनिश्चितता, असमंजस की स्थिति होती है, वैसी ही कालिदास के विषय में भी अनिश्चितता है। उसके लिए नहीं कहा जा स्कता कि वह क्या करेगा। हो सकता है कि उसने संन्यास ले लिया हो, परन्तु यह भी संभव है कि वह उज्जयिनी चला गया हो, वहाँ तो उसका इतना मान है। मातुल कहता है कि वह कालिदास और राजनीतिक जीवन, दोनों में से किसी की भी प्रकृति जान नहीं पाया। और तब उसे लगने लगता है कि जो कुछ वह समझता है, वह सत्य नहीं होता, बल्कि उसके विपरीत होता है, यहाँ तक कि जब वह उस विपरीत का अनुमान करता है, तब सत्य उस विपरीत का उल्टा हो जाता है। अर्थात् मातुल का कयास या अनुमान हर सूरत में विपरीत ही होता है। इससे व्यथित मातुल कहता है कि वह जो कुछ समझ पाता है, वह हमेशा झूठ होता है। इसलिए वह मल्लिका को कहता है कि अब वही(मल्लिका) निष्कर्ष निकाल ले कि कालिदास ने संन्यास ले लिया है अथवा नहीं लिया, क्योंकि मातुल का पूर्वानुमान तो सत्य होता नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष :–

(1) राजनीतिक जीवन में अनिश्चय / दुविधा की स्थिति को व्यक्त किया गया है।

(2) मातुल का अनुमान सही नहीं होने से उसके द्वारा स्वयं पर अविश्वास की अभिव्यक्ति होती है।

8. इस जीव को देखते हो ? पहचान सकते हो ? यह मल्लिका है जो धीरे–धीरे बड़ी हो रही है और माँ के स्थान पर अब मैं इसकी देखभाल करती हूँ। ..... यह मेरे अभाव की सन्तान है। जो भाव तुम थे, वह दूसरा नहीं हो सका, परन्तु अभाव के कोष्ठ में किसी दूसरे की जाने कितनी–कितनी आकृतियाँ हैं। जानते हो मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं अपनी दृष्टि में नाम नहीं, केवल विशेषण हूँ।

संदर्भ एवं प्रसंग –

उपर्युक्त अवतरण मोहन राकेश के प्रसिद्ध नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के त तीय अंक से उद्धृत किया गया है।

मल्लिका जब मातुल से यह समाचार सुनती है कि कालिदास ने काश्मीर छोड़ दिया है और संन्यास लेकर काशी चला गया है, तो मल्लिका को ठेस पहुँचती है। मातुल के जाने के बाद मल्लिका आत्मालाप करती है। अपने जीवन के उन वर्षों को स्मरण करती है जो कालिदास के जाने के बाद व्यतीत हुए हैं।

व्याख्या –

मल्लिका अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में स्वयं से वार्तालाप करती है। मंच पर वह भीतर का किवाड़ खोलती है और इस तरह व्यवहार करती है जैसे कालिदास सामने हो और वह उसे संबोधित कर रही हो। वह अपने जीवन को कालिदास को समर्पित कर चुकी है और उसके जाने के बाद के वर्ष उसने अभाव और संघर्षों में गुज़ारे हैं। इसीलिए कालिदास के संन्यास की खबर से व्यथित होकर वह सोचती है कि उसका स्वयं का जीवन, समर्पण निरर्थक हो गया। इसी ऊहापोह में वह पालने की ओर संकेत करके कहती है कि इस जीव(पालने में लेटी बच्ची) को देखते हो, पहचान सकते हो ? वह कहती है कि यह भी मल्लिका है जो धीरे–धीरे बड़ी हो रही है। पहले माँ मल्लिका की देखभाल करती थी और अब वह इस नन्हीं मल्लिका की देखभाल करती है। मल्लिका कहती है कि वह बच्ची उसके अभाव की संतान है। अर्थात् कालिदास के प्रति जो उसका प्रेम–भाव था, वह तो और के प्रति नहीं हो सकता, परन्तु भावरहित अवस्था में भी किसी दूसरे की कितनी ही आकृतियाँ हैं। जीवन में दूसरे का आना तो हुआ ही, भले ही मल्लिका के मन में उसके लिए भाव न हो। इसका एक अर्थ यह भी है कि कालिदास की अनुपस्थिति में आर्थिक अभाव के चलते भी मल्लिका को कई समझौते करने पड़े और यह बच्ची भी उसी अभाव की संतान है। वह यह भी कहती है कि उसने अपना नाम खोकर एक विशेषण (वारांगणा का) प्राप्त किया है और अब वह स्वयं की दृष्टि में नाम नहीं, केवल विशेषण है।

विशेष –

(1) 'अभाव' शब्द में श्लेष अंलकार है, पहला अर्थ है – भावरहित, दूसरा अर्थ है– कमी या आर्थिक अभाव।

(2) मल्लिका की विवशता व्यंजित होती है।

(3) संवाद सजीव वातावरण उपस्थित करते हैं।

9. हाँ, क्योंकि सत्ता और प्रभुता का मोह छूट गया है। आज मैं उस सबसे मुक्त हूँ जो वर्षों से मुझे कसता रहा है। काश्मीर में लोग समझते हैं कि मैंने संन्यास ले लिया है। परन्तु मैंने संन्यास नहीं लिया। मैं केवल मात गुप्त के कलेवर से मुक्त हुआ हूँ जिससे पुनः कालिदास के कलेवर में जी सकूँ। एक आकर्षण सदा मुझे उस सूत्र की ओर खींचता था जिसे तोड़कर मैं यहाँ से गया था। यहाँ की एक–एक वस्तु में जो आत्मीयता थी, वह यहाँ से जाकर मुझे कहीं नहीं मिली। मुझे यहाँ की एक–एक वस्तु के रूप और आकार का स्मरण है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संदर्भ एवं प्रसंग –

उद्धृत अंश मोहन राकेश के चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के तृतीय अंक से लिया गया है। यह कालिदास के काश्मीर से ग्राम–प्रदेश लौटने के बाद, मल्लिका और कालिदास के संवाद का अंश है।

व्याख्या –

कालिदास, मल्लिका से कहता है कि वह काश्मीर से लौट आया है, क्योंकि सत्ता और प्रभुता से उसका मोह छूट गया है। यही दो चीजें मनुष्य को सबसे ज्यादा लुभाती हैं और इन्हीं के चलते वह परेशान भी होता है। इसलिए कालिदास शासन, अधिकार सब–कुछ छोड़कर लौट आया है। वह कहता है कि जो चीजें उसे वर्षों से कसती थीं, बाँधती थीं, आज वह उन सबसे स्वतंत्र है, मुक्त है। वह मल्लिका को बताता है कि काश्मीर के लोग समझते हैं कि उसने संन्यास ले लिया है, परन्तु उसने संन्यास न लेकर केवल मातृगुप्त का कलेवर या आवरण छोड़ा है, ताकि पुनः कालिदास के कलेवर में जी सके(गौरतलब है कि उज्जयिनी में कालिदास को 'आर्य मातृगुप्त' नाम दिया गया था)। कालिदास मल्लिका के समक्ष यह स्वीकार करता है कि जिस सूत्र को या बंधन को तोड़कर वह इस ग्राम–प्रदेश से गया था, उसकी ओर उसे एक आकर्षण हमेशा खींचता था। उसे यहाँ की हर एक वस्तु में आत्मीयता दिखाई देती थी, अपनापन दिखाई देता था, जो राजधानी में जाकर कहीं नहीं मिले। वह कहता है कि उसे अभी भी यहाँ की (मल्लिका के घर की भी) एक–एक वस्तु के रूप और आकार याद हैं, यह सब यहाँ से लगाव का ही परिणाम है।

विशेष –

(1) कालिदास का मातृभूमि से लगाव परिलक्षित होता है।

(2) नाटककार का आग्रह राजनीतिक जीवन के बंधनों की अपेक्षा सहज–स्वच्छंद जीवन की ओर अधिक है।

10. मैं यहाँ से क्यों नहीं जाना चाहता था ? एक कारण यह भी था कि मुझे अपने पर विश्वास नहीं था। मैं नहीं जानता था कि अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के बाद प्रतिष्ठा और सम्मान के वातावरण में जाकर मैं कैसा अनुभव करूँगा। मन में कहीं यह आशंका थी कि वह वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा ...... और यह आशंका निराधार नहीं थी।

संदर्भ एवं प्रसंग –

उद्धृत अंश मोहन राकेश के चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के तृतीय अंक से लिया गया है। यह कालिदास के काश्मीर से ग्राम–प्रदेश लौटने के बाद, मल्लिका और कालिदास के संवाद का अंश है।

व्याख्या –

कालिदास मल्लिका से कहता है कि अंबिका की उसके विषय में जो आशंका थी, वह सही थी। वह इस ग्राम–प्रदेश से नहीं जाना चाहता था। इसका एक कारण तो यह था कि उसे स्वयं पर विश्वास नहीं था। वह दुविधा में था, क्योंकि यहाँ ग्राम–प्रदेश में अभाव और भर्त्सना का जीवन जी रहा था। ऐसे में उसे लगता था कि राजधानी में सम्मान और प्रतिष्ठा के वातावरण में जाकर पता नहीं कैसा अनुभव होगा, क्योंकि दोनों ही बिल्कुल अलग दिशाएँ हैं। ऐसे में व्यक्ति सहज नहीं रह सकता। कालिदास के मन में भी यह भय, यह आशंका थी कि सम्मान और प्रतिष्ठा का ऐसा वातावरण उसे छा लेगा। अर्थात् उसकी जो सहजता है, उसके जीवन की जो दिशा है, जो कवि–मन है, ग्राम–प्रदेश की जो उन्मुक्त जीवन–शैली है, इससे अलग वहाँ के शासकीय वातावरण में, सम्मान और प्रतिष्ठा के, अधिकारपूर्ण परिवेश में वह कैसे सहज रह पाएगा। उसे डर था कि ऐसा परिवेश उस पर नियंत्रण कर लेगा, उसके जीवन की दिशा बदल देगा। कालिदास कहता है कि उसका यह डर निराधार नहीं था, अर्थात् वास्तव में ऐसा ही हुआ। सत्ता के, सम्मान के वातावरण में उसके जीवन की दिशा, दृष्टिकोण, जीवन–शैली सब बदल गए।

विशेष –

(1) कालिदास ने स्वयं के विषय में अंबिका के मत को सही स्वीकार किया है।

(2) कालिदास का अन्तर्द्वन्द्व उजागर होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11. मुझे बार–बार अनुभव होता है कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह में पड़कर उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है, और जिस विशाल में मुझे रहना चाहिए था उससे दूर हट आया हूँ। जब भी मेरी आँखें दूर तक फैली क्षितिज–रेखा पर पड़तीं, तभी यह अनुभूति मुझे सालती कि मैं उस विशाल से दूर हट आया हूँ। मैं अपने को आश्वासन देता हूँ कि आज नहीं तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा लूँगा और समान रूप से दोनों क्षेत्रों में अपने को बाँट दूँगा। परन्तु मैं स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों बनता और चालित होता रहा। जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थी, वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे–धीरे खण्डित होता गया, होता गया। और एक दिन . . . एक दिन मैंने पाया कि मैं सर्वथा टूट गया हूँ। मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसका उस विशाल के साथ कुछ भी सम्बन्ध था।

संदर्भ एवं प्रसंग –

उद्धृत अंश मोहन राकेश के चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के तृतीय अंक से लिया गया है। यह कालिदास के काश्मीर से ग्राम–प्रदेश लौटने के बाद, मल्लिका और कालिदास के संवाद का अंश है।

व्याख्या –

कालिदास मल्लिका के सामने यह स्वीकार करता है कि राजनीति उसका कार्यक्षेत्र नहीं है, उसने प्रभुता या अधिकार और सुविधा के मोह में पड़कर राजनीति में अनधिकार प्रवेश किया है। कालिदास यह भी कहता है कि इसके कारण उसे जिस विशाल में रहना चाहिए था, उससे दूर हो गया है। अर्थात् एक कवि–मन जिस तरह सृष्टि के कण–कण में, हर गति में आत्मीयता अनुभव करता है, उस विशाल शक्ति के साथ एकतान होता है, राजनीति के क्षेत्र के कारण वह उससे इतर हो गया है। वह मल्लिका से कहता है कि जब भी वह दूर तक फैली हुई क्षितिज–रेखा को देखता, तभी यह अनुभूति उसे पीड़ा पहुँचाती है कि वह उस विशाल से दूर हो गया है, अलग हो गया है। कालिदास कहता है कि वह स्वयं को आश्वासन देता कि एक न एक दिन वह इन परिस्थितियों पर नियंत्रण कर लेगा और राजनीति और भावना दोनों क्षेत्रों में अपने को बराबर बाँट देगा, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हो पाया। वह स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों बनता रहा, नियंत्रित होता रहा, परिस्थितियाँ उसे अपने अनुसार चलाती रहीं। जिस कल की प्रतीक्षा कालिदास को थी, वह कल कभी नहीं आया। कालिदास ने सोचा था कि आज नहीं तो कल, वह हालात पर विजय पा लेगा, पर ऐसा नहीं हो पाया और धीरे–धीरे वह खण्डित होता गया, टूटता गया। कालिदास फिर मल्लिका से कहता है कि और एक दिन उसने अनुभव किया कि वह बिल्कुल टूट चुका है, वह ऐसा व्यक्ति नहीं रहा है जिसका उस विशाल के साथ कुछ भी संबंध था। अब वह बदल चुका है, अलग हो चुका है, उस विशाल की भावना से दूर हो चुका है।

विशेष –

(1) राजनीति में व्यक्ति के आत्मसीमित बन जाने का संकेत मिलता है।

(2) कालिदास के इस कथन से यह भी ध्वनित होता है कि राजनीति और कविता/आध्यात्म अलग–अलग क्षेत्र हैं। इनमें सामंजस्य करना आसान नहीं।

(3) कालिदास का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व उजागर होता है।

(4) संवाद रंगमंच की दृष्टि से प्रभावी और कालिदास के अन्तर्द्वन्द्व को उभारने में सक्षम हैं।

12. लोग सोचते हैं मैंने उस जीवन और वातावरण में रहकर बहुत–कुछ लिखा है। परन्तु मैं जानता हूँ कि मैंने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है, वह यहाँ के जीवन का ही संचय था। 'कुमारसंभव' की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। 'मेघदूत' के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह–विमर्दिता यक्षिणी तुम हो– यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें नगर में देखने की कल्पना की। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में शकुन्तला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं। मैंने जब–जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर–फिर दोहराया। और जब उससे हटकर लिखना चाहा, तो रचना प्राणवान् नहीं हुई। 'रघुवंश' में अज का विलाप मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति है और ......।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संदर्भ एवं प्रसंग –

उद्धृत अंश मोहन राकेश के चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के तृतीय अंक से लिया गया है। यह कालिदास के काश्मीर से ग्राम–प्रदेश लौटने के बाद, मल्लिका और कालिदास के संवाद का अंश है।

व्याख्या –

कालिदास, मल्लिका से कहता है कि लोग यह सोचते हैं कि उसने उस जीवन और वातावरण (उज्जयिनी का राजनीतिक वातावरण) में रहकर बहुत–कुछ लिखा है, परन्तु वास्तव में उसने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा, वह सब तो यहीं के जीवन का संचय था, उपलब्धि थी। गौरतलब है कि कालिदास ने ग्राम–प्रदेश में 'ऋतुसंहार' की रचना की थी, उससे प्रभावित होकर उज्जयिनी के राजा ने उन्हें नगर में बुलवाया और 'राजकवि' का पद दिया। वहाँ रहते हुए उन्होंने 'मेघदूत', 'कुमारसंभव', 'रघुवंश', 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' आदि कृतियों की रचना की। अतः लोगों का सोचना स्वाभाविक था कि उसने वहाँ के जीवन में बहुत–कुछ लिखा है, परन्तु वह इसे स्वीकार नहीं करता। वह मल्लिका के सामने यह मानता है कि उसने वहाँ रहकर जो–कुछ भी लिखा, वह सब तो यहाँ के, इस ग्राम–प्रदेश के जीवन का ही संचय था। वह मल्लिका को अपनी कृतियों की प्रेरणा बताते हुए कहता है कि 'कुमारसंभव' की पृष्ठभूमि यह हिमालय है (कोई और जगह नहीं) और तपस्या करने वाली उमा या पार्वती स्वयं मल्लिका है। 'मेघदूत' के विरही यक्ष की पीड़ा स्वयं कालिदास की पीड़ा है और वह विरह से व्याकुल यक्षिणी मल्लिका है, हालांकि कालिदास ने अपनी रचना में स्वयं के ग्राम में होने और मल्लिका के नगर में होने की कल्पना की। वह आगे कहता है कि 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में शकुंतला के रूप में भी मल्लिका ही उसके सामने थी। कालिदास यह सच्चाई स्वीकार करता है कि उसने जब–जब भी लिखने का प्रयत्न किया, मल्लिका के और स्वयं के जीवन के इतिहारा को फिर–फिर दोहराया, अर्थात् उरी कहानी को अलग–अलग रूप दिये। वह यह गी कहता है कि जब गी उराने इससे हटकर लिखने की कोशिश की, अपने अतीत–जीवन से इतर जाकर लिखने का प्रयास किया तो उसकी रचना प्राणवान् नहीं हुई, उसमें वह मार्मिक अनुभूति नहीं आ पाई। वह यह भी कहता है कि 'रघुवंश' महाकाव्य में अज का विलाप स्वयं उसकी वेदना की अभिव्यक्ति है। इसी प्रसंग में वह आगे और भी कहने वाला होता है, परन्तु मल्लिका को दोनों हाथों से अपना मुँह छिपाते देख सहसा रूक जाता है। कालिदास की यह स्वीकारोक्ति महत्त्वपूर्ण है कि उसकी हर कृति में मल्लिका, उसका अतीत ही प्रेरणा–रत्रोत रहे हैं, हर पात्र के रूप गें उराकी वेदना ही गुखर हुई है, उराकी तपरया ही राकार हुई है। गले ही वह 'कुमारसंभव' की उमा हो, 'मेघदूत' की यक्षिणी या 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' की शकुंतला।

विशेष :–

(1) मोहन राकेश ने कालिदास जैसे ऐतिहासिक पात्र को, वातावरण को, अपनी कल्पना के रंग में रँगकर एकदम सजीव, जीवंत बना दिया है।

(2) कालिदास के कथन से यह भी व्यंजित होता है कि प्रतिभाशाली कवि एक ही कहानी या घटना को नये–नये रूप में प्रस्तुत कर सकता है और वह भी इस तरह कि दोहराव ना लगे। इसीलिए कहते हैं कि प्रतिभावान् कवियों की वाणी नित नवत्व धारण करती है।

13. तुमने ये प भेठ अपने हाथों से बनाये थे कि इन पर मैं एक महाकाव्य की रचना करूँ ! कृ स्थान–स्थान पर इन पर पानी की बूँदें पड़ी हैं जो निःसन्देह वर्षा की बूँदे नहीं हैं। लगता है तुमने अपनी आँखों से इन कोरे पृष्ठों पर बहुत–कुछ लिखा है। और आँखों से ही नहीं, स्थान–स्थान पर ये प भेठ स्वेद–कणों से मैले हुए हैं, स्थान–स्थान पर फूलों की सूखी पत्तियों ने अपने रंग इन पर छोड़ दिये हैं। कई स्थानों पर तुम्हारे नखों ने इन्हें छीला है, तुम्हारे दाँतों ने इन्हें काटा है। और इसके अतिरिक्त ये ग्रीष्म की धूप के हल्के–गहरे रंग, हेमन्त की पत्रधूलि और इस घर की सीलन कृ ये पृष्ठ अब कोरे कहाँ हैं मल्लिका ? इन पर एक महाकाव्य की रचना हो चुकी है ..... अनन्त सर्गों के एक महाकाव्य की। इन पृष्ठों पर अब नया कुछ क्या लिखा जा सकता है ?

संदर्भ एवं प्रसंग –

उद्धृत अंश 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के तृतीय अंक से लिया गया है। इस नाटक के प्रणेता प्रख्यात नाटककार मोहन राकेश हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यह प्रसंग उस समय का है जब मल्लिका कालिदास को बताती है कि उसके पास कालिदास की रची सारी कृतियाँ हैं, कालिदास उन प्रतियों को देखते हैं तो उनके बीच में उसे कुछ कोरे प   भठ भी दिखाई देते हैं। मल्लिका से उन प   भठों के विषय में पूछने पर वह बताती है कि ये कोरे प   भठ उसने अपने हाथों से सिलकर बनाये थे और उसे भेंट करना चाहती थी, ताकि वह उन पर अपने सबसे बड़े महाकाव्य की रचना कर सके, परन्तु लंबा समय हो जाने से अब तो वे पृष्ठ टूटने भी लगे हैं, इसलिए उसे यह कहते हुए भी संकोच होता है कि वे उसकी रचना के लिए हैं। इसके प्रत्युत्तर में यह कालिदास का कथन है।

व्याख्या –

कालिदास, मल्लिका से उन कोरे पृष्ठों के लिए कहता है कि ये उसने (मल्लिका ने) अपने हाथों से बनाये थे, ताकि उन पर वह (कालिदास) एक महाकाव्य की रचना करे। फिर कालिदास उन पृष्ठों को गौर से देखते हुए कहता है कि स्थान–स्थान पर इन पृष्ठों पर पानी की बूँदें पड़ी हुई हैं, और यह भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये वर्षा की बूँदें नहीं हैं, बल्कि मल्लिका ने अपनी आँखों से इन कोरे पृष्ठों पर बहुत–कुछ लिखा है। इसका अर्थ हुआ कि उन कोरे पृष्ठों को हाथ में लेकर मल्लिका खूब रोई है, इसका प्रमाण हैं वे अश्रु–कण जो उन कोरे पृष्ठों पर दिखाई दे रहे हैं। कालिदास आगे कहता है कि ये पृष्ठ स्थान–स्थान पर स्वेद–कणों से मैले हुए हैं (मल्लिका ने कई बार उन्हें हाथों में लिया है, जिससे स्वेद–कण उन पृष्ठों पर अंकित हो चुके हैं), कई जगह फूलों की सूखी पत्तियों ने अपना रंग उन पृष्ठों पर छोड़ा है (मल्लिका ने उन पृष्ठों पर पुष्प–पत्तियाँ बिखेरी हैं)। वह उन कोरे पृष्ठों को देखता हुआ मल्लिका से आगे कहता है कि कई स्थानों पर तुम्हारे नखों ने इन्हें छीला है, तुम्हारे दाँतों ने इन्हें काटा है (वे पृष्ठों स्थान–स्थान पर क्षत–विक्षत हो रहे हैं, यह कालिदास की कल्पना का रूप है कि मल्लिका के नखों ने उन्हें छीला है, उसके दाँतों ने उन्हें काटा है)। वह और भी कहता है कि इन सबके अलावा ये पृष्ठों गर्मी की धूप के हल्के–गहरे रंग (कभी हल्की, तो कभी तेज धूप), हेमन्त की धूल और इस घर की सीलन से सने हैं, अर्थात् बहुत–से मौसम का प्रभाव इन पर दिखाई देता है। वह मल्लिका से कहता है कि अब ये पृष्ठों कोरे कहाँ रहे हैं, इन पर तो एक महाकाव्य की रचना हो चुकी है, और वह भी ऐसे–वैसे नहीं, अनन्त सर्गों के एक महाकाव्य की। अर्थात् मल्लिका ने उन कोरे पृष्ठों पर मल्लिका के भावों का इतना गहरा अंकन है कि उन पर अब और नया कुछ लिखने की बात सोचना भी बेमानी होगा। वे पृष्ठों स्वयं में ही एक महाकाव्य हैं।

विशेष –

(1) नाटककार ने कालिदास के इस कथन के माध्यम से मानो मल्लिका की सारी पीड़ा पाठकों के सामने साकार कर दी है।

(2) इन पंक्तियों में नाटककार मोहन राकेश का कवि रूप उभर कर आता है।

14. जैसे तुमसे बाहर जीवन की गति ही नहीं है। तुम्हीं तुम हो और कोई नहीं है। परन्तु समय निर्दय नहीं है। उसने औरों को भी सत्ता दी है। अधिकार दिये हैं। वह धूप और नैवेद्य लिये घर की देहली पर रूका नहीं रहा। उसने औरों को अवसर दिया है। निर्माण किया है। . . . तुम्हें उसके निर्माण से वित   भणा होती है? क्योंकि तुम जहाँ अपने को देखना चाहते हो, नहीं देख पा रहे ?

संदर्भ एवं प्रसंग –

उपर्युक्त गद्यखण्ड हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश प्रणीत नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के तृतीय अंक से उद्धृत है । कालिदास और मल्लिका के संवाद के बीच ही विलोम नशे की हालत में मल्लिका के घर आता है। कालिदास को पहचानकर वह उस पर व्यंग्य करता है और अब मल्लिका के घर में अधिकारपूर्वक आने की घोषणा करता है। कालिदास उस समय उसे वहाँ से चले जाने को कहता है, तब विलोम हँसकर उसे समय के बदलाव और उसके अधिकार के बारे में कहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या –

विलोम, कालिदास से कहता है कि वह यह न समझे कि उसके अधिकार शाश्वत हैं और हमेशा बने रहेंगे। पूर्व में वह भले ही मल्लिका के घर से विलोम को चले जाने का आदेश देता रहा हो और मल्लिका भी उसका समर्थन करती रही हो, लेकिन अब वह स्थिति नहीं है। कालिदास से बाहर भी जीवन की गति है। वह अपना रूख उज्जयिनी की ओर कर गया, तो पीछे ग्राम में सब–कुछ वैसा ही तो नहीं बना रहेगा। उसके अतिरिक्त भी किसी ओर को अधिकार मिल सकते हैं। अब विलोम मल्लिका के घर में अधिकारपूर्वक आता है। समय ने सबको सत्ता दी है, अधिकार दिये हैं। समय धूप और नैवेद्य लिये घर की देहली पर रूका नहीं रहता, उसमें निरंतर परिवर्तन होता है। वह एक को ही बार–बार अवसर नहीं देता, औरों को भी देता है, दूसरों को भी बनाता है। विलोम कालिदास को कहता है कि उसे (कालिदास को) समय के इस बदलाव से, इस निर्माण से इसलिए वितृष्णा होती है, क्योंकि वह जहाँ स्वयं को देखना चाहता है, नहीं देख पा रहा। मल्लिका के जीवन में, घर में अब कालिदास की स्थिति बदल चुकी है और यह उसे सहन नहीं हो पा रहा है।

विशेष –

(1) समय के परिवर्तन का, समय की शक्ति का संकेत किया गया है।

(2) पहले अंक और तीसरे अंक में तुलनात्मक रूप से विलोम और कालिदास की स्थिति के व्यतिरेक(contrast) की व्यंजना होती है।

3.3.1 बोध प्रश्न–

1. व्याख्या लिखने के महत्वपूर्ण बिन्दु क्या है?

3.4 'आषाढ़ का एक दिन' : नाटकीय तत्वों के आधार पर

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक, महाकवि कालिदास के जीवन पर आधारित है, जिसमें तीन अंक हैं। यह ऐतिहासिक नाटक नहीं है, भले ही इस नाटक के नायक कालिदास, ऐतिहासिक पात्र हैं। लेखक ने इसे स्वयं ही स्पष्ट किया है – "यह नाटक कालिदास के बारे मे नही है। मै इस नाटक में लेखक की द्विविधा को चित्रित करना चाहता था।" लोगो के लिए कालिदास का नाम चिर–परिचित है, इस नाम को लेने से, किसी अन्य प्रतीक की आवश्यकता नाटककार को न थी, इसीलिए उन्होंने अपने नायक का नाम कालिदास चुना।

3.4.1 कथासार

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, नाटक तीन अंकों में विभाजित है, अंकों के अनुसार नाटक का कथासार निम्नानुसार है –

(i) प्रथम अंक –

नाटक का प्रारम्भ नाटक की नायिका और कालिदास की प्रेमिका मल्लिका तथा माँ अम्बिका के वार्तालाप से होता है। मल्लिका आषाढ़ माह के प्रथम दिन हुई घनघोर वर्षा में भीग कर घर आती है, कालिदास के सान्निध्य और प्रकृति के उस रोमांचक दृश्य से अभिभूत वह, अपनी माँ को उस अनुभव से जोड़ना चाहती है और विस्तारपूर्वक घाटी में घिरे मेघों का, कोमल और आर्द्र वायु का, पर्वत–शिखरों को सहलाती मेघ–मालाओं का वर्णन करती है, किन्तु माँ अंबिका इस सबसे उदासीनता प्रकट करती हुई अपने कार्य में व्यस्त रहने का दिखावा करती हुई चुप रहती है। माँ की चुप्पी, मल्लिका को खलती है, वह उसे कुछ भी बोलने के लिए आग्रह करती है। परन्तु अंबिका चुप रहती है। उसकी उदासी का कारण मल्लिका बार–बार पूछती है, किन्तु वह बहाना बनाकर टाल देती है, जबकि अंबिका अपनी बेटी के भविष्य को लेकर अत्यंत चिंतित है। उसी समय बाहर अश्वों के टापों की आवाज सुनाई देती है जिसे सुनकर भयभीत अंबिका किसी अशुभ के होने का संकेत देती है।

अम्बिका, मल्लिका को बताती है कि अग्निमित्र मल्लिका के विवाह का प्रस्ताव लेकर जहाँ गया था, वहाँ से असफल होकर लौट आया है। वे लोग इस सम्बन्ध के लिए प्रस्तुत नहीं है। मल्लिका माँ की इस सूचना से खिन्न हो उठती है, क्योंकि वह विवाह करना ही नहीं चाहती। अपने और कालिदास के सम्बन्धों को लेकर वह स्पष्ट कर देती है कि उसे लोकापवाद

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का भय नहीं है। उसे अपना जीवन स्वयं जीने का अधिकार है। वह अपराधबोध से भी ग्रस्त नहीं है क्योंकि उसका प्रेम पवित्र है। इसी वार्तालाप के बीच कालिदास एक घायल हरिण शावक को लेकर आते हैं और मल्लिका से उसकी सेवा–सुश्रुषा करने को कहते हैं। मल्लिका और वह उसे गर्म दूध पिलाते हैं। तभी राजकर्मचारी दंतुल, जिसने हरिण–शावक का शिकार किया था, मल्लिका के घर पहुँचता है और कालिदास से अपना शिकार माँगता है। दोनों में कहासुनी होती है, कालिदास उस शावक को लेकर वहाँ से चले जाते हैं। तभी क्रोधित दंतुल को मल्लिका से कालिदास का परिचय प्राप्त होता है। हक्का–बक्का दंतुल, मल्लिका को बताता है कि सम्राट उनके प्रशंसक हैं और उन्हें राजकवि का सम्मान देना चाहते हैं, वे उन्हें लेने आए हैं तो मल्लिका बहुत प्रसन्न होती है। दंतुल कालिदास से क्षमा माँगने पीछे–पीछे जाते हैं। अंबिका को जब यह समाचार मिलता है तो वह उदासीन ही दिखाई देती है। वह कालिदास के प्रति पूर्वाग्रही है कि कालिदास आत्मसीमित है, उसे अपने सिवाय किसी से भी मोह नहीं है। वह कालिदास से रूष्ट है, क्योंकि मल्लिका के लिए अपवाद को वह सहन नहीं कर पाती। मल्लिका तर्क देती है कि कालिदास का जीवन अभावग्रस्त रहा है, ऐसे में वह विवाह कैसे कर सकते हैं। किन्तु भविष्य की स्थितियों के बाद भी अंबिका को विवाह में आशंका दिखाई देती है। वह कालिदास से घृणा करती है, क्योंकि उन दोनों का जीवन, उसके कारण बरबाद हो रहा है। मल्लिका, राजकवि के प्रस्ताव को जानकर अब कालिदास से विवाह की बात उठाना नहीं चाहती, क्योंकि उसे इसमें स्वार्थपरता की गंध आती है। अंबिका अपनी बेटी को भावना के जाल से निकाल कर वास्तविकता की ओर ले जाना चाहती है, किन्तु असफल रहती है। तभी क्रोधित मातुल आकर बताते हैं कि कालिदास ने राजसम्मान को अस्वीकार कर दिया है। निक्षेप के संकेत पर मल्लिका, देवी मंदिर जाकर कालिदास से आग्रह करती है। वह घर लौटती है, वहाँ विलोम उपस्थित होता है, मल्लिका को उसका घर आना, हस्तक्षेप करना अच्छा नहीं लगता। कालिदास, मल्लिका और अंबिका से विलोम का वार्तालाप होता है। वह चाहता है कि कालिदास मल्लिका के विषय में सोचे, किन्तु मल्लिका हस्तक्षेप कर इस बातचीत को रोक देती है। बाद में कालिदास उज्जयिनी चले जाते हैं। अंबिका मल्लिका के दुःख को जानकर उसे सीने से लगा लेती है।

(ii) द्वितीय अंक –

कालिदास को गए कई वर्ष बीत जाते हैं। मल्लिका के घर की जर्जर अवस्था को दर्शाता यह अंक प्रारम्भ होता है। अंबिका का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जाता है। उसकी सेवा, मल्लिका दिन–रात करती है, घर भी देखती है, किन्तु भीतर से वह पूरी तरह टूट चुकी होती है। निक्षेप, उसकी यह दुःखी दशा देखकर स्वयं को दोषी समझता है, क्योंकि उसके कहने पर ही, कालिदास को जाने के लिए मल्लिका ने प्रेरित किया था। निक्षेप कालिदास के विषय में कुछ सूचनाएँ देता है कि उसका विवाह प्रियंगुमंजरी से हो गया है, उसने कई नाटक लिखे हैं, जो रंगमंच पर खेले भी जा चुके हैं और वह शासन–कार्य में संलग्न हो गया है। सब सुनकर मल्लिका कोई शिकायत नहीं करती, वरन् संतोष ही प्रकट करती है। तभी अश्वों की टाप एक बार फिर सुनाई देती है। एक अश्व की टाप घर के पास तक आकर दूर चली जाती है, निक्षेप को संदेह होता है कि वह कालिदास ही थे। तभी रंगिनी और संगिनी मल्लिका के घर आती हैं, वे दोनों कालिदास के जीवन की पृष्ठभूमि का अध्ययन कर रही हैं। मल्लिका से बात–चीत द्वारा कुछ जानकारियाँ प्राप्त कर वे लौट जाती हैं। तभी अनुस्वार और अनुनासिक राजमहिषी के आगमन की सूचना देने आते हैं और घर में कुछ परिवर्तन करना चाहते हैं, इधर का सामान उधर और उधर का इधर। किन्तु वे बस बात करते हैं, परिवर्तन कुछ नहीं करते। मल्लिका अपने उस घर में प्रियंगुमंजरी का स्वागत करती है। राजमहिषी उसे बताती है कि वह मल्लिका को और उसके घर को देखना चाहती है, क्योंकि कालिदास ने उसकी बहुत बार चर्चा की थी। प्रियंगुमंजरी, उसके जर्जर घर का परिष्कार करवाना चाहती है, मल्लिका को अपनी माता के साथ नगर आने का सुझाव देती है। पहले आए हुए अनुस्वार या अनुनासिक या किसी अन्य राज–अधिकारी से विवाह कराने का प्रस्ताव भी देती है। वस्तुतः राजमहिषी, मल्लिका की मदद करने की आड़ में उसे अपमानित करती है, जिसे समझ कर मल्लिका संयत शब्दों में अत्यंत दृढ़ता से इन सारे प्रस्तावों को ठुकरा देती है।

मल्लिका के पास कालिदास की रचनाओं को देखकर प्रियंगुमंजरी को आश्चर्य होता है। वह यह जानती है कि मल्लिका बचपन से कालिदास की संगिनी रही है। इसलिए वह उसे और वहाँ के पेड़–पौधों, पत्थरों और हरिण–शावकों को अपने साथ ले जाना चाहती है ताकि कालिदास इन सब की कमी अनुभव न करे। प्रियंगुमंजरी के चले जाने पर विलोम आता है और उन्हें भाग्यशाली कहता है, किन्तु कालिदास के मिलने न आने पर आश्चर्य व्यक्त करता है और संभावना जताता है कि संभवतः पर्वत प्रदेश से लौटने पर आए। वह भी वहीं रूकना चाहता है, किन्तु मल्लिका उसे जाने को कहती है। कालिदास,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मल्लिका से मिलने नहीं आता, यह सोचकर मल्लिका व्यथित होती है, रोती है, किन्तु अपनी माँ को उसके विरूद्ध कुछ कहने नहीं देती।

(iii) तृतीय अंक –

इस का प्रारम्भ, प्रथम अंक के प्रारम्भ जैसा ही होता है। आकाश बादलों से घिरा हुआ है और धुँआधार वर्षा हो रही है। कालिदास के लौट जाने को भी कई वर्ष बीत चुके हैं, मल्लिका का घर और अधिक जर्जर अवस्था में दिखाई देता है। टूटा कुम्भ, स्याही चढ़े बरतन, सूनी दीवारें आदि मल्लिका के उदास जीवन की ओर संकेत करते हैं। आर्य मातुल राजनगरी से अपनी एक टांग तुड़वा कर लौट आते हैं, बैसाखी से चलते हुए मल्लिका के घर वर्षा में शरण लेने आते हैं। राजमहल के जीवन से पराङ्मुखी मातुल अत्यंत दुखी दिखाई देते हैं। नल्लिका की दुरवस्था पर और दुखी होते हैं। वह समाचार भी देते हैं कि कालिदास ने काशमीर छोड़ दिया है और संन्यास लेकर कहीं चले गए हैं। मल्लिका का हृदय इस बात को स्वीकार नहीं करता, उसे अपना जीवन निरर्थक लगने लगता है। उसने कालिदास के लिए सब कुछ सहा, विलोम से विवाह कर एक कन्या को जन्म दिया, किन्तु मन ही मन वह कालिदास को भूल नहीं सकी। वह अपने को वारांगना समझने लगती है और टूटती चली जाती है।

घनघोर वर्षा में कालिदास मल्लिका के घर पहुँचता है, उसे सब–कुछ बदला–बदला सा लगता है – मल्लिका का घर, मल्लिका और स्वयं अपना आप भी। वह मल्लिका को पिछली बार बिना मिले चले जाने की सफाई भी देता है, अपने ऊपर विश्वास न होने की बात कहता है। अब सत्ता का मोह छोड़कर वह अपने परिवेश में लौट आया है और एक नया जीवन प्रारम्भ करना चाहता है। तभी भीतर से एक बच्चे के रोने की आवाज आती है, जिसे मल्लिका अपना वर्तमान बताती है। तभी विलोग का अधिकारपूर्ण आगगन होता है। वह अपने घर गें कालिदारा का आतिथ्य करना चाहता है। गल्लिका इन राब पर ध्यान न देते हुए अपने हाथों से बाँधे हुए पृष्ठ नया महाकाव्य लिखने के लिए कालिदास को देती है, किन्तु कालिदास को उन पृष्ठों पर आँसुओं के चिह्न और स्वेद–कण तथा नाखूनों के निशान दिखाई देते हैं, जो पहले से ही एक महाकाव्य रचा जाने का संकेत देते हैं। कालिदास ये सब जानकर समय की सत्ता को, परिवर्तन को स्वीकार कर पुनः लौट जाता है, मल्लिका बच्ची को लिए रोती रह जाती है।

इस प्रकार उपर्युक्त कथानक के पश्चात् ज्ञात होता है कि नाटक का कालिदास, ऐतिहासिक पात्र है, किन्तु कवि ने अपनी कल्पना के अनुसार उसे एक अलग ही रूप दिया है। कालिदास के माध्यम से साहित्यकारों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। सृजन् के समय नाटककार को जिस अन्तर्द्वन्द्व से गुजरना पड़ता है, उसका चित्रण किया है। साहित्यकारों के लिए राज्याश्रय की उपयुक्तता–अनुपयुक्तता और उसके परिणामों की चर्चा की है। इस नाटक में एक ओर प्रेम के त्रिकोण द्वारा प्रेम भावना की श्रेष्ठता, त्याग की गरिमा का चित्रण है, तो दूसरी ओर जीवन–यापन के लिए भावना की नहीं, व्यावहारिकता की महत्ता होती है, इस बात को भी स्पष्ट किया गया है। मल्लिका के माध्यम से नए युग की नारी–चेतना, स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारों को भी अभिव्यक्त किया गया है। मंचन की दृष्टि से यह सफल कलाकृति सिद्ध हुई है।

3.4.2 चरित्र–चित्रण

'आषाढ़ का एक दिन' मोहन राकेश का अप्रतिम नाटक है, ऐतिहासिक पात्रों को लेकर नाटककार ने कल्पना का प्रचुर प्रयोग और विस्तार किया है। प्रेम को एक आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। नाटक में कुल 12 पात्र हैं, जिनमें पाँच नारी पात्र हैं – मल्लिका, अम्बिका, रंगिणी, संगिनी, प्रियंगुमंजरी। इन नारी पात्रों में प्रमुख नारी पात्र हैं– मल्लिका और अम्बिका। पुरूष पात्र सात हैं– कालिदास, विलोम, मातुल, निक्षेप, दंतुल, अनुस्वार और अनुनासिक।

अ. नाटक के नारी पात्र –

(प) मल्लिका – नाटक की नायिका मल्लिका एक अभूतपूर्व चरित्र की स्वामिनी है, जिसका जीवन संघर्षों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। उसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार है –

क. संवेदन–शील और भावुक हृदया –

नाटक के प्रारम्भ में नायिका मल्लिका अल्हड़, संवेदनशील और भावुक हृदया नारी के रूप में सामने आती है। आषाढ़ की वर्षा में भीगना उसे पुलकित कर देता है। अपने प्रिय कालिदास का सान्निध्य और प्रकृति का प्रांगण –मल्लिका अभिभूत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हो उठती है और उस रोमांच का स्मरण करती अत्यन्त उत्तेजित दिखाई देती है – "माँ, ऐसी धारासार वर्षा। दूर–दूर तक उपत्यकाएँ भीग गयीं ....नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र वायु, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय .... मैं कभी नहीं भूल सकती, सौन्दर्य का ऐसा साक्षात्कार .... जैसे वह सौन्दर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, तभी मुझे अनुभव हुआ कि वह क्या है जो भावना को कविता का रूप देता है।................

ख. निर्भीकता –

अंबिका को मल्लिका का कालिदास के साथ घूमना–फिरना अच्छा नहीं लगता, बल्कि अनुचित लगता है, क्योंकि लोकापवाद से वह डरती है, किन्तु मल्लिका किसी लोकापवाद से नहीं डरती, वह कालिदास के साथ वर्षा में भीगकर आनन्दित होती है, घर लौटकर माँ का रोष और मौन झेलती है, किन्तु भयभीत होकर कहीं भी आत्मसमर्पण नहीं करती – "मैं जानती हूँ माँ, अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख की बात भी जानती हूँ, फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता।"

वैसे भी निर्भीकता मल्लिका का स्वभाव है। कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए, आग्रह करने हेतु मल्लिका, अपनी माता के रोकने पर भी निक्षेप के साथ चली जाती है।

ग. निःस्वार्थ प्रेम –

मल्लिका कालिदास से प्रेम करती है, वह अपनी माँ से कहती है –"मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। .... मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है.........।" वह प्रेम के समक्ष किसी को भी स्वीकार नहीं करती, जीवन की आवश्यकताओं को भी नहीं। उसका प्रेम त्याग पर आधारित है। कालिदास ने अभावग्रस्त जीवन के कारण विवाह के विषय पर विचार नहीं किया, किन्तु राजकवि बनने पर विवाह की बात करना मल्लिका को अच्छा नहीं लगता, वह कहती है –"आज जब उनका जीवन एक नई दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ की घोषणा नहीं कर सकती।"

कालिदास के जाने से उसका जीवन सूना हो जाएगा, यह जानते हुए भी मल्लिका अपने जीवन, अपनी सारी खुशियों का हँसते–हँसते त्याग करती है और कालिदास से कहती है – "मैं हृदय से कहती हूँ तुम्हें जाना चाहिए।" वह कालिदास को और अधिक आगे बढ़ते देखना चाहती है ओर उसके लिए प्रयास करती है। मल्लिका निःस्वार्थ प्रेम का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है।

घ. स्पष्टवादिता –

मल्लिका स्पष्ट कहने में कभी नहीं हिचकती, चाहे वह उसकी माता हो, विलोम हो या राजमहिषी। वह अपनी माता से विवाह की बात पर स्पष्ट कह देती है कि "मैं विवाह नहीं करना चाहती, फिर उसके लिए क्यों प्रयत्न करती हो ?" कालिदास के साथ अपने संबंधों को भी वह स्पष्ट शब्दों में कहती है – "मेरे लिए वह सम्बन्ध सब सम्बन्धों से बड़ा है।" विलोम को तो वह स्पष्ट शब्दों में अपने घर से जाने को कहती है :–

"आर्य विलोम आप अपनी सीमा से आगे आकर बात कर रहे हैं। मैं बच्ची नहीं हूँ, अपना भला–बुरा सब समझती हूँ।" अग्निमित्र द्वारा विवाह का प्रस्ताव लौटा लाने पर वह स्पष्ट कहती है – "क्या कहते हैं ? क्या अधिकार है उन्हें कुछ भी कहने का, मल्लिका का जीवन उसकी अपनी सम्पत्ति है।" इस प्रकार अनेक प्रसंग मल्लिका की स्पष्टवादिता को प्रस्तुत करते हैं।

ङ. स्वाभिमानी –

मल्लिका अत्यंत स्वाभिमानी है। वह कालिदास की पत्नी प्रियंगुमंजरी द्वारा किये गये अपमान को संयम के साथ झेलती है। राजमहिषी उसका घर, नया बनवाना चाहती हैं, किन्तु मल्लिका उसे स्पष्ट रूप से ना कर देती है कि उन्हें उस तरह रहने में कोई असुविधा नहीं है। अपनी माता के साथ उज्जयिनी रहने का प्रस्ताव भी टाल जाती है। अपने विवाह की चर्चा भी राजमहिषी से यह कहकर रोक देती है कि –"इस विषय को छोड़ दीजिए।" उसे पराए लोगों का हस्तक्षेप बिल्कुल भी पंसद नहीं है। राजमहिषी द्वारा भेजी गई स्वर्ण–मुद्राएँ और वस्त्र भी लौटा देती है, क्योंकि उसे लगता है कि सहायता के बहाने वह उसका अपमान कर रही है। स्वाभिमानी मल्लिका किसी भी सुविधा को प्रतिदान के रूप में नहीं स्वीकारती।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

च. नारी स्वातन्त्र्य की मूर्ति –

मल्लिका साधारण होते हुए भी नारी की स्वतंत्रता को समझती है। उसे वह किसी भी प्रकार खोना नहीं चाहती। ऐतिहासिक पात्र होते हुए भी मल्लिका आधुनिक, स्वतंत्रता–प्रिय नारी का प्रतीक बनकर नाटक में उभरी है। वह अपने जीवन को अपनी इच्छा के अनुरूप जीना चाहती है। वह भावुक है, संवेदनशील है, किन्तु स्थिर चित्त वाली आधुनिक युग की स्त्री भी है। वह कहती है –"मल्लिका का जीवन उसकी अपनी संपत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार है।" आदि वाक्य उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के परिचायक हैं।

छ. करूणापूर्ण –

मल्लिका का हृदय करूणा से भरा हुआ है। वह अपनी माता को सब–कुछ स्पष्ट कहती है, फिर भी माँ के स्वास्थ्य के ठीक न रहने पर वह काम भी करती है, सेवा भी करती है। माँ की प्रसन्नता के लिए वह विलोम से विवाह करती है।

ज. संघर्षशील जीवन –

नाटक के प्रारम्भ की अल्हड़ मल्लिका कालांतर में गंभीर हो जाती है, वह कालिदास के प्रेम के कारण परिस्थितियों से संघर्ष करती है। अपना सारा जीवन अपने प्रेम के लिए बलिदान कर देती है और संघर्षों को निमंत्रित करती है। मल्लिका प्रेम का कुछ भी प्रतिदान नहीं लेती। राजमहिषी द्वारा प्रस्तावित सारी सुख–सुविधाओं को अस्वीकार करके उसी जर्जर घर में परिस्थितियों के साथ संघर्ष करती है, किन्तु अंत में धीरे–धीरे थकने और टूटने लगती है।

मल्लिका का सम्पूर्ण जीवन द्वन्द्वमय है। वह एक ओर कालिदास से अथाह प्रेम करती है तो दूसरी ओर विलोम से असीम घृणा। वह इन दोनों सम्बन्धों को प्रारम्भ से अन्त तक जीती है। उसमें आत्मदान है और आत्मदाह भी। समर्पण भी है और विद्रोह भी। 'प्रेम' का उसके जीवन में सर्वाधिक महत्त्व है। वह कालिदास को अपना सब–कुछ समझती है, फिर भी विलोम से विवाह करती है, किन्तु उसे मन से वरण नहीं कर पाती, अतः पूर्णत्व प्राप्त नहीं कर पाती। उसके चरित्र में विरोध ी तत्त्वों का समावेश है, किन्तु फिर भी मल्लिका एक आदर्श प्रेमिका का सुन्दर उदाहरण है।

(पप) अम्बिका –

अम्बिका, नायिका मल्लिका की माता है। वह विधवा है, विकट परिस्थितियाँ उसे घेरे रहती हैं। नियति से सताई हुई अम्बिका नाटक का एक महत्त्वपूर्ण नारी पात्र है। उसके चरित्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

क. ममतामयी –

अम्बिका की पुत्री मल्लिका है, जो अल्हड़ है, स्वाभिमानी है और भावुक है । यह सब जानते हुए भी अम्बिका अपनी पुत्री के भविष्य की चिन्ता करती है। उसके स्वास्थ्य के प्रति भी वह चिंतित रहती है। मल्लिका जब वर्षा से भीगकर आती है तो उसके लिए पहले से ही सूखे वस्त्र निकाल कर रखती है, दूध उबाल कर रखती है और बार–बार कहती है – "दूध औटा दिया है, शर्करा मिला लो और पी लो। ....और थोड़ी देर जाकर तल्प पर विश्राम कर लो।"

ख. व्यावहारिकता –

अम्बिका अत्यंत व्यावहारिक है। वह मल्लिका के प्रेम को, उसकी व्याकुलता को, कालिदास से मिलने की आतुरता को समझती है। कालिदास के साथ उसके सम्बन्धों पर उसे समझाती है। वह कालिदास की प्रेम–भावना पर प्रश्नचिह्न लगाती है। वह कहती है कि – "तुम जिसे भावना कहती हो, वह केवल छलना और आत्म–प्रवंचना है कृकृ मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है ? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती हैं।" उसकी दृष्टि में बिना विवाह के प्रेम कुछ भी नहीं है। वह यह भी समझती है कि कालिदास केवल अपने आप से प्रेम करता है और मल्लिका को भी यह बात बार–बार समझाने का प्रयास करती है। अंबिका एक अनुभवी और परिपक्व विचारों वाली स्त्री है।

ग. सजगता –

अम्बिका जीवन में होने वाली छोटी–छोटी घटनाओं के प्रति अत्यन्त सजग है। वह जानती है कि विलोम का बार–बार आना अम्बिका को सह्य नहीं है। इसलिए जब भी वह आता है, वह किसी भय से उसे बार–बार मना करती है। मल्लिका के भावी जीवन के लिए वह अत्यन्त सजग दिखाई देती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

घ. दूरदर्शिता –

अम्बिका अत्यन्त दूरदर्शी है। उसे आगे का जीवन अत्यन्त कठिन दिखाई दे रहा है। वह कहती है – "मेरी वह अवस्था बीत चुकी है, जब यथार्थ से आँखें मूँद कर जिया जाता है। x x x कल जब तुम्हारी माँ का ारीर नहीं रहेगा और घर में एक समय के भोजन की भी व्यवस्था नहीं होगी, फिर जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा, उसका तुम क्या उत्तर दोगी।"

अम्बिका बेटी का विवाह किसी न किसी प्रकार कर देना चाहती है, मल्लिका के न चाहने पर भी वह अग्निमित्र को, उसका सम्बन्ध तय करने के लिए भेजती है।

ड. लोकापवाद से भयभीत –

अम्बिका एक विधवा स्त्री है। स्त्री के लिए अपवाद क्या अर्थ रखता है, वह समझती है। मल्लिका को अच्छी तरह समझने के बावजूद भी वह लोकापवाद से भयभीत है। विलोम का बार–बार आना और मल्लिका के जीवन में रूचि रखना उसे पसंद नहीं। विलोम के व्यंग्यात्मक शब्दों से वह आहत होती है, पर कुछ कर नहीं पाती, क्योंकि सारे ग्राम–प्रान्तर में माल्लिका और कालिदास के सम्बन्धों की चर्चा है। मल्लिका के प्रति उसकी ममता उसे कठोर नहीं होने देती। फिर भी वह बार–बार मल्ल्किा से कहती है – "मैं जानती हूँ तुम पर आज अपना भी अधिकार नहीं है, किन्तु कृकृकृ इतना बड़ा अपवाद मुझसे सहा नहीं जाता है।" धीरे–धीरे वह अस्वस्थ रहने लगती है और घर से बाहर नहीं निकलती।

सम्पूर्ण नाटक में अम्बिका अपने विशिष्ट गुणों के कारण सबको प्रभावित करती है, वह एक वात्सल्यमयी माँ के रूप में अत्यंत सुन्दर चरित्र है। वह भावना से अधिक कर्त्तव्य को महत्त्वपूर्ण मानती है और मल्लिका को समझाती है कि भावना केवल छलना और आत्म–प्रवंचना है।

(iii) प्रियंगुमंजरी –

प्रियंगुमंजरी उज्जयिनी की राजदुहिता है। वह अत्यंत विदुषी है। कालिदास के उज्जयिनी पहुँचने पर उसका विवाह, उससे हो जाता है। वह अपने पति से प्रेम करती है। उसके चरित्र की विशेषताएँ निम्न हैं –

क. राजनीति में रूचि लेने वाली –

प्रियंगुमंजरी क्योंकि राजघराने से है, राजनीति जानती है, समझती है और उसमें रूचि रखती है। वह कालिदास से भी यही अपेक्षा करती है कि वे राजनीति में पूरी रूचि लें। यद्यपि वह जानती है उसके पति का मन अतीत की वीथिकाओं में भटक–भटक जाता है, उस का संतुलन बनाए रखने के लिए वह प्रयत्नशील दिखाई देती है, कहती है –"साहित्य उनके जीवन का पहला चरण था, अब वे दूसरे चरण में पहुँच चुके हैं। मेरा अधिक समय इसी में बीतता है कि उनका बढ़ा हुआ चरण पीछे न हट जाए। x x x मैं यहाँ का कुछ वातावरण साथ ले जाना चाहती हूँ, ताकि उन्हें अभाव का अनुभव न हो। कुछ हरिण–शावक यहाँ से जाँएगे, कुछ औषधियाँ, आस–पास के प्रदेश में लगवा दी जाएँगी कृकृ। यहाँ के –से कुछ घरों का निर्माण करेंगे कृ।"

इस सब से ज्ञात होता है प्रियंगुमंजरी कालिदास की भावनाओं से कम और कर्त्तव्य से अधिक प्रेम करती है, क्योंकि भावनाओं का कहीं भी पुनर्स्थापन नहीं होता।

ख. दयालुता –

प्रियंगुमंजरी के स्वभाव में दयालुता का भाव दिखाई देता है। वह अनाथ बच्चों को अपने साथ ले जाकर वहाँ शिक्षा देना चाहती है। मल्लिका के घर की दशा देखकर उसका ह्रदय करूण हो जाता है। वह उसका परिसंस्कार करवाना चाहती है। कुछ स्वर्ण–मुद्राएँ और वस्त्र भी भेजती है, किन्तु स्वाभिमानी मल्लिका सारे प्रस्ताव अस्वीकार कर देती है।

ग. ईर्ष्या भाव –

प्रियंगुमंजरी भले ही राजमहिषी हो, पर वह एक स्त्री भी है, उसके मन में कालिदास की बचपन की सहचरी को देखने की तीव्र लालसा होती है, जिसके कारण वह उस तरफ आती है – "यूँ तो इस समय भी अवकाश नहीं था, पर मैंने आवश्यक समझा। वे पर्वत–शिखर की ओर घूमने गए थे। मैं इस बीच इधर चली आई। x x x तुम्हें और तुम्हारे घर को देखना चाहती हूँ। उन्होंने बहुत बार इस घर की और तुम्हारी चर्चा की है।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इसी ईर्ष्या भाव से वह बार–बार मल्लिका का अपमान भी करती है, उसका जी दुखाती है – "सम्भव था ये न भी आते, परन्तु मैं ही विशेष आग्रह के साथ इन्हें लाई हूँ। x x x आज इस भूमि का आकर्षण ही हमें यहाँ ले आया है। अन्यथा दूसरे मार्ग से जाने में हमें अधिक सुविधा थी।"

मल्लिका को अपने साथ चलने का प्रस्ताव देना, किसी योग्य अधिकारी से विवाह का सुझाव, ये सब उसके ईर्ष्या भाव को ही दर्शाते हैं।

घ. राजनीति–निपुणा ––

प्रियंगुमंजरी राजनीति में अत्यंत निपुण है। वह मल्लिका के हृदय में कालिदास के प्रेम को देखकर उसे बार–बार आहत करके कालिदास से विमुख करने का प्रयास करती है। वह जताती है कि कालिदास को उसकी कोई परवाह नहीं है। अपने विदुषी होने के प्रमाण भी वह उसे आहत करते हुए देती है कि – "तुम ऐसा नहीं समझती ? कृकृकृ क्योंकि तुम ग्राम प्रदेश में ही रही हो।"

काश्मीर की स्थिति पर भी वह मल्लिका से बात करती है और कालिदास के उत्तरदायित्वों का भी बढ़ा–चढ़ाकर वर्णन करती है। वह बात–बात में कहती है – "आतिथ्य की बात मत सोचो, मैं तुम्हारे यहाँ अतिथि के रूप में नहीं आई हूँ।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार ने प्रियंगुमंजरी को एक विदुषी, सहृदय पत्नी और राजनीति–निपुण एक राजमहिषी के रूप में चित्रित किया है, फिर भी एक सामान्य स्त्री उसमें से झाँकती हुई दिखाई दे ही जाती है।

(iv) अन्य नारी पात्र –

अन्य नारी पात्रों में रंगिणी, संगिनी नाटक के दूसरे अंक में दिखाई देती हैं। रंगिणी, उज्जयिनी के नाट्य केन्द्र में नृत्य का अभ्यास करती है, नाटक लिखने में भी उसकी रूचि है। संगिनी, नाट्य–केन्द्र में मृदंग और वीणा–वादन सीखती है। बहुत सुन्दर प्रणय–गीत लिखती है, गद्य–लेखन की ओर भी अग्रसर है।

वे दोनों उस स्थान का अध्ययन करने के लिए आई हैं। रंगिणी, मल्लिका से अपने आने का प्रयोजन बताती है – "राजकीय नियोजन से हम दोनों कालिदास के जीवन की पृष्ठभूमि का अध्ययन कर रही हैं।" उनकी बातों से, क्रियाओं से जैसे मुँह बिचकाना आदि से उनके दम्भ का ही परिचय मिलता है, शिष्टोचित नम्रता का नहीं।

(आ) नाटक के पुरूष–पात्र –

नाटक में सात पुरूष पात्र हैं, जिनमें कालिदास प्रधान पात्र हैं, जो नाटक के नायक भी हैं। इनके अतिरिक्त विलोम, मातुल, दंतुल, निक्षेप महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं में हैं। अनुस्वार और अनुनासिक राजकर्मचारी हैं।

(i) कालिदास –

कालिदास नाटक के नायक और कवि हैं। ये ऐतिहासिक पात्र होते हुए भी कल्पना के रंगों से रँगे हुए हैं। नाटककार मोहन राकेश ने कवि–पात्र को प्रतीक के रूप में लेकर उसकी द्विविधा का सुन्दर चित्रण किया है। उनकी चारित्रिक विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

क. भावुक हृदय –

नाटक के प्रारम्भ में कालिदास एक भावुक हृदय व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं। मेघमालाओं को देखना, मल्लिका के साथ वर्षा से भीगना, हरिण–शावक को चोट लगने पर गोद में उठाकर मल्लिका के घर लाना और उसकी देखरेख करना कालिदास के भावुक हृदय के सुन्दर उदाहरण हैं । एक प्रसंग द्रष्टव्य है – "हम सोएँगे ? हाँ, हम थोड़ी देर सो लेंगे तो हमारी पीड़ा दूर हो जाएगी। परन्तु उससे पहले हमें थोड़ा दूध पी लेना है। ....न जाने इसके रूई जैसे कोमल शरीर पर उससे बाण छोड़ते कैसे बना ?"

घायल हरिण–शावक की बच्चे की तरह दुलराते हैं कालिदास, गोदी में उठाए–उठाए घर ले जाते हैं।

ख. प्रेमी –

कालिदास, मल्लिका से प्रेम करते हैं। किन्तु वह एक विलक्षण प्रेम है, जिसमें मल्लिका उनकी सृजन्–प्रेरणा है, उसे राह दिखाने वाली है। कालिदास उससे दूर जाकर भी भूल नहीं पाते – उज्जयिनी में जाकर लिखी रचनाओं में सर्वत्र मल्लिका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ही है, वह उससे मिलने पर स्वीकार करते हैं – "जो कुछ लिखा है, वह यहाँ के जीवन का ही संचय था। 'कुमारसम्भव' की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। 'मेघदूत' के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह विमर्दिता यक्षिणी तुम हो। 'अभिज्ञान–शाकुन्तलम्' में शकुन्तला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थी।" किन्तु अपने इस प्रेम को कालिदास बहुत देर से समझ पाते हैं और नाटक के तीसरे अंक में जब लौटकर आते हैं तो बहुत देर हो चुकी होती है। अम्बिका की दृष्टि में कालिदास का मल्लिका के प्रति प्रेम, प्रवंचना है। वह कहती है कि वह अपने अहं से प्रेम करने वाला व्यक्ति है – "तुम्हारे साथ उसका इतना ही सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है।" किन्तु मल्लिका और कालिदास का प्रेम किसी दान–प्रतिदान का मोहताज नहीं है।

ग. स्वाभिमानी –

कालिदास अत्यंत स्वाभिमानी हैं। राज–सभा का निमंत्रण आने पर वह प्रसन्न नहीं होते, बल्कि मातुल को क्रोध में यह कहकर चले जाते हैं कि –"मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ।" वह इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देते हैं। कालिदास के इस स्वाभिमान की बात मल्लिका समझती है, वह कहती है कि —"कविता का कुछ मूल्य है आर्य मातुल, तभी तो सम्मान का भी मूल्य है। .... मैं समझती हूँ कि उनके हृदय में यह सम्मान कहाँ चुभता है।"

घ. आत्म–विश्वास की कमी –

कालिदास के चरित्र में प्रारम्भ से ही आत्म–विश्वास की कमी दिखाई देती है। उज्जयिनी न जाने के अपने निर्णय पर वह दृढ़ नहीं रह पाते, मल्लिका द्वारा अनुरोध किए जाने पर, बिना उसके बारे में सोचे चले जाते हैं। विलोम के व्यंग्य भी उसमें आत्मविश्वास नहीं जगाते। नाटक के दूसरे अंक में जब कालिदास ग्राम–प्रदेश आते हैं तो भी मल्लिका के घर तक आकर लौट जाते हैं, उससे मिलने का साहस नहीं जुटा पाते, कहते हैं – 'मैं यहाँ से क्यों नहीं जाना चाहता था ? एक कारण यह भी था कि मुझे अपने आप पर विश्वास नहीं था। .... मैं तब तुमसे मिलने के लिए नहीं आया, क्योंकि भय था तुम्हारी आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी, उसका कुछ भी परिणाम हो सकता था।" कालिदास तीसरे अंक में स्वयं स्वीकार करते हैं कि उनके विषय में अम्बिका ठीक कहती थी।

ड. परम्परावादी भारतीय पुरूष –

कालिदास, भावुक–हृदय, संवेदनशील होते हुए भी भारतीय परम्परावादी पुरूष के रूप के नाटक के अन्त में सामने आते हैं। मल्लिका से वह जीवन को 'अथ' से प्रारम्भ करने का प्रस्ताव रखते हैं, किन्तु जैसे ही उन्हें मल्लिका के वर्तमान (विलोम और उसकी बच्ची) का बोध होता है, वह विचार उनके हृदय से एक क्षण में निकल जाता है। स्वयं राजदुहिता से विवाह कर, वारांगनाओं के साथ रह कर भी कालिदास, मल्लिका के जीवन में पर–पुरूष विलोम को देखकर उसे सहन नहीं कर पाता– "मैंने कहा था मैं अथ से आरम्भ करना चाहता हूँ, यह संभवतः इच्छा का समय के साथ द्वन्द्व था, परन्तु देख रहा हूँ कि समय अधिक शक्तिशाली है ....।" वह आत्मीयता की खोज में मल्लिका के पास आता है, किन्तु फिर मल्लिका को छोड़ कर चला जाता है।

च. असफल शासक –

कालिदास उज्जयिनी जाकर राजसत्ता के मद में खो जाते हैं। प्रतिष्ठा और सम्मान का वातावरण उनके जीवन की दिशा बदल देता है। वह काश्मीर का शासन सँभालते हैं, किन्तु अपने आपको बदल नहीं पाते, जिसका अनुभव उन्हें होता है, वह मल्लिका से कहते हैं –"मुझे बार–बार अनुभव होता कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह में पड़कर उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया ....। x x x न तो मैं बदल सका, न सुखी हो सका। किसी और के लिए वह वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था, मेरे लिए नहीं था। एल राज्याधिकारी का कार्यक्षेत्र मेरे कार्यक्षेत्र से भिन्न था। x x x जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थी, वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे–धीरे खंडित होता गया और एक दिन मैंने पाया कि मैं सर्वथा टूट गया हूँ।"

कालिदास, मल्लिका के समक्ष अपनी असफलताओं को पूरे विश्वास के साथ स्वीकार करते हैं। मातुल, मल्लिका को कालिदास की असफलता की सूचना देते हैं –"समाचार यह है कि सम्राट का निधन हो गया है, काश्मीर में विद्रोही शक्तियाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सिर उठा रही हैं। वहीं से आये एक आहत सैनिक का कहना है कि .... कालिदास ने काश्मीर छोड़ दिया है, ... उसने संन्यास ले लिया है और काशी चला गया है।

वस्तुतः शासन, सत्ता कालिदास के कार्यक्षेत्र थे ही नहीं, जैसे ही उनको यह स्पष्ट हुआ, वे सब छोड़कर पुनः लौट आते हैं।

वस्तुतः कालिदास का जीवन विभिन्न चरणों से गुजरता है, उनके सम्मुख जीवन की तस्वीर धीरे–धीरे स्पष्ट होती है, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। वह न एक आदर्श प्रेमी बन पाते हैं, न आदर्श पति, बस एक सफल कवि बन जाते हैं।

(ii) विलोम –

नाटक का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है –विलोम। वह जीवन की सारी सच्चाईयों को कठोर हृदय होकर सामने खोल कर रख देता है। वह ग्राम में सबसे परिचित है। उसका चरित्र निम्न प्रकार से रेखांकित किया जा सकता है –

क. हठी –

विलोम हठी स्वभाव वाला है। जो मन में ठान लेता है, करके ही रहता है। अम्बिका के घर वह आता–जाता है। मल्लिका की ओर उसका आकर्षण स्थान–स्थान पर दिखाई देता है। यह जानते हुए भी अम्बिका और मल्लिका को उसका आना पंसद नहीं, फिर भी वह आता है – अनचाहे अतिथि के रूप में वहाँ ठहरता है और तर्क भी करता है। अम्बिका के चले जाने को कहने पर भी वह कहता है – "मैं इस समय तुम्हारे पास होना बहुत आवश्यक समझता हूँ, अम्बिका।" उस घर से बार–बार प्रताड़ना पाकर भी वह रूकता नहीं है।

ख. मल्लिका का प्रेमी –

विलोम मल्लिका से बहुत प्रेम करता है, यह जानते हुए भी कि मल्लिका उससे घृणा करती है, घर आने से बार–बार रोकती है, फिर भी वह वहाँ जाता है। विलोम चाहता है कि कालिदास जिसे मल्लिका प्यार करती है, उससे विवाह कर ले और साथ में उज्जयिनी ले जाए, परन्तु जानता है कि ऐसा नहीं होगा। उसे अम्बिका और मल्लिका की बहुत चिंता भी रहती है – वह कालिदास को बाध्य करता है कि वह मल्लिका के विषय में कुछ कहे, सोचे –

"आज तक ग्राम–प्रान्तर में कालिदास के साथ मल्लिका के सम्बन्ध को लेकर बहुत–कुछ कहा जाता रहा है ....उसे दृष्टि में रखते हुए क्या यह उचित नहीं कि कालिदास यह स्पष्ट बता दे कि उसे उज्जयिनी अकेले ही जाना है या ...... ।"

लेकिन कालिदास विलोम की आशंका के अनुरूप कुछ न कहकर अकेले ही चले जाते हैं।

ग. स्पष्ट वक्ता –

विलोम अत्यंत स्पष्ट वक्ता है। वह बिना किसी लाग–लपेट के सामने वाले को अपनी तीखी और व्यंग्य भरी बातें कहता है, जिसका श्रोता के पास कोई उत्तर नहीं होता – "कालिदास उज्जयिनी चला जाएगा और मल्लिका, जिसका नाम उसके कारण सारे प्रान्तर में अपवाद का विषय बना है, पीछे यहीं पड़ी रहेगी ? क्यों अम्बिका ?" अम्बिका सत्य को सुनकर निरूत्तर हो जाती है। कालिदास से वार्तालाप उसका स्पष्टवादिता का उदाहरण है – "अच्छा कालिदास तुम्हीं बताओ, तुम्हें अपनी बात कहाँ तक संगत प्रतीत होती है ? मैंने किसके जीवन में अनधिकार प्रवेश किया है ? चलो ग्राम–प्रान्तर में किसी से भी पूछ लें ....।"

विलोम के कथन, तीखे व्यंग्य के रूप में सामने वाले को भीतर तक छेद देते हैं।

घ. वाक्पटुता –

विलोम का व्यक्तित्व साधारण नहीं है। वह एक चतुर, समझदार और वाग्विदग्ध व्यक्ति है। कालिदास और उसकी बातचीत के निम्न अंश में विलोम की वाक्पटुता स्पष्ट होती है –

विलोम – विलोम क्या है ? एक असफल कालिदास और कालिदास ? एक सफल विलोम। हम कहीं एक–दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कालिदास –निःसंदेह। सभी विपरीत एक दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं।

विलोम – अच्छा है तुम इस सत्य को स्वीकार करते हो।

बातों–बातों में विलोम अपनी वाक्पटुता कई स्थलों पर दिखाता है, वह मल्लिका से कहता है – "मेरी बातों से अम्बिका का मन विक्षुब्ध होता है ? मैं समझता हूँ उसके कारण दूसरे हैं। अम्बिका जानती है, किन कारणों से उसका मन विक्षुब्ध होता है। मैं भी उन कारणों को समझता हूँ। इसलिए बहुत–सी बातें जो अम्बिका के मन में रहती है, मैं मुँह से कह देता हूँ।"

इस प्रकार विलोम एक स्पष्टवादी, तर्कसहित बात करने वाला, बात की तह तक उतरने वाला पात्र है। कहीं–कहीं वह बहुत निर्दयी भी लगता है, उसे दूसरों की भावनाओं से कोई लेना–देना नहीं है। वह अत्यन्त व्यावहारिक प्रतीत होता है।

(iii) मातुल –

कालिदास के मामा हैं – मातुल। उनके चरित्र की दो विशेषताएँ प्रमुख रूप से दिखाई देती है– पहली अवसरवादी और दूसरी चाटुकारिता की प्रवृत्ति। वे धन, सत्ता के लोलुप भी हैं।

क. अवसरवादी –

मातुल अत्यंत अवसरवादी हैं। कालिदास को राजकवि का सम्मान मिलने की सूचना पाते ही प्रसन्न हो जाते हैं, किन्तु कालिदास के अस्वीकार करने पर वे उसे भला–बुरा कहते हैं। वह अम्बिका से कहते हैं– "जो व्यक्ति कुछ देता है, धन हो या सम्मान हो, वह अपना मन बदल भी सकता है। और मन, बदल गया तो बदल गया।" मातुल को लगता है अवसर मिला है तो लाभ उठाना ही चाहिए। उसका यह कथन देखें– "मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्रय–विक्रय की क्या बात है। सम्मान मिलता है, ग्रहण करो। नहीं कविता का मूल्य ही क्या है ?"

ख. चाटुकारिता की प्रवृत्ति –

मातुल चाटुकारिता की प्रव त्ति से पूरी तरह ग्रसित हैं। जब आचार्य, कालिदास को लेने आए हैं तो वे उनके साथ–साथ रहते हैं, उनको पूरी तरह प्रसन्न रखने का अथक प्रयास करते हैं। निक्षेप आचार्य को छोड़कर जब उनके पास आता है तो वे बुरी तरह उसे डाँटते हैं।

मातुल, जब प्रियंगुमंजरी के साथ आते हैं तो उनकी खुशामदी प्रवृत्ति अत्यंत स्पष्ट हो उठती है। प्रियंगुमंजरी मातुल से जाने को कहती है, परन्तु वह जाना नहीं चाहता – "असुविधा तो होगी। आप असुविधा को असुविधा न मानें यह दूसरी बात है। और वास्तव में कुलीनता कहते इसी को हैं। बड़े कुल की विशेषता ही यह होती है कि ....."

"मुझे थकाया है ? आपने ? आपके कारण मैं थकूँगा ? मुझे आप दिन–भर पर्वत शिखर से खाई और खाई से पर्वत शिखर पर जाने को कहती रहें तो भी मैं नहीं थकूँगा।"

किन्तु अन्त में मातुल का धन और सत्ता के प्रति मोह टूटता है और वह दार्शनिकों की भाँति बातें करने लगते हैं।

(iv) दंतुल –

दंतुल राजकर्मचारी है और राजकर्मचारी की स्वाभाविक अंहकार प्रवृत्ति दंतुल में भी दिखाई देती है।

वह हरिण–शावक का शिकार करता है और शिकार को जब कालिदास ले जाता है तो वह उसका पीछा करता हुआ मल्लिका के घर तक पहुँच जाता है। वह अनजाने में कालिदास से कुतर्क करता है और उसे राजकर्मचारी के अधिकारों का परिचय देना चाहता है। वह कहता है– "राजपुरूष की रूचि–उरूचि क्या होती है, संभवतः उसका परिचय तुम्हें देना आवश्यक होगा।" (तलवार की मूठ. पर हाथ रख उसके पीछे जाना चाहता है।)

किन्तु कालिदास का परिचय प्राप्त होते ही वह विनम्रता की मूर्ति बन जाता है।

(v) निक्षेप –

निक्षेप गौण पात्र होते हुए भी सार्थक पात्र है। वह मल्लिका का हितचिंतक है और कालिदास का भी हितचिंतक है। वह दोनों को सही अर्थ में जानता और समझता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कालिदास के स्वभाव को जानने के कारण उसके वक्तव्य तथा व्यवहार का वह समर्थन करता है और अम्बिका के आक्षेप का उत्तर देता है – "कालिदास नाटक नहीं कर रहे, अम्बिका। मुझे विश्वास है कि उन्हें राजकीय सम्मान का मोह नहीं है। वे सचमुच इस पर्वत भूमि को छोड़कर नहीं जाना चाहते।"

निक्षेप जानते हैं कि कालिदास को उज्जयिनी भेजने का कार्य केवल मल्लिका ही कर सकती है। वह मल्लिका से आग्रह करते हैं कि वह कालिदास को प्रेरित करने के लिए जगदम्बा मंदिर जाए।

दूसरे अंक में निक्षेप अपने आप को दोष देता हुआ दिखाई देता है, वह आत्मग्लानि से पीड़ित है। वह जानता है कि मल्लिका की ऐसी दशा उसी के कारण है। न वह मल्लिका को आग्रह करता, न मल्लिका की प्रेरणा से कालिदास उज्जयिनी जाता। निक्षेप अब विवश है, कुछ कर नहीं पाता, बस दुःखी होता है। नाटक में निक्षेप की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

3.4.3 संवाद–योजना

संवाद नाटक का प्राण–तत्व है। नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में नाटककार ने सार्थक संवादों से कथानक को गतिशील और रोचक ही नहीं बनाया, पात्रों के चरित्र भी बखूबी उभरा है। नाटक में विभिन्न स्त्री, पुरूष पात्रों के चरित्रों को विकसित करने में ही संवाद सफल नहीं हैं, वरन् नाटककार का उद्देश्य भी इनके माध्यम से पूर्ण होता हुई दिखाई देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि नाटक की संवाद–योजना कथान्क को गतिशीलता प्रदान करने, पात्रों के चरित्र को विकसित करने और उद्देश्य को पूर्ण करने में पूर्णतः सफल है। संवाद–योजना की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

(i) प्रवाहमयता –

संवादों में प्रवाहमयता का गुण होना आवश्यक है। नाटककार मोहन राकेश के उपर्युक्त नाटक के संवाद प्रवाहमय हैं, वे कथ्य को अत्यंत गतिशील और रोचक बनाते हैं, उदाहरणार्थ कालिदास और दंतुल का निम्न संवाद लिया जा सकता है –

"इस प्रदेश में हरिणों का आखेट नहीं होता राजपुरूष। तुम बाहर से आए हो इसलिए इतना ही पर्याप्त है कि हम इसके लिए तुम्हें अपराधी न मानें।"

"तो राजपुरूष के अपराध का निर्णय ग्रामवासी करेंगे, ग्रामीण युवक, अपराध और न्याय का शब्दार्थ भी जानते हो।"

"शब्द और अर्थ राजपुरूषों की सम्पत्ति है, जानकर आश्चर्य हुआ।"

(ii) व्यंग्यात्मकता –

नाटक में विलोम के संवादों में व्यंग्यात्मकता के तीखे तेवर स्पष्ट दिखाई देते हैं। वस्तुतः विलोम के संवाद, चाहे वह कालिदास से हों, अम्बिका से हों या मल्लिका से, तिलमिला देने वाले हैं, श्रोता को वह निरूत्तर कर देते हैं, अम्बिका के समक्ष विलोम, मल्लिका के भविष्य के लिए एक प्रश्न खड़ा करता है और अम्बिका उसे चले जाने के सिवाय कुछ नहीं कह पाती–

"तुमने तिल–तिल करके अपने को गलाया है कि मल्लिका को किसी अभाव का अनुभव न हो। और आज, जबकि उसके लिए जीवनभर के अभाव का प्रश्न सामने है, तुम कुछ सोचना नहीं चाहती।"

"मैं अनुरोध करती हूँ कि तुम इस समय मुझे अकेली रहने दो।"

(iii) काव्यात्मकता –

कालिदास और मल्लिका दोनों ही सहृदय, भावुक हैं, उनके चरित्र की इस विशेषता को उभारने वाले संवाद कविता के समान ही सौन्दर्य लिए हुए हैं, मल्लिका जब वर्षा से भीगकर आती है तो माँ से कहती है– "नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय्कृ।"

जहाँ–जहाँ नाटककार ने संवादों को काव्यात्मकता प्रदान की है, वहाँ वे लम्बे होते गए हैं।

(iv) संक्षिप्तता – नाटक के संवादों में संक्षिप्तता का गुण भी दिखाई देता है। अम्बिका और मल्लिका के प्रथम अंक के प्रारम्भिक संवादों में, रंगिणी, संगिनी और मल्लिका के संवादों तथा अनुस्वार और अनुनासिक के संवादों में संक्षिप्तता दिखाई देती है। ये संवाद इन पात्रों के चरित्र पर भी पूर्ण प्रकाश डालते हैं।

(v) स्वगत कथन –

नाटक में कई स्थानों पर स्वगत कथन, नाटककार ने पात्रों की मनोदशा को स्पष्ट करने के लिए लिखे हैं। मल्लिका का स्वगत–कथन उसकी व्यथा को और उसकी दयनीयता को सफलतापूर्वक उभारता है। कालिदास और मल्लिका के स्वगत कथन उनकी चारित्रिक विशेषताओं को उभारने में पूर्ण सक्षम हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक में संवाद उसकी कथा को रोचक बनाते हुए पात्रों के चरित्र को उभारते हैं, इस दृष्टि से इस नाटक की संवाद–योजना अत्यंत सफल और सार्थक है और नाटक के सौन्दर्य को निःसन्देह द्विगुणित करती है।

3.4.4 नाटक का उद्देश्य

नाटककार मोहन राकेश ने नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में साहित्य–सर्जन और राज्याश्रय की समस्या को, प्रेम के त्रिकोण को और आधुनिक संदर्भों में नारी की स्वतंत्रता को चित्रित किया है।

कालिदास अपना प्रदेश छोड़कर नहीं जाना चाहते, क्योंकि उनके सामने कई प्रश्न हैं, जिनमें एक प्रश्न मल्लिका भी है, जिसके बिना होने की कल्पना कालिदास के लिए कठिन है। किन्तु फिर भी उसके हठ के सामने वे टिक नहीं पाते और राजसत्ता के मोह में जकड़ जाते हैं। वे जानते थे कि राजमहलों का वातावरण उन्हें छा लेगा, जीवन की दिशा बदल देगा, वही हुआ, तालमेल न बिठा सके। उनका मन अक्सर उखड़ने लगता है, प्रियंगुमंजरी (उनकी पत्नी) इसके लिए भरसक प्रयास करती है कि कालिदास का मन अस्त–व्यस्त न हो। इसलिए वह उस प्रदेश के पेड़, पौधे, हरिण–शावक साथ ले जाना भी चाहती है। कालिदास और प्रियंगुमंजरी स्वयं इसको मल्लिका के समक्ष स्वीकार करते हैं। कालिदास के हृदय का अन्तर्द्वन्द्व बार–बार झलकता हुआ दिखाई देता है। अंत में कालिदास उस सत्ता–मोह से अलग होकर पुनः लौटते हैं।

प्रेम का त्रिकोण –

मल्लिका, कालिदास और विलोम के प्रेम को भली–भाँति दर्शाया गया है। तीनों के लिए प्रेम का स्वरूप अलग–अलग है। मल्लिका का प्रेम, कालिदास के प्रति, भावना में भावना का वरण है, वह परिस्थितियों से हार कर विलोम से विवाह करके भी मन ही मन कालिदास से प्यार करती रहती है। किन्तु कालिदास उसे बहुत देर से समझ पाता है और मल्लिका के वर्तमान को स्वीकार नहीं कर पाता। विलोम मल्लिका की अपने प्रति घृणा जानकर भी उससे प्रेम करता है और विवाह करता है। वह मल्लिका को दुःखी नहीं देख सकता, किन्तु फिर भी वह उसे जीत नहीं पाता। प्रेम के इस त्रिकोण में तीनों ही टूट जाते हैं। नाटककार ने प्रेम के सभी स्वरूपों का सुन्दर ढंग से चित्रण इस नाटक में किया है।

मल्लिका के माध्यम से नाटककार ने नारी की स्वतंत्रता और उसकी नयी विचार–पद्धति का बोध कराया है। किन्तु अन्त में वही परम्परा, संस्कार उभर कर आते हैं, आधुनिकता के समर्थक नाटककार मोहन राकेश के नायक कालिदास, मल्लिका के वर्तमान को स्वीकार नहीं कर, उसे चुपचाप अकेली छोड़ कर चले जाते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि नारी कितनी ही आधुनिकता की ओर बढ़ जाए, पुरूष कभी भी वहाँ तक आकर उसका साथ नहीं दे पाता।

नाटककार ने इस सबको पात्रों के माध्यम से सफलतापूर्वक सशक्त रूप से चित्रित किया है। इस प्रकार नाटक अपने उद्देश्य को सामने लाने में पूर्णतः सक्षम है।

3.4.5 भाषा–शैली

नाटक को प्रभावी बनाती है – नाट्य–भाषा। नाटककार के लिए भाषा का कुशल प्रयोग आवश्यक है। मोहन राकेश भाषा के पक्ष को लेकर बहुत सतर्क थे। वे नाट्य–भाषा की पकड़ के लिए निरंतर जूझते रहे।उनके नाटकों में संवादों की भाषा और शारीरिक क्रिया का संबंध रहता है, इससे पात्र की उलझन और नाटक का संपूर्ण द्वन्द्व पाठकों, दर्शकों के सामने मूर्त हो जाता है। 'आषाढ़ का पहला दिन' नाटक का प्रारंभ दो पात्रों की व्यतिरेकी मानसिक स्थिति की प्रस्तुति से होता है। एक है अम्बिका जो चिन्तित है अपनी पुत्री के लिए और उसके अव्यावहारिक व्यवहार से दुःखी भी, दूसरी है मल्लिका जो प्रफुल्लित, 'भावना में भावना के वरण से संतुष्ट' है। मल्लिका और अंबिका के संवादों से नाटक का प्रारंभ होता है। मल्लिका का यह कथन देखें –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''आषाढ़ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ! . . . ऐसी धारासार वर्षा! दूर–दूर तक की उपत्यकाएँ भीग गयीं। . . . और मैं भी तो! देखो न माँ, कैसी भीग गयी हूँ!''

यह भाषिक प्रयोग वक्ता की अभिभूत मनोदशा का परिचय कराता है। आषाढ़ में वर्षा होती है, पर पहले ही दिन ऐसी धारासार वर्षा नहीं होती, इसी से मल्लिका आश्चर्यचकित हो गई है। 'देखो न' प्रयोग में मल्लिका का माँ से देखने का आग्रह है। मल्लिका के अद्‌भुत अनुभव की अतिशयता को व्यक्त करने वाला यह वाक्य देखें –

''वह बहुत अद्‌भुत अनुभव था माँ, बहुत अद्‌भुत।''

इस वाक्य में 'बहुत अद्‌भुत' का आवर्तन अतिशयता को व्यक्त करता है। मल्लिका हर्ष के अतिरेक में आत्म–विस्मृत–सी हो गई है, भाव–विभोर हो गई है। बाहरी वर्षा ने उसके तन को ही नहीं, मन को भी भिगो दिया है, उसके भीतर भी वर्षा हुई है।

मल्लिका की अनुभूति का यह भाषिक रूप देखें –

''सौन्दर्य का ऐसा साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौन्दर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी।''

मल्लिका के अनुभूतिमय व्यक्तित्व का विपरीत चरित्र है – अम्बिका। उसके संवाद द्रष्टव्य हैं –

''देख रही हो मैं काम कर रही हूँ।''

''क्या बात करूँ।''

''दूध औटा दिया है। शर्करा मिला लो और पी लो . . . ।''

मल्लिका द्वारा वर्षा के और स्वयं के रससिक्त और अनुभूतिमय कथन के उत्तर में ये अम्बिका के कथन हैं। अम्बिका–मल्लिका की प्रसन्न, अभिभूत स्थिति को ही नकार देना चाहती है। स्वयं को काम करता दिखाकर मल्लिका को यथार्थ में लौटा लाना चाहती है। द्वितीय संवाद मल्लिका की मनःस्थिति को और भी स्पष्ट करता है, ''क्या बात करूँ ?'' अर्थात् मल्लिका के कथन को अम्बिका प्रलाप समझती है, उसमें कहने योग्य, संवाद के योग्य कुछ भी नहीं मानती। इस प्रकार मल्लिका और अंबिका के संवादों द्वारा नाटककार ने भावना और व्यावहारिकता के द्वन्द्व को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है, यह द्वन्द्व दूसरे अंक में भी दिखाई पड़ता है।

कालिदास को स्वयं के कारण होने वाले मल्लिका के अपवाद की चिन्ता नहीं है, यह भी नाटककार ने संवादों के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया है। मल्लिका कालिदास से कहती है कि –

''माँ आज बहुत रुष्ट हैं।''

इसके प्रत्युत्तर में कालिदास हरिणशावक से ही बतियाता रहता है। मल्लिका हरिणशावक के लिए दूध लेकर आती है और फिर कहती है –

''सच, माँ आज बहुत रुष्ट हैं। माँ को अनुमान हो गया होगा कि वर्षा में मैं तुम्हारे साथ थी, नहीं तो इस तरह भीगकर न आती। माँ को अपवाद की बहुत चिन्ता रहती है . . . ।''

और इसके जवाब में कालिदास का संवाद देखें –

''दूध मुझे दे दो और इसे बाँहों में ले लो। . . . ''

इसी से स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास या तो आत्म–सीमित है या जानकर भी अनजान बना रहता है।

मल्लिका एक बार फिर आनंद–विभोर हो जाती है, जब उसे पता चलता है कि कालिदास को राजकवि का सम्मान मिल रहा है, ऐसे में वह यथार्थ को भूल जाती है। उसकी इस स्थिति को नाटककार द्वारा प्रयुक्त भाषा से समझा जा सकता है –

''आतिथ्य ? . . . मैं चाहती हूँ आज इस घर में सारे संसार का आतिथ्य कर सकूँ। . . तुम्हें इस दूध से नहला दूँ, माँ ? . . . माँ तुम सोच सकती हो आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ ?''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तीनों संवादों की सरल संरचना मल्लिका के आंतरिक उल्लास को व्यक्त करती हैं, शब्द भी तदनुरूप हैं। इस स्थिति का व्यतिरेक अम्बिका के कथनों में है। अम्बिका जब तर्क देना चाहती है तो उसके संवाद में मिश्र वाक्य होते हैं और जब वह कुछ नहीं कहने की बात कहकर भी बहुत–कुछ या सब–कुछ कह देती है तो वाक्य सरल और संक्षिप्त होते हैं। अम्बिका का यह कथन देखें –

''मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही संबंध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति नहीं हो, तुम्हारे प्रति उसका या तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं है ?''

उपर्युक्त संरचना में आवेग नहीं है, बल्कि प्रश्नात्मक उपवाक्यों में यथार्थ को प्रकट किया गया है। मल्लिका इसे स्वीकार करती है, पर 'अपने स्वार्थ की घोषणा नहीं करना चाहती' और आग्रहपूर्वक कालिदास को उज्जयिनी भेजती है। वह समझती है कि कालिदास उसके कारण नहीं जा रहा, परन्तु कालिदास यह कहकर उसे चकित कर देता है कि सिर्फ मल्लिका से नहीं, अपितु अन्य कई सूत्रों से उस ग्राम से जुड़ा था। द्वितीय अंक में निक्षेप से कहा गया मल्लिका का निम्नलिखित कथन उसकी आत्मग्लानि का सूचक है –

"आपके कहने से मैं उन्हें जाने के लिए प्रेरित न करती, तो कितनी बड़ी क्षति होती ?"

परन्तु मल्लिका का निम्नलिखित कथन मानो उसके द्वारा स्वयं से छद्म करने का उदाहरण है –

"क्या हुआ ? .... और जो हुआ, वह तो अच्छा ही था"

उपर्युक्त वाक्य में 'क्या हुआ' जैसे मल्लिका के आहत मन की अभिव्यक्ति है और शेष अंश से ऐसा लगता है जैसे उसने नियति से समझौता कर लिया है। कालिदास के आने की बात जानकर उसकी पीड़ा एक बार फिर मुखर हो उठती है। उसका यह स्वगत कथन देखें –

"आज वर्षों के बाद तुम लौटकर आए हो ! सोचती थी तुम आओगे तो उसी तरह मेघ घिरे होंगे, वैसा ही अँधेरा–सा दिन होगा, वैसे ही एक बार वर्षा में भीगूँगी और तुमसे कहूँगी कि देखो मैंने तुम्हारी सब रचनाएँ पढ़ी हैं ....। परन्तु, आज तुम आए हो. तो सारा वातावरण ही और है। और कृ और नहीं सोच पा रही कि तुम भी वही हो या ... ?"

यहाँ मल्लिका की कल्पना यथार्थ से टकरा जाती है। प्रियंगुमंजरी के संवादों की भाषा तो और भी यथार्थपरक है। कालिदास का यह कथन उसके स्वार्थ को ही संकेतित करता है –

" कृ मैं अपने को विश्वास दिलाता रहा हूँ कि कभी भी लौटकर आऊँ, यहाँ सब–कुछ वैसा ही होगा।"

यह विसंगति है कि कालिदास विवाह करके, राज्य–वैभव पाकर, वारांगनाओं के साथ रहकर भी चाहता है कि मल्लिका वही रहे। उसने यह भी नहीं सोचा कि मल्लिका कैसे जी रही होगी ? जीवन–यापन का साधन क्या होगा ? उसका यह कथन द्रष्टव्य है –

"हम फिर अथ से प्रारम्भ कर सकते हैं।"

परन्तु इस संवाद के तत्काल बाद ही बच्ची के रोने का स्वर सुनाई पड़ता है। कालिदास द्वारा मल्लिका से इस बारे में पूछने पर वह कहती है कि 'यह मेरा वर्तमान है।' कालिदास को जब यह पता चलता है कि मल्लिका का विलोम से विवाह हो चुका है, उसके बच्ची भी है तो वह अपना प्रस्ताव छोड़ कहता है –

"समय अधिक शक्तिशाली है क्योंकि ... वह प्रतीक्षा नहीं करता।"

इसी एक कथन से पाठक समझ लेते हैं कि अब कथा का पटाक्षेप हो चुका है।

मोहन राकेश 'मौन' से भी अर्थ व्यक्त करते हैं। नाटक में अम्बिका कुछ नहीं बोलती, पर उसका लंबी साँस लेना, झरोखे से बाहर देखना, सूप में धान फटकना, धान को मुट्ठी में लेकर जैसे मसलते हुए छाज से गिराना आदि व्यापार उसकी आंतरिक घुटन भरी मनोदशा की निश्शब्द व्यंजना करते हैं। अंत में कालिदास जिस तरह किवाड़ों को मिलाकर बगैर कुछ बोले बाहर निकलता है, जैसे अतीत को सदा के लिए मूँद देता है। संवादों से गहरी अर्थवत्ता का बोध होता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कालिदास : इसका अर्थ है तुमसे विदा लूँ।

मल्लिका : नहीं ! विदा तुम्हें नहीं दूँगी।

और वास्तव में कालिदास ने तो विदा ले ही ली, पर मल्लिका अंत तक अपने मन से उसे विदा न दे सकी।

मोहन राकेश ने भावों की बेहतर अभिव्यक्ति के लिए भाषेतर उपादानों का भी आश्रय लिया है। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में मेघ प्रतीक हैं – मल्लिका के मन में उमड़ते कालिदास के प्रति प्रेम के। मेघ–गर्जन और वर्षा का शब्द पूरा दृश्य और श्रव्य–बिम्ब है जो कथानक और चरित्रों से बँधा है। कालिदास के चले जाने पर तीव्र मेघ–गर्जन के साथ–साथ वर्षा का शब्द मल्लिका की पीड़ा और अन्तर्व्यथा का आँसुओं के साथ घुलमिल जाना जैसे सघन वातावरण की सृष्टि करता है। बादल, बिजली, वर्षा आदि के बढ़ते जाते शब्द कथावस्तु को उर्थदीप्ति देते हैं एवं सूक्ष्म द्वन्द्व–सूत्रों को भी प्रकाशित करते हैं। हरिणशावक, उपत्यकाएँ, पर्वत–शिखर, वायु, कुंभ, कुशा, दीपक, रेशमी वस्त्र में लिपटे भोजपत्र सब मिल कर आत्मीय संबंध ों और भावपूर्ण स्थितियों के सूचक बन जाते हैं।

पात्रों के द्वन्द्व, व्यंग्य, पीड़ा और दंभ भाषा की बुनावट में प्रकट होते चलते हैं। प्रियंगुमंजरी का दर्प, राजसी व्यक्तिव्य, मल्लिका के समक्ष उसकी आन्तरिक निराशा, पराजय, व्यावहारिक कुशलता, घबराहट आदि शब्द–संयोजन से ही कुशलता से अभिव्यक्त हुए हैं। लय–संयोजन राकेश की भाषा की एक कसौटी कही जा सकती है। संवादों में विभिन्न अर्थ–संसर्ग कितने चमत्कारी ढंग से पैदा हो जाते हैं – यह अनुस्वार और अनुनासिक के संवादों में स्पष्ट होता है। यदि आन्तरिक लय को न पकड़ा जाए तो ये एकदम सपाट और अर्थहीन लगेंगे। शब्दों का सर्जनात्मक प्रयोग संदर्भों की लय में और नयी लय खोज सकता है और तब शब्द ही पूरे रंगमंच की धुरी बन जाते हैं।

मोहन राकेश कहीं–कहीं एक ाब्द को पकड़ कर, दोहरा कर भी अर्थ–संसर्ग का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जैसे –

अंबिका : कैसी विचक्षणता है !

निक्षेप : विचक्षणता ?

अंबिका : विचक्षणता ही तो है।

निक्षेप : इसमें विचक्षणता क्या है अंबिका ?

अंबिका : राज्य कवि का सम्मान करना चाहता है। कवि सम्मान के प्रति उदासीन जगदम्बा के मंदिर में साधनानिरत है। राज्य के प्रतिनिधि मंदिर में आकर कवि की अभ्यर्थना करते हैं। कवि धीरे–धीरे आँखें खोलता है। ..... इतना बड़ा नाटक करना विचक्षणता नहीं है ?

कालिदास के प्रति अंबिका की सारी घृणा, आक्रोश मानो इस भाषिक–विधान में मूर्त हो गये हैं। 'विचक्षणता' शब्द शाब्दिक अर्थ में यहाँ उतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना अपनी ध्वन्यात्मकता में, यह सार्थक नाटकीय शब्द है।

कुल मिलाकर 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की भाषा रंगमंच के निकट, नाटकीय वातावरण के अनुरूप, व्यर्थ के आडंबर से मुक्त है। एक अभिनेता के रूप में ओम शिवपुरी ने मोहन राकेश की नाट्य–भाषा के संबंध में उचित ही कहा है – "उस आदमी ने सैंस कर लिया था कि आज की टोटल रिद्म को किस शब्दावली में व्यक्त किया जा सकता है। उनके नाटकों का एक भी शब्द बनावटी नहीं है। यह बात उनके तीनों नाटकों को साथ रख कर देखिए कि वह इन्सान किस कदर भाषा की तलाश कर रहा था।" (ओम शिवपुरी – मोहन राकेश और उनके नाटक)

3.4.6 अभिनेयता

मोहन राकेश के पूर्व पाठ्य नाटकों की परंपरा रही। जयशंकर प्रसाद के बाद हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविंददास, उदयशंकर भट्ट, अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि के नाटक पाठ्य नाटक हैं। मोहन राकेश, जगदीशचंद्र माथुर आदि नाटककारों ने फिर नाटक को रंगमंच से जोड़ने का प्रयास किया। मोहन राकेश अपने नाटकों में नाटककार और निर्देशक की दोहरी भूमिका निभाते हैं। उनके तीनों नाटकों में, चाहे 'आषाढ़ का एक दिन' हो, 'लहरों के राजहंस, हो या 'आधे–अधूरे हो, सूक्ष्म रंग–निर्देश संकेतित हैं जो अभिनय में तो सहायता करते ही हैं, नाटक के वातावरण को भी सजीव बनाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक का प्रारंभ 'हल्के–हल्के मेघ–गर्जन और वर्षा के शब्द' से होता है। इसके साथ परदा उठता है, मल्लिका के घर के सूक्ष्म विवरण को रंग–निर्देश के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह स्थिति नाटकों के रंगमंच पर अभिनय को सहज बनाती है। नाटक में दृश्य–स्थल एक ही रहता है और वह है – मल्लिका का घर, इस स्थान से बाहर घटने वाली घटनाओं को संवादों से जीवंत किया गया है। एक ही दृश्य–पटल पर मोहन राकेश कुशलता के साथ वस्तु, पात्र के चरित्र, उसके अन्तर्द्वन्द्व और आत्म–संघर्ष को प्रस्तुत कर देते हैं। सरल रंगमंच के इस आयोजन को पश्चिमी प्रभाव भी कहा जा सकता है।

इस नाटक में Action प्रत्यक्ष नहीं है, जो भी है – मंच से बाहर। मंच पर पात्रों के द्वारा एक भाव, एक मनः स्थिति प्रस्तुत की जाती है। नाटक की शुरूआत एक उल्लास, मग्न और प्रसन्न स्थिति से होती है जो क्रमशः उदास, खिन्न मनःस्थिति में पर्यवसित हो जाती है। प्रारम्भ में मल्लिका उल्लास में आषाढ़ की पहले ही दिन हुई वर्षा में भीगकर प्रफुल्लित मन से घर आती है। कालिदास के उज्जयिनी–गमन प्रसंग से मल्लिका का अवसाद गहराने लगता है, प्रियंगुमंजरी–प्रसंग और कालिदास के ग्राम आने के बावजूद मल्लिका से न मिलने से यह अवसाद चरम सीमा पर पहुँच जाता है। अंत मल्लिका की करूण पुकार 'कालिदास कृ कालिदास' में होता है। पर इस सब में ।बजपवद कहीं नहीं है। मोहन राकेश सभी घटनाओं को एक ही दृश्य–पटल पर पात्रों के संवादों के माध्यम से प्रस्तुत कर देते हैं। उन्होंने अपने सभी नाटक('आषाढ़ का एक दिन', लहरों के राजहंस' और 'आधे–अधूरे') रंगमंच की दृष्टि से लिखे हैं। इसके पीछे मूल कारण है कि उन्हें रंग अभिनेता का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त है। वे हिन्दी क्षेत्र के रंगमंच की समस्याओं और आवश्यकताओं से अच्छी तरह से परिचित हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की भूमिका में ही उन्होंने हिन्दी रंगमंच से जुड़ी कुछ धारणाएँ व्यक्त की हैं –

"हिन्दी नाटक रंगमंच की किसी विशेष परम्परा के साथ अनुस्यूत नहीं है। पाश्चात्य रंगमंच की उपलब्धियाँ ही हमारे सामने हैं। परन्तु न तो हमारा जीवन उन सब उपलब्धियों की माँग करता है, और न ही यह सम्भव प्रतीत होता है कि हम उस रंगशिल्प को व्यापक रूप से ज्यों का त्यों अपने यहाँ प्रतिष्ठित कर दें।"

इसी भूमिका में वे हिन्दी रंगमंच के संदर्भ में लिखते हैं –

"हिन्दी रंगमंच को हिन्दी–भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा, रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त करना होगा। हमारे दैनंदिन जीवन के राग–रंग को प्रस्तुत करने के लिए, हमारे संवेदों और स्पन्दनों को अभिव्यक्त करने के लिए, जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा।"

मोहन राकेश की इन धारणाओं से प्रतीत होता है कि 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक लिखते समय उन्होंने हिन्दी रंगमंच की आवश्यकता का ध्यान रखा होगा। इस नाटक में उन्होंने अपने रंगमंचीय अनुभव के आधार पर बड़ा सरल अंकविधान किया है। इस नाटक में केवल तीन अंक हैं और तीनों अंकों में दृश्य या सेट एक ही है और वह है – मल्लिका का घर। उस घर की दीवारें, द्वार, ड्योढ़ी, ताक, दिये, तल्प, चूल्हा, मिट्टी और काँसे के बर्तन, झरोखा, तीन–चार कुम्भ, कुशा, पत्थर, लकड़ी का आसन, व्याघ्रचर्म, चौकियाँ, छाज, धान तथा साजसज्जा की स्थिति के संकेत पहले अंक में दे दिए गये हैं। दूसरे अंक में यही दृश्य रहता है, किन्तु घर और सामान के रंग, कमल, शंख, स्वास्तिक आदि फीके पड़ते जाते हैं और बर्तन की संख्या कम होती जाती है। अम्बिका और मल्लिका के वस्त्र फटे और टाँके लगे होते दिखाये गये हैं। तीसरे अंक में सब–कुछ जर्जर और अस्त–व्यस्त है। इस प्रकार यह नाटक रंगसज्जा की दृष्टि से सरल ही है। अंक–परिवर्तन के साथ वस्तु–परिवर्तन करना आसान है। चीजों का हल्के रंग करना, कम करना और अस्त–व्यस्त ही करना है जो कि प्रकाश–व्यवस्था की सहायता से भी किया जा सकता है। नाटक की रंगमंचीय प्रस्तुति में तभी परेशानी होती है, जब दृश्य–परिवर्तन के लिए सज्जाकारों को व्यापक फेरबदल करनी पड़े या चीजों को इधर से उधर करना पड़े। परन्तु इस नाटक के तीनों अंकों के किसी दृश्य में ऐसी आवश्यकता बिल्कुल नहीं है।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में प्रकाश की विविध व्यवस्थाओं और रंगों के सर्जनात्मक प्रयोग भी देखे जा सकते हैं। बिजली की कौंध, वर्षा भरे दिन का नीम–उजाला आदि व्यवस्थाओं के संकेत इसमें उपलब्ध होते हैं। अम्बिका गहरे अवसाद में डूबी है, उसकी आँखों में आँसू हैं, ऐसे में नाटककार का रंग–निर्देश देखें –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"प्रकाश कम हो जाता है। अम्बिका के कण्ठ से रूँधा–सा स्वर निकलता है कृ आँचल में मुँह छिपा लेती है। प्रकाश कुछ और क्षीण हो जाता है, तभी ड्यौढ़ी के अँधेरे में अग्निकाष्ठ की लौ चमक उठती है ... अम्बिका आँचल से मुँह उठाती है। अग्निकाष्ठ के प्रकाश में उसके मुख की रेखाएँ गहरी और आँखें धँसी–सी दिखाई देती हैं ...।"

प्रकाश के इस प्रयोग में काव्यात्मक तरलता विद्यमान है। नाटक के कार्य–व्यापार और आंतरिक भाव को रंगीन प्रकाश के द्वारा, अंधकार और प्रकाश के तालमेल द्वारा, स्पॉट लाइट को अलग–अलग समय में महत्वपूर्ण चीजों पर केन्द्रित करके अधिक से अधिक उभारा जा सकता है।

मोहन राकेश ने इस नाटक में बीच–बीच में अभिनय–संकेत देकर रंगनिर्देशक और अभिनेताओं का कार्य आसान कर दिया है। अभिनय के समय नाटककार के परामर्श अभिनेताओं की सहायता करते हैं, रंग–निर्देशक नाटककार के आशय को समझकर संकेतों की रक्षा करता है और अभिनेताओं के अभिनय का अनुशासन करता है। अभिनय में सहायक संकेत मोहन राकेश ने कई स्थलों पर दिये हैं। यथा –

- क्र अम्बिका झरोखे की ओर देखकर लम्बी साँस लेती है, फिर व्यस्त हो जाती है।
- क्र सामने का द्वार खुलता है और मल्लिका गीले वस्त्रों में काँपती–सिमटती अन्दर आती है। अम्बिका आँखें झुकाए व्यस्त रहती है। मल्लिका क्षणभर ठिठकती है, फिर अम्बिका के पास आ जाती है।
- क्र अम्बिका उस पर सिर से पैर तक एक दृष्टि डालकर फिर व्यस्त हो जाती है। मल्लिका घुटनों के बल बैठकर उसके कन्धे पर सिर रख देती है।

इस तरह के अभिनय–संकेत पूरे नाटक में हैं। ये संकेत संवादों से हटकर हैं, लेकिन कुछ संकेत संवादों के मध्य में भी हैं जिनसे व्यंग्य, उपेक्षा आदि भाव व्यंजित होते हैं। अभिनय में शब्द ही नहीं, अंग–संचालन और हाव–भाव प्रदर्शन भी महत्वपूर्ण हैं। मोहन राकेश के इस नाटक में इन सबका समावेश किया है।

रंगमंच की दृष्टि से नाटक के सफल होने के लिए यह भी आवश्यक है कि कथानक कसा हुआ हो, पात्रों की भीड़ कम हो और संवादों की भाषा आसान तथा सुसंप्रेष्य हो। ये सभी विशेषताएँ हम 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में देख सकते हैं। लघुता, प्रतीकात्मकता और काव्यात्मक सम्मोहन के चलते यह नाटक दर्शकों को आदि से अन्त तक बाँधे रखता है। इसमें पात्रों की संख्या भी कम है। प्रमुख पात्र केवल चार हैं – कालिदास, मल्लिका, अम्बिका और विलोम। शेष पात्र थोड़े समय के लिए मंच पर आते–जाते हैं। एक समय में दो–तीन पात्र ही मंच पर उपस्थित रहते हैं। कुछ पात्रों की गतिविधियों की मात्र सूचना देकर ही काम चला लिया गया है, जैसे आचार्य वररूचि और अग्निमित्र के संदर्भ में। इस तरह मंच पर पात्रों की भीड़ जमा नहीं होती। नाटक के सभी पात्र हाव–भाव–अनुभाव से चालित हैं, स्थिर नहीं हैं। कोई भी पात्र न जमकर बैठ जाता है, न लगातार खड़ा रहता है।

यद्यपि इस नाटक में संवादों की भाषा तत्सम है और लाक्षणिक भी, परन्तु यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में आवश्यक है और रंगमंच पर इन्हें बोलने में पात्रों को विशेष कठिनाई नहीं होती। इस नाटक का विशेष रूप से आनंद बुद्धिजीवी ले सकते हैं, परन्तु समाज का व्यापक वर्ग भी इसे देख कर रससिक्त तो हो ही जाता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 'आषाढ़ का एक दिन' अभिनेयता या रंगमंच की दृष्टि से सफल नाटक है और इसका प्रमाण है – अनेक स्थानों पर इसका सफल मंचन।

3.5 सारांश

अंत में यही कहा जा सकता है कि मोहन राकेश का नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' नाट्य रूप की दृष्टि से एक सुगठित यथार्थवादी नाटक है, जिसमें परिस्थितियों के बाह्य पक्ष से अधिक, आंतरिक पक्ष को उद्घाटित किया गया है। घटनाएँ, पात्र एवं भाव इस प्रकार रखे गए हैं कि वे स्वतः ही नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

वस्तुतः इस नाटक में न तो अतीत का पुनरूत्थानवादी गौरव–गान है और न ही भावुकतापूर्ण अतिनाटकीय स्थितियाँ हैं।

कहा जा सकता है कि हिन्दी नाटकों में 'आषाढ़ का एक दिन' कथावस्तु, भाव और रूपबन्ध के स्तर पर पर्याप्त सफल नाटक है, रंगमंच की कसौटी पर भी खरा उतरता है। निःसन्देह यह एक श्रेष्ठ नाटक है।

3.6 अभ्यास के प्रश्न

1. आषाढ़ का एक दिन नाटक का कथासार अपने शब्दों में लिखिए।
2. आषाढ़ का एक दिन नाटक की तात्विक समीक्षा कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–4 : बाणभट्ट की आत्मकथा

संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 रचनाकार हजारी प्रसाद द्विवेदी का परिचय
4.3 बाणभट्ट की आत्मकथासार
    4.3.1 प्रथम उच्छवास
    4.3.2 द्वितीय उच्छवास
    4.3.3 तृतीय उच्छवास
    4.3.4 चतुर्थ उच्छवास
    4.3.5 पंचम उच्छवास
    4.3.6 षष्ठ उच्छवास
    4.3.7 सप्तम उच्छवास
    4.3.8 अष्टम उच्छवास
    4.3.9 नवम उच्छवास
    4.3.10 दशम उच्छवास
    4.3.11 एकादश उच्छवास
    4.3.12 द्वादश उच्छवास
    4.3.13 त्रयोदश उच्छवास
    4.3.14 चतुर्दश उच्छवास
    4.3.15 पंचदश उच्छवास
    4.3.16 षोडश उच्छवास
    4.3.17 सप्तदश उच्छवास
    4.3.18 अष्टादश उच्छवास
    4.3.19 उन्नीसवां उच्छवास
    4.3.20 बीसवां उच्छवास
4.4 नारी चेतना एवं प्रेम का स्वरूप
    4.4.1 प्रेमिका रूप में नारी
    4.4.2 सन्यासिनी रूप में नारी
    4.4.3 पत्नी रूप में नारी
4.5 बाणभट्ट की आत्मकथा का साहित्यिक रूप
    4.5.1 बाणभट्ट की आत्मकथा और संस्मरण
    4.5.2 बाणभट्ट की आत्मकथा एवं जीवनी
    4.5.3 बाणभट्ट की आत्मकथा और इतिहास
    4.5.4 बाणभट्ट की आत्मकथा और आत्मकथा
    4.5.5 बाणभट्ट की आत्मकथा और उपन्यास
4.6 बाभभट्ट की आत्मकथा में प्रेम–निरूपण
    4.6.1 बाणभट्ट और निपुणिका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.6.2 बाणभट्ट और भट्टिनी
4.6.3 अघोर भैरव एवं महामाया
4.6.4 विरतिवज्र एवं सुचरिता
4.6.5 बाणभट्ट की आत्मकथा में प्रेम तत्त्व की विशेषताएं
4.7 भट्टिनी का चरित्र–चित्रण
4.7.1 सौन्दर्य की साकार प्रतिमा
4.7.2 पवित्रता और गरिमा की प्रतिमूर्ति
4.7.3 स्वाभिमानिनी
4.7.4 आस्तिक प्रवृत्ति
4.7.5 अपार ज्ञानशीलता
4.7.6 सहनशील एवं कृतज्ञ
4.8 बाणभट्ट की आत्मकथा में सांस्कृतिक चेतना
4.8.1 संस्कृति का स्वरूप और आलोच्य उपन्यास में सांस्कृतिक तथ्य
4.8.2 सामाजिक तत्त्व
4.8.3 धार्मिक परम्पराएं
4.8.4 राजनीति व्यवस्था
4.8.5 आर्थिक स्थिति
4.8.6 सांस्कृतिक चेतना (ललित कलाएं)
4.9 सारांश
4.10 अभ्यास प्रश्नावली

4.0 प्रस्तावना

साहित्य जगत के शिरोमणि लेखक पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने साहित्यिक प्रतिभा के कारण साहित्य जगत में अमर हैं। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना का उर्ध्वरोहन किया है। बाणभट्ट की आत्मकथा उनका एक ऐसा उपन्यास है जिसमें ऐतिहासिकता और काल्पनिकता का अद्भुत दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत अध्याय में हम इस उपन्यास का सांगोपांग अध्ययन कर सकेंगे।

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन से हम–

1. पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी जीवन परिचय से परिचित हो सकेंगे।
2. बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास की सांगोपांग की जानकारी हो सकेगी।
3. उपन्यास की भीतरी सुबास (संवेदनात्मकता) से रूबरू हो सकेंगे।
4. बाणभट्ट की आत्मकथा में व्याप्त सांस्कृतिक चेतना का ज्ञान हो सकेगा।
5. बाणभट्ट की आत्मकथा के साहित्यिक रूप का बोध हो सकेगा।

4.2 रचनाकार –हजारी प्रसाद द्विवेदी का परिचय

उत्तर प्रदेश जिला बलिया के गांव दुबे छपरा में सन् 1907 को जन्मे हजारी प्रसाद द्विवेदी बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार थे। सामाजिक सन्दर्भो में साहित्य की मीमांसा और सांस्कृतिक सन्दर्भों में मानवीयता की स्थापना में द्विवेदी जी के लेखन के वैशिष्ट्य का रेखांकन किया जा सकता है।'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचन्द्र लेख' 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' उपन्यास द्विवेदी जी द्वारा इतिहास के पन्नों पर वर्तमान समय के जीवन्त चित्र ही हैं। शास्त्रज्ञ, इतिहासज्ञ एवं साहित्य चिन्तक का त्रिविध रूप उनके लेखन में साफ–साफ देखा जा सकता है। वे काल को भाषा के माध्यम से सजीव करने में सिद्धहस्त रहे हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं से गुजरते हुए हम अपने को उसी देशकाल के बीच खड़ा पाते हैं। वस्तुतः उनका कालबोध इतिहास सन्दर्भित है, वे निरन्तर बनते इतिहास को सूक्ष्मता के साथ अनुभव करते हैं और उसमें भारतीयता का सन्धान करते हैं। उन्होंने जहाँ मानवता, संस्कृति और सौन्दर्य का समञ्जन किया, वहीं शैली की गुरू गम्भीर भूमि का संस्पर्श करते हुए फक्कड़ाना अन्दाज में जीवन मूल्यों की प्रस्थापना की। उनकी सारी रचनाशीलता का प्रस्थान बिन्दु भारतीय संस्कृति का आख्यान है और लक्ष्य जीवन मूल्यों की प्रस्थापना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

द्विवेदी जी आधुनिक दृष्टि सम्पन्न रचनाकार हैं। अशोक वाजपेयी कहते हैं, "द्विवेदी जी ने अपने चारों उपन्यासों के लिए सीधे आधुनिक परिदृश्य नहीं चुना, लेकिन आधुनिक मनुष्य का संशय, उसकी जिजीविषा, उसकी अस्मिता और संघर्ष, उसके दुःस्वप्न और आदर्श उनका विषय है। पीरियडक्रॉनिकल जैसे लगने के बावजूद ये उपन्यास आज के आदमी के विकल दस्तावेज हैं। मनुष्य की सहजता और समग्रता, उसकी अपराजेयता की जो खोज द्विवेदी जी, कबीर और अन्य संत साहित्य में अपनी प्रखर विश्लेषण बुद्धि से करते हैं, वही उन्हें अदम्य सृजनात्मक ऊर्जा के साथ उपन्यास की ओर भी ले गयी। मनुष्य की अपराजेय रचनात्मक की शोध जैसे उन्होंने कबीर, रैदास और नानक में की, वैसे ही अपने औपन्यासिक चरित्रों बाणभट्ट, मौला और अनामदास में भी।" हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय आधुनिकता के आलम्बरदार हैं। जिनकी आधुनिकता बाह्य नहीं आन्तरिक है। 'परम्परा को वे आधुनिक स्पर्श देते हैं और आधुनिकता को परम्परा की समझ (अशोक वाजपेयी)। 'बाणभट्ट की आत्मकथा इसका जीवन्त प्रमाण है।

4.3 बाणभट्ट की आत्मकथा कथासार

4.3.1 प्रथम उच्छवास

बाणभट्ट का जन्म प्रसिद्ध संस्कृत पंडित के घर में हुआ था। जहाँ शुक–सारिकाएँ भी वेद–मंत्रों का उच्चारण करते थे। पिता चित्रभानु भट्ट की मृत्यु भी उस समय हो गई जब बाणभट्ट चौदह वर्ष का था। माता पहले ही स्वर्ग सिधार गई थी। कथावाचन, ज्योतिषी, नाटक–मण्डली आदि के अनेक व्यवसाय अपनाए और छोड़ दिए। एक दिन वह घूमते हुए स्थाण्वीश्वर में आया। स्थाण्वीश्वर सम्राट हर्षवर्धन के सम्राज्य की राजधानी थी। सम्राट के छोटे भाई कुमार कृष्णवर्द्धन के घर पुत्र–जन्म का समाचार पाकर वह भी बधाई और आशीर्वाद देने राजमहलों की ओर जा रहा था, किन्तु कोई अनहोनी उसे अपनी ओर खींच रही थी।

4.3.2 द्वितीय उच्छवास

बाजार में से गुजरते हुये भट्ट को उसकी नाटक–मण्डली की एक नर्तकी निपुणिका ने आवाज लगाई। वह दुकान पर बैठी पान लगा रही थी और ग्राहकों को प्रसन्न मुद्रा से आकर्षित कर रही थी। निपुणिका ने भट्ट को पहचान कर पुकारा। बाणभट्ट भी उसे पहचान गया। छः वर्ष पूर्व बाणभट्ट की नाटक–मण्डली जब उज्जयिनी में थी, तब निपुणिका उसमें भरती हुई थी। वह विधवा थी। बाणभट्ट की नर्तकियाँ कठोर अवरोध में रहती थी। एक दिन उज्जयिनी में ही बाणभट्ट का लिखा हुआ मालविकाग्निमित्र नाटक अभिनीत होने जा रहा था। निपुणिका 'मालविका' की भूमिका में उतर रही थी। उसके जूड़े का एक पुष्प धरती पर गिर गया, जिसे देखकर बाणभट्ट हँस पड़ा। निपुणिका ने गर्व और मोह से सोचा था कि भट्ट उस पुष्प को उठाकर पुनः अपने हाथ से उसके जूड़े में टांग देगा किन्तु वह स्वप्निल आकांक्षा चूर–चूर हो गयी। फलतः अभिनय के बाद निपुणिका कहीं भाग गई। तब से भट्ट ने निपुणिका को आज देखा था। निपुणिका के जाने के बाद बाण ने नाटक–मण्डली भी तोड़ दी। आज निपुणिका ने रो–रो कर स्पष्ट कहा कि उस दिन मेरे भागने का कारण तुम्हीं थे। मुझे तुम से मोह हो गया था किन्तु तुम पत्थर बन गये थे। भट्ट उसके रुदन और दुःख के पीछे छिपी मर्मांतक पीड़ा का अनुभव करके सहायता के लिए तत्पर होता है। निपुणिका ने उसे बताया कि छोटे अन्तःपुर में देवी–मन्दिर स्वरूप एक नारी बन्दी है, तुम्हें स्त्री–वेश में उसका उद्धार करने मेरे साथ चलना है।बाणभट्ट निपुणिका को सहयोग देने के लिए तत्पर हो जाता है।

4.3.3 तृतीय उच्छवास

बाणभट्ट स्त्री के वेश में निपुणिका के साथ अशोक–वन की सीता का उद्धार करने के लिए छोटा महाराज के अन्तःपुर की ओर प्रस्थान करता है। सम्राट हर्षवर्द्धन ने अपने बहनोई मौखरि–वंशीय ग्रहवर्मा की मृत्यु के पश्चात उनका राज्य भी अपने राज्य में मिला लिया था। देवी राज्यश्री सम्मान के साथ स्थाण्वीश्वर में ही रहती थी। ग्रहवर्मा का एक दूर का सम्बन्धी छोटा महाराज के नाम से स्थाण्वीश्वर में आश्रय पाए हुए था। उसे कोई दायित्व नहीं दिया गया था किन्तु सम्पत्ति पर्याप्त दी गई थी। उसके अन्तःपुर में एक साध्वी राजकुमारी एक महीने से अपनी इच्छा के विरूद्ध कैद थी। यही राजकुमारी निपुणिका की दृष्टि में अशोक–वन की सीता थी, यही देवीमन्दिर था, जिसका उद्धार करने बाणभट्ट को साथ लेकर जा रही थी। बाणभट्ट का स्त्री–वेश में 'सुदक्षिणे' नाम रख कर निपुणिका ने उसे सहज कर दिया। शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी की रात्रि मदन–पूजा के कारण कान्यकुब्ज में उत्सव में मग्न हुई थी। छोटा महाराज का अन्तःपुर मदिरा और संगीत–नृत्य में डूबा था। स्त्रियाँ भी मदलीन थी। वारुणी (शराब) में मस्त स्त्रियों से मिलती हुई निपुणिका तथा उसकी सखी ने वृद्ध कंचुकी वाभ्रव्य को प्रणाम किया। निपुणिका ने अपनी सखी को गाँव से नई आई हुई बताया जो अन्तःपुर के शिष्टाचार से अनभिज्ञ हैं। जब वे दोनों उस राजकुमारी के पास पहुँची, तब वह महावराह की पूजा कर रही थी। पूजा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के पश्चात् उसने वीणा बजाई, फिर महावराह की स्तुति पढ़ी। अब उचित समय पर निपुणिका ने बाणभट्ट का परिचय दिया कि वे हमारे सहायक बन कर आये हैं। मन्त्रणा के पश्चात् निपुणिका ने आर्य वाभ्रव्य से कहला दिया कि नई बहू आज अकेली, अपनी नई सहेलियों के साथ प्रमद–वन में विहार करेंगी। एकांत पाकर बाणभट्ट अन्तःपुर की दीवार लाँघकर बाहर चला गया और निपुणिका तथा राजकुमारी भट्टिनी द्वार से बाहर आ गई। उन्हें इस उन्मत्त वातावरण में कोई नहीं पहचान सका।

4.3.4 चतुर्थ उच्छवास

निपुणिका ने चण्डी–मन्दिर के एक छोटे से जीण कक्ष में भट्टिनी के छिपने की व्यवस्था की थी। यह स्थान उस राजकन्या के लिए कतई उपयुक्त नहीं था। भट्टिनी ने बाणभट्ट से कुछ उचित प्रबन्ध करने के लिए कहा ताकि वे राजकोप से बचते हुए किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच सकें। बाणभट्ट ने निपुणिका और भट्टनी दोनों को आश्वस्त किया कि मेरे रहते भय की आशंका नहीं है। भट्ट चण्डी–मन्दिर से बाहर आया। इसी समय एक वृद्ध ब्राह्मण चण्डी–मन्दिर में आये। बाणभट्ट को उस ब्राह्मण से ज्ञात हुआ कि चण्डी–मण्डप का द्रविड़ पुजारी बड़ा तांत्रिक, रसिक, लम्पट, लालची, क्रोधी और धन–सम्पत्ति तथा स्त्री प्राप्त करने का इच्छुक है। वह ब्राह्मणों से वैर रखता है। इस सूचना के थोड़ी देर बाद बाणभट्ट का साक्षात्कार उस पुजारी से हो गया। भट्ट ने अपनी वाक्‌पटुता से उस पुजारी को श्रेष्ठी धनदत्त के पास भेज दिया। उसे मूर्ख बनाने के लिए बाणभट्ट ने कह दिया कि वह धनदत्त अपनी समस्त सम्पत्ति आपको दान देकर तीर्थ यात्रा पर जायेगा। जब तक आप वहाँ जाकर उसका दान ग्रहण न करेंगे, वह अन्न जल ग्रहण न करेगा। चण्डीमण्डप का पुजारी नगर में धनदत्त की हवेली की ओर चला गया। पुजारी ने आस–पास एक बौद्ध–बिहार तथा उसमें सुगतभद नामक भिक्षु के होने की सूचना दी थी। भट्टिनी ने सुगतभद्र का नाम सुनकर भट्ट से कहा कि यदि ये सुगभद्र, आचार्य शीलभद्र के सहपाठी हों तो उन्हें मेरा देवपुत्र तुवर मिलिन्द की कन्या का प्रणाम कहना। भट्ट और निपुणिका को भट्टिनी का वास्तविक परिचय पाकर श्रद्धा तथा आश्चर्य हुआ। एक सामनेर से पूरा परिचय पूछ कर बाणभट्ट आचार्य सुगतभद्र से मिला और देवपुत्र–कन्या का समस्त विवरण उन्हें दिया। सुगतभद्र ने कुमार कृष्णवर्द्धन को बुला भेजा और बाणभट्ट से कहा कि मैं तुम्हारे लिए सुरक्षित मगध की ओर जाने की व्यवस्था कर देता हूँ, तुम कुमारी चन्द्रदीधिति को लेकर यहाँ से लेकर चले जाओ। तुम्हें राज–कोप का भय है।

4.3.5 पंचम उच्छवास

भट्ट जब यह सब समाचार देने चण्डी मण्डप में पहुँचा तो भट्टिनी महावराह की पूजा कर रही थी। निपुणिका ने बताया कि यदि बाणभट्ट न मिला होता तो भी चण्डी–मन्दिर के पुजारी की सहायता से इतनी व्यवस्था तो हो जाती। भट्ट ने उसे आश्वस्त किया कि शीघ्र ही भट्टिनी के योग्य व्यवस्था हो जायेगी। भट्टिनी को भी उसने आश्वस्त किया कि आचार्य सुगतभद्र तक्षशिला से लौटे आचार्य शीलभद्र के सहपाठी हैं और आपसे बहुत स्नेह करते हैं तथा वे मेरे पितामह जयन्त भट्ट के सतीर्थ हैं। मेरे ऊपर भी उनका सन्तान–जैसा ही स्नेह है किन्तु मैं यह बात पहले नहीं जानता था। जब बाणभट्ट ने कुमार कृष्णवर्द्धन के सहयोग से किसी सुरक्षित व्यवस्था आचार्य सुगतभद्र द्वारा किये जाने का संकेत दिया तो भट्टिनी ने स्पष्ट कह दिया कि मैं स्थाण्वीश्वर के राजवंश से घृणा करती हूँ। उस राजवंश से सम्बन्धित किसी व्यक्ति का आश्रय मैं ग्रहण नहीं करूंगी। मुझे मृत्यु अधिक प्रिय है किन्तु स्थाण्वीश्वर का राजवंश का आश्रय स्वीकार नहीं। बाणभट्ट ने देवपुत्र नन्दिनी को आश्वासन दिया कि अब मैं देवपुत्र तुवर मिलिन्द की कन्या का सेवक हूँ और मैं आपके गौरव के अनुकूल ही कार्य करूँगा।

बाणभट्ट पुनः बिहार में गया, जहाँ कुमार कृष्णवर्द्धन मिले जो महाराज हर्षवर्द्धन के छोटे भाई तथा साम्राज्य के महासन्धिविग्रहक थे। कुमार ने भट्ट के सामने प्रस्ताव रखा कि देवपुत्र नन्दनी के लिए मेरा गृह प्रस्तुत है। भट्ट ने बताया कि देवपुत्र नन्दिनी स्थाण्वीश्वर के राजवंश से घृणा करती है और उससे सम्बद्ध किसी का आश्रय ग्रहण नहीं करेगी। इस बात को सुनकर कुमार भी उत्तेजित हुए किन्तु आचार्य ने दोनों को शांत किया। कुमार ने कहा मैंने सुरक्षा की व्यवस्था कर दी है। आज रात एक नौका में विश्राम करें और नौका तक मेरे द्वारा भेजी शिविका में बैठ कर जायें। देवपुत्र नन्दिनी का भाई होने का मुझे गौरव प्राप्त हो। सुगतभद्र की स्वीकृति से भट्ट यह निश्चिय करके लौट आया।

4.3.6 षष्ठ उच्छवास

भट्टिनी और निपुणिका चण्डी–मन्दिर खाली करके शिविकाओं में कुमार कृष्णवर्द्धन द्वारा निश्चित की गई नौका में चली गई। बाणभट्ट ने उस सूने मन्दिर को थोड़ी देर देखा वहाँ भट्टिनी की बनाई गई महावराह की वेदिका अभी तक गीली थी। भट्ट को इस समय अनायास ही उस वृद्धा की याद आई, जब वाराणसी जनपद में वह पुराण पाठ कर रहा था और एक वृद्धा ने अपनी पुत्रवधु का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हाथ दिखाया था और कहा था कि मेरा एक पुत्र घर–द्वार छोड़कर कहीं चला गया है। तब मैंने उसे आशीर्वाद दिया है कि तुम्हारा पुत्र तुम्हें अवश्य मिलेगा। इसी समय एक भैरवी ने आकर उसे डाँटा कि हमारे साधना–गृह में तू क्यों आया है। भैरवी उसे अपने गुरू अघोर भैरव के पास ले गई, जिन्होंने उसके मेरुदण्ड को छूकर उसकी कुण्डलिनी को जगा दिया। भट्ट ने स्वप्नाविष्ट होकर देखा कि उसकी भट्टिनी अपने महावराह के साथ जल में डूब रही है। आँखे खोलने पर भैरव ने उससे कहा कि त्रिपुर सुन्दरी ने तुझे जिस रूप में मोहित किया है, उसी को प्राप्त करना श्रेयस्कर है।

बाबा अघोर भैरव के पास एक युवा सन्यासी विरतिवज्र भी कौल–मार्ग में दीक्षित होने आये थे। क्योंकि उनके गुरु अमोघवज्र ने उन्हें सौगत–तन्त्र का अधिकारी नहीं समझा था। कौल–मार्ग में नारी को शक्ति माना जाता है, जिसकी किसी भी साधक को परम आवश्यकता होती है। थोड़ी देर बाद वहाँ वाममार्गी साधना प्रारम्भ हुई। वह भैरवी, जिसका नाम महामाया था, अघोर भैरव की शक्ति बन कर साधना में प्रवृत्त हुई। बाणभट्ट ने इस साधना को देखा। बाबा ने भट्ट से कहा था – किसी से डरना नहीं। सब साधकों के चले जाने पर महामाया व भट्ट में संवाद होता है जिसमें पुरूष व स्त्री के सम्बन्धों पर चर्चा होती है। महामाया कहती हैं पुरूष स्त्री परस्पर विरोधी नहीं पूरक है। ''स्त्री प्रकृति है। उसकी सफलता पुरूष को बांधने में है किन्तु सार्थकता पुरूष की मुक्ति है।'' इसी क्रम में उन्होंने भट्ट से कहा – तेरी कुल'कुण्डलिनी जागृत है, तुझे गुरू का प्रसाद प्राप्त है। तुझे जहाँ जाना है, वहाँ जा। इस समय भट्ट के सामने विरतिवज्र का मुख था जो वाराणसी जनपद की उस वृद्धा से मिलता–जुलता था, जो अपने पुत्र को खोजती उसे मिली थी। सोचते–सोचते भट्ट तुहिन सिक्त चण्डीमण्डप से गंगा तट की ओर प्रस्थान करते हैं।

4.3.7 सप्तम उच्छवास

भट्ट जब बहुत विलम्ब से भट्टिनी–निपुणिका के पास पहुँचा तो ज्ञात हुआ कि वे चिन्ता के मारे रात भर सो न पाई। भट्ट ने रात की सम्पूर्ण बात बताई कि उसे महामाया भैरवी और अघोर–भैरव का साक्षात्कार हो गया था। विलम्ब का यही कारण है। इस बीच वहाँ आचार्य सुगतभद्र आकर उसे आशीर्वाद दे गये थे। भट्टिनी ने आचार्य सुगतभद्र से कंचुकी वाभ्रव्य की रक्षा करने का निवेदन किया था। भट्टिनी के आग्रह पर भट्ट एक बार पुनः कुमार कृष्णवर्द्धन से मिलने के लिए राज–प्रासाद की ओर गया। एक नजर राह चलते उसने छोटा राजकुल के अन्तःपुर पर डाली जो आज मौन और सुनसान दिखाई दे रहा था। कुमार से मिलकर भट्टिनी द्वारा कुमार की शिविका का उपयोग करने की सूचना कुमार को दी। कुमार ने बताया कि भट्टिनी आर्य वाभ्रव्य के विषय में चिन्तित है। उन्हें उसकी रक्षा का आश्वासन देना। वे तुम्हें वाभ्रव्य सम्बन्धी चिन्ता से अवगत न करा सकीं, क्योंकि वे तुम्हारी कृतज्ञता के बोझ से लदी थी और तुम्हें अधिक कष्ट देना नहीं चाहती थी। कुमार ने यह भी बताया कि तुम्हें गंगा के जल–मार्ग से मगध की ओर प्रस्थान करना है। मैंने अत्यन्त विश्वस्त सैनिक एक दूसरी नौका पर तुम्हारी रक्षा के लिए नियुक्त कर दिये हैं। कुमार ने भट्ट को एक परामर्श दिया कि सत्य वह है जिससे समाज का व्यापक हित होता हो। अतः लोकहित के लिए यदि झूठ बोलना पड़े, तो हिचकना नहीं चाहिये। कुमार ने भट्टिनी को उपहार देने हेतु एक बुद्ध प्रतिमा तथा दूसरी महावराह की प्रतिमा बाणभट्ट के साथ भेजी। मार्ग में चारुस्मिता नामक गणिका के मयूर नृत्य तथा पद्म–नृत्य के समारोह के शिल्प जाल का आकर्षण छोड़कर भट्ट सीधा नदी–तट पर आ गया। यमुना उन्होंने छोटी नाव से पार की और गंगा तक का मार्ग शिविकाओं तथा घोड़ों की सहायता से पार किया।

4.3.8 अष्टम उच्छवास

भट्टिनी से भट्ट को ज्ञात हुआ कि आचार्य सुगतभद्र ने उन्हें उनके पिता तुवर–मिलिन्द तक पहुँचाने का विश्वास दिलाया था। भट्ट ने भी प्रतिज्ञा की कि महावराह सहायक है, आप सेवक पर भरोसा करें, बाणभट्ट अपने कर्त्तव्य में कभी विचलित नहीं होगा। भट्टिनी को अपने जीवन पर तथा भट्ट की प्रतिज्ञा पर सन्देह था। उन्होंने बताया कि मेरे पिता की शक्तिशाली सेना के बीच में से दस्यु मेरा अपहरण कर ले गये। मेरे संरक्षक धीरनापित मुझ अभागिन की रक्षा में बलिदान हो गए। तब से डाकुओं के साथ जंगल–जंगल भटकती रही और अन्त में छोटा राजकुल के अन्तःपुर में बन्दी बन कर मुझे रहना पड़ा। अभी भी न जाने भाग्य में क्या लिखा है। मैं इस देश की धर्षिता, कलंकिनी अपमानिता नारी हूँ। मेरा सौभाग्य भट्ट के दर्शन करना मात्र ही है। भट्ट उत्साहित और उत्तेजित होकर नारीमात्र की रक्षा के प्रति अपना संकल्प दोहराने लगा। भट्टिनी ने उसे आर्यावर्त का द्वितीय कालिदास बताया। नारी की रक्षा के प्रति चिन्तित भट्ट जब नाव की छत पर अनेक विचारों से उलझा हुआ था, तभी निपुणिका ने अपने छः वर्ष के जीवन की कहानी सुनाई। उसने कहा – मालविका का अभिनय करने के बाद, तुमसे अपमानित हुई मैं नगर की प्रधान गणिका मदनश्री के आश्रम में रही। मैं प्रायः तुम्हारे प्रति श्रद्धा व्यक्त करती थी। वह तुम्हारी परीक्षा लेने तुम्हारे पास गई थी किन्तु तुमने उसके सामने केवल मेरे भाग जाने की चर्चा की, उसके सौंदर्य की तुमने पूरी तरह उपेक्षा की। वापस आकर जब उसने तुम्हारे प्रति श्रद्धा व्यक्त की तो मेरा सिर गर्व से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उन्नत हो गया। वह मदनश्री स्वयं तुम्हारे प्रति मोहग्रस्त होकर तुम्हारा चित्र बनाने लगी। एक दिन मैं उस चित्र को चुराकर पुरुष वेश में वहाँ से भाग गई और एक मधुशाला में चषक देने का काम करने लगी, जहाँ तुम मुझे ढूँढ़ते हुए आये थे और मैंने तुम्हें अन्तिम बार देखा था। उसके बाद मैं एक ज्योतिषी से मिली। जिसने कहा कि तुम जिससे मिलने जा रही हो, वह बड़ा यश्स्वी कवि होगा किन्तु जिस दिन वह किसी जीवित व्यक्ति पर कविता लिखेगा, उसी दिन उसकी आयु क्षीण होने लगेगी। वह भट्ट से आश्वासन ले लेती है कि किसी जीवित व्यक्ति के विषय में कविता न लिखे। भट्ट कहते हैं मैं ज्योतिषी की बात पर विश्वास नहीं करता।

4.3.9 नवम उच्छवास

भट्टिनी, भट्ट व निपुणिका नौका द्वारा त्रिवेणी पार करते हैं। नौका चरणार्दि दुर्ग तक पहुँची तो पास की नौका के एक युवक सैनिक ने निवेदन किया कि कान्यकुब्ज साम्राज्य की यह अन्तिम सीमा है। इसके आगे गुप्त सम्राटों के विश्वासी आभीरराज ईश्वरसेन का राज्य प्रारम्भ हो जाता है। अतः नौका को उत्तरी तट से ले जाने का आदेश हमें दिया गया था। इसी समय एक वृद्ध सैनिक विग्रहवर्मा ने भट्ट–भट्टिनी को ब्राह्मण–दम्पत्ति के रूप में सम्बोधित किया और कहा कि मैं मौखरि नरेश यशोवर्मा का सेवक रहा हूँ और प्राणपण से आपकी रक्षा का दायित्व निभाऊँगा। मेरे साथ दूसरी नौका पर दस क्षत्रिय कुमार और हैं जिन्हें आपकी रक्षा का भार सौंपा गया है। उसने छोटे महाराज को लम्पट तथा मौखरि वंश का कलंक बताया और पट्टदेवी राजश्री के प्रति भक्ति प्रकट की। इसी समय ईश्वरसेन के सैनिकों को उन पर सन्देह हो गया और उन्होंने भट्ट की सेना पर आक्रमण कर दिया। भयभीत भट्टिनी और निपुणिका ने गंगा में छलांग लगा ली। निपुणिका की प्रेरणा से भट्ट ने जल में कूद कर भट्टिनी को तो बचा लिया किन्तु उसके साथ जो महावराह की मूर्ति थी, उसे भार मान कर जल में विसर्जित कर दी। वह भट्टिनी को लेकर जैसे–तैसे किनारे पर लाया। निपुणिका के बचने का उसे सन्देह था और अकेले भट्टिनी को सम्भालने में असमर्थ था। भट्टिनी की चेतना लौटने पर दोनों तप्त बालू से अपेक्षाकृत सुरक्षित स्थान की तलाश में आगे बढ़ने लगे।

4.3.10 दशम उच्छवास

भट्टिनी को लेकर बाणभट्ट समीप के एक ग्राम देवता के स्थान पर एक वृक्ष के नीचे ले गया। वह भट्टिनी को अकेला छोड़कर निपुणिका की खोज में नहीं जा सकता था। इसी समय महामाया भैरवी का अचानक उधर से निकलना हुआ जिन्होंने भट्ट को पहचान लिया। भट्ट ने भट्टिनी का परिचय दिया कि यही वह राजकन्या है जिसके साथ वह उस चण्डी–मन्दिर में ठहरा था और जिसके विषय में बाबा अघोर भैरव के सामने सब कुछ निवेदन किया था। महामाया ने भट्टिनी को पुत्रीवत स्नेह दिया और भट्ट को निपुणिका की खोज करने भेज दिया। थोड़ी देर में वापस आने पर भट्ट ने छिपकर महामाया और भट्टिनी की बातें सुनीं। भट्टिनी कह रही थी कि जिस दिन मैंने भट्ट को देखा मुझे लगा कि मेरा परम सौभाग्य उदित हो गया है और मेरा जीवन सार्थक हो गया है। भगवान ने मुझे नारी बना कर धन्य कर दिया है। भट्ट इस पृथ्वी का पुण्डरीक है, पारिजात है। अपनी प्रशंसा सुनकर बाणभट्ट उनके सामने इस प्रकार उपस्थित हुआ, मानों उसने कुछ सुना नहीं। वह पुनः निपुणिका को ढूँढ़ने चल पड़ा। महानवमी के दिन वज्रतीर्थ नामक स्थान पर अनेक लोग पूजा करने जा रहे थे। उसी समय उस विशाल श्मशानवत् वज्रतीर्थ में अघोरघण्ट और चण्डामण्डना नामक साधक–साधिका ने बाणभट्ट को सम्मोहित करके देवी के सामने बलि देने की तैयारियाँ शुरू कर दीं। अचानक निपुणिका प्रकट हुई, जिसने चण्डमण्डना को धक्का देकर जमीन पर गिरा दिया और बाणभट्ट ने अघोरघण्ट को कन्धे पर उठाकर पहले तो ताण्डव किया, फिर उसे नदी में फेंक दिया। महामाया भी उसी समय वहाँ आ पहुँची जो भट्ट को घसीट कर अघोर भैरव के पास ले आई। अघोर भैरव की आज्ञा से भट्ट ने देवी की स्तुति का गायन किया।

4.3.11 एकादश उच्छवास

सम्मोहन के प्रभाव से मुक्त होने में बाणभट्ट को समय लगा। महामाया भैरवी ही मानों अठारह भुजा वाली आनन्द भैरवी बन कर भट्ट को आशीर्वाद देने आई थी। भट्ट की चेतना लौटते ही भट्टिनी का रोम–रोम आनंद से उल्लसित हो गया। महामाया ने भट्टिनी को समझाया कि "पुरुष और नारी परम शिव के दो तत्त्व हैं जो शिव और शक्ति कहलाते हैं। शिव विधि–स्वरूप तथा नारी (शक्ति) निषेध रूप होती है। इन्हीं से यह संसार बना है। जड़ मांस पिण्ड न नारी है न पुरूष। वह निषेध रूप तत्त्व नारी है। जहां कहीं दुख सुख की लाख–लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा की भांति निचोड़ कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहां नारी तत्त्व है।" भट्ट तीन दिन में पूर्ण स्वस्थ हो जाते हैं। इस समय वे सब लोरिकदेव नामक आमीर सामन्त के आतिथ्य में थे। निपुणिका समीप ही दूसरे कक्ष में स्वास्थ्य लाभ कर रही थी। विग्रहवर्मा और उसके सैनिक भी वज्रतीर्थ के आसपास ही कहीं नौका रोके पड़े थे। इसी समय एक सैनिक ने एक पत्र बाणभट्ट के हाथ में दिया जो किसी कन्या कुब्ज वृद्ध ब्राह्मण मौखार वंश के गुरू भुवनेश शर्मा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की ओर से ब्राह्मणों–श्रमणों तथा आबाल वृद्ध नर–नारियों के नाम था जिसमें भवुं शर्मा ने प्रत्यन्त दस्युओं के आक्रमण से रक्षा के लिए एक मात्र देवपुत्र तुवर–मिलिन्द के प्रति विश्वास व्यक्त किया था। उस पत्र में लिखा था कि देवपुत्र तुवर मिलिन्द अपनी एक मात्र प्राणाधिक कन्या चन्द्रदीधिति के शोक में निमग्न है। अतः उसकी कन्या का संधान करके देवपुत्र को शोक से मुक्त करना ही रक्षा का एक मात्र उपाय है। इस पत्र को पढ़कर बाणभट्ट उत्तेजित सा हुआ। भट्टिनी को भी इस पत्र की एक प्रति लोरिकदेव की रानी से मिल चुकी थी। यह बात जानकर बाणभट्ट उसके धैर्य तथा गरिमा की प्रशस्ति करने लगा। भट्टिनी ने टोक कर कहा मैं अन्य बालिकाओं की भांति सामान्य बालिका मैं हूँ तुम्हारी भट्टिनी। बाणभट्ट मंत्र–बिद्ध सा हो गया। उसने भट्टिनी के हाथ का बना प्रसाद ग्रहण किया।

4.3.12 द्वादश उच्छवास

भट्टिनी और निपुणिका के साथ रहने से बाणभट्ट में भी आन्तरिक परिवर्तन होता जा रहा था। उसका हृदय नवनीत के समान द्रवणशील होता जा रहा था। भट्टिनी के माधुर्य और लावण्य की स्मृतियों में वह खोया जा रहा था। उसे रात को बाहर बैठे देखकर भट्टिनी ने बाण भट्ट को टोका कि दुर्बल शरीर से रात–भर बाहर बैठना अनुचित है। बाणभट्ट इस आदेश को पाकर सो गया और अपने आप को भट्टिनी के वशीभूत सोचने लगा। प्रातःकाल निपुणिका अब कुछ स्वास्थ्य लाभ करती हुई भट्ट के पास आकर बैठी और बोली कि कल तुमने भट्टिनी से कुछ अनुचित कह दिया था वे रात भर रोती रही। तुमने उससे एक बार भी नहीं पूछा कि वे नदी में क्यों कूद गई थी। यदि तुम न होते तो वे कदाचित ऐसा दुस्साहस नहीं करती। उन्हें ज्ञात था तुम उन्हें अवश्य बचा लोगे। इसी समय विग्रहवर्मा ने कुमार कृष्णवर्द्धन के भेजे हुये दूत से परिचय कराया। दूत ने बताया कि कुमार ने स्थाण्वीश्वर आकर महाराज हर्षवर्द्धन से मिलने का आपसे आग्रह किया है। भट्टिनी और निपुणिका को लोरिकदेव के आतिथ्य में छोड़कर भट्ट ने वैशाखी पूर्णिमा को स्थाण्वीश्वर पहुँचने का निश्चय किया, क्योंकि उसी दिन महामाया भैरवी ने भी स्थाण्वीश्वर पहुँचने के लिए कहा था। यह सब शुभ संयोग के ही लक्षण थे। जाने से पहले भट्ट एक बार भट्टिनी से मिला। भट्टिनी उसे प्रणाम करके क्षमा–याचना कर रही थी कि मैं उस दिन गंगा में तुम्हारे भरोसे ही कूद गई थी। स्थाण्वीश्वर में निपुणिका की सहेली सुचरिता से मिल कर आना जो निपुणिका की दुकान के पास ही कहीं रहती है। घोड़े पर बैठकर भट्ट ने प्रस्थान किया और निश्चय किया कि पहले कुमार कृष्णवर्द्धन से, फिर महाराज से और तत्पश्चात् आचार्य पाद से मिलने के बाद में ही सुचरिता, महामाया भैरवी तथा अघोर भैरव से मिलना संभव होगा।

स्थाण्वीश्वर में अपना कार्यक्रम बना कर भट्ट चला तो उसे ज्ञात हुआ कि महाराज और कुमार आचार्य सुगतभद्र के यहाँ जा रहे हैं। भट्ट भी बौद्ध–बिहार में ही चला गया। महाराज हर्षवर्द्धन ने आचार्य पाद के सामने अनेक शंकाएं प्रस्तुत की जिनका समाधान आचार्यपाद ने अद्भुत मेधा से किया। कुमार कृष्णवर्द्धन ने संध्या समय बाणभट्ट को अपने घर मिलने का आदेश दिया।

4.3.13 त्रयोदश उच्छवास

जब बाणभट्ट महाराज हर्षवर्द्धन के दरबार में उपस्थित हुआ तो महाराज ने उसे परम लम्पट व्यक्ति बताया। भट्ट अपने आवेश को जब्त कर गया किन्तु इतना अवश्य निवेदन करने लगा कि महाराज, आप नीति–निपुण है, मुझे आत्मदोष को जानने का अवसर दिये बिना आप मुझ पर अकारण दोषारोपण कर रहे हैं। कुमार कृष्णवर्द्धन ने बाणभट्ट को पवित्र वात्स्यायन वंश का तिलक बताया और निवेदन किया कि ये सम्मान के पात्र हैं। तब महाराज ने पान और आसन देकर बाणभट्ट का सम्मान किया। इसके पश्चात् वह सुचरिता की खोज में निपुणिका की दुकान तक आया। वहाँ एक काशी निवासी वृद्ध सज्जन मिले। उन्होंने बताया कि श्री पर्वत के वैष्णव तांत्रिक वेंकटेश भट्ट यहाँ आये हुए हैं। उनकी दो शिष्याएँ थीं – एक निउनिया और दूसरी सुचरिता। निउनिया छोटे अंतःपुर की परिचारिका थी जो आकर कहीं अन्तर्ध्यान हो गई और सुचरिता अब भी अपनी संगीतमयी भक्तिधारा से वातावरण में उन्माद भरती रहती है। वेंकटेश भट्ट जब आवेश में आते हैं तो नाच उठते हैं। उन वृद्ध से आवश्यक जानकारी पाकर भट्ट उस स्थान पर गया जहाँ वेंकटेश भट्ट का धार्मिक अनुष्ठान होने जा रहा था। सुचरिता भी शुभ वस्त्रों में वहाँ उपस्थित थी। सुचरिता ने गुरू की पूजा की। फिर वेंकटेश भट्ट ने नाम–कीर्तन प्रारम्भ किया। वे भावाविष्ट होकर नारायण–नारायण कहते कहते नाच उठे। सुचरिता ने मधुर कंठ से भजन गाया। अनुष्ठान की समाप्ति पर भट्ट सुचरिता के पीछे–पीछे उसके घर के द्वारा तक गया। भट्ट ने निपुणिका का सन्दर्भ प्रस्तुत करते हुए अपना परिचय दिया। सुचरिता ने बाणभट्ट का नाम तो पहले ही सुन रखा था, आज सामने पाकर भक्ति–भाव से उन्हें प्रणाम किया।

भट्ट ने निपुणिका की सम्पूर्ण कहानी सुचरिता को सुनाई। सुचरिता ने नारायण की मूर्ति की पूजा की और भट्ट ने वहीं प्रसाद ग्रहण किया। सुचरिता ने बताया कि आज के तीन माह पूर्व मैं भी अपने आपको पाप–लिप्त समझती थी किन्तु अब गुरू कृपा से मैं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यह जान गई हूँ कि मानव देह विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है। अगले दिन सूर्यास्त से पूर्व सुचरिता से पुनः मिलने का आश्वासन देकर भट्ट अतिथिशाला में पहुँचा। यहाँ उसे तीन पत्र मिले। एक पत्र में महाराजाधिराज ने बाणभट्ट को उनका सभा–पण्डित नियुक्त किया था और सवेरे उसे राज–पण्डित के रूप में महाराज के सम्मुख उपस्थित होने का निमन्त्रण था। दूसरा पत्र लोरिकदेव के नाम था जिसमें लोरिकदेव को समस्त तटस्थ प्रदेशों का सामन्त बनाने की अनुकम्पा थी। तीसरा पत्र कुमार कृष्णवर्द्धन ने महासंधिविग्रहिक के रूप में महाराज के सभा–पण्डित बाणभट्ट को लिखा था जिस्में आवश्यक कार्य से प्रातःकाल मिलने का आग्रह था। दूसरे दिन कुमार कृष्णवर्द्धन ने कहा कि इस बार फिर प्रतयन्त दस्यु आक्रमण करना चाहते हैं। केवल भट्टिनी के पिता ही आर्यावर्त को विषम संकट से बचा सकते हैं। तुवर मिलिन्द स्थाण्वीश्वर के बौद्ध नृपति से अप्रसन्न है। इस समय हम उनकी पुत्री को ससम्मान रखकर देवपुत्र की सहायता प्राप्त कर सकते हैं। भट्टिनी इस राजवंश के आश्रय में नहीं रह सकेंगी। उन्हें महारानी राज्यश्री के आतिथ्य में रहने के लिए मना लेना तुम्हारा काम है। यह निमन्त्रण राज्यश्री की ओर से उन्हें प्रस्तुत कर देना। इसमें कोई सन्देह हो तो सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में तुम उन्हें मनाने के लिए किसी भी प्रकार की सन्धि करने को स्वतन्त्र हो। इससे लाखों लोगों को विनाश से बचाया जा सकता है। कुमार ने महाराज से मिलने का भी आग्रह किया।

4.3.14 चतुर्दश उच्छवास

महाराज हर्षवर्द्धन की सभा में रसिक, विदूषक, कवि, द्यूत–क्रीड़क आदि कई प्रकार के कलाकार थे। राज–काज निपटाने के बाद भट्ट ने भी महाराज की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्ति सुनाई। निपुणिका को दिया गया वचन याद करके भट्ट थोड़ा चिन्तित हो गया। महाराज ने भट्ट की कविता की प्रशंसा की। राजसभा की औपचारिकता से उकताने पर भट्ट ज्योंही बाहर आया, उसका परिचय महाराज की अंतरंग सभा के कवि धावक से हुआ। संध्या होते–होते वह सुचरिता से मिलने के लिए उत्सुक हो उठा। सुचरिता को घर पर नहीं पाकर वह आशंकित हो उठा। भट्ट सुचरिता के विषय में चिन्तित हो उठा। कुछ जानने के उद्देश्य से वह उसी मण्डप की ओर गया, जहाँ एक दिन पूर्व सुचरिता ने धार्मिक अनुष्ठान किया था। मण्डप में लगभग एक हजार व्यक्ति बेठे गम्भीर निर्णय लेने को आतुर थे। मण्डप से बाहर भी भट्ट को पता चला कि आज सूर्योदय से पूर्व ही सुचरिता तथा आर्य विरतिवज्र को बन्दी बना लिया गया तथा नगर प्रतिहार के आदमियों ने वेंकटेश भट्ट तथा परमहंस अघोर भैरव को नाव पर बैठा कर किसी अज्ञात स्थान पर भेज दिया है। वहाँ यही चर्चा थी कि बौद्ध नृपति निरीह प्रजा के धर्माचरण में हस्तक्षेप कर रहे हैं उक्त घटना इसी हस्तक्षेप का परिणाम है। सभा में सर्व सम्मति से प्रस्ताव पारित हुआ कि इस समय दस्युओं के आक्रमण के कारण संकट काल है। इस समय हम राजशक्ति के प्रति असन्तोष उत्पन्न नहीं करना चाहते। इसलिए आर्य विरतिवज्र पर पिता के ऋण शोधन का अभियोग मिथ्या है और सुचरिता का आर्य विरतिवज्र से सम्बन्ध शास्त्र सम्मत है। आर्य वेंकटेश भट्ट व अघोर भैरव के निष्कासन से प्रजा क्षुब्ध है। महाराजधिराज से हम प्रार्थना करते हैं कि वे इस अन्याय का प्रतिकार करें। यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार हो गया। इसी समय गैरिक वस्त्र धारण किये महामाया भैरवी ने अचानक सभा में प्रवेश करके सभापति की आज्ञा से सभा को सम्बोधित किया कि मैं आर्य अघोर भैरव की शिष्या हूँ किन्तु मेरा कथन गुरू के अपमान की प्रतिक्रिया नहीं है। आप लोगों ने आर्य विरतिवज्र तथा सुचरिता को निर्दोष घोषित किया है। आपका यह निर्णय अभिनन्दनीय है किन्तु महाराज से प्रार्थना करने के निर्णय का विरोध करती हूँ। यहाँ मैं प्रत्यन्त दस्युओं के आक्रमण के सम्बन्ध में प्रचारित आचार्य भर्वुशर्मा के पत्र की ओर ध्यान दिलाना चाहती हूँ जो पौरुष हीनता का प्रचारक है। अब हमें तृपतियों तथा देवपुत्रों के भरोसे हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठना है। अपनी रक्षा स्वयं करनी चाहिए। उनकी अपनी पुत्री पर अत्याचार होने से वे कर्त्तव्य विमुख होकर बैठ गये देश की लाखों अबलाएं लांछित, अपमानित व दण्डित हो रही हैं। आप सब अमृत पुत्र हो। अतः निर्भय होकर धर्म के लिए प्राण देना सीखो। सारी सभा इन वचनों को सुनकर उत्तेजित हो गई। महामाया ने उत्तेजना को वैचारिक संगठन में बदला। उन्होंने कहा ब्राह्मण से चाण्डाल तक चट्टान की तरह एक होकर न्याय के लिए मरना सीखो। महामाया तो चली गई किन्तु सभा में हलचल मच गई। इसी समय धावक ने उसे बताया कि कुमार कृष्णवर्द्धन ने बन्दीगृह में सुचरिता को राज्य के अनुकूल बनाने का दायित्व तुम्हें सौंपा है। मैं तुम्हें वहाँ तक पहुँचा कर अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहता हूँ। धावक ने बताया कि अवधूत अघोर भैरव और वेंकटेशप्रसाद लौटा लाये गये हैं। धावक ने समस्त व्यवहार को स्पष्ट करते हुए बताया कि विरतिवज्र किसी समय बौद्ध साधु था जो अब वेंकटेश भट्ट तथा अघोर भैरव की नवीन धर्म–साधना में आ गया। सुचरिता और विरतिवज्र को वेंकटेश भट्ट ने नवीन धर्म–साधना में दीक्षित किया है। यह बात यहाँ के ढोंगी बौद्ध पण्डित वसुभूति को पसन्द नहीं है। उसने श्रेष्ठी धनदत्त को उकसा कर एक जाल तैयार किया कि विरतिवज्र के पिता ने उससे एक सहस्र दीनार ऋण लिया था। वह तो मर गया और विरतिवज्र सन्यासी था, इसलिए यह ऋण चुकाने के दायित्व से मुक्त था किन्तु अब वह सुचरिता के साथ गृहस्थी का जीवन बिता रहा है, अतः उसे ब्याज सहित अपना ऋण चुकाना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इसी के साथ धावक ने यह भी बताया कि महामाया महारानी राज्यश्री की सौत है। उनके भाषण में आज उनकी वर्षों से संचित कटुता बोल रही थी। धावक बाण भट्ट को बन्दीगृह के द्वारा पर छोड़ कर चला गया। सुचरिता ने अपनी कहानी सुनाते हुए कहा कि बचपन में मेरा विवाह कर दिया था मेरा पति मुझे त्याग कर मोक्ष की चिन्ता में कहीं प्रव्रजित हो गया था। मेरी सास ने मुझे अत्यन्त स्नेह से पाला और मैंने युवावस्था में पैर रखा। एक दिन काशी के जनपद में एक युवा कथावाचक ने मेरा हाथ देखकर मुझे अखण्ड सौभाग्यवती होने का वरदान दिया था और मेरे पति के लौट आने का आश्वासन दिया था। यह भविष्यवाणी एक दिन सत्य सिद्ध हुई। एक दिन मैं अपनी सास के साथ कान्यकुब्ज की ओर लौट रही थी तो आम्रवनी में एक तरुण तापस को स्नानार्थ आते देखा। उसे देखकर मेरे हृदय में सौ–सौ कवि जाग उठे। मुझे मेरे जीवन में सार्थकता दिखाई दी। जब मेरी सास ने उस युवक को देखा तो वह मेरा लाल, कहती हुई तपस्वी के पास मूर्च्छित होकर गिर गई। उसने पुनः सजग होकर मुझे प्रेरित किया कि अभागी यही तेरा पति है, तरुण कुछ रूखा बोलने लगा तो मेरी सास ने अपनी मृत्यु का भय दिखा कर पुत्र को द्रवित कर दिया। माता की आज्ञा से उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और एक बार गुरू की आज्ञा प्राप्त करने के लिए मुझसे व मेरी सास से अनुमति लेकर चले गये। जब लौटकर आये, तब तक मेरी सास का देहान्त हो चुका था। वे मुझे फागुन की पूर्णिमा को अवधूत अघोर भैरव के पास ले गये। हम दोनों ने अपने वर्तमान गुरू से दीक्षा लीं। माता की साक्षी के अभाव में यह कहानी प्रमाणित नहीं की जा सकती।

इसके बाद की कहानी बाणभट्ट ने पूरा किया कि विरतिवज्र को उनके गुरू ने सौगत–तन्त्र में अनुपयुक्त मान कर कौल–मार्ग में दीक्षा के लिए अघोर भैरव के पास भेजा था। मैं इसका साक्षी हूँ सुचरिता ने स्पष्ट कहा कि आर्य विरतिवज्र आज भी गृहस्थी नहीं है, अतः उन पर पिता के ऋण का दायित्व नहीं आता। इस ऋण के सम्बन्ध में मेरी सास ने भी कभी मेरे सामने चर्चा नहीं की थी। अतः निश्चय ही षड्यन्त्र ही माना जाना चाहिए। बाणभट्ट ने सुचरिता को समझाया कि आज तुम्हें बन्दी बनाने के कारण जनता में रोष है। सीमा पार से दुर्दमनीय दस्यु सेना आक्रमण करने को उद्यत है। इस समय प्रजा के असन्तोष को तुम अपनी क्षमाशीलता से कम कर सकती हो। सुचरिता समझ गई। आर्य विरतिवज्र का बौद्ध से वैष्णव होना ही इस संकट की जड़ है। सेठ धनदत्त और आचार्य वसुभूति बौद्ध धर्म की विजय देखना चाहते हैं और आचार्य मेधातिथि सनातन धर्म को पुनः स्थापित करना चाहते हैं। मेरे गुरू महादेव के अवतार हैं। वे राग द्वेष से मुक्त हैं। महाराजाधिराज हमारे भजन–पूजन के मौलिक अधिकार हमें लौटा दें तो अराजक स्थिति समाप्त हो सकती है। बाणभट्ट ने इसी शर्त पर सुचरिता को बन्धन–मुक्त करवाया और इस आश्चर्यजनक सत्य का उद्घाटन भी किया कि काशी के जनपद का वह ब्राह्मण भविष्यवक्ता मैं ही हूँ।

4.3.15 पंचदश उच्छवास

बाणभट्ट अघोर भैरव तथा महामाया के लिए भट्टिनी के पास पहुँचे। लोरिकदेव का पुत्र उन्हें सौंप दिया गया। फिर राज्यश्री का पत्र भट्टिनी को सौंप दिया जिसे पढ़कर वे निराश और उदास हो गईं। निपुणिका ने भट्ट को धिक्कारा कि तुमने कान्यकुब्ज के लम्पट–शरण्य राजा के निमन्त्रण–पत्र की टुकड़े–टुकड़े क्यों न कर दिया। भट्ट भी चिन्तत था कि ऐसा करके उसने भट्टिनी को अपमानित किया है। भट्टिनी ने इतना ही कहा कि मुझे अवधूतपाद की शरण में ले चलना वे यहाँ न हों तो मैं सुचरिता के घर रहूँगी अथवा अन्यत्र कहीं भी ले चलना किन्तु मैं मौखरिवंश अथवा कान्यकुब्ज वंश से सम्बन्धित किसी का आतिथ्य स्वीकार नहीं करूँगी। इसके पश्चात् निपुणिका को सुचरिता का समाचार सुनाया कि उसका पति लौटा आया है। इसी समय लोरिकदेव ने उस पत्र के माध्यम से सदेवपुत्र नन्दिनी की पहचान कर उनके स्वागत में अपने समस्त परिवार तथा मन्त्रियों के साथ भट्टिनी का अभिनन्दन किया। लोरिकदेव ने अपनी समस्त सेना देवपुत्र नन्दनी की सेवा में समर्पित कर दी। स्वागत समारोह में लोरिकदेव ने स्पष्ट कहा कि आर्यावर्त की रक्षा केवल देवपुत्र ही कर सकते हैं। उन्होंने कान्यकुब्ज के सामन्त पद को अस्वीकार कर दिया। बाणभट्ट विचित्र राजनीति में उलझ गया था। उसे अपना कर्त्तव्य नहीं सूझ रहा था। इसी समय भट्टिनी ने उसे प्रसाद ग्रहण करने के लिए अन्दर बुला लिया।

4.3.16 षोडश उच्छवास

प्रातःकाल बाणभट्ट ने निपुणिका से ही मार्ग खोजने के लिए कहा। निपुणिका ने याद दिलाया कि एक बार जटिलन वटु को तुमने नाटक में मारीच की भूमिका में उतार दिया था। वह वहाँ विदूषकों की तरह उछल–कूद करने लगा। सम्पूर्ण नाटक का प्रभाव समाप्त होने से पहले मैं नर्तकी वेश में मंच पर गई और सारे दृश्य को मूल नाटक से अलग हास्य अभिनय में बदल दिया। सामाजिक हँसते–हँसते लौट–पौट हो गए। उसके बाद मारीच वाला प्रसंग और भी निखर आया। आज भी मैं मार्ग निकालने आयी हूँ। निपुणिका ने बताया कि भट्टिनी स्थाण्वीश्वर अवश्य जायेंगी किन्तु वहाँ वे किसी राजवंश की अतिथि न रहकर स्वतन्त्र राज्य की अधिष्ठात्री के रूप में रहेंगी। यह आभीर सेना उनकी रक्षा करेगी और यदि स्थाण्वीश्वर के व्यवहार में भट्टिनी की सेविका की छाया भी किसी ने

छूने की कोशिश की तो पहले तुम और फिर मैं अपना बलिदान देंगे। वह कान्य–कुब्ज का लम्पट–शरण राजा मुझे किस अपराध में मौत की सजा देना चाहता है। उसे देवपुत्र नन्दिनी से मित्रता करके देश की रक्षा करनी है तो हमारी सभी शर्तें स्वीकार करनी होंगी। निपुणिका अबाध गति से सत्य की व्याख्या कर रही थी। निपुणिका अपने आप को सम्भाल न सकी और अचेत होकर गिर पड़ी। इसी समय लोरिकदेव ने भी मिलने की उत्सुकता प्रकट की थी। उसे शिकायत थी कि भट्ट ने देवपुत्र नन्दिनी का परिचय उसे पहले क्यों नहीं दिया। भट्ट ने राजनीतिक विवशता ही इसका कारण बताया। लोरिकदेव ने अपने दस सहस्र मल्ल भट्टिनी की सेवा के लिए समर्पित कर दिये जिनका उपयोग भट्टिनी की इच्छा के अनुसार किया जा सकता था। बाणभट्ट ने निश्चय किया कि कुमार कृष्णवर्द्धन तथा निपुणिका के मार्गदर्शन में कोई विरोध नहीं है। भट्टिनी जहाँ भी रहेंगी, स्वतन्त्र साम्राज्ञी की तरह रहेगी। इसी समय विग्रहवर्मा ने भी निवेदन किया कि भट्टिनी की रक्षा का मुख्य भार हमारे ऊपर है, इसे भी याद रखें।

4.3.17 सप्तदश उच्छवास

भट्टिनी की इच्छा से बाणभट्ट निपुणिका को स्वास्थ्य लाभ कराने के लिए सौरभ–ह्रद वर्तमान सुरहा झील नामक प्राकृतिक स्थान पर ले गया। उस ह्रद में स्नान करने के बाद वे शिव–सिद्धायतन की ओर गये। वहाँ भगवान शिव के दर्शन करके दोनों को शांति का अनुभव हुआ। निपुणिका ने आज अपना मोह पुनः व्यक्त किया। भट्ट भी उसकी ओर द्रवित–सा दिखाई दिया। निपुणिका ने कहा कि मेरा जीवन आज सफल हो गया है। वापस लौटने पर भट्टिनी उनके स्वागत में प्रतीक्षारत व्याकुल दिखाई दे रही थी। कुमार कृष्णवर्द्धन का एक पत्र आया था जिसमें कुमारी चन्द्रदीधिति को अपनी बहन कह कर जिस शर्त पर भी आना चाहें, उन्हें स्थाण्वीश्वर आने का निमन्त्रण दिया गया था। आभीरराज को भी हर प्रकार से प्रसन्न करने का आदेश दिया गया था। कुमार ने विश्वास व्यक्त किया था कि म्लेच्छवाहिनी को आभीर सेना ही रोकने में समर्थ है। आभीरराज को स्वतन्त्र मित्र राजा के रूप में भी स्वीकार किया गया था। भट्ट को यह भी निर्देश था कि वे अपने बड़े भाई उडुपति भट्ट को भी अवश्य साथ लावें। भट्टिनी ने स्पष्ट आदेश दिया कि स्थाण्वीश्वर चलना आवश्यक है तो शीघ्र चलो, क्योंकि वहाँ अशीति वृद्ध आचार्य भवुशर्मा आ रहे हैं। ऐसा न हो, हमें वहाँ न पाकर वे इधर प्रस्थान करें और इस आयु में हमारे कारण कष्ट पावें। वर्षाकाल से पूर्व ही स्थाण्वीश्वर पहुँचने के लिए भट्टिनी ने आभीर सेना के साथ प्रस्थान किया।

4.3.18 अष्टादश उच्छावास

स्थाण्वीश्वर में नगर से कुछ दूर भट्टिनी का शिविर स्थापित किया गया। कुमार कृष्णवर्द्धन स्वयं स्वागत में उपस्थित हुए। उन्होंने छोटे राजकुल को भट्टिनी की इच्छानुसार दण्डित करने का संकल्प दोहराया। वृद्ध वाभ्रव्य को महारानी राज्यश्री की सेवा में नियुक्त करने की सूचना दी गई। कुमार के मधुर तथा योग्य व्यवहार से भट्टिनी और निपुणिका दोनों संतुष्ट हुई। उसी समय बाणभट्ट तथा भट्टिनी ने बाहर कुछ भैरवियों का जनजागरण के गीत गाते सुना। ये महामाया की शिष्याएं थीं जो आर्यावर्त के वीरों, राजाओं, सामन्तों और देवपुत्रों पर निर्भर रहने के बजाय अपने बूते पर शत्रुओं का सामना करने के लिए उत्तेजित कर रही थीं। भट्टिनी शायद देवपुत्र की चर्चा से खिन्न थी। भट्ट ने उसे सान्त्वना देने के लिए कहा कि महामाया ने आधे ही सत्य को देखा है। भट्टिनी ने महामाया के इस सत्य का समर्थन किया कि राजाओं और देवपुत्रों के भरोसे रहकर देश की रक्षा संभव नहीं है। भारतीय समाज में अनेक स्तर भेद हैं। म्लेच्छों में इतने स्तर–भेद नहीं हैं। एक जाति दूसरी को म्लेच्छ समझती हैं। यह अनुचित है क्योंकि नर लोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है। मानवीय संवेदना ही ग्रहण योग्य है। भट्ट ने भट्टिनी की इस सहृदयता की काव्यमय प्रशंसा की। भट्टिनी को प्रसन्नता थी कि आचार्य भर्वुपाद एक सप्ताह में उनसे भेंट कर लेंगे।

धावक ने चारुस्मिता के मयूर नृत्य के आयोजन की सूचना दी। विद्युदपांगा के संगीत की भी धावक ने प्रशंसा की। उसने बताया कि महाराज ने रत्नावली नामक नाटिक लिखी है। धावक के जाने पर भट्ट अनेक स्मृतियों में खो गया। निपुणिका ने प्रस्ताव रखा कि महाराजधिराज के स्वागत में उनके योग्य हमें कुछ कर दिखाना चाहिये और हम महाराजधिराज की नई नाटिका को मंचित करना चाहिए।

4.3.19 उन्नीसवां उच्छवास

भट्टिनी महाराजधिराज हर्षवर्द्धन तथा महारानी राज्यश्री से मिल कर बहुत प्रसन्न हुई। भट्टिनी ने वृद्ध वाभ्रव्य को अपने पास बुलाया। उसे यह जान कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि भट्टिनी ही देवपुत्र नन्दिनी है। उसे जो यह परिताप था कि उसके कंचुकी रहते भट्टिनी अन्तःपुर से भाग गई थी आज धुल गया। क्योंकि अब वही भट्टिनी देवपुत्र नन्दिनी बन कर आर्यावर्त की रक्षा कर सकेंगी। उसका प्रसाद भी लोक हितकारी सिद्ध हो रहा था। वाभ्रव्य ने अपने जीवन की एक और घटना का वृतान्त सुनाया, जब उसने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अपने कंचुकी धर्म में प्रमाद किया था किन्तु वह प्रमाद भी लोक रक्षा का आधार ही बना। वाभ्रव्य ने कहा कि मैं मौखरि नरेश गृहवर्मा के अन्तःपुर में कंचुकी पद पर नियुक्त था। महाराज गृहवर्मा ने एक नया विवाह किया था। वह नई रानी जिनका नाम महामाया था, कुलूतराज की पुत्री थीं किन्तु उनका वाग्दान अन्यत्र कहीं हो चुका था। महारानी ने राजा से यह स्पष्ट कह दिया था कि मैं हृदय से उसी की पत्नी हूँ जिसके साथ मेरा वाग्दान हुआ है। वस्तुतः वह कुलूतराज की पुत्री नहीं थी अपितु अपहृता नारी थी जिसका विवाह कुछ धूर्तों ने महाराज के साथ करा दिया था। वह युवक भी संन्यासी होकर धूम्र गिरि में तप करने लगा था। एक दिन महामाया ने राजा से कहा मुझे यहाँ से जाने दो अन्यथा तुम्हारा अकल्याण होगा। मुझे त्रिपुरसुन्दरी का सन्देश मिल गया है। मैं सन्यासिनी बन कर आप से सम्बन्ध त्याग सकती हूँ। राजा को मोहमाया से मोह भी हो चला था। उसने महामाया के वचनों की परीक्षा लेने के लिए साथ लेकर श्री पर्वत पर प्रस्थान किया। वहाँ एक योगी ने राजा पर एक लकड़ी फेंकी, जिसे मैंने अपने ऊपर झेल लिया। योगी ने कहा राजा तेरे सिर पर अमंगल मंडरा रहा है। जाकर धूम्रेश्वरी देवी के दर्शन कर ले। धूम्रेश्वरी देवी के सामने एक कंकाल–शेष मनुष्य ध्यानमग्न बैठा था। धीरे–धीरे धूम्रेश्वरी देवी ही महामाया का रूप धारण करती गई। योगी ने ग्रहवर्मा से कहा, महामाया को मुक्त कर दो और दूसरा विवाह अवश्य कर लेना। लौट कर महाराज गृहवर्मा ने महामाया के सामने झूठा वृत्तान्त सुना दिया। किन्तु मैं झूठ नहीं बोल सका और समस्त घटना का विवरण ज्यों–का–त्यों दे दिया। महादेवी ने गैरिक वस्त्र धारण किये और मौखरि वंश का कल्याण करने हेतु सन्यासिनी रूप में मुझसे आज्ञा लेकर जंगल में प्रस्थान किया। उस दिन भी मुझे अपने प्रमाद पर ग्लानि थी किन्तु आज मैं परम प्रसन्न हूँ कि देवपुत्र नन्दिनी और महामाया दोनों आर्यावर्त को विनाश से बचाने का यत्न कर रही है। वाभ्रव्य ने निपुणिका को समझाया कि आपने अपने आपको निष्काम भाव से अर्पित कर देना ही वशीकरण है।

4.3.20 बीसवाँ उच्छवास

महाराजाधिराज की नाटिका का अभिनय करने की तैयारियां होने लगी। नगर में चारुस्मिता के नृत्य और विद्युदपांगा के गीतों की चर्चा होने लगी। आचार्य भर्वुपाद के आगमन के समाचार से जनता में उत्साह जाग उठा, उडुपति भट्ट से वसुभूति के शास्त्रार्थ में पराजय का समाचार बिजली की तरह फैल गया। महाराजाधिराज की ब्राह्मण धर्म पुनः आस्था का स्वतः प्रचार हो गया। बौद्ध मठों को जो दान दिया जाता था, वह ज्यों का त्यों बना रहा। इसी समय भर्वुपाद के आगमन से भट्टिनी प्रसन्न हुई। महाराज द्वारा लिखित रत्नावली नाटक में आवश्यक परिवर्तन का अधिकार भट्ट को दिया। चारुस्मिता ने रत्नावली की भूमिका की। निपुणिका ने अपनी इच्छा से वासवदत्ता का अभिनय किया। बाणभट्ट राजा बना और धावक विदूषक। वासवदत्ता ने अपना बलिदान देकर दो दिशाओं में बहने वाले प्रेम को एक सूत्र कर दिया था। रत्नावली का हाथ बाणभट्ट (राजा) के हाथ में दे दिया तो वह सचमुच ही विचलित हो गई। अभिनय सत्य में बदलता नजर आया। निपुणिका का शरीर शिथिल होकर गिर पड़ा। सामाजिक अभिनय (दर्शक) की वास्तविकता पर साधुवाद देते चले गये। निपुणिका इतना ही कई पाई कि आज इस अभागिनी का अभिनय समाप्त हो गया। उसकी समस्त अन्तिम क्रियाएँ भट्ट ने ही की। भट्टिनी रोते–रोते शय्या पर अवश होकर गिर पड़ी सुचरिता ने भट्ट को धैर्य बँधाया कि निपुणिका स्त्रीत्व की मर्यादा स्थापित कर गई है। भट्टिनी की सेवा करो और उसके द्वारा निर्देशित विश्वमानवता की साधना करो। सुचरिता और चारुस्मिता दोनों ही भट्टिनी की सेवा के लिए भट्ट को छोड़ कर चली गई। भट्टिनी जब सजग हुई तो महावराह की पूजा की। आज स्तुति भी भट्ट ने ही गाई। भट्टिनी का सिर भट्ट की गोद में था। भट्ट ने उसे सचेत करते हुए कहा कि अभी नर लोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक हृदय का संधान करना बाकी है। हमें मनुष्य जाति की रक्षा करनी है। भट्टिनी ने बाणभट्ट को बताया कि मेरे पिता के उद्यम से इस बार आर्यावर्त का संकट टल गया मेरे पिता तथा महामाया ने लाखों अशिक्षित तथा असंगठित शिष्यों को संगठित किया, जिसके भय से दस्युओं का जमाव ही नहीं हो सका। हम दोनों म्लेच्छ कहे जाने वाले लोगों में काम करेंगे और उनका हृदय–परिवर्तन करेंगे।

भट्ट ने इस आज्ञा को शिरोधार्य किया। तभी आचार्य भर्वुपाद का संदेश आया कि भट्ट को पुरुषपुर जाना है और भट्टिनी को स्थाण्वीश्वर में ही रहना है। इस आदेश से भट्टिनी का मुख म्लान हो गया। उसने इतना ही कहा 'जल्दी ही लौटना।' बाणभट्ट के अन्तर्मन से निकल रहा था– अब क्या मिलना होगा? यह 'बाण भट्ट की आत्मकथा' उपन्यास की संक्षिप्त कथा है।

उपसंहार शीर्षक से डॉ. द्विवेदी ने कथामुख में कही बातों का तारतम्य बनाते हुए लिखा है कि किस तरह उन्होंने प्राप्त पाण्डुलिपि का बाण की रचित कृतियों से तुलना करते हुए अध्ययन किया और ऐतिहासिकता की जांच की और प्राप्त को हू– ब–हू प्रस्तुत किया। द्विवेदीजी ने बताया है कि यह डायरी शैली में लिखित है और शैली चाक्षुष है। इसी क्रम में दीदी केथराइन के पत्र दिया है जिसमें द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका में डूबती उतराती मानवीयता का अंकन है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बोध प्रश्न–

1. बाणभट्ट की आत्मकथा के प्रमुख एवं गौण पात्रों के नाम बताइए।

4.4 नारी चेतना एवं प्रेम का स्वरूप

सांस्कृतिक चेतना परक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास के माध्यम से मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के अनेकानेक तत्त्वों का निरूपण हुआ है। इन्हीं में से एक है – नारी निरूपण। 'आत्मकथा' में मध्यकालीन, सामाजिक और सामन्ती जीवन में नारी–स्थिति को अत्यन्त मार्मिक ढ़ंग से दर्शाया है। 'आत्मकथा' के नारी पात्रों के चरित्र विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में नारी की दशा शोचनीय थी। समीक्ष्य उपन्यास पुरूष प्रधान होते हुए भी उसमें नारियों की संख्या अधिक है, संख्या ही अधिक नहीं अपितु उनके चरित्र विधान में भी विशिष्टता और मौलिकता है।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रसंगानुकूल अनेक नारी पात्रों की उद्‌भावना हुई है। इनमें से प्रमुख है भट्‌टिनी, निपुणिका, महामाया, सुचारिता। ये चारों नारी पात्र अपनी चारित्रिक विशेषताओं की विशिष्ठता और विलक्षणता के कारण नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। प्रेमिका और समर्पिता, सेविका और सन्यासिनी, उग्र और माधुर्य भाव वाली ये नारियां, नारी स्वभाव के नाना रूपों का प्रतिनिधित्व करती हैं। 'आत्मकथा' के नारी पात्रों में भट्‌टिनी राजमहिषी है तो निपुणिका सेविका। महामाया उग्र स्वभाव की तंत्र साधिका है तो सुचरिता विनम्र सेविका। दूसरे शब्दों में नारी स्वभाव के परस्पर विरोधी और पूरक दोनों रूप आत्मकथा में विकसित हुए हैं।

समष्टि रुप में 'आत्मकथा' में नारियों का वर्गीकरण निम्नांकित आधारों पर किया जा सकता है:–

(1) प्रेमिका रूप में नारी (2) सन्यासिनी रूप में नारी (3) पत्नी रूप में नारी

4.4.1 प्रेमिका रूप में नारी:

हिन्दी काव्य और साहित्य की परम्परा में नारियों के जिन नाना रूपों का चित्रण होता रहा है उनमें प्रेमिका रूप ही सर्वोपरि रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में भी नारी चित्रण की प्रवृत्ति का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर यह तथ्य उजागर हो जाता है कि उपन्यासकार ने सबसे अधिक मनोयोग नारी के प्रेमिका रूप का ही निरूपण किया है किन्तु यहां यह उल्लेखनीय है कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने श्रृंगारी कवियों या स्वच्छन्द लेखकों की भांति नारी के वासनात्मक भावना स्वरूप को कहीं नहीं उभारा है अपितु नारी के प्रेमिका रूप का नितान्त स्वाभाविक पवित्र, अदृप्त और आकर्षक रूप अंकित किया है।

नारी के प्रेमिका रूप का प्रतिनिधित्व 'बाणभट्‌ट' की आत्मकथा में भट्टिनी और निपुणिका करती है। निपुणिका अपनी पूर्ण शक्ति से बाणभट्‌ट को प्रेम करती है और उसके प्रति सर्वस्व अर्पित करने के लिए कृतसंकल्प है। प्रारम्भ में उसका प्रेम दैहिक है जिसमें वासना का पुट अधिक और त्याग का अंश कम है, किन्तु उसे जब बाणभट्‌ट से उचित प्रतिदान नहीं मिलता तो यह निराश होकर एक रात सहसा भाग जाती है। इसके पश्चात् निपुणिका अनेक संघर्षों का सामना करती है। ये संघर्ष उसके चित्त कालुष को धो कर निर्मल बना देते हैं। वह दैहिक प्रेम को भावनात्मक स्तर के प्रेम में बदल देती है। इसके पश्चात् सम्पूर्ण उपन्यास में निपुणिका का प्रेम आदर्श रूप में पल्लवित होता है। वह त्याग की प्रतिमूर्ति बन जाती है। भट्‌टिनी को छोटे राजकुल के अन्तःपुर से भाग निकालने में मदद करते हुए वह अपने अपूर्व धैर्य, अलौकिक साहस और निष्काम कर्म शक्ति का परिचय देती है।

नारी जीवन की सुकोमलता और उसमें विकसित प्रेम का सुकुमार स्वरूप भट्‌टिनी के चरित्र में परिलक्षित होता है। भट्‌टिनी इस तथ्य से अवगत है कि बाणभट्‌ट के प्रति निपुणिका का आकर्षण है, फिर भी वह निपुणिका से ईर्ष्या नहीं करती अपितु उपन्यास में ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब वह बाण और निपुणिका के प्रेम सम्बन्ध को दृढ़ करने में साधक बनती है। उदाहरण के लिए जब बाण स्थाणीश्वर जाने लगता है तो एकान्त पाकर निपुणिका उसके पैरों में लिपट जाती है, बाण अपने पैरों को छुड़ाने का प्रयत्न करता है कि भट्‌टिनी आ जाती है। भट्‌टिनी कहती है इसे पैरों में पड़ी रहने दों, क्योंकि इन पैरों के स्पर्श से इसे असीम आनन्द मिल रहा है। इसी प्रकार निपुणिका के देहावसान पर भट्‌टिनी असीम प्रेमावेग से आप्यायित होकर ही सम्भवतः यह कहती है कि – "भट्‌ट। वह चली गई। तुम रह गये, मैं रह गई। हाय! भट्‌ट।" भट्‌टिनी की **वेदना का अनुभव हम इन शब्दों में कर सकते हैं – "हाय भट्‌ट, अभागिनी का अभिनय आज समाप्त हो गया उसने प्रेम की दो दिशाओं को एक सूत्र कर दिया।** भट्‌टिनी के ये भावोद्‌गार उसके प्रेम की निश्च्छलता, समर्पण भाव और पवित्रता को संकेतित करते हैं। वस्तुतः भट्‌टिनी का प्रेम गूढ़ और रहस्यमय है। 'आत्मकथा' में निगूढ़ प्रेम की अदृप्त व्यंजना का माध्यम भट्‌टिनी का ही चरित्र है। भट्‌टिनी का प्रेम भावमय है और उसकी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अभिव्यक्ति भी भावों के माध्यम से होती है। भट्टिनी की प्रेमाभिव्यक्ति पर लज्जा का एक गहन आवरण रहता है जो उसकी गंभीरता एवं कुलीनता का सूचक है।

भट्टिनी का चरित्र नारी व्यक्तित्व के एक अन्य पक्ष को भी प्रस्तुत करता है। वह पक्ष यह है कि नारी अबला होते हुए भी शक्ति की स्रोत होती है। उसकी इच्छा के विपरीत कोई राक्षसी शक्ति भी उसे कलंकित नहीं कर सकती। छोटे राजकुल में भट्टिनी के चरित्र की यही गरिमा उजागर हुई है।

इस प्रकार 'बाणभट्ट' की आत्मकथा के इन दो प्रमुख नारी पात्रों के माध्यम से द्विवेदी जी ने प्रेमिका नारी के दो रूप मौलिक सन्दर्भ में रचे हैं। हिन्दी साहित्य की सुदीर्घ परम्परा में जिन नारी पात्रों की सृष्टि हुई है उनमें निपुणिका और भट्टिनी निश्चय ही अत्यन्त विशिष्ट हैं।

4.4.2 संन्यासिनी रूप में नारी:

संन्यासिनी के रूप में महामाया को चित्रित किया गया है। वह एक राजवंश में जन्मी और राजकुलीन ग्रहवर्मा से उसका विवाह हुआ। जीवन के भौतिक आकर्षणों के प्रति लगाव न होने के कारण महामाया अन्तःपुर से निकल कर संन्यासिनी हो गई। उसने अघोर भैरव से दीक्षा लेकर योग साधना प्रारम्भ की। महामाया के चारित्रिक उत्थान पतन से यह निष्कर्ष निकलता है कि नारी केवल कोमलांगी ही नहीं होती, अपितु जीवन में कठिन से कठिन साधना भी कर सकती है। डा. द्विवेदी ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि नारी में विघ्नों से जूझने की जन्मजात शक्ति होती है। 'आत्मकथा' में महामाया भट्टिनी को सम्बोधित करते हुए एक स्थल पर कहती है– **"मैं विघ्नों की पूजा का ही तो तप कर रही हूं। विघ्न ही तो मेरा उपास्य है।"**

महामाया ने अपने चरित्र से यह प्रतिपादित किया है कि जीवन की पूर्णता नर–नारी दोनों के योग से सम्भव है। अकेला नर या अकेली नारी तप में अर्थात् लक्ष्य में पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकती। महामाया ने यह भी कहा कि **"नारी मात्र अबला नहीं वह शक्ति स्वरूपा है। परम शिव से दो तत्त्व एक ही साथ प्रगट हुए थे – शिव और शक्ति। उन दो तत्त्वों के प्रस्पन्दन, विस्पन्दन से यह संसार आभासित हो रहा है। पिण्ड में शिव का प्राधान्य ही पुरूष है और शक्ति का प्राधान्य ही नारी है।"**

द्विवेदी जी ने महामाया को असाधरण नारी के रूप में चित्रित किया। वह स्थाण्वीश्वर के सामाजिक जीवन में अपने विद्रोहपूर्ण भाषणों से उथल–पुथल मचा देने में समर्थ है। एक सीमा तक उसने प्रजाजनों में विद्रोह की आग सुलगाई। **अपने एक भाषण में महामाया कहती है– "धिक्कार है आर्यसमासदों। जो उत्तरापंथों के विद्वान और शीलवान् नागरिक इन राजाओं का मुँह जोह रहे हैं। मैं पूछती हूं कि यदि महाराजाधिराज ने आपकी प्रार्थना का प्रत्याख्यान कर दिया तो आप क्या करेंगे? आप लोगों में से कौन नहीं जानता कि महाराजाधिराज स्वयं शुद्ध शील होकर भी सैकड़ों ऐसे सामन्तों को आश्रय दिये हुए हैं, जिनका प्रताप कन्या–हरण में ही प्रकट होता है। आर्यसमासदों, यदि मैं असत्य कहती हूँ, तो मेरे इस त्रिशुल से मेरा खण्ड–खण्ड कर दो।"**

इस प्रकार महामाया का नारी चरित्र अत्यन्त विलक्षण रूप में चित्रित किया गया है।

4.4.3 पत्नी रूप में नारी:

नारी के इस रूप का प्रतिनिधित्व सुचरिता करती है। उसका विवाह एक ऐसे व्यक्ति से होता है जो उसे असहाय छोड़कर संन्यासी बन जाता है। पति के वियोग में कष्ट पाती सुचरिता की भेंट अंततः अपने पति से हो जाती है और वह उसके साथ रहने लगती है, किन्तु एक सन्यासिनी बनकर। सुचरिता ऐसी नारी है जो अपने जीवन के सुनहले स्वप्नों और

महत्त्वकांक्षाओं को पति के हित में होम कर देती है, सुचरिता के गुणों की भूरी–भूरी प्रशंसा करते हुए बाणभट्ट ने एक स्थान पर कहा है कि – **"तुम सार्थक हो देवि! तुम्हारा शरीर और मन सार्थक है। तुमको प्रणाम करके भवसागर में निलक्ष्य बहने वाले अकर्मा जीव भी सार्थक होंगे। तुम सतीत्व की मर्यादा हों, पतिव्रत्य की पराकाष्ठा हो, स्त्री धर्म का अलंकार हो।"**

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी महिमा का पुनर्आख्यान हुआ है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों के परिप्रेक्ष्य में 'आत्मकथा' में नारी भावना का महत्वांकन किया है। भट्टिनी इस भावना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का केन्द्र बिन्दु है जबकि निपुणिका इसकी क्रियाशीलता। महामाया और सुचरिता युगधर्म के अनुरूप अंकित की गई है। चारूस्मिता, राज्यश्री, मदनश्री, आदि नारियां तत्कालीन समाज की कलात्मक अभिरूचि एवं तत्कालीन सन्दर्भों का प्रतीक बन कर उभरी हैं। उपन्यासकार की रचना दृष्टि भी पुरूष चरित्र की अपेक्षा नारी चरित्रों के निगूढ़तम विश्लेषण में अधिक रमी है। सम्पूर्ण उपन्यास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि नारी ही इस उपन्यास की अन्तः चेतना है। जो धीरे–धीरे समग्र उपन्यास पर प्रभावी हो जाती है। उपन्यास की क्रियाशीलता का नेतृत्व भी नारी पात्रों के ही हाथ में है। इसी सन्दर्भ में यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपन्यासकार ने नारी निरूपण में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण को अपनाया है। उसने न केवल नारी पात्रों को नवीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है, अपितु उनकी महत्वपूर्ण भूमिका भी दर्शायी है। समष्टि रूप में यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' नारी–चेतना की दृष्टि से एक सफल कथाकृति है।

4.5 बाणभट्ट की आत्मकथा का साहित्यिक रूप

प्रत्येक साहित्यकार एक निश्चित उद्देश्य को ध्यान में रखकर अपनी कृति का निर्माण करता है। कृति के कथ्य के स्वरूप एवम् उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में रचनाकार स्वयं साहित्य की विधा का निर्धारण करता है। कथ्य के संप्रेषण में जो विधा सुगम एवं अधिक सशक्त होती है कृतिकार उसी का चयन करता है। अस्तु रचना से पूर्व लेखक के मस्तिष्क में पूर्णतः स्पष्ट रहता है कि वह किस विधा में लिखना चाहता है। समीक्ष्य कृति के शीर्षक से पाठकों पर प्रथम प्रभाव रचना के 'आत्मकथा' होने का पड़ता है। लेखक द्वारा कथामुख में मिस कैथराइन का मिथक भी इस प्रभाव को बढ़ाता ही है। जिसके अनुसार मिस कैथराइन द्वारा उन्हें आत्मकथा की पाण्डुलिपि प्राप्त हुई तथा द्विवेदी जी ने मात्र उसका सम्पादन किया है। उपसंहार में इन्हीं बातों को पुष्टता प्रदान करने हेतु मिस कैथराइन से कहलवाया गया है कि हजारी प्रसाद द्विवेदीजी ने सम्पादन करते समय इसे आटोबायोग्राफी का जो रूप दिया है, वह निर्दोष नहीं है। इस प्रकार कथामुख, उपसंहार एवं शीर्षक रचना के आत्मकथा होने का भ्रम उत्पन्न करते हैं, किन्तु पाठक जब रचना को पढ़ता है तो उसके मन में कृति के स्वरूप को लेकर अनेक सन्देह उत्पन्न हो जाते हैं। वस्तु संगठन, पात्र सृष्टि की दृष्टि से यह उपन्यास सिद्ध होता है, कथामुख और उपसंहार इसे आत्मकथा सिद्ध करते हैं, शैली इसे इतिहास सिद्ध करती है। इस प्रकार पाठक का मन विवादस्थलों के फलस्वरूप शंकालु हो जाता है। अस्तु हिन्दी साहित्य के समर्थ रचनाकार स्व. हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के साहित्यिक स्वरूप का निर्धारण संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, इतिहास, उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में अलग–अलग करना समीचीन होगा।

4.5.1 बाणभट्ट की आत्मकथा और संस्मरण

संस्मरण लेखक के समय का इतिहास होता है किन्तु इतिहासकार के वस्तुपरक रूप से भिन्न। संस्मरण लेखक जो कुछ अनुभव करता है उसी का वर्णन करता है अतः इस वर्णन में उसकी अपनी संवेदना भी हस्तक्षेप करती है। अस्तु यह शैली निबन्धकार के समीप है। पाश्चात्य अभिमत में **"स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखित लेख या ग्रन्थ को संस्मरण कहते हैं।"**

संस्मरण के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए जब प्रस्तुत कृति का मूल्यांकन किया जाता है तो उसे संस्मरण नहीं कहा जा सकता। 'बाणभट्ट' की आत्मकथा' स्मृति के आधार पर रचित नहीं हैं। इसमें एक निश्चित घटनाक्रम है जो क्रमबद्ध रूप में प्रवाहमान है। संस्मरण लेखक के समय का इतिहास होता है, समीक्ष्य कृति में कुछ चरित्रों के नाम के अतिरिक्त कुछ भी ऐसा उपलब्ध नहीं होता। संस्मरणों में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' जैसा दीर्घ कथात्मक स्वरूप नहीं होता तथा उसमें क्रम का कोई स्थान नहीं होता।

समग्रतः तुलनात्मक दृष्टिकोण के आलोक में हम कह सकते हैं कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा का स्वरूप संस्मरण का स्वरूप नहीं है।

4.5.2 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एवं 'जीवनी'

किसी व्यक्ति विशेष के जीवन वृत्तान्त को जीवनी कहते हैं, जिसमें उसके अन्तर्बाह्य, दोनों ही जीवनों का लेखा–जोखा होता है।

शिप्ले के अनुसार– **"जीवनी को नायक के सम्पूर्ण जीवन अथवा उसके यथेष्ट भाग की चर्चा होनी चाहिए और अपने आदर्श रूप में एक इतिहास होना चाहिए।"**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

श्री अजीत कुमार– "**वास्तविक जीवनी वही है, जिसमें तथ्यों के अन्वेषण में और उन्हें प्रस्तुत** करने में विशेष ध्यान रखा जाय और जीवनी प्रामाणिक तथा सम्यक् जानकारी पर आधारित रहे।" जीवनी का लेखक चरित्र नायक के अतिरिक्त कोई भी हो सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को देखें–परखें तो उसे साहित्य की विधा 'जीवनी' के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। जीवनी का मुख्याधार है कि वह चरित्रनायक के जीवन का इतिहास होता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में चरित्रनायक बाण इतिहास सम्मत् तो है। किन्तु निपुणिका, महामाया, अघोर भैरव, सुचरिता और विरतिवज्र आदि कल्पनाप्रसूत है। द्वितीयतः जीवनी में तथ्यों का अन्वेषण एवं प्रामाणिक एवं सम्यक जानकारी का आधार उपलब्ध होता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' इस शर्त को पूरा करने में असमर्थ है। यद्यपि उसमें तत्कालीन परिवेश का इतिहास सम्मत चित्रण हुआ है, तथापि घटनाओं के सम्बन्ध में प्रामाणिकता का सर्वथा अभाव है। अस्तु 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को 'जीवनी' विधा के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

4.5.3 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और इतिहास

'इतिहास' शब्द अंग्रेजी के हिस्ट्री शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। 'हिस्ट्री' शब्द यूनानी शब्द 'हिस्टोरिया' से बना है जिसका अर्थ होता है 'सत्य का अन्वेषण'। हेरोडोटस के अनुसार – "**इतिहास ही ऐसा विषय है। जिसके अध्ययन और मनन द्वारा तथ्यों की सत्यता जानी जा सकती है।**" स्वयंसिद्ध है कि इतिहास सत्य और प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित ज्ञान का नाम इतिहास है।

संस्मरण एवं जीवनी प्रकरण में जैसा कि कहा गया है इसमें प्रामाणिक एवं सम्यक् जानकारी का अभाव है, अस्तु गद्य की इन विधाओं में नहीं रखा जा सकता। संस्मरण जीवनी एवं इतिहास में अन्तर इतना है कि इतिहास शुद्ध, प्रामाणिक और सत्य तथ्यों पर आधारित होता है तथा जिसमें वैयक्तिक अनुभवों और विचारधाराओं का आरोपण नहीं किया जा सकता। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में तत्कालीन परिवेश और परिस्थितियों (जैसे हर्षकालीन धार्मिक दशा – सामाजिक दशा) का इतिहास सम्मत चित्रण है तथा बाण, हर्षदेव, भुर्वुशर्मा, तुवरमिलिन्द आदि पात्र ऐतिहासिक हैं किन्तु निपुणिका, भट्टिनी, महामाया, अघोर भैरव आदि चरित्रों एवं तत्सम्बन्धी घटनाएं द्विवेदी जी के मानस की उपज हैं जो कि इसे इतिहास से अलग करती है तथा परिवेश चित्र को ऐतिहासिक बनाने में सहायक है।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि घटनाओं और पात्रों की प्रामाणिक तथ्य जानकारी के अभाव में समीक्ष्य कृति को 'इतिहास' के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

4.5.4 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और आत्मकथा

आत्मकथा के स्वरूप को देखने पर ज्ञात होता है कि – "**आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से सम्बद्ध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्त्व दिखलाया जाना संभव है।**" – हिन्दी साहित्यकोश

इस दृष्टि से आत्मकथाकार अपनी रचना को आत्मविश्लेषण के रूप में प्रस्तुत करता है। जटिल विश्व के उलझावों में अपने आपको अन्वेषित करने का सात्विक प्रयास ही आत्मकथा है। यही कारण है कि आत्मकथा में भावनाओं एवं कल्पनाओं के लिए काई स्थान नहीं होता अपितु बौद्धिकता का प्राधान्य रहता है। आत्मकथा के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए जब प्रस्तुत कृति की मीमांसा की जाती है तो उस कृति को आत्मकथा नहीं कहा जा सकता। यदि यह सचमुच बाण की आत्मकथा है तो इसमें उसके **गौरवमय चरित्र की अपेक्षा दोषों का उद्घाटन अधिक होना चाहिये जिसका सर्वथा अभाव है। संस्कृत साहित्य में आत्मकथा लेखन की परम्परा नहीं थी।** भारतीय रचनाकारों ने अपने आपको यथा सम्भव प्रकट नहीं होने दिया। कृति की विशेषताएँ भले की उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती हो अन्यथा स्वयं रचनाकार मौन ही रहे हैं। फलतः बाण को आत्मकथा लेखन की प्रेरणा कहां से मिली। **आत्मकथा में सम्पूर्ण जीवन की झांकी होती है** जबकि आलोच्य कृति में बाणभट्ट के जन्म से लेकर युवावस्था की समस्त घटनाओं को चार पृष्ठों में ही समेट दिया गया है। शेष सारी घटनाएँ पाँच–छः सालों की हैं।

कृति का मूल्यांकन द्विवेदी जी ने उपसंहार में किया है। यह अन्तःसाक्ष्य भी उसे आत्मकथा सिद्ध नहीं करते। **यद्यपि आलोच्य कृति रूप रचना, भाषात्मक गरिमा, सौन्दर्य निरूपण, शैलीगत क्लिष्टता की दृष्टि से 'कादम्बरी' का साम्य रखती है, किन्तु वर्णन कौशल की दृष्टि से आत्मकथा नहीं जान पड़ती। द्वितीय इसका निर्माण कुछ–कुछ डायरी**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शैली में हुआ है – ऐसा जान पड़ता है जैसे–जैसे घटनाएँ अग्रसर हुई लेखक ने लिपिबद्ध कर लिया। जहाँ भावावेग तीव्र हुआ जमकर लिखा अन्यथा दुख के आवेग के कारण लेखनी शिथिल होती दिखाई देती है। संस्कृत में यह शैली सर्वथा अपरिचित है। इसी प्रकार बाण की रचनाओं में प्रेम और रोमांस का उन्मुक्त एवं उच्छृंखल चित्रण हुआ है इसके विपरित प्रस्तुत कृति में प्रेमभावना अदृप्त दृष्टिगत होती है। जहाँ 'कादम्बरी' में शारीरिक विकारों का निरूपण हुआ है वहीं 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में मानसिक विकारों को प्रकट किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी रचना पूर्णतः निर्दोष नहीं है। यदि यह बाण की रचना होती तो इसमें ऐतिहासिक त्रुटिया असम्भव थी। प्रस्तुत कृति आद्योपान्त भावुकता और कल्पनाओं में सरोबार रहती है एवं उसमें बाण की बौद्धिकता के भी दर्शन नहीं होते। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' शीर्षक होते हुए भी समीक्ष्य रचना बाणभट्ट विरचित आत्मकथा कदापि नहीं है। समग्र विवेचन के पश्चात् हम कह सकते हैं कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' संस्मरण, जीवनी, इतिहास अथवा आत्मकथा नहीं है। **वस्तुतः इसकी रचना में औपन्यासिक तत्त्वों का समञ्जन हुआ है।**

4.5.5 बाणभट्ट की आत्मकथा और उपन्यास

उपन्यास का मुख्याधार उसकी कथा होती है। कथानक के निर्माण के द्वारा उपन्यासकार विविध स्थितियों का निर्माण करता है जिनमें व्यवहार करते हुए पात्र चारित्रिक सिद्धियों को प्राप्त करते हैं, इसीलिए उपन्यास मूलतः मानव जीवन का चित्रण होता है। यथार्थोन्मुखी आग्रहों के कारण उपन्यासकार पात्रों के अन्तर्मन के रहस्यों को उद्घाटित करने की चेष्टा करता है, फलतः कथा में विविध घटनाएँ श्रृंखलाबद्ध हो जाती हैं। घटनाओं के व्यवस्थापन के कारण उपन्यास की कथा काल्पनिक होते हुए भी यथार्थपरक लगती है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भी हर्षवर्धन के समय को उद्घाटित किया गया है। उपन्यास का कथानक व्यक्तिनिष्ठ न होकर समष्टिनिष्ठ है। उपन्यासकार ने पूर्वदीप्ति शैली (फ्लेशबैक पद्धति) का प्रयोग भी किया है जिसके द्वारा सुचरिता एवं विरतिवज्र की कहानियों को एक सूत्र में पिराने की चेष्टा की है। इसी प्रकार आत्मकथा अपेक्षाओं से भिन्न सुचरिता–विरतिवज्र, महामाया, अघोर भैरव के गौण कथाओं को भी प्रस्तुत किया गया है, जो कि उपन्यास की आवश्यकता है।

पात्रों की दृष्टि से भी कृति समर्थ और औपन्यासिक दृष्टिगत होती है। केवल बाणभट्ट के चरित्र को ही इसमें उद्घाटित नहीं किया गया है बल्कि निपुणिका और भट्टिनी के चरित्रों को समान गौरव प्रदान किया गया है। यहां तक कि वाभ्रव्य, अघोर भैरव, धावक जैसे पात्रों को भी विशिष्ट महिमा के साथ मण्डित किया गया है। इन चरित्रों के वैशिष्ट्य को उद्घाटित करने का सायास प्रयत्न किया गया है। इन पात्रों में जीवन्तता है तथा प्रत्येक निजी दृष्टिकोण रखता है।

आलोच्यकृति उपन्यास के संवादों के समान नाटकीयता एवं वैशिष्टय धारण किये हुए हैं। पात्रों के चारित्रिक उद्घाटन में कहानी को विकासमान बनाए रखने के लिए लेखक पूर्णतः संवादों पर आश्रित है। इसी प्रकार कृति सुनिश्चित उद्देश्य के साथ आगे बढ़ती है। नारी के प्रति सम्मान की भावना की स्थापना मानवतावादी दृष्टिकोण, धार्मिक सहिष्णुता का निरूपण आदि वे उद्देश्य हैं जो प्रस्तुत कृति को उपन्यास सिद्ध करने में सहायक होते हैं।

समग्रतः हम कह सकते हैं कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में उपन्यास के तत्त्वों का समज्जन हुआ है। किन्तु प्रस्तुतीकरण शैली इसको संस्मरण, जीवनी, एवं रसावतरण की चेष्टा काव्य की श्रेणी में ला खड़ा करती है। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान ए.वी. कीथ ने बाण की शैली को अननुकरणीय बतलाया था। आचार्यवर ने मानों इस चुनौती को स्वीकार करते हुए आत्मकथात्मक शैली में यह उपन्यास लिखा है। इन्होंने सफल परकाया प्रवेश करते हुए इस सुन्दर कृति की रचना की जो बाण का अनुकरण ही नहीं, पाठकों के हृदय में इसी का भ्रम उत्पन्न करने में सफल रही है।

4.6 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रेम–निरूपण

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में निरूपित प्रेम के विवेचन से पूर्व 'प्रेम' शब्द की सैद्धान्तिक व्याख्या समीचीन होगी। व्युत्पत्तिमूलक दृष्टि से 'प्रेम' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'प्रेमन्' से मानी गई है। प्रेमन् शब्द की निष्पत्ति 'प्री' (अर्थात् प्रसन्न करना या आनंद लेना) धातु से मनिन् (मन्) प्रत्यय जोड़कर हुई है। इस प्रकार 'प्रेमन्' शब्द का अर्थ हुआ 'प्रियता', प्रिय का भाव या प्रिय होना। इस प्रकार व्युत्पत्तिलभ्य 'प्रेम' शब्द का अर्थ हुआ – 'जो प्रीति देता हो अर्थात् अनन्त तृप्ति प्रदान करता हो।' वस्तुतः 'प्रेम' शब्द एक अत्यन्त व्यापक शब्द है जो इसके विविधार्थों की व्याप्ति द्वारा विदित है। पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इसे विभिन्न प्रकार से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। फलस्वरूप प्रेम स्थूल इन्द्रियों तक ही सीमित न रहकर मन के सूक्ष्म एवं उदात्त स्तरों तक पहुँच गया है। अतः 'प्रेम' शब्द का मर्म भली भांति समझने के लिए कतिपय विचारसूत्रों, व्याख्याओं या परिभाषाओं का उल्लेख यहां अप्रासंगिक न होगाः–

महर्षि नारद ने 'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्' कहकर विवेचित किया है। **पं. सद्‌गुरूशरण अवस्थी** ने इस प्रकार समझाने की चेष्टा है–

"प्रेम ऐहिक सानिध्य की पार्थिव आकांक्षा है। अन्य प्रवृत्तियों की भांति वह नितांत भौतिक है।"

भवभूति, चैतन्य महाप्रभु, कबीर, तुलसी एवं विवेकानंद आदि विद्वानों भक्तों और सन्तों ने प्रेम को परमात्मा से जोड़कर पारलौकिक वस्तु मानते हुए जीवन का आधार माना है।

प्रेम को पाश्चात्य विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है:–

सर डब्लयू टेम्पल – "प्रेम जीवन का सर्वश्रेष्ठ आनंद है।"
बायरन – "पुरुष का प्रेम उसके जीवन का एक अंग है। स्त्री का प्रेम उसका सर्वस्व है।"
बाल्ज़ाक – "प्रेम वीरता एवं विवेक दोनों का मूलाधार है जो आत्मसमर्पण का भाव रखता है।
लिन्टन – "प्रेम को मैत्रीमूलक आवेगों का प्रदर्शन मानते हैं।"
विल ड्रूरेन्ट – "प्रेम वह मधुर ऊष्मा है जो हृदय को तर–गरम रखता है और अनिर्वचनीय तृप्ति व शान्ति प्रदान करता है।" लेने में नहीं, देने में प्रेम का स्वाद है।
वाल्दमीर – "प्रेम का अर्थ है अहंकार के त्याग द्वारा अपनी मुक्ति"

भारत के प्रबुद्ध समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि –

"विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ वह सात्विक रूप प्राप्त करता है जिसे प्रीति या प्रेम कहते हैं।"

सभी भारतीय एवं पाश्चात्य परिभाषाओं में प्रेम को हृदय का परिष्कृत भाव स्वीकार किया गया है।

वस्तुतः प्रेम मनुष्य की एक रागात्मक वृत्ति है। मानव मन का पवित्र भाव है। जो प्रत्येक प्राणी के हृदयस्थ है इसी आधार पर प्रेम या रति स्थायी श्रृंगाररस को रस राज कहा जाता है।

मानव जीवन में प्रेम को अनेक रूपों में ग्रहण किया जाता है। प्रेम को (1) व्यक्त या स्थूल (मनुष्य, पेड़– पौधों आदि) एवं अव्यक्त और सूक्ष्म के प्रति (ईश्वर एवं भावना) प्रेम (2) जड़ (पहाड़, ग्रन्थ, भव आदि) चेतन (जीव–जन्तु) के प्रति प्रेम (3) बड़े–छोटों के प्रति प्रेम आदि बौद्धिक आधारों पर सामान्यतः अग्रांकित रूपों में वर्गीकृत किया जाता है:–

(1) भक्ति अर्थात् आध्यात्मिक प्रेम
(2) प्रणय अर्थात् दाम्पत्य प्रेम
(3) वात्सल्य अर्थात् सन्तान के प्रति प्रेम
(4) प्रकृति प्रेम जिसमें जीव जन्तु, पेड़ पौधे आदि आते हैं
(5) देश प्रेम जिसमें व्यक्ति 'स्व' से ऊपर उठकर विश्वव्यापी होना चाहता है।
(6) मानव प्रेम जिसमें व्यक्ति का प्रेम प्राणी मात्र पर जागृत होता है।
(7) कुटम्ब प्रेम
(8) मैत्री या समव्यसकों के प्रति प्रेम
(9) सेवक सेव्य प्रेम
(10) स्थूल एवं सूक्ष्म के प्रति प्रेम

वस्तुतः प्रेम एक अखण्ड सत्ता का नाम है। जिसको टुकड़ों में नहीं रखा जा सकता है। उपर्युक्त विभेद मात्र वैज्ञानिक स्पष्टता के परिचायक हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी स्वयं प्रेम को नरलोक से किन्नर लोक तक व्याप्त एक अविभाज्य रागात्मक वृत्ति स्वीकार करते हैं।

"बाणभट्ट की आत्मकथा" डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी का एक सांस्कृतिक चेतनापरक ऐतिहासिक उपन्यास है। हिन्दी उपन्यास संरचना प्रेमचन्दोत्ततर काल में अपने चरमोत्कर्ष पर थी और ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक आदि विविध रचना धाराएं कथा साहित्य में आविर्भूत हुई। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ गद्य "बाणभट्ट की आत्मकथा" नामक उपन्यास राजनीतिक दृष्टि से, ऐतिहासिक परम्परा, धार्मिक चेतना, तात्कालिक परिवेश, साहित्य दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण है। प्रेम तत्त्व निरूपण की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दृष्टि से भी यह एक सशक्त, प्रभावपूर्ण, मार्मिक एवं उत्कृष्ट रचना बन पड़ी है। सांस्कृतिक तत्त्वों की ही भांति प्रेम की भी प्रशस्य अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम की अभिव्यक्ति का मुख्य सूत्र बाणभट्ट निपुणिका, एवं भट्टिनी के त्रिकोण में विकसित हुआ है। जिसमें प्रेम को अदृप्त स्वरूप में प्रस्तुत कर इसके संयत रूप का विवेचन किया गया है एवं वासनात्मकता, एवं मांसलता से ऊपर उठकर सात्विक एवं उदात्त प्रेम की सृष्टि की है। उच्चतम आदर्शों एवं उदात्त जीवन मूल्यों की स्थापना कर प्रेम का सुदृढ़ आधार खड़ा किया गया है। उपन्यासकार ने सभी पात्रों के माध्यम से प्रेम की उज्ज्वलता और पवित्रता की प्रतिष्ठा की है।

प्रेम की अभिव्यक्ति के साधनात्मक एवं भावात्मक स्वरूप परिलक्षित है। जहाँ बाण, भट्टिनी, निपुणिका, सुचरिता भावात्मक प्रेम का प्रतिनिधित्व करते हैं वहीं विरतिवज्र, अघोर भैरव एवं महामाया साधनात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं।

"बाणभट्ट की आत्मकथा" में प्रेम की अभिव्यक्ति निम्नांकित पात्रों के माध्यम से हुई हैः–

1. बाणभट्ट और निपुणिका
2. बाणभट्ट और भट्टिनी
3. अघोर भैरव और महामाया
4. विरतिवज्र और सुचरिता

4.6.1 बाणभट्ट और निपुणिका

बाणभट्ट और निपुणिका का प्रेम भावात्मक आधार पर विकसित हुआ है। बाण निपुणिका से उदात्त भाव से प्रेम करता है किन्तु निपुणिका बाण से मांसल भावभूमि पर प्रेम की आकांक्षी है। बाण नारी के शरीर को देव मन्दिर मानता है और इसीलिए उसका प्रेम वासनात्मक रूप ग्रहण नहीं करता। निपुणिका का प्रेम त्याग था प्रतीक्षाग्नि से तपा हुआ है। भट्टिनी की ओर बाण का आकर्षण देखकर भी ईर्ष्या भाव जागृत न हुआ अपितु वह भट्टिन को प्राणों से प्रिय मानकर अन्त में भट्टिनी के हाथ में बाण का हाथ देकर दिवंगत हो जाती है। प्रेम को अविभाज्य सिद्ध करती है। आरम्भ से अन्त तक दोनों ने प्रेम को परोक्ष रूप से प्रकट किया है जिससे प्रेम की अदृप्तता का भाव बना रहा है। वासना और मोह से ऊपर उठकर प्रेम की पवित्रता वर्णित हुई है।

4.6.2 बाणभट्ट और भट्टिनी

बाणभट्ट और भट्टिनी का प्रेम लोकोत्तर एवं आदर्शमय है। इस प्रेम सम्बन्ध में एक विचित्र स्थिति सदैव विद्यमान् रहती है जिसमें बाण एवं भट्टिनी परस्पर आकर्षित रहते हैं। बाण दो नारियों के मध्य में अकेला है। दोनों के प्रति उदार एवं सच्ची भावना को प्रकट किए हुए है। निपुणिका से मोहग्रस्त है एवं भट्टिनी की रूपराशि पर आसक्त। निपुणिका को दुःखग्रस्त देखकर उसके उद्धार हेतु संकल्प एवं भट्टिनी की सेवा का दायित्व अन्य किसी को न देना इसका प्रमाण है। नारी को देवमन्दिर की तरह पूज्य मानने के कारण उसका प्रेम उच्छृंखल नहीं होने पाया है। भट्टिनी भी बाण पर आसक्त है वह पुरूष को मुक्त करने में प्रेम की सार्थकता मानती है। यही कारण है कि दोनों में प्रखर आकर्षण होते हुए भी भावोद्गार की स्पष्ट अभिव्यक्ति कहीं भी नहीं होती है। सम्पूर्ण उपन्यास में उनके मनोभाव अदृप्त रहते हैं। समग्रतः यही कहा जा सकता है कि प्रेम की मुक्त व्यंजना को एक तो नैतिकता ने रोका है और दूसरे सम्बन्धों ने बाण के मन में भट्टिनी को दिव्य नारी मानने की भावना ने ही प्रेम को अदृप्त बनाए रखा है।

4.6.3 अघोर भैरव एवं महामाया

महामाया का चरित्र विलक्षण है। अघोर भैरव एक साधक और तेजस्वी व्यक्तित्व के स्वामी है। इतना होते हुए भी वह महामाया से लौकिक प्रेम सम्बन्धों के लिए लालायित है किन्तु महामाया लोकोत्तर प्रेम की उपासिका है। वह अघोर भैरव को पाने हेतु गृहवर्मा को त्यागकर सन्यास लेकर प्रेमी अघोर भैरव से प्रेम करती है। इसके प्रेम में भी अदृप्तता का भाव विद्यमान है किन्तु त्याग और प्रतिशोध के आधार पर। वह अपने असफल प्रेम का गृहस्थ त्यागकर उदात्तीकरण कर लेती है तथा प्रेम के साधनात्मक स्वरूप को प्रस्तुत करती है।

4.6.4 विरतिवज्र एवं सुचरिता

सुचरिता विरतिवज्र की पत्नी है जिसे त्यागकर वह संन्यासी हो जाता है। सुचरिता के प्रेम के दो रूप सामने आते हैं – एक गृहस्थ होने के कारण भावनात्मक दूसरे पति के योगी होने के कारण साधनात्मक। विरतिवज्र का प्रेम साधनात्मक रूप में विकसित हुआ है। इसी दृष्टि से उपन्यासकार ने प्रेम सम्बन्धों का एक विलक्षण स्वरूप आत्मकथा में प्रस्तुत किया है क्योंकि वासनात्मक प्रेम की परिणिती आध्यात्मिक प्रेम सम्बन्धों में होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.6.5 "बाणभट्ट की आत्मकथा" में प्रेम तत्त्व की विशेषताएँ

डा. शान्तिलाल भारद्वाज ने उपन्यास में प्रेम की अदृप्तता को इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि माना है। आरम्भ से अन्त तक प्रत्येक पात्रों ने क्रियाकलापों से ही प्रेम की व्यंजना की है कहीं भी खुलकर प्रेमाभिव्यक्ति नहीं हुई है। सर्वत्र अदृप्त प्रेम की सत्ता व्याप्त है।

"बाणभट्ट की आत्मकथा" उपन्यास की दूसरी प्रमुख विशेषता इसमें वासनान्धता का अभाव है। इसमें नारी के प्रति पूज्य भाव दर्शाया गया है। स्वयं बाणभट्ट नारी को देवमन्दिर की तरह पूज्य मानता है अतः प्रेम शरीरी नहीं होने पाया है कहीं भी उच्छृंखलता का भाव नहीं आने पाया है। प्रेम का उज्ज्वल एवं पवित्र रूप प्रकट हुआ है।

प्रेम को अखण्ड एवं अविभाज्य रूप में प्रकट किया गया है। लेखक उसे मानव की रागात्मक प्रवृत्ति मानता है जो नरलोक से किन्नर लोक तक व्याप्त है जिसका विभाजन नहीं किया जा सकता। लोग इसे ईर्ष्या द्वारा छोटा कर देते हैं। "बाणभट्ट की आत्मकथा" में प्रेम को अविभाज्य प्रस्तुत किया गया है। निपुणिका और भट्टिनी दोनों ही बाण से प्रेम करती हैं किन्तु फिर भी एक दूसरे से ईर्ष्या नहीं करती। निपुणिका तो अन्त में भट्टिनी का हाथ बाण को देकर प्राणान्त कर त्याग का उदाहरण प्रस्तुत करती है जो कि प्रेम को अविभाज्य ही सिद्ध करता है।

"बाणभट्ट की आत्मकथा" में प्रेम का त्रिकोणात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। बाण, निपुणिका एवं भट्टिनी इसका माध्यम बने हैं। सम्पूर्ण कथा इनके चारों और विकसित होती है। इससे कथा सशक्त और उत्कृष्ट बन पड़ी है। प्रेम का त्रिकोण इसके स्वरूप को सजीव ही बनाता है। बाण, निपुणिका, और भट्टिनी प्रेम के भावनात्मक स्वरूप को उद्घाटित करते हैं तथा विरतिवज्र, सुचरिता, महामाया, एवं अघोर भौरव प्रेम के साधनात्मक रूप को। सच तो यह है कि प्रेम सम्बन्धों की अभिव्यक्ति विशिष्ट बन पड़ी है। प्रेम की उज्ज्वलता, अदृप्तता, पवित्रता, शुचिता और मार्मिकता इस उपन्यास की उपलब्धियाँ हैं। उपन्यास समीक्षकों ने मुक्त कंठ से मध्याकालीन सांस्कृतिक चेतना की इस विराट कथाकृति में प्रेम सम्बन्धों की अभिव्यक्ति की प्रशंसा की है। प्रेम की निश्छलता, स्वाभाविकता, मृदुलता, अन्तरंगता कुतूहल, निष्ठापूर्ण उत्सर्ग भाव, अदृप्तता एवं भावात्मकता एक साथ "बाणभट्ट की आत्मकथा" में ही सम्भव हुई है। **डा. देवराज उपाध्याय** इस सम्बन्ध में कहते हैं कि – "'बाणभट्ट की आत्मकथा' में संयम, आत्मसमर्पण, पवित्रता का जो स्थान है, उसको वह आधुनिक सभ्यता की आधारशिला बनने का आग्रह करता है।" **डा. शान्ति भारद्वाज** कहते हैं कि "द्विवेदी जी दृप्त प्रेम के नहीं अदृप्त प्रेम के उपासक हैं। वे नारी को ऐसा देवमन्दिर मानते हैं जिसकी चाबी पुरुष के पास रहने पर भी शुद्ध मानवी रहे।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि समीक्ष्य उपन्यास में प्रेम तत्त्व का सशक्त निरूपण एवं मार्मिक चित्रण हुआ है।

4.7 भट्टिनी का चरित्र–चित्रण

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सांस्कृतिक चेतनापरक ऐतिहासिक उपन्यास "बाणभट्ट की आत्मकथा" के नारी पात्रों (निपुणिका, महामाया, सुचरिता, चारूस्मिता, राज्यश्री, मदनश्री आदि) में भट्टिनी का चरित्र असाधारण महत्त्व का है। समीक्ष्य उपन्यास के माध्यम से मध्यकालीन भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के अनेक नेक तत्त्वों का निरूपण हुआ है, जिनमें नारी निरूपण सर्वप्रमुख है। भट्टिनी के चरित्र की गरिमा नारी मात्र के लिए अनुकरणीय है। इसका चरित्र सौन्दर्य, स्वाभिमान, आस्था, भक्तिभावना, सहनशीलता और प्रेमाकर्षण का संघात है। डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के अन्य उपन्यासों (चारू चन्द्रलेख, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा) में भी भट्टिनी के सदृश्य गौरव गरिमा, अन्य नारी पात्र भट्टिनी का चरित्र ही 'आत्मकथा' का आद्यान्त जीवन्त बनाए रखता है। भट्टिनी के चरित्र के सर्वांगीण अनुशीलन और विश्लेषण से यह तत्त्व उजागर होता है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की नारी विषयक संकलपना का वह मूर्तिमंत आदर्श है। यों तो उपन्यास में निपुणिका और महामाया की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है वे अपने ढंग से नारी चेतना के दो आयामों को उद्घाटित करती हैं किन्तु नारी मात्र के उदात्त गुणों की सम्पुज्जन तो भट्टिनी का ही चरित्र है। सौन्दर्य की साकार प्रतिमा मूर्तिमति लज्जा, गंगा की सी पवित्रता, हिमगिरी की सी महानता, धरित्री की सहनशीलता, कमल की सी निष्कलुषता लिए भट्टिनी की चरित्र सचमुच हिन्दी कथा साहित्य की विरल सृष्टि है।

"बाणभट्ट की आत्मकथा" में प्रसंगानुकूल चरित्र की जो रेखाएं उभरी हैं, वे इस प्रकार हैं:–

1. सौन्दर्य की साकार प्रतिमा
2. पवित्रता और गरिमा की प्रतिमूर्ति
3. स्वाभिमानिनी
4. आस्तिक प्रवृत्ति
5. अपार ज्ञानशीला
6. सहनशील एवं कृत्तज्ञ
7. निष्कपटता
8. मानववादिता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9. अदृप्त प्रेममयता
10. भाग्यवादिता
11. सरल एवं भोली
12. प्रत्युत्पन्नमति
13. अन्याय का विरोध करने में सक्षम

4.7.1 सौन्दर्य की साकार प्रतिमाः–

भट्टिनी सौन्दर्य की साकार सदेवोय प्रतिमा निरूपित की गयी है। वह आंतरिक एवं बाह्य दोनों ही दृष्टियों से अपूर्व सौंदर्यशालिनी है। उमसें आभिजात्य वंश की सी गरिमा है और आबदार मोती की–सी सदीप्ति है। भट्टिनी के शरीर की रचना के सम्बन्ध में बाण द्वारा कथित ये पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं:–

"आगुल्फ आच्छादित नील आवरण में से उनका मनोहर सुख सौ गुना रमणीय दिखाई दे रहा था मानो ज्योत्स्ना रूप धवल मंदाकिनी धारा बहते हुए शैवाल जाल में उलझा हुआ प्रफुल्ल कमल हो। उनकी बड़ी मनोहर आंखों की शोभा का अपना उपमान आप ही थीं।"

4.7.2 पवित्रता और गरिमा की प्रतिमूर्ति

भट्टिनी न केवल सौन्दर्य शालिनी थी अपितु पवित्रता की प्रतिमूर्ति भी थी। "बाणभट्ट की आत्मकथा" में अनेक स्थलों पर भट्टिनी की शारीरिक व मानसिक पवित्रता की गरिमा का वर्णन हुआ है। यथा–

"उसके सारे शरीर में स्वच्छ कान्ति प्रवाहित हो रही थी। अत्यन्त चपल प्रभा पुंज से उसका शरीर एक प्रकार से ढका सा ही जान पड़ता था। इतनी पवित्र रूप राशि किस प्रकार सम्भव हुई है। निश्चय ही धर्म के हृदय से निकली हुई है।"

समग्रतः कहा जा सकता है कि भट्टिनी का व्यक्तित्व आकर्षक सौन्दर्य युक्त पवित्रता से सिक्त और गरिमा से गन्धित है।

4.7.3 स्वाभिमानिनी

सौन्दर्य एवं पवित्रता के साथ तो स्वाभिमान उसके चरित्र की उल्लेखनीय विशेषता है। वह छोटे राजकुल से सम्बन्धित किसी व्यक्ति के यहाँ प्रश्रय पाना अनुपयुक्त समझती है तथा स्वयं को कृष्णवर्धन द्वारा बहन स्वीकार करने पर ही वह निमन्त्रण स्वीकार करती है।

4.7.4 आस्तिक प्रवृत्ति

भट्टिनी भक्तिनी थी। महावराह की अनवरत साधना में रत रहती है। उसके व्यक्तित्व में भक्ति और आस्था कूट–कूट भरी है। नदी में कूदते समय भी वह अपने प्राणों के स्थान पर महावराह की मूर्ति की चिन्ता करती है जो उसकी आस्तिकता का प्रमाण है।

4.7.5 अपार ज्ञानशीलता

भट्टिनी का ज्ञान अपार था, चिन्तन शक्ति समुद्र की भांति गहन थी। कतिपय स्थानों पर मानव जाति के त्राण के लिए अपने जो गुरूत्तर एवं महत्वपूर्ण विचार अभिव्यक्त किये हैं वे इसके प्रमाण हैं। वह दूरदर्शी है।

4.7.6 सहनशील एवं कृतज्ञ

भट्टिनी के व्यक्तित्व में सहनशीलता एवं कृत्तज्ञता के गुण विद्यमान है। एक सुकोमल एवं अभिजात्य वर्ग की राजकुमारी होते हुए भी वह जटिल एवं विधि प्रकार के संकट झेलती है। साथ ही वह धैर्यशीला है वरण एवं निपुणिका के प्रति उसमें कृत्तज्ञता का भाव भी विद्यमान है।

इनके अतिरिक्त उसके चरित्र में –

7. निष्कपटता
8. मानववादिता
9. अदृष्ट प्रेममयता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10. भाग्यवादिता
11. सरल एवं भोली
12. प्रत्युपन्नमति
13. अन्याय का विरोध करने की शक्ति आदि गुण उसके चरित्र में विद्यमान है। इन्हीं गुणों के कारण वह हिन्दी कथा साहित्य का अमर पात्र बन गयी है। साथ ही अधुनातन नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। अपनी चारित्रिक विशिष्टताओं के कारण वह आत्मकथा की जीवन्त पात्र बन गयी है। शील, शालीनता, आत्मसंयम और स्वाभिमान के गुणों के कारण उसका चरित्र उपन्यास में अधिक भास्वित हो उठा है।

4.8 बाणभट्ट की आत्मकथा में सांस्कृतिक चेतना

'बाणभट्ट की आत्मकथा' डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी का सांस्कृतिक चेतना परक ऐतिहासिक उपन्यास है। हिन्दी उपन्यास संरचना प्रेमचन्दोत्तर काल में विकास की चरम सीमा पर पहुँच गयी और ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक आदि विभिन्न रचना धाराएँ कथा साहित्य में आविर्भूत हुई। हिन्दी उपन्यास की परम्परा में शिल्पविधान और विचारधारा दोनों ही दृष्टियों से 'बाणभट्ट की आत्मकथा' अद्वितीय है। इस उपन्यास की सबसे महत्वपूर्ण रचनात्मक विशेषता इसमें निरूपित सांस्कृतिक चेतना तत्त्व ही है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के लेखक डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी हैं। भारतीय संस्कृति, इतिहास, काव्यशास्त्र और दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान द्विवेदी जी ने आलोच्य उपन्यास का कथापट अपने सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान और अनुभव से बुना है।

'संस्कृति' एक बहुत व्यापक शब्द है। जिसकी परिधि में धर्म, दर्शन, इतिहास, कला, काव्य, राजनीति, अर्थशास्त्र, सभ्यता आदि सभी का समावेश हो जाता है। जब हम किसी कथाकृति में सांस्कृतिक निरूपण की बात करते हैं तो हमारा लक्ष्य उन तत्त्वों और घटकों के निरूपण से होता है, जो संस्कृति के संयोजक हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' इतनी व्यापक कथायोजना वाली कृति नहीं है, जितनी व्यापकता उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि में है। वर्णनों की विविधता और प्रमुखता ने ही इस उपन्यास के कथा विधान का कार्य किया है। द्विवेदी जी ने सातवीं शताब्दी के हर्षकालीन वातावरण को इतने सशक्त एवं जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया है कि आत्मकथा के रूप में एक ऐतिहासिक सांस्कृतिक विवरण हमारे समक्ष साकार हो जाता है। स्वयं बाणभट्ट द्वारा रचित 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' में तत्कालीन युग की असंख्य छवियाँ अभिव्यंजित हुई हैं। इस उपन्यास के सांस्कृतिक परिवेश की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें ऐतिहासिक चित्रण होते हुए भी वह आज के जीवन और समाज की प्रेरणा का स्रोत है। अन्याय से संघर्ष, नारी के सतीत्व की संरक्षा मानव धर्म की महत्ता और धर्म के नाम पर रूढ़ियों और पाखण्ड़ों का विखण्डन आदि अनेक ऐसी बाते हैं जो आज के जीवन में भी प्रेरणा का कार्य करती हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा में सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति को निम्नांकित बिन्दुओं के अन्दर देखा जा सकता है:–

4.8.1 संस्कृति का स्वरूप और आलोच्य उपन्यास में सांस्कृतिक तथ्य

संस्कृति और समाज का परस्पर अविच्छिन्न सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं क्योंकि यदि समाज संस्कृति को जन्म देता है तो संस्कृति उसमें प्राणों की प्रतिष्ठा करती है। डा. द्विवेदी भारतीय संस्कृति के व्याख्याता हैं। अतः उन्होंने अपने उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भारतीय संस्कृति के एक विशेष युग (हर्ष–युग) का चित्रण प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में वर्णित सांस्कृतिक तत्त्वों को सम्यक् रूप से समझने हेतु अलग–अलग तत्त्वों पर अध्ययन करना समीचीन होगा।

4.8.2 सामाजिक तत्त्व

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में विशेषतः राज–समाज तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्ति समाज का चित्रण हुआ है। जनता की स्थिति का बोध सामूहिक हलचलों से होता था। निपुणिका तथा सुचरिता को हम जनता के बीच में से उठाया हुआ पाते हैं। महामाया, सुगतभद्र आदि योगी समाज को प्रस्तुत करते हैं, बाण निम्न समाज से लेकर उच्च समाज का अध्ययन करता हुआ प्रतीत होता है।

(क) वर्ग एवं जाति भेद–

उस समय सामाजिक अवस्था भी सुव्यवस्थित नहीं थी। **वर्ग व जाति भेद** का जोर अपने पूरे यौवन पर था जिनमें एक दूसरे के प्रति उपेक्षाभाव था। जन्म से ही जाति एवं वर्ग बनते थे, विद्वता एवं कर्म से नहीं। उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग से घृणा करते थे, किन्तु यदि कोई निम्न वर्ग किसी राजकृपा को प्राप्त कर लेता तो उसे समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान मिलने लगता था। निपुणिका के परिचय से सम्बद्ध निम्नलिखित पंक्तियाँ इसी बात का संकेत देती हैं:–

'निपुणिका आजकल उन जातियों में से एक सन्तान है, जो किसी समय अस्पृश्य समझी जाती थी, परन्तु जिनके पूर्व पुरूषों को सौभाग्यवश गुप्त सम्राटों की नौकरी मिल गई थी। नौकरी मिलने से उनकी सामाजिक मर्यादा कुछ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ऊपर उठ गई। वे आजकल अपने को पवित्र वैश्य वंश में गिनने लगी हैं और ब्राह्मण–क्षत्रियों में प्रचलित प्रथाओं का अनुकरण करने लगी हैं।

(ख) नारी की दयनीय स्थिति

उस समय **बाल विवाह का प्रचलन एवं विधवा विवाह का प्रचलन था।** सुचरिता का विवाह कच्ची उम्र में हुआ था। उसका पति मोक्ष के चक्कर में सन्यासी होकर निकल गया था। महामाया का भी वाग्दान बचपन में ही हो गया था। महाराज ग्रहवर्मा के धूर्त्त अपहरणकर्त्ताओं ने महामाया का छलपूर्वक विवाह मौखरिनरेश से कर दिया था किन्तु महामाया आज भी उसी पुरूष को अपना पति मानती थी जिसके साथ उसका वाग्दान हुआ था। इसी कारण महामाया ने सन्यासी पति को पाने हेतु सन्यास लिया था।

निपुणिका का विवाह 16 वर्ष की आयु में हो गया था तथा एक वर्ष बाद ही वह विधवा हो गई थी। उसका विवाह एक भड़भूजे से उठकर सेठ बनने वाले कान्दविक वैश्य से हुआ था। निपुणिका को अपने वैधव्य के दिन जीवन के संघर्षों में बिताने पड़े।

उस समय समाज में नारी की स्थिति बहुत शोचनीय और दयनीय थी। नारी को केवल काम–पुत्तलिका समझा जाता था। उनकी इच्छा के विरूद्ध उन्हें बलात् अन्तःपुर में अपहरण करके बन्दी बना लिया जाता था। विवाह से सम्बद्ध नारी भावनाओं का कहीं सम्मान नहीं था – यही कारण था कि भट्टिनी को छोटे राजकुल के अन्तःपुर में बन्दी होना पड़ा और महामाया को ग्रहवर्मा के साथ विवाह करना पड़ा। महाराजाधिराज की चामर धारिणियाँ और करेकवाहिनियाँ इसी प्रकार से अपहृता नारियाँ थीं। कुछ नारियाँ अपनी परिस्थितियों पर नियंत्रण न कर पाने के कारण गणिका बन जाती थीं। गणिकाओं का समाज में आदर होता था। उनके आयोजनों में लोग बहुत रूचि लेते थे। चारुस्मिता का जीवन इसका अच्छा उदाहरण है।

(ग) ब्राह्मणों का सम्मानित रूप

उस समय ब्राह्मण वर्ग का समाज में सर्वोच्च स्थान था। वे अध्ययन–अध्यापन किया करते थे। उनके गृह की शुक–सारिका तक विद्यार्थियों को गलत मंत्रोच्चारित करते देख टोक दिया करती थीं। उनका कार्य हवनादि करना तथा तदुपरान्त शास्त्रों का मनन करना था। **बाण के पिता चित्रभानु के विषय** में कहा गया है– **'यदि मैं कहूँ कि सरस्वती स्वयं आकर अपने पाणि–पल्लवों से मेरे पितृदेव के होमकालीन श्रम सीकरों को पोंछा करती थीं तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि उस काल से लेकर सूर्योदय के दो मुहूर्त्त तक निरन्तर हवन करने के बाद जब मेरे पिता पसीने से तर होकर उठते थे, तो सीधे अध्यापन के कुशासन पर जा बैठते थे। यही उनका विश्राम था।'**

ब्राह्मण शास्त्रार्थ के आधार पर ही धर्म की व्याख्या एवं व्यवस्था करते थे। शास्त्रार्थ में विजयी धर्म को ही सम्राट स्वीकार करता था बौद्ध वसुभूति की हार उड्डुपति से हुई जो वैष्णव थे। अतः सम्राट ने बौद्ध धर्म छोड़कर वैष्णव धर्म अपना लिया।

कर्मफल तथा राशिफल बनाना भी पंडितों का कार्य था। इसी समय **'होराशास्त्र'** और **'प्रश्नशास्त्र'** नामक ज्योतिष विद्या का भी प्रचार हुआ। फलित ज्योतिष में तो लोगों की विशेष आस्था थी। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण पुत्तलियाँ नचाते थे, नट बनते थे, नाटक मण्डली को भी संगठित करते थे, पुराण कथा कहते थे तथा राज्याश्रय में भी रहते थे। बाणभट्ट को हर्षदेव ने अपनी सभा का राजपण्डित का पद दिया था। धावक कवि सम्मानित पद पर राजदरबार में था। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उस समय ब्राह्मण वर्ग विभिन्न क्रिया–कलाप करता था। मुख्यतः धर्म का व्याख्याता तथा व्यवस्थापक था; और इसीलिए समाज में उसका सर्वोच्च स्थान था।

(घ) उत्सवों का बाहुल्य

समाज में नित नये उत्सव मनाये जाते थे। उत्सव धूम–धाम तथा उत्साह से मनाये जाते थे। कुमार कृष्णवर्धन के पुत्र–जन्मोत्सव को बड़े विस्तृत पैमाने पर मनाया गया। होली का उत्सव सम्पूर्ण प्रजा बड़े चाव से मनाती थी। इस समय नारियाँ गीत गाती और मदिरापान किया करती थीं। समय–समय पर गणिकाओं के आयोजन यद्यपि राजनैतिक चालों से पूर्ण होते थे; किन्तु फिर भी जनता इन आयोजनों के लिए उतावली रहा करती थी। नाटकों का भी समय–समय पर आयोजन हुआ करता था। प्रस्तुत उपन्यास के आधार पर मदनोत्सव के वर्णन का एक दृश्य यहाँ प्रस्तुत लिया जा रहा है। **यथा– 'आज फाल्गुन की पूर्णिमा थी, आज कान्य–कुब्ज के प्रमत्त मदनोत्सव का दिन था। मैं भूल ही गया था कि आज नगर में धँसना कितने साहस का काम है। सारा नगर पुरवासियों की करतल–ध्वनि, मधु–संगीत और मृदंग के घोष से गूँज उठा था। मदमत्त नगर विलासियों के सामने जो भी पुरूष पड़ जाता उस पर ऋृंगक (पिचकारी) के रंगीन जल की बौछार हो जाती थी।**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बड़े–बड़े चौराहे मृदंग के गंभीर घोष से और चर्चरी– ध्वनि से शब्दायमान हो रहे थे। ढ़ेर के ढ़ेर सुगंधित अबीर दसों दिशाओं में ऐसा उड़ा था कि दिशाएँ रंगीन हो उठीं और नगरी के राजपथ केसर–मिश्रित पिष्ठात्मक (अबीर) से इस प्रकार भर गये थे, जैसे उन पर ऊषा की छाया पड़ी हुई हो। पौद जनों के शरीर पर शोभायमान अलंकार और सिर पर धारण किए हुए अशोक के लाल फूल इस लाल–पीले सौन्दर्य की और भी बढ़ा रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, नगरी के सभी लोग सुनहरे रंग में डुबो दिये गये हों।'

(ङ.) भजनकीर्त्तन की लोकप्रियता

जन समूह में भजनकीर्त्तन लोकप्रिय था। टोलियाँ बनाकर जन–साधारण नाचते–गाते घूमते थे। ग्रामदेवता की पूजा होती थी। बलि की प्रथा भी प्रचलित थी। राजा की पूजा का भी प्रचलन था। राजा महाराजा अपने दिन बड़े ठाट–बाट से व्यतीत करते थे। राज–सभा की वैभव–सम्पन्नता से स्पष्ट है कि राजा का ध्यान युद्धों की अपेक्षा अन्य कार्यों में विशेष रहता था। हर्षदेव महाराजाधिराज होकर भी इतना समय अपने व्यस्त कार्यक्रम से निकाल पाते हैं कि 'रत्नावली' नाटिका लिख लें। प्रजा और राजा दोनों ही राग–रंगों में मस्त थे।

(च) वेशभूषा–

समाज में अपने–अपने स्तर के अनुसार लोग वस्त धारण करते थे। राजा अपनी सभा में अमृत के समान स्वच्छ वर्ण के दो दुकूल धारण करता था। वक्षःस्थल पर चंदन का लेप करता था। गजमुक्ताओं से बना हार, भुज मूलों में इन्द्रनील मणि द्वारा खचित केयूर और कानों में उत्पल आदि आभूषण पहनता था। **ब्राह्मण** प्रायः शुक्ल धौत उत्तरीय धारण किया करते थे। शुक्ल अंगराग एवं शुक्ल पुष्पों की माला उनके प्रिय श्रृंगार थे। **कविजन** अपने अंगों को विशेष–विशेष पुष्पों से सुसज्जित करने में रूचि लेते थें। **नवयुवतियाँ** उत्सवों के अवसरों पर कानों में नवकर्णिकार के पुष्प, नील अलकों में अशोक स्तबक, कटि में स्वर्ण मेखला, मध्यप्रदेश पर कुरण्टक माला, नीले वासंती चित्रक और कौसुम्य वस्त्रों को धारण करती थीं। **गणिकाएँ** अलक्तम का बहुलता से प्रयोग करती थी। चीनांशुक धारण करती थीं। नूपुर रत्नावली कानों में कुण्डल और लाल मणि का प्रयोग उन्हें विशेष प्रिय था। **साधिकाएँ** पीले कौसुम्य वस्त्रों को धारण करती थीं। **बौद्ध भिक्षु** पीले रंग का चीवर पहनते थे। **योगी** पीले वस्त्र धारण करते थे और कानों में रूद्राक्ष का भी प्रयोग करते थे।

(छ) भाषा

भाषा में सभी संस्कृति मर्यादा का पालन करते थे। पुरूष स्त्रियों के लिए 'देवी', 'शुभे' आदि शब्दों का प्रयोग करते थे। स्त्री पुरुषों के लिए 'आर्य' शब्द का प्रयोग करती थीं। भाषा में भावानुकूलता गुणों से परिपूर्णता, अलंकारयुक्तता तथा प्रवाहमयता के गुण विधमान थे। जहाँ एक तरफ भाषा में संस्कृतनिष्ठता मिलती है वहीं दूसरी तरफ सरलता भी है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हर्ष के युग में सामाजिक व्यवस्था पर्याप्त व्यवस्थित थी। राजा और प्रजा दोनों की ओर से अनेक उत्सवों का आयोजन होता था। समाज वर्ग–व्यवस्था के अनुकूल चलता था और सब अपने–अपने अनुसार वस्त्रों, अलंकारों का प्रयोग करते थे। जन समूह पूर्णतः प्रसन्न था। मस्त था।

4.8.3 धार्मिक परम्पराएँ

हर्षकाल में अनेक धर्मों का प्रचलन था। राजा का धार्मिक दृष्टि से किसी पर भी कोई नियंत्रण नहीं था जनता को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता थी। अपनी–अपनी रूचि और विश्वास के कारण जिसको जिस सम्प्रदाय में आस्था होती थी; वह स्वतंत्रतापूर्वक उसमें दीक्षित हो सकता था। अतः हम कह सकते हैं कि उस समय विभिन्न धर्म एक साथ पनप रहे थे। समय–समय पर शास्त्रार्थ होने से धार्मिक संघर्ष का आभास भी मिलता है। सम्राट् शास्त्रार्थ में विजयी धर्म को स्वीकार किया करता था। जैसे सम्राट् स्वयं बौद्ध था, परन्तु बौद्ध भिक्षु वसुभूमि का उडुपति से शास्त्रार्थ में हार जाने का परिणाम यह हुआ कि सम्राट ने नाटिका 'रत्नावली' में बुद्ध के स्थान पर शिव–पार्वती की स्तुति की। हर्षकालीन समाज में निम्नलिखित सम्प्रदाय धर्म पर पनप रहे थे–

बौद्ध सम्प्रदाय

इस काल के सम्प्रदायों में बौद्ध–सम्प्रदाय और अवधूत–सम्प्रदाय प्रमुख थे। बौद्ध–सम्प्रदाय के अनुयायी बौद्ध विहारों में रहते थे। पीले रंग का चीवर धारण करते थे। बौद्ध विहारों में शिक्षा का समुचित प्रबन्ध था। आचार्य मनोयोग से अपने शिष्यों को विद्या–दान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करते थे और उनकी शंकाओं का निराकरण करते थे। आचार्यपाद सुगतभद्र मनन पर विशेष बल देते थे। समय–समय पर सभाओं का आयोजन भी किया जाता था, जिसमें प्रजा तथा अन्य विशेष लोगों के अतिरिक्त महाराजाधिराज स्वयं भी शामिल होते थे। इस समय विविध शंकाओं का समाधान आचार्यपाद द्वारा किया जाता था।

अवधूत–सम्प्रदाय (शाक्त धर्म)

बौद्ध सम्प्रदाय के बाद मुख्य सम्प्रदाय अवधूत सम्प्रदाय था। निम्न जाति में इसका अत्यधिक प्रचार था। उच्च जाति पर भी इसका निम्न जाति की ही तरह विशेष प्रभाव था। अवधूत सम्प्रदाय के अनुयायी एक स्थान पर न ठहरकर प्रायः भ्रमण किया करते थे। 'चमत्कार' इनके सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता थी। इसी चमत्कारिक प्रयोगों से जनता को चमकृत करके अपने सम्प्रदाय में दीक्षित कर लिया करते थे। स्त्रियाँ भी इस सम्प्रदाय में स्वतंत्र रूप से दीक्षित होती थीं। ये शिवोपासक थे। हर समय त्रिशूल धारण किये रहते थे। महामाया भी इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत दीक्षित हुई थीं। महामाया भी त्रिशूल धारिणी थी यह बात उनके इस कथन से प्रमाणित हो जाती है– '**आर्य समासदों, यदि मैं असत्य कहती हूँ, तो मेरे इस त्रिशूल से मेरा खण्ड–खण्ड कर दो।**' ये लोग मदिरापान प्रचुर मात्रा में करते थे। धार्मिक क्षेत्र में इनका स्थान मुख्य था। जनता इनसे भयभीत भी थी क्योंकि यह अनिष्ट भी कर सकते थे।

सामाजिक अस्त–व्यस्तता की तरह धार्मिक क्षेत्रों में भी अनर्गल बातें प्रचलित थीं। लम्पट साधुओं का भी अभाव न था। चण्डी मन्दिर का पुजारी **लोभी, स्त्रीगामी, ढोंगी** तथा अन्य विषयों में लिप्त था। **बलि** भी इन दिनों दी जाती थी। यदि देवी प्रसन्न हो जाती तो अघोर बाणभट्ट को बलि चढ़ा ही देता। **सम्मोहन** विधि का प्रयोग भी ये लोग करते थे। वसुभूति बौद्ध पाखण्डी था। **ज्योतिष** विद्या पर लोगों का विश्वास खूब था। जनता पुराण–कथा सुनने को बहुत लालायित रहती है। '**होरोशास्त्र**' तथा '**फलितशास्त्र**' का खूब प्रचार था। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जनता में अन्धविश्वास था।

सुचरिता बाल वासुदेव की पूजा करती थी। भट्टिनी की महावराह में असीम श्रद्धा थी। पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों की महावराह पर अन्धश्रद्धा थी। वे घर–घर में अपने–अपने देवता की प्रतिमा रखती थीं।

धर्म तथा राजनीति का एक प्रकार गठबन्धन सा था। धार्मिक लोग राजनीतिक कार्यों में सक्रिय भाग लिया करते थे। यही कारण था कि इन धार्मिक व्यक्तियों का सम्बन्ध राजकुल से होता था। सुगतभद्र कुमार कृष्णवर्द्धन के गुरू थे, वसुभूति का सम्राट पर प्रभाव था। विरतिवज्र और सुचरिता को धर्म परिवर्तन के सिलसिले में कैद किया था, यद्यपि यह सत्य प्रच्छन्न था। उनके बन्दी बनाने का कारण कुछ और ही बना लिया गया था। भर्वुपाद खुले आम मलेच्छों के भावी आक्रमण की ओर जनता तथा राजा दोनों को पत्र द्वारा सूचित करता है। महामाया पूर्णरूपेण सक्रिय राजनीति में भाग लेती है। वह जनता को राजा के प्रति विद्रोह करने को उकसाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि धार्मिक स्वतंत्रता की दृष्टि से उस समय जनता को पूरी छूट थी उसको अपने स्वतंत्र विचार प्रकाशन की पूर्ण स्वतंत्रता थी। इस समय में जनता पर राज–सत्ता का आतंक नहीं के बराबर था। फिर भी राज्याश्रित धर्म को प्रचार की अच्छी सुविधाएँ नजर आती हैं।

4.8.4 राजनीतिक व्यवस्था

राजनीतिक दृष्टि से हर्षयुग अस्त–व्यस्तता का युग था। प्रजा की महाराजा में आस्था कम हो गई थी। और विद्रोह की एक पृष्ठभूमि अन्दर ही अन्दर पनप रही थी। हर्ष के अनेक सन्त मन ही मन चिढ़े हुए थे। लोरिकदेव इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। महामाया के भाषण से इस समय की राजनीतिक दुर्व्यवस्था का प्रत्यक्ष आभास मिलता है–

"**अमृत के पुत्रों का बड़ा दुर्घट काल उपस्थित है। राजाओं, राजपुत्रों और देवपुत्रों की आशा पर निश्चेष्ट बने रहने का निश्चित परिणाम परामव है। प्रजा में मृत्यु का भय छा गया है, यह अशुभ लक्षण है।**" एक अन्य स्थान पर महामाया कहती है कि "**अमृत के पुत्रों! मैं भविष्य देख रही हूँ। राजा महाराजा और सामन्त स्वार्थ के गुलाम बने जा रहे हैं। प्रजा भीरू और कायर होती जा रही है। धर्माचरण में इसी लिए व्याघात उत्पन्न हुआ है कि राजा अन्धा है, प्रजा अन्धी है और विद्वान् अन्धे हैं।**" राजाओं और सामन्तों के पतन का एक कारण यह भी था कि उनके अन्तःपुर अपहृत की हुई कन्याओं से पूर्ण थे। राजपुत्रों की वतनभोगी सेना मलेच्छावाहिनी का कर सामना करने में असमर्थ थी। कुल मिलाकर यह कहा जा सता है कि राजनीतिक स्थिति अराजक थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.8.5 आर्थिक स्थित:–

प्रस्तुत उपन्यास के कथ्य का सम्बन्ध नगर जीवन से है। नगरों की आर्थिक स्थिति का चित्रण देखने से ज्ञात होता है कि प्रजा सम्पन्न और समृद्ध थी। रोजी रोटी की कोई समस्या लोगों के सामने नहीं थी। उस समय सिक्के का चलन न होना भी बतलाता है कि लोग सम्पन्न थे। समाज में भिखारी नहीं थे। आमोद–प्रमोद और उत्सवों में लोगों का खुले हाथों खर्च करना भी उनकी सम्पन्नता का परिचायक है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के लेखक ने ग्रामीण जीवन का कहीं भी चित्रण नहीं किया है। अतः यह कहना बहुत कठिन है कि ग्राम्यांचलों में आर्थिक स्थिति कैसी थी?

4.8.6 सांस्कृतिक चेतना (ललित कलाएँ):–

आत्मकथा की सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन करने के लिए हमें तत्कालीन उत्सवों, समारोहों पर दृष्टिपात करना होगा। हर्षकालीन समाज में उत्सवों की धूमधाम थी। उपन्यासकार ने जन्मोत्सव, मदनोत्सव, होलिकोत्सव, आदि का विस्तृत उल्लेख किया है। जनता में नृत्य, संगीत और नाटकों के प्रति विशेष अभिरूचि थी। सरस्वती मन्दिर में गणिका चारुस्मिता के नृत्य का भव्य वर्णन डा. द्विवेदी ने किया है। इनके अतिरिक्त ललित कलाओं, कविता, शिल्प आदि के प्रति भी लोगों की विशेष रूचि थी। राज दरबार और अन्य सामाजिक केन्द्रों में आए दिन अनेकानेक सांस्कृतिक कार्यक्रम होते रहते थे जिनमें राजा–प्रजा दोनों ही उल्लासपूर्वक भाग लिया करते थे।

4.9 सारांश

इस प्रकार 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में निरूपित सामाजिक तत्त्वों, धार्मिक परम्पराओं, राजनीतिक अवस्था, आर्थिक स्थिति और सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन अनुशीलन करने के पश्चात् हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह सांस्कृतिक चेतना से परिपूर्ण सफल कथाकृति है। **डा. द्विवेदी** प्राचीन भारतीय साहित्य और संस्कृती के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने सामान्यतः अपनी प्रत्येक कथाकृति में ही सांस्कृतिक तत्त्वों का विशेष रूप से समाहार किया है। '**बाणभट्ट की आत्मकथा**' के अतिरिक्त '**चारु चन्द्रलेख**', '**पुनर्नवा**', '**अनामदास का पोथा**' आदि किसी भी उपन्यास को देखें, सभी में भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों, जीवन मूल्यों और परम्पराओं का विशद चित्रण मिलता है। तुलनात्मक दृष्टि से 'आत्मकथा' सांस्कृतिक निरूपण के बिन्दु पर सभी कथाकृतियों में सर्वोपरि है। इसे मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का दर्पण कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

4.10 अभ्यास प्रश्नावली

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. बाण लिखित नाटक का नाम बताइए।
2. निपुणिका ने भट्टिनी के छिपने की व्यवस्था कहां देखी।
3. भट्टिनी किसकी अराधना करती है?
4. बाणभट्ट कालीन राजा का क्या नाम है?
5. बाण युग में किन–किन सम्प्रदाओं का प्रभाव था?

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न

1. बाणभट्ट की आत्मकथा की भाषा शैली सम्बन्धी विशेषताएं स्पष्ट कीजिए।
2. "बाणभट्ट की आत्मकथा" प्रेमव्यंजना की दृष्टि से मार्मिल कृति है।" कथन की समीक्षा कीजिए।
3. "भट्टिनी द्विवेदी जी की अविस्मरणी पात्र रचना है।" कथन की प्रमाण पुरस्कार व्याख्या कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संवर्ग-2 : निबन्ध

इकाई-5 : निबन्ध का उद्‌भव एवं विकास

संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 निबन्ध शब्द की व्युत्पति
    5.2.1 निबन्ध की पश्चिमी परिभाषाएँ
    5.2.2 निबन्ध विषयक हिन्दी विद्वानों के मत
    5.2.3 निबन्ध की विशेषताएँ
5.3 स्वयं अध्ययन के प्रश्न
5.4 निबन्ध के तत्त्व
    5.4.1 वैयक्तिकता
    5.4.2 स्वच्छंदता
    5.4.3 मौलिकता
    5.4.4 वैचारिकता
    5.4.5 संक्षिप्तता
5.5 निबन्ध का स्वरूप
5.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्न
5.7 निबन्ध के प्रकार और हिन्दी निबन्ध की विकास-यात्रा
    5.7.1 भावात्मक
    5.7.2 विचारात्मक
    5.7.3 वर्णनात्मक
    5.7.4 व्यंग्यात्मक-हास्यात्मक
    5.7.5 आत्मपरक (ललित)
5.8 हिन्दी निबंध की विकास-यात्रा
    5.8.1 प्रथम युग-भारतेन्दु युग
    5.8.2 द्वितीय युग-द्विवेदी युग
    5.8.3 तृतीय युग-शुक्ल युग
    5.8.4 चतुर्थ युग-स्वातंत्र्योत्तर युग
5.9 अभ्यास प्रश्न
5.10 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

5.0 प्रस्तावना

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबंध को गद्य की कसौटी मानते थे। निबंध में रचनाकार का व्यक्तित्व पूर्णरूपेण दर्पण की तरह प्रतिबिंबित होता है। लेखक के विचार, भाव, भाषा, शैली के रूप में सम्पूर्ण व्यक्तित्व पाठकों के सामने प्रस्तुत होता है।

निबंध मुख्यत: विचार प्रधान रचना है, जो केवल गद्य में ही लिखी जाती है। निबंधकार अपने पाठकों से सीधे आत्मीय ढ़ंग से बात करता है। बातचीत का केन्द्र-बिन्दु जो बातचीत का बहाना भर है, कोई एक विषय होता है। निबंध विधा का जन्म पत्रकारिता से हुआ है। निबंध ही राष्ट्रीय उत्थान और जनजागरण का साधन है। निबंध का भारत में आने का कारण छापाखाने की खोज, अंग्रेजों का आगमन और समाचार-पत्रों का प्रकाशन रहा है। फ्रेंच साहित्यकार न्यायाधीश माईकेल मोन्तेन निबंध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के जनक हैं। ये निबंध उनके भाषण थे, जो 'एस्साई' शीर्षक से प्रकाशित हुए। इस कारण फ्रांसिसी शब्द eassias से अंग्रेजी में essay शब्द बना।

5.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद निबंध की परिभाषाएँ जान सकेंगे। इससे निबंध की विशेषताओं से परिचय प्राप्त करेंगे। निबंध के स्वरूप को समझाते हुए उसके तत्त्व से परिचित होंगे। आप इस अध्ययन के बाद निबंधों के प्रकार जान पायेंगे।

इस इकाइ के निबंधों का अध्ययन करने के बाद विभिन्न निबंधकारों की शैली से परिचय प्राप्त कर सकेंगे। स्वतंत्रता के बाद विकसित ललित निबंध का परिचय इस इकाई के द्वारा करेंगे।

5.2 निबन्ध की व्युत्पत्ति

निबंध शब्द की व्युत्पत्ति नि+बंध से मानी जाती है, जिसका अर्थ है एकसूत्र में बांधना।

5.2.1 निबन्ध की पश्चिमी परिभाषाएँ

मोन्तेन का मत है कि "मैं ही अपने निबंधों का विषय होता हूँ। ये निबंध अपनी आत्मा को दूसरे तक पहुंचाने का मात्र प्रयत्न है।"

अंग्रेजी के पहले निबंधकार बेकन के मत से, "निबंध कुछ इने-गिने पृष्ठों में हो, उसमें विचारों का अनावश्यक विस्तार न हो, सारगर्भित और संक्षिप्तता गुण हो।"

लुकास के मत से, "निबंध सर्वोत्तम वार्तालाप का दर्पण है। प्रिस्टले के मत से निबंधकार अपने आपको किसी विषय से प्रस्तुत करता है। सच्चा निबंध सुदृढ़ संलाप या अंतरंग वार्ता के निकट होता है।

अंग्रेजी परिभाषाओं के अनुसार निबंध आत्मवृत्तप्रधान, व्यक्ति व्यंजक, विचार और भाव से संपृक्त रचना है।

5.2.3 निबंध विषयक हिन्दी विद्वानों के मत

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन हमने प्रारंभ में ही लिया है। उनके मत से गद्य कवियों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है।

बाबू गुलाबराय के मत से, "निबंध वह गद्य रचना है, जिसमें सीमित आकार के भीतर किसी विषय का प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता तथा संगति के साथ किया गया हो।"

डॉ. भगीरथ मिश्र के मत से, "निबंध किसी भी विषय पर स्वच्छंदता पूर्वक एक विषय सौष्ठव संहिति, सजीवता और वैयक्तिकता भावों, विचारों और अनुभवों को व्यक्त करता है।"

हिन्दी साहित्य के बृहत इतिहास के अनुसार "निबंध एक ऐसी सीमित गद्यरचना है, जिसमें कार्यकारण श्रृंखला के साथ विचार निबंध होते हैं और उन विचारों में यक्तित्व की स्पष्ट छाप दिखायी देती है।"

कुबेरनाथ राय के मतानुसार "विषय के आस-पास शिव के सांड की भांति मुक्त चरण और विचरण ललित निबन्ध है।"

डॉ. विद्यानिवास मिश्र के मत से, "निबंध में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के लिए विषय अत्यावश्यक है। लेखक के निजी अनुभव ही समष्टिचेतना के अनुभव बनकर प्रस्तुत होते हैं।"

विवेकीराय के मत से सांस्कृतिक दृष्टि सम्पन्न गंभीर विचार केन्द्रियता के साथ ललित निबंध में काव्यात्मकता, कल्पना की उडान, रमणीयता, व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया, लेखक 'मैं' का गहरा स्पर्श, मनोविनोदात्मक छुअन किसी कहानी-सी मुद्रा विद्यमान होती है।

5.2.4 निबंध की विशेषताएँ

(1) निबंध निज का प्रकाशन है। अत: निबंध में लेखक का व्यक्तित्व ही प्रधान होता है।

(2) भाव और विचार का समवाय निबंध होता है।

(3) निबंध का आकार छोटा होता है।

(4) निबंधकार अपने में कवि, दार्शनिक, इतिहासकार, पुरातत्त्ववेता, राजनीतिज्ञ सभी को समाहित कर लेता है।

(5) निबंध, प्रबंध, लेख-ये तीन अलग-अलग विधाएँ हैं-निबंध लघु आकार में सामासिक शैली में लिखा जाता है। प्रबंध में सैद्धांतिक विचार और विस्तार होता है तो लेख तात्कालिक प्रतिक्रिया मात्र होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(6) निबंध रोचक और सजीव होता है।

5.3 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

एक वाक्य मे उत्तर लिखिए-

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबंध को क्या मानते हैं?
2. निबंध शब्द की व्युत्पत्ति दीजिए।
3. निबंध शब्द का अंग्रेजी रूप क्या है?
4. निबंध का आकार कैसा होता है?
5. निबंध का जन्म किससे हुआ?

5.4 निबंध के तत्त्व

निबंध के प्रमुख तत्त्व उपरोक्त लक्षणों से निम्नानुसार बताए जा सकते हैं-

5.4.1 वैयक्तिकता

वैयक्तिकता को हम व्यक्ति-सापेक्षता भी कह सकते हैं। माइकेल मौंतेन के शब्दों में-"मैं ही अपने निबंधों का विषय हूँ, क्योंकि मुझे अत्यन्त जानने वाला व्यक्ति मैं हूँ। निबंध में निबंधकार अपने पाठकों से रू-ब-रू होता है जबकि कथा-साहित्य में लेखक का व्यक्तित्व, कथानक, पात्र, घटना, कथोपकथन के माध्यम से व्यंजित होता है। वैयक्तिकता के कारण ही वह विषय संबंधी अपने ज्ञान अथवा पांडित्य की अपेक्षा अपने मनोभाव, भंगिमा और अनुभूति को पाठकों तक संप्रेषित करने में प्रयत्नशील रहता है। निबंधकार निबंध के माध्यम से अपने पाठकों तक स्वयं को संप्रेषित करता है।

व्यक्तित्व के दो पहलू होते हैं-एक जन्मजात, दूसरा अर्जित। जन्मजात व्यक्तित्व को प्रकृत व्यक्तित्व भी कह सकते हैं तो दूसरे प्रकार का व्यक्तित्व अध्ययन, मनन, चिंतन के द्वारा अर्जित होता है। निबंधकार अपने समकालीन युग और परिवेश को अपनी खुली आँखों से देख-समझकर प्रस्तुत करता है। अपने अनुभव और चिंतन के बल पर सामान्य से लगने वाले विषय-वस्तु या घटना में गहन अर्थ खोज लेता है। निबंध की श्रेष्ठता न्बिंधकार के व्यक्तित्व पर ही निर्भर करती हैं उसका व्यक्तित्व निबंध में शैली का रूप धारण कर लेता है।

5.4.2 स्वच्छंदता

निबंध, साहित्य की सर्वाधिक स्वच्छंद विधा है। निबंध की तुलना केवल वाक्, वाग्मिता (भाषण) से की जा सकती है। निबंध मनुष्य के अर्थवान भाषिक उच्चारण की तरह होता है। अर्थात् मनुष्य भाषा उच्चारण में जितना स्वतंत्र, स्वाभाविक और बेलाग होता है, उतना ही निबंध में भी किसी विषय को लेकर हो सकता है।

विषय का तो कोई बंधन निबंधकार के लिए है ही नहीं। राई से लेकर पहाड़ तक, चींटी से लेकर हाथी तक, आकाश के तारों से लेकर मिट्टी के कण तक, छोटे से क्षुद्र जीव से लेकर देवताओं तक किसी भी विषय को वह अपने निबंध का आधार बना सकता है। निबंध में विषय प्रतिपादन का महत्त्व न होकर भाव-सम्प्रेषण का महत्त्व होता है।

भाव के अनुकूल विषय का चयन और आंतरिक अन्विति के आधार पर उस विषय का पल्लवन महत्त्वपूर्ण होता है अर्थात् निबंधकार स्वच्छंद होने के बावजूद संयम की सीमाओं में बंधा होता है।

निबंधकार की स्वच्छंदता से निबंध में जीवन्तता और रोचकता का आगमन होता है। रोचकता के कारण विदग्धता और रसवत्ता आती है।

5.4.3 मौलिकता

विषय कोई भी हो, पक्ष कोई सा भी हो, कहने की दिशा भी कोई भी हो, निबंध की सफलता निबंधकार द्वारा प्रतिपादित मौलिकता में होती है। अनुभव की मौलिकता और अभिव्यक्ति की नूतनता ही निबंध की सफलता है।

5.4.4 वैचारिकता

निबंध को स्वच्छंदता की सीमा में रखना और उसे नियोजित रूप देना बुद्धि द्वारा सम्पन्न होता है। दूसरे, निबंध मन की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मुक्त भटकन या मनोरंजन का साधन नहीं है।

वह जन-जागरण का महत्त्वपूर्ण औजार है। निबंध विचारविहीन कभी नहीं होता। मन की एकाग्रता ही निबंध सृजन का आधार है, जिससे निबंध अपने आप चिंतन प्रधान, तार्किक हो जाता है।

5.4.5 संक्षिप्तता

निबंध, महाकाव्य अथवा उपन्यास की तरह दीर्घाकार नहीं होता। निबंध किसी एक भावस्थिति या एक मूड के आस-पास रचित रोचक रचना होती है। इसी कारण हडसन ने कहा था-''बहुत अधिक कहने का आग्रह निबंध की एक कसौटी है। निबंध एक ही बैठक में समाप्त होने वाली पठनीय रचना होती है। इसलिए निबंध आकार से मर्यादित, अनावश्यक सूचनाओं से मुक्त, अवांछित विस्तार से रहित होता है।'' संक्षिप्तता के अभाव में वर्ण्य विषय को समझना पाठक के लिए एक दुष्कर कार्य हो जाता है।

5.5 निबंध का स्वरूप

उपरोक्त परिभाषाओं, तत्त्वों के आधार पर श्रेष्ठ निबंध का स्वरूप इस तरह प्रकट होता है-

निबंध का आकार लघु होता है। एक बैठक में समाप्त होने वाला पठनीय तथा बोधगम्य होता है। निबंध का केन्द्र कोई भव या विचार होता है, जो रोचक, लालित्यपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त होता है। निबंध में निर्बंधता, स्वच्छंदता होने पर भी सूत्रबद्धता और सामंजस्य होता है। वैयक्तिकता, वैचारिकता, निजता निबंध के मुख्य आधार हैं।

5.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए-

1. निबन्ध के प्रमुख तत्त्व कौन-से हैं?
2. निबन्ध में स्वच्छंदता से क्या तात्पर्य है?
3. निबन्ध में संक्षिप्तता क्यों आवश्यक है?
4. निबन्ध का स्वरूप लिखिए।

5.7 निबंध के प्रकार

निबंध के प्रगुख प्रकार इरा प्रकार बताये जा राकते हैं

5.7.1 भावात्मक

भावात्मक निबंध को कल्पनाप्रधान निबंध भी कहा जाता है। कारण इन निबंधों में कल्पना की अधिकता रहती है। किसी वस्तु या घटना से संबंधित जो भाव लेखक के मन में उठते हैं, वे निबंध में प्रवाही भाषा में व्यक्त होते हैं। भावातिशयता के कारण ही निबंधों में कविता जैसी रसात्मकता का समावेश होता है। रचनाकार अपनी प्रामाणिक भावाभिव्यक्ति से पाठकों के साथ आत्मीयता का संबंध स्थापित करना चाहता है। इन भावात्मक निबंधों की भाषा गीत के समान कभी लयबद्ध तो कभी निजी बातचीत के समान अत्यंत आत्मीय रहती है। आत्मीयता ही इन निबंधों की मुख्य विशेषता कही जा सकती है।

5.7.2 विचारात्मक

वैचारिक निबंधों का प्राणाधार विचार होता है। इनमें विषयवस्तु को प्रमुखता मिलती है। सुसूत्रता, चिंतनपरकता, बौद्धिकता आदि तत्त्व इन निबंधों में पाए जाते हैं। इन निबंधों में मार्मिक विवेचना, तर्कप्रणाली, विचारों का खंडन-मंडनात्मक प्रतिपादन और बौद्धिकता गांभीर्य अत्यधिक होने से लेखक का गुरु गंभीर व्यक्तित्व इन निबंधों में झलकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध इस कोटि के है। वैचारिक निबंधों के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं ''शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरम उत्कर्ष वही कहा जा सकता है, जहाँ एक-एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबाकर कसे गए हो और एक-एक वाक्य किसी संबद्ध विचार-खंड को लिये हो।''

5.7.3 वर्णनात्मक

वर्णनात्मक निबंधों में प्रमुखतया प्राकृतिक स्थान, दृश्य, नगर, गाँव, पर्व-त्यौहार आदि का तथ्यात्मक, रोचक वर्णन होता है। इन निबंधों का उद्देश्य वर्ग विषय का केवल परिचय देना नहीं होता अपितु लेखक से आत्मीयतापूर्ण साक्षात्कार कराना होता है। ऐसे निबंधों की भाषा सरल, प्रवाही एवं बिंबप्रधान होती है।

5.7.4 व्यंग्यात्मक-हास्यात्मक निबंध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परिवेश में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं और कटुताओं पर विदग्ध शैली में प्रहार करने वाले निबंध व्यंग्यात्मक निबंध कहलाते हैं। तीक्ष्ण प्रहारात्मकता, बैलोस आक्रामकता, प्रहारात्मक भाषा इन निबंधों की विशेषता है। परिवर्तन कामी प्रतिबद्धता व्यंग्य निबंधों का लक्ष्य होता है।

इसके विपरीत रोचकता, आकर्षकता, लालित्यधर्मिता, हास्यात्मक निबंधों का वैशिष्ट्य है। गुदगुदाना, मनोरंजन करना, आनंद प्रदान करना हास्य निबंधों का लक्ष्य है।

5.7.5 आत्मरक या ललित निबंध

इस प्रकार के निबंधों में रागात्मकता होती है। किसी भी साधारण विषय के द्वारा लेखक पाठक के साथ सीधा संबंध स्थापित कर उसकी जिज्ञासा को जगाता है। इन निबंधों में कल्पना की प्रधानता, अनुभूति की गहनता और तीव्रता होती है। इसकी भाषा की अलगता के कारण ये निबंध पाठक को बाँध लेते हैं। कभी तो ये गद्यकाव्य से लगते हैं। ललित निबंध में अपनी विशिष्ट सौन्दर्यदृष्टि का परिचय लेखक देता है।

5.8 हिन्दी निबंध की विकास यात्रा

5.8.1 प्रथम युग-भारतेन्दु युग (1863-1900)

राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आंदोलन, देशप्रेम की भावना, नवीन वैचारिक मानसिकता का निर्माण, गद्य की नवीन विधाओं का आगमन, मुद्रणकला का प्रसार, समाचार-पत्रों का प्रकाशन आदि की सम्मिलित उपज निबंध विधा है।

कविवचन सुधा, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, आनंद कादंबिनी, हिन्दुस्तान आदि पत्र-पत्रिकाओं ने हिन्दी निबंध विधा का सूत्रपात किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालमुकुंद गुप्त, अंबिकादत्त व्यास ने निबंध विधा की धारा को प्रवाहित किया। इस युग को भारतेन्दु युग (1863-1900) की संज्ञा प्राप्त है।

इस युग के निबंधों में उन्मुक्तता, स्वच्छंदता तथा भाषिक रूपों में अधिक विचलन दिखाई देता है। जीवन-चेतना, समाज-सुधार, राष्ट्र प्रेम, अतीत गौरव, विदेशी शासन के खिलाफ आक्रोश का भावों का निबंधों में सजीव अंकन हुआ है।

5.8.2 द्वितीय युग-द्विवेदी युग (1900-1920)

नागरी प्रचारिणी पत्रिका और सरस्वती के प्रकाशन से इस युग का प्रारंभ होता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के संपादक के रूप में खड़ी बोली हिन्दी का मानकीकरण करते हुए लेखकों को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। नए विषय सुझाए, हिन्दी रूपों की अनेकरूपता जाकर समरूपता का आगमन पंडित द्विवेदीजी के कारण ही हुआ। भाषा परिनिष्ठित और व्याकरणनिष्ठ हुई। पं. माधवप्रसाद मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू गुलाबराय इस युग के शीर्षस्थ निबंधकार रहे हैं। इस युग में विनोद-हास्य की मात्रा की कमी है। निबंधों में साहित्यिक, सामाजिक तथा राजनीतिक प्रश्नों की गंभीर अभिव्यक्ति इस युग का वैशिष्ट्य है।

5.8.3 तृतीय युग-शुक्ल युग (1920-1947)

इस युग को हिन्दी निबंध का ''स्वर्णिम युग'' कहा जा सकता है। वैचारिक, वर्णनात्मक, भावात्मक, मनोवैज्ञानिक, ललित, हास्य, व्यंग्यात्मक, संस्मरणनुमा कई रूपों के निबंधों से हिन्दी निबंध विधा समृद्ध हुई। हिन्दी निबंध स्थूलता को छोड़कर सूक्ष्मता की ओर अग्रसर हुआ।

साहित्यिक, शास्त्रीय, भाषा-वैज्ञानिक और तर्कसंगत निबंधों की प्रधानता शुक्ल युग का वैशिष्ट्य है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कारण ही निबंध के इस युग का 'शुक्ल युग' नामकरण सार्थक हुआ है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बक्षी, सियाराम शरण गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, पं. रामावतार शर्मा ने निबंधों को समृद्ध किया।

5.8.4 चतुर्थ युगस्वातंत्र्योत्तर युग (1947-1990)

हिन्दी साहित्य के इतिहास की शब्दावली में इस युग को 'शुक्लोत्तर युग' कहा जा सकता है। विषय- वैविध्य और भाषा-शैली की दृष्टि से निबंधों का बहु-आयामी विकास इस युग में हुआ। गहन मानवतावाद, विशाल सांस्कृतिक अध्ययन की चेतना, प्रहारक व्यंग्य और निश्छल विनोद से संयुक्त निबंध इस युग का वैशिष्ट्य है। ललित निबंध, व्यंग्य निबंध-निबंधों के ये दो प्रकार इसी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

युग की देन हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इस युग का सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व है। उन्होंने व्यक्ति-प्रधान ललित निबंधों की भागीरथी धारा को प्रवाहित किया। डॉ. कुबेर नाथ राय, पं. विद्यानिवास मिश्र, विवेकी राय, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, श्रीराम परिहार ने ललित निबंध-धारा को विकसित किया।

हरिशंकर परसाई, रामनारायण उपाध्याय, प्रभाकर माचवे, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, नरेन्द्र कोहली, रवीन्द्रनाथ त्यागी, शंकर पुणतांबेकर ने व्यंग्य निबंध धारा को प्रवाहित एवं समृद्ध किया।

डॉ. नगेन्द्र, जैनेन्द्र, रामवृक्ष बेनीपुरी, शिवप्रसादसिंह आदि ने निबंधों को समृद्ध किया है। कथेत्तर साहित्य की प्रमुख विधा निबंध रही है। भाषा का प्रौढ़ एवं मानकरूप, समृद्ध व्यक्तित्व का संप्रेषण, विचारोत्तेजकता निबंध की अपनी देन है।

5.9 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए-

1. निबन्ध के प्रमुख द्वार कौन-से हैं?
2. ललित निबंध की विशेषताएँ बताइये।
3. हिन्दी निबन्ध की विकास-यात्रा के प्रमुख पड़ाव कौन-से हैं?
4. स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रमुख हिन्दी निबन्धकार बताइए।
5. निबंध की प्रमुख देन कौन-सी है?

5.10 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

एक वाक्य में उत्तर दीजिए-

1. गद्य की कसौटी 2. नि + बन्ध 3. एसे (Essay)4. संक्षिप्त/छोटा 5. पत्रकारिता

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए-

1. निबन्ध के तत्त्व इस प्रकार बताए जा सकते हैं-
   (1) वैयक्तिकता, (2) स्वच्छंदता, (3) मौलिकता, (4) वैचारिकता, (5) संक्षिप्तता।
2. निबन्ध की स्वच्छंदता से तात्पर्य है विषय का कोई बन्धन नहीं होता। इससे जीवंतता और रोचकता का आगमन होता है।
3. निबंध एक ही बैठक में समाप्त होने वाली रचना है। इसलिए निबन्ध आकार से मर्यादित अनावश्यक सूचनाओं से मुक्त, अवांछित विस्तार से रहित होता है। संक्षिप्तता के अभाव में वर्ण्य विषय को समझना पाठक के लिए मुश्किल हो जाता है इसलिए निबन्ध में संक्षिप्तता आवश्यक है।
4. निबन्ध का स्वरूप इस प्रकार बताया जा सकता है-लघुआकार की पठनीय, बोधगम्य, रोचक, लालित्यपूर्ण रचना निबन्ध है।

संक्षेप में उत्तर लिखिए-

1. भावात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक, ललित-ये निबन्ध के प्रमुख प्रकार हैं।
2. ललित निबन्ध में रागात्मता, वहपना प्रधानता, अनुभूति की गहनता, विशिष्ट भाषा और सौन्दर्यपरक दृष्टि आदि बातें होती हैं।
3. हिन्दी निबन्ध विकास-यात्रा के प्रमुख पड़ाव, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग, स्वातंत्र्योत्तर युग है।
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी कुबेरनाथ राय, विद्यानिवास मिश्र, विवेकीराय (ललित) निबंधकार, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल (व्यंग्य) आदि है।
5. भाषा का प्रौढ़ एवं मानक रूप का निर्माण, समृद्ध व्यक्तित्व निर्माण, वैचारिकता का प्रचार आदि प्रमुख देन है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–6 : पाठ्य निबन्धों का विवेचन

संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता
6.2.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य
6.2.2 निबन्ध सारांश
6.2.2.1 तुलसी का उर्मिला चित्रण
6.2.2.2 भवभूति का उर्मिला चित्रण
6.2.3 महत्त्वपूर्ण बातें
6.2.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न
6.2.5 शब्दार्थ
6.2.6 स-संदर्भ स्पष्टीकरण
6.2.7 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न
6.3 होली है
6.3.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य
6.3.2 निबन्ध का सारांश
6.3.3 होली त्यौहार-युगानुरूप बदलाव
6.3.4 महत्त्वपूर्ण बातें
6.3.5 होली पर्व का सिकुड़न
6.3.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्न
6.3.7 शब्दार्थ
6.3.8 स-संदर्भ स्पष्टीकरण
6.3.9 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न
6.3.10 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर
6.4 लज्जा और ग्लानि
6.4.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य
6.4.2 निबन्ध का सारांश
6.4.2.1 परिभाषा
6.4.2.2 अनुभाव
6.4.2.3 लज्जाभाव
6.4.2.4 ग्लानि परिभाषा
6.4.2.5 अनुश्रव
6.4.2.6 ग्लानिभाव का स्पष्टीकरण
6.4.3 तीन मनोभाव
6.4.3.1 लज्जा
6.4.3.2 ग्लानि
6.4.3.3 भय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.4.4 लज्जा और ग्लानि का स्पष्टीकरण
6.4.5 संकोच
6.4.5.1 संकोच का वातन
6.4.6 स्त्रियों का गहना लज्जा नहीं
6.4.7 महत्त्वपूर्ण बातें
6.4.7.1 लज्जा
6.4.7.2 ग्लानि
6.4.7.3 संकोच
6.4.8 स्वयं अध्ययन के प्रश्न
6.4.9 शब्दार्थ
6.4.10 स-संदर्भ स्पष्टीकरण
6.4.11 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न
6.4.12 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर
6.5 भारतीय साहित्य की एकता
6.5.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य
6.5.2 निबन्ध का सारांश
6.5.2.1 एकता से तात्पर्य
6.5.2.2 साहित्य की एकता
6.5.2.3 साहित्य की मूलभूत एकता
6.5.2.4 एकता की बाधाएँ
6.5.3 महत्त्वपूर्ण बातें
6.5.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न
6.5.5 शब्दार्थ
6.5.6 स-संदर्भ स्पष्टीकरण
6.5.7 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न
6.5.8 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर
6.6 तुलसी साहित्य के सामंत विरोधी मूल्य
6.6.1 लेख परिचय एवं वैशिष्ट्य
6.6.2 निबन्ध का सारांश
6.6.2.1 अनुकूल-प्रतिकूल मत
6.6.2.2 सामंती प्रभुता टूटने के कारण
6.6.2.3 मुक्ति-जन सामान्य का अधिकार
6.6.2.4 वर्ण-जाति व्यवस्था को चुनौती
6.6.2.5 स्त्रियों के प्रति नया दृष्टिकोण
6.6.2.6 तुलसी के अन्य पक्ष
क. कवि तुलसी ख. तुलसी का ज्ञान पक्ष
ग. मानव भक्ति घ. व्यंग्य चेता तुलसी
6.6.3 महत्त्वपूर्ण बातें
6.6.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न
6.6.5 शब्दार्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.6.6 स-संदर्भ स्पष्टीकरण
6.6.7 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न
6.6.8 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर
6.7 निषाद बाँसुरी
6.7.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य
6.7.2 निबन्ध का सारांश
6.7.2.1 निषाद चंदर मांझी
6.7.2.2 निषाद गीत
6.7.2.3 निषाद-कृषि के जन्मदाता
6.7.2.4 अवतारवाद के जन्मदाता
6.7.2.5 रामकथा के निर्माता
6.7.3 निषाद कुल
6.7.4 रामदेवाजी
6.7.4.1 'जी' लगाने क तात्पर्य
6.7.4.2 पंचंग
6.7.5 आर्य-निषाद संगम
6.7.6 निषाद व्यवसय-महहाह-कारीगर
6.7.7 निषाद-स्वभाव
6.7.8 होली पर्व निषाद निशानी
6.7.9 निषाद मन ही निषाद बांसुरी
6.7.10 महत्त्वपूर्ण बातें
6.7.11 स्वयं अध्ययन के प्रश्न
6.7.12 शब्दार्थ/संदर्भ
6.7.13 स-संदर्भ व्याख्या
6.7.14 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न
6.7.15 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर
6.8 हल्दी-दूब और दधि-अच्छत
6.8.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य
6.8.2 निबन्ध का सारांश
6.8.2.1 दूब
6.8.2.2 हल्दी
6.8.2.3 अच्छत
6.8.2.4 दधि
6.8.3 मंगल के अभिव्यंजन
6.8.4 महत्त्वपूर्ण बातें
6.8.5 स्वयं अध्ययन के प्रश्न
6.8.6 शब्दार्थ
6.8.7 स-सन्दर्भ स्पष्टीकरण
6.8.8 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न
6.8.9 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.0 प्रस्तावना

पाठ्यक्रम आधारित विशिष्ट निबन्धों एवं निबंधकारों को व्याख्यायित किया जाएगा।

6.1 उद्देश्य

इसके अध्ययन से निबन्ध विषयक विस्तृत परिचय हो सकेगा।

6.2 कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938)

6.2.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य

रामसहाय द्विवेदी के पुत्र महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। इनका जन्म रायबरेली जिले में 1864 को हुआ। इनका मूल नाम महावीर सहाय था। स्कूल के प्रधानाध्यापक ने भूल से महावीर प्रसाद लिख दिया। यही नाम स्थायी हो गया। रायबरेली, रनजीत पुरवा (उन्नाव जिला) और फतेहपुर में उनकी प्रारंभिक पढ़ाई हुई। तत्पश्चात् अपने पिता के पास मुम्बई में पढ़ने चले आए। यहाँ पर उन्होंने संस्कृत, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी भाषाओं का अध्ययन किया। जीविका के लिए प्रारंभ में इन्होंने रेलवे में नौकरी की। नौकरी के दरमियान अजमेर, नागपुर, मुम्बई गए। इन्होंने तार देने की विधि भी सिखी और झाँसी में चीफ क्लर्क हो गए। पाँच साल की नौकरी के बाद उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। 1902 में 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक बने। 1920 तक संपादक रहे। सरस्वती से अलग होने पर वे अपने गाँव लौट आए, जहाँ 21 दिसम्बर, 1938 को उनका स्वर्गवास हो गया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी की हिन्दी साहित्य को अतुलनीय देन है। उन्होंने पचास मौलिक ग्रंथ लिखे। उनके तीस अनुदित ग्रंथ हैं। पद्य-गद्य, अनुदित और मौलिक दोनों प्रकार का लेखन है। उन्होंने साहित्य के अलावा इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञान, पुरातत्त्व, चिकित्सा, राजनीति, जीवनी, ज्ञान के सभी क्षेत्रों में लेखन किया। हिन्दी गद्य का परिष्कार किया। हिन्दी गद्य और पद्य की भाषा खड़ी बोली थी। आपकी आलोचना से लोकरुचि का परिष्कार हुआ। संपादक के रूप में उन्होंने हमेशा नवीन लेखकों-कवियों को प्रोत्साहन दिया। इनके युग में नैतिकता को अधिक महत्त्व था। साहित्य के क्षेत्र में सुधार की प्रवृत्तियों का आगमन नैतिकता के कारण ही हुआ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को अपना गुरु मानते थे। गुप्त लिखते हैं-''मेरी उलटी-सीधी प्रारंभिक रचनाओं का पूर्ण शोधन कर उन्हें 'सरस्वती' में प्रकाशित किया और मेरे उत्साह को द्विवेदीजी महाराज ने बढ़ाया।'' मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ीबोली हिन्दी में 'साकेत' नामक महाकाव्य लिखा, जिसकी प्रेरणा प्रस्तुत निबंध है।

6.2.2 निबंध सारांश

कवि स्वभाव से स्वतंत्र होता है, जो जी में आता है, वैसा करता है। कवि चाहे तो राई को पहाड़ बना दे, हिमालय जैसे पहाड़ को न देखे। ऐसी बात आज के ही नहीं पहले कवि (आदिकवि वाल्मिकी) में भी पायी जाती है।

निषाद द्वारा किये गये क्रौंचवध को वाल्मिकी ने देखा और उनके मुँह से पहली 'कविता निकली' ऐसे वाल्मिकी ने रामायण में नवपरिणिता दुखिनी उर्मिला को बिल्कुल ही भूला दिया।

रामायण में उम्रिला के दर्शन पाठकों को जनकपुर में सीता, मांडवी, श्रुतिकीर्ति के साथ होते हैं। सीता और राम के चरित्रगान हेतु रामायण की रचना हुई। मांडवी और श्रुतिकीर्ति को भयानक पतिवियोग भी नहीं हुआ। रही बालवियोगिनी उर्मिला का चरित्र गेय आलेख होने पर भी कवि ने भूला दिया। उर्मिला की इस उपेक्षा का कारण उसका भाग्यदोष ही हो सकता है। वाल्मिकी ने उर्मिला का परिचय वैवाहिक वधू के रूप में जनकपुरी में ही किया है। वनप्रयाण के समय भी उर्मिला का आगमन वाल्मिकी ने क्यों नहीं बताया? ऐसा विकल प्रश्न महावीर प्रसादजी उपस्थित करते हैं।

राम राज्याभिषेक की घोषणा होने पर महल ही नहीं, अपितु पूरे नगर पर खुशी छा गयी थी। लक्ष्मण के परम आराध्य राम को सिंहासन पर बैठते देख उर्मिला को कितना आंनद हुआ होगा? इसका अनुमान वाल्मिकी ने नहीं किया। जब राम-जानकी के साथ पति लक्ष्मण चौदह साल के लिए वन में जा रहे हैं चह देख-सुन उर्मिला पर क्या बीती होगी? आपने इस संदर्भ में एक शब्द भी न लिखकर वचन दरिद्रता दिखा दी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उर्मिला सीता की छोटी बहन थी। इसलिए उसे अपनी बहन का वियोग सहना पड़ा और प्राणाधर पति का भी वियोग सहना पड़ा। ऐसी दुःखी उर्मिला पर आदि कवि ने कुछ भी दया नहीं दिखायी। वनगमन के समय लक्ष्मण को एक नजर भी उर्मिला को देखने नही दिया। राम-लक्ष्मण-सीता का अयोध्या त्याग और दशरथ के प्राणत्याग के समय पर उर्मिला भूली ही रही।

6.2.2.1 तुलसी का उर्मिला चित्रण

तुलसी ने राम कथा के माध्यम से आदर्श रखा है। लक्ष्मण आदर्श भाई के रूप में सामने आते हैं।

लक्ष्मण अपने बड़े भाई को बहुत चाहते थे। राम के साथ वनगमन किया। लक्ष्मण का तो गुणगान होता है, उसकी पत्नी उर्मिला ने जो आत्म-सुख का उत्सर्ग किया इसके बारे में तुलसी ने कुछ नहीं लिखा। जब सीता ने कह दिया था जहाँ नाथ रहेंगे वहीं मैं रहूँगी, तो क्या उर्मिला इस बात को नही जानती थी? परन्तु उर्मिला ने जान-बूझकर हठ नहीं किया। कारण यदि मैं साथ गई तो लक्ष्मण को संकोच होगा और वे सेवा भी अच्छी नहीं कर पाएँगे। यह बात उर्मिला के चरित्र को ऊँचा प्रदान करती है।

तुलसीदास भी इस मामले में पीछे नहीं है। आदि कवि की बात का ही उन्होंने निर्वाह किया है। लक्ष्मण को उर्मिला से मिलने नहीं दिया। माँ से मिलने पर लक्ष्मण से यह कहलवा दिया-''गए लक्ष्मण जहाँ जानकी नाथ''। तुलसीदास जी ने एक भी चौपाई उर्मिला के संदर्भ में लिखी नहीं है। और न ही एक भी शब्द उर्मिला के संबंध में किसी के मुख से कहलवाया।

6.2.2.2 भवभूति का उर्मिला चित्रण

भवभूति ने उर्मिला विषयक उल्लेख किया है। राम-लक्ष्मण जानकी के वन से लौट आने पर एक चित्र फलक पर उर्मिला का अंकन दिखाते हैं, जिसे देख सीता ने लक्ष्मण से पूछा-''यह कौन है?'' उन्होंने मन-ही-मन कहा सीता देवी उर्मिला के बात पूछ रही है। प्रत्यक्ष में उन्होंने उर्मिला के चित्र पर हाथ रख दिया। उनके हाथ से चित्र ढंक गया। निबंधकार लिखते हैं-उर्मिला जैसा उज्ज्वल चरित्र कवियों द्वारा आज तक ऐसा ही ढंका रहा।

6.2.3 महत्त्वपूर्ण बातें

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी रामायण की प्रमुख और उपेक्षित पात्र लक्ष्मण पत्नी उर्मिला विषयक उपेक्षाभाव की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं, जैसे-
   - (क) आदि कवि वाल्मिकी की काव्यप्रेरणा क्रौंचवध की करुणा है। परन्तु वे उर्मिला के कारुणिक वियोग के संदर्भ में एक शब्द भी नहीं लिखते।
   - (ख) रामायण में सहनायक लक्ष्मण है। राम-सीता-लक्ष्मण के चरित्रों का विस्तार से अंकन हुआ है। परन्तु लक्ष्मण पत्नी उर्मिला जनकपुर में नववधू के वेश में दिखायी देती है। इतना सा नाममात्र उल्लेख है।

(2) वनगमन के अवसर पर सीता ने पतिव्रत धर्म की बात कहकर पति के साथ वन जाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। लक्ष्मण ने कह भी दिया जहाँ राम, वहाँ लक्ष्मण। उर्मिला ने इस समय क्या कहा होगा? क्या वह सीता की तरह पतिप्रेम और पतिपूजा नहीं करती थी? तुलसीदास ने भी उर्मिला को वाल्मिकी की तरह उपेक्षित ही रखा है।

(3) भवभूति ने उर्मिला का उल्लेख चित्रफलक के द्वारा किया है।

इस तरह कवियों ने उर्मिला के उज्ज्वल चरित्र की अनुल्लेख द्वारा उपेक्षा ही की है। इसी निबंध से प्रेरणा लेकर मैथिलीशरण गुप्त ने उर्मिला को नायक बनाकर 'साकेत' नामक महाकाव्य की रचना की।

6.2.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

एक वाक्य में उत्तर दीजिए-

1. आदिकवि की उपाधि किसे दी गयी है?
2. वाल्मिकी के मुँह से पहली कविता कब निकली?
3. रामचरितमानस में तुलसीदास ने उर्मिला को संदेश लक्ष्मण के द्वारा कैसे दिया?
4. भवभूति ने उर्मिला का अंकन कैसे किया है?
5. मैथिलीशरण गुप्त ने उर्मिला को नायक बनाकर किस महाकाव्य की रचना की?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जोड़ियां बनाइए-

1. वाल्मिकी	(अ) श्रीरामचरितमानस
2. तुलसीदास	(ब) रामायण
3. कालिदास भवभूति	(स) साकेत
4. मैथिलीशरण गुप्त	(द) चित्रफलक

6.2.5 शब्दार्थ

उच्छृंखल-स्वच्छंद,

श्रुतिसुखद-कानों को मधुर लगने वाला

अल्पादल्पतरा-जरा-सी भी

6.2.6 स-संदर्भ स्पष्टीकरण

''क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक पक्षी का निषाद द्वारा वध किया गया देख जिस कवि-शिरोमणि का हृदय दु:ख से विदीर्ण हो गया, और जिसके मुख से 'मा-निषाद' इत्यादी सरस्वती सहसा निकल पड़ी, वहीं पर दु:ख कातर मुनि रामायण निर्माण करते समय एक नव-परिणीता दु:खिनी वधू को बिल्कुल ही भूल गया।''

संदर्भ-आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित निबंध ''कवियों की उर्मिला- विषयक उदासीनता'' इस निबंध से उपर्युक्त पंक्तियाँ ली गई हैं। उपेक्षित पात्र उर्मिला की तरफ अन्य कवियों के ध्यान न जाने के बारे में वे खेद प्रकट करते हैं।

स्पष्टीकरण-स्वभावत: ही कवि स्वच्छंद माने गए हैं। जिस चरित्र को एक बार महत्त्वपूर्ण मान लिया जाए तो यही परंपरा शुरु हो जाती है उसे और भी महानतम बनाने की। पर वे जी सेक कारण महान कहलाए, उनकी तरफ किसका ध्यान गया है? लेखक आदिकवि वाल्मिकी, जो 'रामायण' लिखकर महाकवि बन गए। उनसे शुरुआत करते हुए कालिदास, तुलसीदास के दृष्टिकोण को भी प्रस्तुत करते हैं। लक्ष्मण पत्नी उर्मिला की उपेक्षा कवि-शिरोमणि वाल्मिकी से ही दिखायी देती है। जिन्होंने विवाह के समय ही सब बहनों के साथ उर्मिला के दर्शन कराए, बाद में कहीं भी नहीं। लेखक का मानना है पति-वियोग का दु:ख सहने वाली उर्मिला का चरित्र सबसे उज्ज्वल आदर्श को प्रस्तुत करता है। उसका त्याग अन्य पात्रों से कहीं अधिक है तब भी किसी भी संवेदनशील कवि को उसकी वेदना आहत नहीं कर सकी। तुलसीदास ने भी उर्मिला पर अन्याय ही किया है। एक भी चौपाई में उर्मिला की दशा का वर्णन नहीं किया। आज भी ऐसा ही हो रहा है।

विशेषता-आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की यह वेदना उनके शिष्य मैथिलीशरण गुप्त ने जानी तथा 'साकेत' नामक महाकाव्य का सृजन कर उसकी नायिका के रूप में लक्ष्मण-पत्नी उर्मिला की प्रतिष्ठा की। इतना ही नहीं अन्य पात्र, जैसे-कैकेयी, मंथरा, यशोधरा आदि की वेदना को भी उन्होंने वाणी दी है।

6.2.7 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न

1. वाल्मिकी ने उर्मिला की उपेक्षा किस प्रकार की है?
2. तुलसी ने भी वाल्मिकी का अनुसरण उर्मिला विषयक कैसे किया है?
3. लेखक ने उर्मिल के चरित्र की किन विशेषताओं की तरफ पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।
4. निबंध के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1. एक वाक्य मे उत्तर दीजिए-

1. आदिकवि की उपाधि वाल्मिकी को दी गयी है।
2. निषाद द्वारा किये गये क्रौंचवध को जब वाल्मिकी ने देखा तब उनके मुँह से पहली कविता निकली।
3. रामचरितमानस में माँ से मिलने लक्ष्मण से यह कहलवा दिया कि ''गए लक्ष्मण जहाँ जानकी नाथ''।
4. भवभूति ने उर्मिला का अंकन चित्रफलक के द्वारा किया है।
5. मैथिलीशरण गुप्त ने उर्मिला को नायक बनाकर 'साकेत' महाकाव्य की रचना की।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जोड़ियाँ बनाइये-

1. (ब), 2. (अ), 3. (द), 4. (स)

6.3 होली है

प्रताप नारायण मिश्र (1856-1895)

6.3.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य

प्रतापनारायण मिश्र का जन्म उन्नाव जिले में हुआ। उनके पिताजी ज्योतिष्ठी थे। पिता का नाम संकटाप्रसाद था, जो कानपुर में रहते थें इसी प्रकार प्रतापनारायणजी की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा कानपुर में हुई। पिताजी उन्हें ज्योतिषी बनाना चाहते थे परन्तु इसमें उनका मन नहीं लगा। अनुशासनबद्ध तरीके से उन्होंने पढ़ाई भी नहीं की। वैसे वे संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंगेजी, बंगला के ज्ञाता थे। वे लावनी के शौकीन थे। कानपुर में उन्होंने लावनी बाजों के सम्पर्क में आकर अनेक लावनियाँ और खयाल लिखे। साहित्यकार के अलावा सामाजिक, राजनैतिक संस्थाओं से वे जुड़े हुए थे।

हाजिरजबाबीपन, मस्करापन और वाग्वैदध्य के वे धनी थे। 1815 में कानपुर में उनका स्वर्गवास हुआ।

मिश्रजी ने लगभग पचास पुस्तकें लिखी। प्रेमपुष्पावली, मन की लहर, श्रृंगारविलास, शैव सर्वस्व, रसखान शत इनकी कविता की पुस्तकें हैं। कलिकौतुक, भारतदुर्दशा, हठी हमीर नाटकों की रचना की। संगीत शाकुंतल नाटक उन्होंने लावनियों में लिखा है। मिश्रजी का उग्र व्यक्तित्व निबंध और 'ब्राह्मण' नामक पत्रिका संपादन में प्रकट होता है। भौं, दाँत, पेट, बात, मूँछ, दान, जुआ, समझदार की मौत है, होली है, आदि उनके प्रसिद्ध निबंध हैं। इनके निबंधों की शैली में अद्‌भुत प्रवाह और आकर्षण है। सहजता, भोलापन, मस्ती इनके निबंधों की विशेषता है। मुहावरों का प्रयोग प्रखरता से दिखायी देता है। सच्चे अर्थों में वे हिन्दी गद्य के निर्माता के रूप में हिन्दी साहित्य के इतिहास में जाने जाते हैं।

6.3.2 निबंध का सारांश

होली आनन्द और उल्लास का उमंगभरा फागुनी त्यौहार है। मौज-मस्ती उमंग अपनेपन से भरा रंगारंग वसंतोत्सव का त्यौहार होली है। प्रतापनारायण मिश्र ने होली के अनेक अर्थों को व्यंग्यगामी तिक्तता के साथ हमारे सामने प्रस्तुत किया है। होली के विभिन्न अर्थ-होली शब्द के साथ/साथ होला शब्द भी है। होला शब्द का अर्थ है-हरा, भुना हुआ चना। जो गरमागरम होता है। सिर गरम होना का अर्थ है-गुस्सा होना। गरीबी की आग के कारण तुम्हारा सिर होला हो गया है।

होली जैसे त्यौहार में ये कैसी मनहूस सूरत है-गरीबी, महँगाई, अभाव से छटुकारा कहाँ? साल में एक बार यह त्यौहार आता है और तुमने अपनी मनहुसीयत नहीं छोड़ी। प्रसन्नता से बोलो होली है।

हम बंगला नहीं हैं, जो हरी को होरी बोल रहे हो। हम तो बीसवीं शताब्दी के अभागी हिन्दुस्तानी हैं। हमारे पास कृषी, वाणिज्य, शिल्प या रोजगार नहीं है। खेतों की फसल अतिवृष्टि, अनावृष्टि से खत्म-सी ही है। जो कुछ उत्पन्न होता है, वह घर तक नहीं आता। कर्जा चुकाने में बाहर का बाहर चला जाता है। रोजगार, व्यापार, उद्योग, कारिगरी को कोई पूछ नहीं है। पढ़े-लिखों को उचित नौकरी भी मुश्किल से मिलती है। ऐसे में न होली सूझती है, न दिवाली।

6.3.3 होली त्यौहार-युगानुरूप बदलाव

पुराने जमाने में वसंतपंचमी से ही होली उत्सव प्रारंभ हो जाता था। आगे चलकर शिवरात्रि से प्रारंभ होने लगा। जब इसका भी निर्वाह कठिन हो गया तो फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से होली मनाई जाने लगी। शादी-ब्याह में तो केवल चार दिन आनन्द होता है पर होली का आनन्द इससे दुगुना अर्थात् आठ दिन का होता है। ऐसी हमारी परंपरा रही है। इस परंपरा के आप वंशज हैं। फिर भी तीज-त्यौहार के दिन भी मोहरमी सूरत बना ली होली शब्द का उच्चारण भी नहीं करते।

होली कोई अपवित्र शब्द थोड़े ही है, होली बाइबल क्रिश्चन लोगों का पवित्र धर्मग्रंथ हैं वे तो अब तुम पर चोट नहीं करते। क्या तुम्हारा हिन्दुपन सलीब पर तो नहीं चढ़ गया? उनसे लड़ने की बजाय पहले अपनों से लड़ो, जो देवता-पितर की निंदा पर चिढ़ाने में ही धर्म और देश की उन्नति समझते हैं, ऐसें में अब तो तुम अपनी मनहुसियत को छोड़ो। तुम तो ऐसे हो खुद भी मनहूस, पास जो बैठे, उसे भी कर दो मनहूस। क्या तुमने आज भांग खा ली है, जो बे-सिर-पैर की हाँक रहे हैं। मन खाली नहीं रखना चाहिए, किसमें लगा होना चाहिए। कहा जाता है कि भूखा क्या नहीं करता? हमारे देश के अधिकांश लोग

निर्धन-निर्बल, निरूपाय है इसलिए कुछ नहीं तो चोरी-चकारी ही सीख लो। हमारी बातों पर संदेह न करो और दाँत न निकालो। इस तोबड़े से लटके मुँह के दो-तीन दाँत तो दिखे? मिट्टी के तेल की रोशनी और चमकदार ऐनक से आँखें चौंधियां गयी है। अनेकों जातियों के लोगों का जूठा मदिरा गिलास में क्या तुम बह गए। निंदा, स्तुति, लाभ, हानि ही हमारा दर्शन है, हमारा मूलमंत्र है। जो हमारा सो हमारा है। इसलिए आज हमारी होली है। चित्त को शुद्ध करके सालभर की कहा-सुनी को माफ कर हाथ जोड़-पाँव पकड़कर, हाथ पसारकर प्रेमप्रसन्नता को संपादन कर ले। शेष बातें भाग्य के भरोसे छोड़ अपनी मौज में मस्त हो ले। कारण आज तो होली हो ली है।

6.3.4 महत्त्वपूर्ण बातें

(क) प्रतापनारायण मिश्र ने ''होली है'' निबंध में होली पर्व को केन्द्रीय विषय बनाकर अपने कुछ विचार व्यंग्य की तिक्तता और मुहावरों के लावण्य से आकर्षण ढंग से प्रस्तुत किए हैं।

(ख) होली होला, HOLY और होर हा, हो ली शब्दों को व्यंग्य भंगिमा के साथ प्रस्तुत किया है। होला हरे भुने चले को कहते हैं, जो गर्म-गर्म खाया जाता है। होले का सीर गरम है। कारण गरीबी की आग से व्यक्तियों का सिर गरम हो गया है।

(ग) बंगला भाषा-भाषी लोग हरि (श्रीविष्णु का नाम) को होरी बोलते हैं। होरी भक्ति का प्रतीक है।

(घ) होली का अंग्रेजी अर्थ है-पवित्र। होली बाइबिल के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है।

6.3.5 होली पर्व का सिकुड़ना

होली आनन्द, उल्लास, उमंग, मौज-मस्ती का त्यौहार है। पुराने जमाने में होली उत्सव वसंत पंचमी से प्रारंभ होता था। फिर शिवरात्रि से प्रारंभ होने लगा, फिर फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से होली मनाई जाने लगी। आज तो होली का त्यौहार सिमटकर केवल दो दिन का रह गया है। कारण अभाव, महँगाई गरीबी तथा हमें होली के रंगों से पढ़े-लिखे होने के कारण शर्म-सी महसूस होती है। इसलिए हमारे जीवन से आनन्द उल्लास चले गए और गुस्सा मनहूसपन, अकेलेपन से हम घिर गए हैं।

भगवान भूतनाथ जो श्मशान विहारी है, मुंडमाला धारण की है, वैराग्य के देवता है फिर भी वे आठों पहर वामभाग में पार्वती को धारण किये रहते हैं। इसलिए वे प्रेमशास्त्र के आचार्य हैं तो दूसरी तरफ भगवान श्रीकृष्ण श्रृंगार रस उर्फ प्रेम के देवता समझे जाते हैं परन्तु उन्होंने गीता में अर्जुन का मोहजाल भंग किया और योगीपुरुष के रूप में सामने आते हैं। अतः अनुराग ही विराग है।

6.3.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

एक वाक्य में उत्तर लिखिए-

1. पुराने जमाने में होली उत्सव कब से प्रारंभ होना था?
2. होली का त्यौहार सिमटकर कितने दिन का रह गया है?
3. होली का त्यौहार किस महिने में आता है?
4. बंगलाभाषी लोग हरि को क्या बोलते हैं?
5. किस शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द देकर मिश्रजी ने व्यंग्य की निकाता बढ़ायी है?

6.3.7 शब्दार्थ

मोहरमी सूरत-उदास चेहरा; बसंत पंचमी-माघ शुक्ल पंचमी; शिवरात्रि-फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी को रात भर जागकर शिव पूजन-अर्चन स्तुति की जाती है; फाल्गुन शुक्ल अष्टमी-होलाष्टमी भी कहा जाता है; सलीब-सूली, क्रॉस, जिस पर ईसा-मसीह लटकाए गए थे; बे-सिर पैर की हाँकना (मुहावर)-ऊटपटांग बातें करना; दाँत निकालना (मुहावरा)-व्यर्थ हँसना; आँखें चौंधियाँ जाना (मुहावरा)-चकित हो जाना।

6.3.8 स-संदर्भ स्पष्टीकरण

''देशी कारीगरों को देश वाले ही नहीं पूछते। विशेषत: जो छाती ठोंक-ठोंक, ताली बजवा-बजवा कागजों के तक्ते रंग-रंग कर देशहित के गीत गाते फिरते हैं, वह और भी देशी वस्तु का व्यवहार करना अपनी शान से बैध समझते हैं।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सन्दर्भ–उपर्युक्त पंक्तियाँ प्रतापनारायण मिश्र की रचना ''होली है'' से ली गई हैं, जिसमें लेखक ने हमारे समाज की मानसिकता पर व्यंग्य किया है।

स्पष्टीकरण–इस वैचरिक ललितनुमा निबंध में लेखक ने लोगों की दुहरी मानसिकता की ओर संकेत किया है। अपने आपको देशभक्त बताने वाले लोग, अपने ही देश के लोगों की हालत क्या करते हैं? अपने लोगों के द्वारा बनायी गयी वस्तु अगर हम इस्तेमाल करेंगे तो उनको मदद होगी और पैसा भी हमारे देश में ही रहेगा। पर क्या ऐसा होता है? कथनी ओर करनी में तो तफावत लोगों के व्यवहार से दिखायी देता है, उससे ही देश की हालत और समाज की दुरावस्था हुई है। लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली द्वारा अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

विशेषता–प्रतापनारायण मिश्र ने व्यंग्य के प्रयोग द्वारा होली के पर्व की लोगों की दुहरी मानसिकता पर प्रकाश डाला है।

6.3.9 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए–

1. होली के माध्यम से प्रतापनारायण मिश्र आनन्द-उल्लास के महत्त्व को कैसे समझाते हैं?
2. होली का त्यौहार जो पहले सवा महिने मनाया जाता था, वह सिकुड़कर दो दिन का हो गया, इसका क्या कारण है?
3. होली के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग कर मिश्रजी ने व्यंग्य की तिक्तता को बढ़ाया है-सोदाहरण समझाइये।
4. जो हमारा है वही हमारा है, इसी से हमारी शोभा है-ऐसा लेखक क्यों कहते हैं?

6.3.10 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

एक वाक्य मे उत्तर–

1. पुराने माने में होली उत्सव बसंत पंचमी से प्रारंभ होता था।
2. होली का त्यौहार सिमटकर दो दिन का रह गया है।
3. होली का त्यौहार फाल्गुन मास में आता है।
4. बंगला भाषी लोग हरि को 'होरी' बोलते हैं?
5. होली शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द देकर मिश्रजी ने व्यंग्य की निकटता बढ़ायी है।

6.4 लज्जा और ग्लानि

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (1884-1951)

6.4.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म बस्ती जिले के अगोना गाव में सन् 1884 को ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिताजी मिर्जापुर में सदर कानूनगो थे। शुक्लजी की मिडल तक की शिक्षा मिर्जापुर में ही हुई। जहाँ पर बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पंडित केदारनाथ पाठक की प्रेरणा और प्रोत्साहन से उनमें साहित्यिक रूचियाँ बढ़ी। वे 1903 में 'आनन्द कादम्बिनी' के संपादक बने। 1904 में वे नायब तहसीलदार के पद पर नियुक्त हुए। पर उन्हें यह पद रास नहीं आया। इसलिए लंदन मिशन स्कूल में ड्राईंग टीचर के रूप में कार्य किया। 1908 में वे नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 'हिन्दी शब्द सागर' के सहायक संपादक के रूप में नियुक्त हुए। वे बनारस में रहने लगे। नागरी प्रचारिणी सभा की पत्रिका का संपादन कार्य भी उन्होंने किया। 1929 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। 1936 में प्रोफेसर बने। 1941 में हृदयगति रूक जाने से उनका देहांत हो गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इतिहास, निबंध, समीक्षा, कहानी, कविता, जीवनी में मौलिक साहित्य रचा हैं उन्होंने हिन्दी आलोचना का आधुनिकीकरण किया और आलोचना को उच्चतम बिन्दु पर पहुँचाया है। उन्होंने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखकर साहित्येतिहास को नई दिशा दी। वे एक अच्छे अनुवादक भी थे। तुलसी, जायसी, भ्रमरगीतसार की भूमिकाएँ उनके समीक्षक रूप का उत्कृष्ट उदाहरण है। शुक्लजी ने 'चिंतामणि' (1, 2, 3) में साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, वैचारिक निबंधों की सर्जना की है। 'चिंतामणि' के निबंधों का विषय अत्यंत सूक्ष्म एवं गंभीर रसानुभूति है तथा उनका प्रतिपादन भी प्रौढ़तम शैली में हुआ है। उनमें एक ओर चिन्तन की मौलिकता, विवेचन की गंभीरता, विश्लेषण की सूक्ष्मता एवं शैली की प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है, तो दूसरी ओर उनमें लेखक की वैयक्तिकता, भावात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता के दर्शन भी होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ईर्ष्या, श्रद्धा, लज्जा, क्रोध, लोभ आदि मनोवृत्तियों का विश्लेषण उन्होंने अत्यंत पैनी दृष्टि से किया है। इन निबंधों में एक ओर उनकी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता का परिचय मिलता है तो दूसरी ओर उनका समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण भी स्पष्ट रूप में दिखायी देता है।

उनके निबंधों में विचारों की गंभीर घाटियों के बीच में हस्य-व्यंग्य की उक्तियाँ स्वच्छ, शीतल निर्झर के मधुर कल-कल स्वर की तरह सुनायी देती है। 'लज्जा और ग्लानि' पर विचार करते-करते उन्होंने लिखा है-"लक्ष्मी मूर्ति धातुमयी हो गयी, उपासक सब पत्थर के हो गये। आजकल तो बहुत-बातें धातु के ठीकरें पर ठहरा दी गई है। राजधर्म, आचार्य धर्म, वीर धर्म, सब पर सोने का पानी फिर गया, सब टका-धर्म हो गये। सबकी टकटकी टके की ओर लगी हुई है।"

6.4.2 निबंध का सारांश

6.4.2.1 परिभाषा

'लज्जा' दूसरों के मन में अपने विषय में बुरी, या तुच्छ धारणा होने के निश्चय अथवा आशंका से उत्पन्न होने वाले चित्तवृत्तियों के संकोच को 'लज्जा' कहते हैं।

6.4.2.2 अनुभाव

'लज्जा' के अनुभाव है सिर ऊपर नहीं उठना, मुँह छुपाना, साफ-साफ बात कहते नहीं बनना-ये अनुभाव जिस व्यक्ति में अधिक होंगे,उतना ही वह लज्जाशील होगा।जो इसकी परवाह नहीं करता,वह निर्लज्ज कहलाता है।

लज्जित आदमी ऐसा सोचता है-धरती फट जाए और हम इसमें समा जाएँगे।

6.4.2.3 लज्जाभाव

लज्जा का कारण बुराई, दोष या त्रुटी से संबंधित हमारा निश्चय नहीं, दूसरे का निश्चय अथवा उसका अनुमान भर है। यह ऐसा आचरण होता है, जिसका लोग उपहास करते हैं, घृणा करते हैं। वह हमसे हो गाय ऐसा मानकर हम जो अनुभव करते हैं, वह लज्जा है। कभी-कभी उल्टा भी होता है। हम निंदा चाहते हैं, वह चुप रह जाता है अथवा हमारे गुण का बखान करने लगता है तब हमारे मन में चुल्लु भर पानी में डूब मर जाने का भाव उत्पन्न होता है। यह भावबोध ही लज्जा है। जैसे वनगमन के पश्चात् राम कैकेयी से मिले, तो वह सकुचा गयी। और जब लक्ष्मण-कैकेयी कह पुनि-पुनि मिले तो कैकेयी लज्जा से धँस गयी होगी। चित्रकुट में जब राम से कैकेयी मिली तब उसकी क्या दशा हुई होगी? इस प्रश्न का उत्तर ही है-लज्जित हुई होगी।

'लज्जा' में निंदा का भय है। कुढ़न, दु:ख, हानि सहने का भय ही हमें लज्जित करता है।

6.4.2.4 ग्लानि की परिभाषा

'ग्लानि' अपनी बुराई, मूर्खता, तुच्छता का एकांत में अनुभव करने पर चित्तवृत्तियों के शैथिल्य को 'ग्लानि' कहते हैं।

'ग्लानि' उनके हृदय में उत्पन्न होती है, जो सात्विक, संस्कारशील और उदार होते हैं। जो क्रूर वृत्ति के हैं, स्वार्थी हैं, उनके मन में कभी ग्लानि उत्पन्न नहीं होती।

6.4.2.5 अनुभाव

हम लज्जा में मुँह छुपाकर अकेले में बैठकर लज्जा से बच सकते हैं, जबकि ग्लानि से हम एकांत में भी नहीं बच सकते। कमरे में बंद चारपाई पर पड़े-पड़े भी ग्लानि से गल सकते हैं।

6.4.2.6 ग्लानि का स्पष्टीकरण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपनी बात की पुष्टि के लिए चित्रकुट की सभा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। चित्रकुट में भरत-राम के मिलन के समय जब राजा जनक के आने का समाचार अयोध्या समाज ने सुना तो सभी हर्षित हुए। परन्तु कुटील कैकेयी ग्लानि से गल गयी। ग्लानि में अपनी बुराई, मूर्खता, हीनताबोध से मानसिक संताप होता है। अकेले में और दस आदमियों के सामने भी प्रकट होता है। ग्लानि मन:शुद्धि का एक उपाय है। ग्लानि के कारण अपने दोष, अपराध को स्वीकार करते हुए सुध ार लाते हैं। बुरेपन का अहसास अच्छेपन की राह है। दीपक बुझाकर भागने वाला चोर समझता है कि उसे कोई देख नहीं रहा है तो वह अवश्य ही ठोकर खाकर गिरेगा ही। जो निर्लज्जता का लक्षण है। अपनी बुराइयों को प्रकट न होने देना, व्यवधान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कौशल है। दूसरों से तो भाग सकते हैं पर अपने से कैसे भला भागेंगे? अपने से मुकाबला करने की नींव है ग्लानि की अनुभूति होना।

6.4.3 तीन मनोभाव-लज्जा, ग्लानि, भय

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चित्त के तीन गुणों के आधार पर तीन मनोभावों का उल्लेख किया है, जिनका चित्त सात्विक होगा, उनमें ग्लानि प्रकट होगी। जिनका चित्त राजसी होगा, उनमें लज्जा प्रकट होगी और जिनका चित्त तामसी है, उनके मन में भय प्रकट होगा।

जिनके मन में ग्लानि उत्पन्न नहीं होती वे लोकलज्जा के भय से हिचकिचाते हैं। लज्जा का अनुभव एक तरह का दु:ख का अनुभव ही है। कारण (बुरा) कर्म न करने पर भी केवल इच्छा मात्र से ही दु:ख होता है। फिर भी वे ऐसी इच्छा क्यों करते हैं? वे डरते हैं लज्जित होने से इन्हें लज्जा का अनुभव नहीं होता। ये अनिश्चियात्मक वृत्ति के लोग हैं।

ग्लानि की आशंका नहीं हो सकती। कारण ग्लानि का जन्म अपने बुरेपन के अहसास से होता है। यहाँ आशंका या अनिश्चिय का भाव नहीं है। मनुष्य सामाजिक (लोकबद्ध) प्राणी है। वह खुद को कर्मों के गुण-दोष का भागी समझता है। केवल अपने ही नहीं तो अपने सगे-संबंधियों के दोषों से उसे अपना सिर नीचा करना पड़ता है। लज्जित होने के कारण हैं-पुत्र की अयोग्यता, उसका दुर्व्यवहार, भाई के दुर्गुण, उसका अशिष्ट व्यवहार, हमारे मित्र की मूर्खता से लज्जा का अनुभव होता है। लेखक तो यहाँ तक कहते हैं कि हमारे संबंधी मनुष्य ही नहीं तो अपने पालतू कुत्ते की बदतमीजी पर लोग शर्म से सिर झुकाए पाए गये हैं। यदि हम बुरे के संग में हैं तो हमें सिर झुका लेना पड़ता है या सामने वाला मुँह फिरा लेता है।

यदि किसी बुरी घटना में मात्र हमारा नाम भी आ जाए तो हमें लज्जा होती है। अनजान में या किसी षड्यंत्र में गलतफहमी से फँस जाए तो हमें लज्जा और ग्लानि का अनुभव होता है।

6.4.4 लज्जा और ग्लानि का स्पष्टीकरण

अपमान होने पर क्रोध-लज्जा में, तुच्छता, ग्लानि में हीनता का अनुभव होता है। दूसरों के चित्त में हमारे प्रति प्रेम या प्रतिष्ठा का भाव होता है। उसका ह्रास किसी बुरी घटना के नाम मात्र के संबंध या केवल समझ लेने पर भी होता है। इसका समाधान न क्रोध से, न प्रतिकार से कर सकते हैं। माता कैकेयी के कारण भरत को इसी दशा का अनुभव होता है। राम उन्हें समझाते हैं। इस लज्जा को राम दूर करते हुए कहते हैं-

दोष देहि जननि ही बड़ तेई। जिन गुरू-साधु-सभा नहीं सेई।

ऐसा कहकर माता के दोष का परिहार किया है।

उत्तम मनुष्य वही है, जिसे अपने दुष्कर्म पर ग्लानि होती है। वह मनुष्य मध्यम माना जाएगा जो अपने दुष्कर्म के कड़वे फल पर ग्लानि का अनुभव करता है। यह कड़वा फल अपमान है। अपमानबोध बुरे काम करने वालों के लिए रोक सकता है। परन्तु उनका मुँह दूसरी ओर नहीं मोड़ सकता। अपमान के दो प्रकार की ग्लनि होती है-एक-तुच्छता का भाव, दो-बुरेपन का भाव जगना। तुच्छता का भाव अपनी कमजोरी, और दूसरों को बलवान होने का बोध कराता है। ऐसे में कुछ लोग अपमान करने वाले का अपमान कर देते हैं। तो बुराई के भाव से छुटकारा दोष देने वालों में दोष ढूँढ़ कर लेते हैं।

लोकमर्यादा की दृष्टि से हमें समर्थ होना चाहिए कि दूसरे हमारा अकारण अपमान करने का साहस न कर सके। कारण क्षमा और सहनशीलता वीरों का भूषण है। शुक्लजी एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। हमारे गुरुजी और एक गुंडा दोनों साथ दिखायी दे तब हमें पहले गुंडे का सत्कार करना चाहिए, बाद में गुरुजी को दण्डवत करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया तो वह तो दुष्ट हमें उठने लायक भी नहीं छोड़ेगा। यदि हममें सामर्थ्य नहीं है तो गुण्डे के भय से गुरुजी को प्रणाम नहीं कर पाएँगे, जिसकी हमें कई दिनों तक ग्लानि भोगनी पड़ेगी।

6.4.5 संकोच

लज्जा का एक छोटा रूप संकोच है। संकोच काम करने से पहले ही उत्पन्न हो जाता है। जैसे रूपया मांगने में संकोच, साफ बात कहने में संकोच, उठने-बैठने में संकोच, लैटने में संकोच, खाने-पीने में संकोच। इतना संकोच करना क्या बेवकुफी नहीं है। संकोच प्रतिबंधक है। सदाचार का, शिष्टाचार का आधार है। जिसमें शील, संकोच नहीं वह पूर्ण मनुष्य नहीं। परन्तु हमें यह ध्यान रखना है कि संकोच आंतरिक हो, बाहरी न हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संकोच बुद्धि द्वारा और मन द्वारा नियंत्रित होने वाला भाव है। संकोच से भलापन दिखायी देता है। संकोच का बंधन नहीं रहा तो छोटा मुँह, बड़ी बातें होगी। मेहमान घर का मालिक हो जाएगा।

6.4.5.1 संकोच का कारण

संकोच उत्पन्न होने का कारण है, जो कुछ हम कर रहे हैं वह किसी को अप्रिय तो न लगेगा? उससे हमारी अशिष्टता तो प्रकट नहीं होगी?

व्यावहारिकता तो यह है कि लिज्जा, ग्लानि, अपमान बोध संकोच को परस्पर अनुकूल (उचित) तालमेल के साथ अपनाए। तभी संसार के व्यवहार चलेंगे। मानको यदि एक इस बात का ध्यान रखता है, दूसरे से कोई बात न खटके, न बुरी लगे, तो दूसरे को उसकी हानि, कठिनाई का ध्यान रखना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो संकोच के कारण काम देरी से होगा, होगा ही नहीं। जो अपने संकोची स्वभाव की तारीफ करते हैं, वे दु:ख ही भोगा करते हैं।

लज्जा और संकोच की अधिकता से जीवन-व्यवहार मुश्किल हो जाता है। जैसे कुछ लोगों के मुँह से लज्जा या संकोच के मारे आदर सत्कार के शब्द नहीं निकलते, अनेक लड़कों को प्रणाम करने में लज्जा महसूस होती है। ऐसी लज्जा कोई काम की नहीं। साथ ही नए आदमी के सामने नहीं आते, बात नहीं करते, ऐसी प्रवृत्ति होने का कारण है उनके अभिभावक उन्हें बात-बात पर डाँटते, धिक्कारते, चिढ़ाते हैं।

6.4.6 स्त्रियों का गहना लज्जा नहीं

लज्जा का अनुभव स्त्रियों में अधिक होता है। उन्हें सिखाया जाता है अपनी गलती, खामी, बेढ़ंगापन, अशिष्टता का परिचय पुरुषों को न हो। पुरुषों की नजरों की हमें धृष्ट या अप्रिय न लगे। कारण हम उनके अधीन हैं। बार-बार अपने स्त्री-अभिभावकों के डाँटने-फटकारने-चिढ़ाने के कारण उनमें लज्जा चिरस्थायिनी हो जाती है। लोगों ने तो यहाँ तक कह दिया कि लज्जा स्त्रियों का भूषण है। आगे चलकर स्त्रियों का यही लज्जाभाव पुरुषों के लिए आनंद और विलास का साधन बन गाय। रसिक कवि गण मुग्धा-मध्या-नायिका की लज्जा का वर्णन कर अपने पाठकों में रसभाव जगाने में गर्व का अनुभव करने लगा।

6.4.7 महत्त्वपूर्ण बातें

6.4.7.1 लज्जा

(1) अपने विषय में दूसरों के मन में बुरी, हीन धारणा की आशंका अथवा निश्चय से अपने मन में उत्पन्न होने वाले संकोच के भाव को लज्जा कहते हैं।

(2) सिर झुकना, मुँह छुपाना, बोलते नहीं बनना लज्जा के अनुभाव हैं।

(3) लज्जा अपनी लोक निंदा के भय से उत्पन्न होती है।

(4) लज्जा दूसरों के कारण उत्पन्न होती है इसलिए एकांत में छुपकर लज्जा से बचा जा सकता है।

6.4.7.2 ग्लानि

(1) अपनी बुराई, मूर्खता, हीनता के अहसास से अपने मन में उत्पन्न संताप है।

(2) ग्लानि से चित्तवृत्तियाँ शिथिल हो जाती हैं।

(3) ग्लानि का भाव एकांत में भी गलाता है।

(4) ग्लानि से परिवतर्तन/बदलाव की शुरुआत होती है।

(5) अपमान बोध ग्लानि में उत्पन्न होता है, जो बुरे काम से रोकती है।

6.4.7.3 संकोच

(1) लज्जा का छोटा रूप संकोच है। संकोच कार्य से पहले ही उत्पन्न होता है। संकोच अशिष्टता के भय से उत्पन्न होता है।

(2) अनावश्यक संकोच से हमारे काम रूक जाएँगे। हम निरीह भोले आदमी माने जाएँगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(3) संकोच बच्चों में अधिक पाया जाता है। कारण उनके अभिभावक बात-बात पर उन्हें डाँटते, नीचा दिखाते हैं।

(4) पुरुषों द्वारा लज्जा स्त्रियों का आभूषण माना गया। स्त्रियाँ पुरुषों के आश्रित होती हैं। स्त्रियाँ मनोरंजन की वस्तु पुरुषों की दृष्टि में रही है।

(5) लज्जा, ग्लानि, संकोच, अपमान बोध का सामंजस्य ही सफल जीवन का सूत्र है।

6.4.8 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए-

1. लज्जा किसे कहते हैं?
2. ग्लानि की परिभाषा क्या है?
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चित्त के तीन गुणों के आधार पर तीन मनोभावों का उल्लेख कैसे किया है?
4. संकोच का क्या कारण है?
5. स्त्रियों को क्या सिखाया जाता है?

एक वाक्य में उत्तर दीजिए-

1. लज्जा के क्या अनुभाव हैं?
2. कौन-सा भाव एकांत में भी गलाता है?
3. अनावश्यक संकोच से क्या होता है?
4. स्त्रियों का आभूषण, पुरुषों द्वारा किसे माना गया है?
5. सफल जीवन का सूत्र क्या है?

6.4.9 शब्दार्थ

निमग्न-तल्लीन; लिहाफ-रजाई; निधेय-उचित; बन्ध्या-बाँझ; अवरोध-बाधा; विगतमान-विगत, बीता हुआ; भीरू-डरपोक; भलमनसाहत-अच्छाई, सीधापन।

6.4.10 स-संदर्भ स्पष्टीकरण

''जो संसारत्यागी या आत्मत्यागी हैं उनका विगतमान होना तो बहुत ठीक है, पर लोकव्यवहार की दृष्टि से अनिष्ट से बचने-बचाने के लिए इष्ट यही है कि हम दुष्टों का हाथ थामे और धृष्टों का मुँह-उनकी वंदना करके हम पार नहीं पा सकते।''

संदर्भ-उपर्युक्त पंक्तियाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित निबंध ''लज्जा और ग्लानि'' की है। निबंधकार शुक्ल ने 'चिन्तामणि' में भाव या मनोविकारों से संबंधित विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं।

स्पष्टीकरण-'लज्जा और ग्लानि' ये ऐसे भाव हैं, जिस्का सामना हर एक व्यक्ति को कभी-न-कभी करना ही पड़ता है। कोई कार्य अपने हाथ से ऐसा हो जाता है, जिसे याद कर या दूसरों के अपने बारे में मत जानकर लज्जा या ग्लानि का भाव निर्माण होना स्वाभाविक है।

अकारण किसी के द्वारा अपमान होने पर उत्पन्न ग्लानि अपनी सामर्थ्यहीनता के कारण होती है। इसलिए शुक्लजी कहते हैं, इससे अगर बचना है तो हमें शक्तिशाली, सामर्थ्यवान बनना है तभी हम अपमान करने वाले का मुँह तोड़ जवाब दे सकते हैं। कारण समाज में रहते हुए मान-मर्यादा के भाव को छोड़ा नहीं जा सकता। अपने मान-अपमान से परे या संसार से मुक्त व्यक्ति तो उसे सहज भूला सकता है पर हमारे लिए जो लोकव्यवहार का पालन करते हैं-यही उचित है कि दुष्टों का हाथ मरोड़कर सामर्थ्य का परिचय दें, वहीं धृष्टता करने वालों का मुँहतोड़ जवाब भी। इनके साथ नम्रता या वंदना करके हम पार नहीं पा सकते।

विशेषता-इस निबंध में लेखक चाहे जिस प्रकार से हो चतुराई से, हाथ जोड़कर, वंदना करके या शक्ति से अपने आपको बचाने की बात कहते हैं। समय देखकर ही हमें कोई काम करने की चेतावनी लेखक ने इसके द्वार दी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.4.11 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न

1. हमें लज्जा का अनुभव क्यों और किस बात पर होता है?
2. लज्जा और ग्लानि में क्या अंतर है?
3. अपमान से कौन-सा भाव निर्माण होता है?
4. संकोच को स्त्रियों का आभूषण कहना कहाँ तक उचित है? पक्ष-विपक्ष में उत्तर दीजिए।

6.4.12 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए-

1. दूसरो के मन में अपने विषय में बुरी या तुच्छ धारणा होने के निश्चय अथवा आशंका से उत्पन्न होने वाले चित्तवृत्तियों को लज्जा कहते हैं।
2. अपनी बुराई, मूर्खता, तुच्छता का एकांत में अनुभव करने पर चित्तवृत्तियों के शैथिल्य को ग्लानि कहते हैं।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चित्त के तीन गुणों के आधार पर तीन मनोभावों का उल्लेख किया है, जिनका चित्त सात्विक होगा, उनमें ग्लानि प्रकट होगी। जिनका चित्त राजसी होगा, उनमें लज्जा प्रकट होगी और जिनका चित्त तामसी है, उनके मन में भय प्रकट होता है।
4. संकोच उत्पन्न होने का कारण है, जो कुछ हम कर रहे हैं, वह किसी को अप्रिय तो न लगेगा। उससे हमारी अशिष्टता तो प्रकट नहीं होगी।
5. स्त्रियों को सिखाया जाता है-अपनी गलती, खामी, बेढ़ंगापन, अशिष्टता का परिचय पुरुषों को न होने दें।

वाक्य मे उत्तर लिखिए-

1. लज्जा के अनुभव हैं-सिर ऊपर नहीं उठना, मुँह छुपाना, साफ-साफ बात कहते नहीं बनना।
2. ग्लानि का भाव एकांत में भी गलाना है।
3. अनावश्यक संकोच से हमारे काम रूक जाते हैं।
4. पुरुषों द्वारा स्त्रियों का आभूषण लज्जा को माना गया है।
5. लज्जा, ग्लानि, संकोच अपमानबोध का सामंजस्य ही सफल जीवन का सूत्र है।

6.5 भारतीय साहित्य की एकता
आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी (1884-1951)

6.5.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी शुक्लोत्तर आलोचकों में शीर्षस्थ है। वे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सच्चे उत्तराधिकारी के रूप में जाने जाते हैं। बाजपेयी जी ने न केवल छायावादी काव्य की अंतःचेतना की समर्थ व्याख्या की अपितु साहित्य की सामाजिक तथा प्रगतिशील भूमिका की भी विवेचना की। वाजपेयी जी का जन्म 1906 में जिला उन्नाव के कान्यकुब्ज कुल में हुआ। इनके पिताजी हिन्दी साहित्य के ज्ञाता थे। हिन्दी साहित्य के प्रति रूचि उन्हें विरासत में प्राप्त हुई एम.ए. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सर्वोत्तम स्थानसे उत्तीर्ण किया। सागर विश्वविद्यालय से उन्होंने पी-एच.डी. प्राप्त की।

हिन्दी साहित्य : बीसवी शताब्दी, जयशंकर प्रसाद, आधुनिक साहित्य, नया साहित्य : नये प्रश्न आदि उनकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। इन्होंने 'भारत' नामक पत्र का सम्पादन, नागरी प्रचारिणी सभा में 'सूरसागर', 'गीताप्रेस गोरखपुर में 'श्रीरामचरितमानस' का सम्पादन भी किया है। नंददुलारे वाजपेयी ने आलोचनात्मक एवं वैचारिक निबंध भी लिखे हैं।

6.5.2 निबंध का सारांश

6.5.2.1 एकता से तात्पर्य

भारतीय साहित्य की एकता से आशय है, भारत की भाषाओं की साहित्यिक समानता। भारतीय भाषाओं के साहित्य में हल्का-सा अंतर दिखायी देता है परन्तु प्रवृत्तियाँ एक-सी ही हैं। इसका कारण है हमारी संस्कृति और हमारा चिंतन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रत्येक भाषायी साहित्य की अपनी-अपनी खासियत है। मराठी में नाटक तथा वैयक्तिक निबंध विधा अधिक समृद्ध है। इस विविधता के भीतर भी हमें एक मूलभूत एकता दिखायी देती है, जो भारतीय साहित्य की एकता है।

भारतीय साहित्य में आदान-प्रदान की समृद्ध परम्परा है। जैसे बंगला में रविन्द्रनाथ ठाकुर की कविताएँ, बंकिमचन्द्र के उपन्यास और द्विजेन्द्र के नाटक में चित्रित आधुनिकता बोझ हिन्दी में इन्हीं के कारण आया।

6.5.2.2 साहित्य की एकता

लोग प्रश्न उठाते हैं कि भारतीय साहित्य की एकता की बात क्यों सोची जाए? विश्व साहित्य की बात क्यों नहीं की जाती? इस प्रश्न के उत्तर दो दृष्टियों से प्राप्त होते हैं। एक तो यह कि भारत के अपने दार्शनिक और सांस्कृतिक आदर्श हैं। अन्य देश के लोग इसे भारतीय की तरह नहीं अपना सकते। कोई भी देश अपनी साहित्यिक परम्परा से नाता नहीं तोड़ सकता। कारण वर्तमान पर अतीत का प्रभाव पड़ता है। भारत की साहित्यिक परम्परा अतिशय पुरानी और समृद्ध है। इसलिए हम अपनी विरासत को त्याग कर दूसरे साहित्य का छिछला अनुकरण नहीं करेंगे। विदेशी साहित्य से हम परिचय अवश्य रखेंगे और जो उचित है, वही अपनाएँगे। हम आँखें बंद कर जो भी नया है वह नहीं अपनाएँगे। हमारे देश के लिए प्रगति का उचित मार्ग स्वाभाविक विकास का है, क्रांति का नहीं।

आज साहित्य की एकता पर बल देने की बहुत आवश्यकता है। विघटन और अलगाववादी शक्तियाँ बलवान हो गयी है। समूचे विश्व को आतंक ने घेर लिया है। संक्रमण काल में भारत अपने साहित्य, कला और जीवन-दर्शन द्वारा संसार को दिशा-दिग्दर्शन कर सकता है। समूचे विश्व की यही आस है।

6.5.2.3 साहित्य की मूलभूत एकता

भारतीय प्राचीन साहित्य में एक मूलभूत एकता दिखायी देती है। सभी प्रदेशों के महान साहित्यकारों को यहाँ समान सम्मान मिलता है। जैसे-वाल्मिकी, कालिदास इन साहित्यकारों को सभी प्रांतों के लोग किसी-न-किसी रूप से अपने प्रांत से जोड़ते हैं। और यह भी सच है कि ये साहित्यकार किसी भाषा-विशेष या प्रांत-विशेष के न होकर समूचे भारतीय मानस के हैं।

हमारे यहाँ विविधता में एकता की चेष्टा हमेशा से की जा रही है। साहित्यकारों ने इसमें विशेष योगदान दिया है। वैदिक साहित्य ने एक-सी धार्मिक भावना, यज्ञ प्रणाली, एक-सा दार्शनिक विचार सम्पूर्ण देश में प्रतिष्ठित किया। आज भी भारतीय घरों में वैदिक संस्कार विधि प्रचलित है। रामायण का 'राम' चरित्र समूचे भारत के लिए गरिमामय और आदर्श मानव का प्रतिरूप है। ऐसा कोई नहीं कहता राम उत्तर के हैं, हम दक्षिण के हैं। लंका का राजा रावण दक्षिण का होते हुए भी दक्षिणोत्तर निंदनीय ही है। कालिदास-भवभूति भारतीय वैभव युग के कवि हैं। जहाँ सम्पूर्ण आशावादिता और उत्कर्ष का समवाय हुआ है। संस्कृत की चरम प्रगल्भता का द्योतक इन दोनों का साहित्य है, जो भारतीय गौरव का गान करता है। महाकाव्य का सृजन चरम उत्कर्ष के काल में होता है। जैसे ग्रीम रोमन में वर्जिल का महाकाव्य वैसे ही भारत में माघ, भारवी की रचनाएँ हैं। जिनके एक-एक श्लोक पाँच-पाँच, सात अर्थ देते हैं। ये भाषा की चरम सिद्धि का ही परिणाम है।

भट्टि काव्य साहित्यिक ग्रंथ है और व्याकरण ग्रंथ रूप में भी समादर पाता है। महाकाव्यों के पश्चात् जयदेव ने मधुर गीतों को लिखकर भारतीय साहित्य को माधुरी से आपूरित कर दिया। इन्हीं के बाद चंडीदास (बंगाल), विद्यापति (मिथिला), कबीर, तुलसी, सूर (उत्तरी भारत), ज्ञानेश्वर, तुकाराम (महाराष्ट्र), नरसी मेहता (गुजरात), मीराँबाई (राजस्थान) ने गीतिपदों की परंपरा विकसित की। दक्षिण में आलवार संतों ने भक्तिगीत रचनाएँ प्रस्तुत की। यह समय समूचे भारतवर्ष में प्रतिभा का उत्कर्षकाल है। ये सभी कवि एक ही प्रेरणा (धार्मिक) से परिचालित हुए हैं। 14वीं से 17वीं शताब्दी तक समूचे भारतीय साहित्य में एक ही आवाज गूँज रही थी, जो लोकातिक्रांत शक्ति में चरम विश्वास रखने वाली बलवती लोकध्वनि थी। पूरा भारतवर्ष भक्तिभावना से ओतप्रोत साहित्य सृजन कर रहा था।

6.5.2.4 एकता की बाधाएँ

यह तो हुई प्रौढ़ता की बात परन्तु ह्रास, पतन, अवरोह के युग में भी भारतीय साहित्य अपना एकता का स्वर नहीं भूलता। हिन्दी साहित्य का रीतिकाल मुसलमानी साम्राज्य और फारसी साहित्य का परिणाम रहा है। शृंगारी कविता, नायिका भेद की रचनाएँ, दरबारी साहित्य भारत के सभी प्रांतों, सभी भाषाओं में निर्मित हुआ (मराठी में इस कविता को पंत काव्य कहते हैं)। यही नहीं चित्रकला और संगीत में भी समानता दिखायी है। शैलियाँ और कलमें भर बदली हैं, स्वर नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अंग्रेजों के आने पर भारत पर कई प्रभाव पड़े। साहित्यिक प्रतिक्रिया विलक्षण रूप से समान हुई। विदेशी सभ्यता की चकाचौंध, पुनरुत्थान, राष्ट्रीयता, स्वच्छंदता-ये सारे सोपान सभी प्रांतों में एक-से पाये जाते हैं। समय और क्रम में अंतर हो सकता है। प्रतिभा के वैशिष्ट्य का भी अंतर है। प्रादेशिक संस्कृति का भी अंतर रहा है। परन्तु भावभूमि में कोई बड़ा अंतर नहीं आया।

भारत के विभिन्न भाषाओं के लेखक और विद्वान थोड़े साशंकित हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषा होने से प्रादेशिक भाषा और उसके साहित्य को क्षति पहुँचेगी। वह शंका निर्मूल है। भारतीय साहित्य का इतिहास साक्षी है कि साहित्य देश को विभाजित करने का साधन नहीं रहा है। काव्य विविधता में निहित एकता प्रमुख विशेषता है।

इतिहास इस सच्चाई की ओर संकेत करता है कि जब कभी देश की भाषा-साहित्य की संयोजक शक्ति (एकता-क्षमता) कम हुई, विदेशी प्रभाव बढ़े तब सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में मुसीबत आयी। गुलामी के फेर में पड़ना पड़ा है। यह राष्ट्र का बुरा वक्त रहा है।

इसलिए हमारी राष्ट्रीय एकता का प्रेरणास्रोत भारतीय साहित्य की एकता का आदर्श है, रहेगा।

6.5.3 महत्त्वपूर्ण बातें

नंददुलारे वाजपेयी ने इस वैचारिक निबंध में भारतीय साहित्यिक एकता के स्वर को पहचान कर राष्ट्रीय, सामाजिक, राजनीतिक आदर्श का मानदण्ड बताया है। पाश्चात्य साहित्यिक प्रवृत्तियों के अंधानुकरण से यहाँ के साहित्य का मुख्य स्वर खंडित हो सकता है और हम खतरे में पड़ सकते हैं। भारतीय साहित्य की प्राचीन समृद्ध परम्परा, जो एकता के स्वर का गान करती है-को अनसुना नहीं करना चाहिए। हमें सजग रहना होगा कि यह स्वर कभी मंद-बंद न हो।

6.5.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

एक वाक्य में उत्तर लिखिए-

1. भारतीय साहित्य की एकता से क्या आशय है?
2. महाकाव्य का सर्जन कब होता है?
3. 14वीं से 17वीं शताब्दी तक पूरा भारतवर्ष किस प्रकार के साहित्य का सृजन करता रहा?
4. हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने से किस भाषा को क्षति पहुंचेगी, ऐसा विद्वानों का मानना है?
5. हमारी राष्ट्रीय एकता का प्रेरणास्रोत क्या रहा है?

जोड़ियाँ बनाइये-

(1) विद्यापति	(अ) राजस्थान
(2) ज्ञानेश्वर	(ब) मैथिली कवि
(3) मीरां बाई	(क) महाराष्ट्र
(4) नरसी मेहता	(ड) बंगाल
(5) चंडीदास	(इ) गुजरात

6.5.5 शब्दार्थ

जनपद-जिला, उपप्रदेश (स्थानिक क्षेत्र); अभीष्ट-इच्छित; क्षीयमान-कमजोर, क्षीण; कदरीय-सम्मानजनक; कालिदास, माघ, भारवि-गुप्तकालीन संस्कृत महाकवि-इन्होंने संस्कृत में प्रौढ़ रचनाएँ लिखी।

6.5.6 स-संदर्भ स्पष्टीकरण

''इतिहास इस तथ्य की और संकेत करता है कि जब कभी हमारे देश में भाषा और साहित्य की यह संयोजना शक्ति कम हुई है, और पृथक्ता तथा विदेशी प्रभावों का प्रबाल्य हुआ है, तब-तब सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में संकट आया है और हमें राष्ट्रीय दुर्दिन देखने पड़े हैं।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संदर्भ–से पंक्तियाँ आचार्य नंददुलारे वाजपेयी द्वारा लिखित निबंध 'भारतीय साहित्य की एकता' से ली गयी है। जिसमें लेखक ने भारतवर्ष के साहित्य में पाई जाने वाली प्रवृत्तिगत समानता पर विचार प्रस्तुत किये हैं।

स्पष्टीकरण–लेखक का मत है कि भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्य में थोड़ा अंतर अवश्य है किंतु उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ बहुत कुछ एक है। यह साहित्यिक एकता राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है। विभिन्न युगों की साहित्यिक प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए लेखक ने यह सिद्ध किया है कि देश में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता स्थापित करने में हमारे यहाँ के साहित्यिक प्राचीन काल से योगदान देते आ रहे हैं। जहाँ ऐसा नहीं हुआ उस-उस समय हमारी राष्ट्रीय संस्कृति और राष्ट्रीय एकता खतरे पड़ी है।

विशेषता–इस वैचारिक निबंध में लेखक ने साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए यह तथ्य रखा है कि भारतीय साहित्य की एकता का आदर्श ही राष्ट्रीय एकता के लिए प्रेरणास्रोत के रूप में कार्य करता रहा है।

6.5.7 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न

1. भारतीय साहित्य की एकता को लेकर लेखक ने कौन-से विचार प्रस्तुत किए हैं?
2. 'राष्ट्रभाषा हिन्दी के हो जाने से प्रादेशिक भाषा-साहित्य को क्षति पहुंचेगी' यह मत लेखक ने कैसे झूठा साबित किया है।
3. भक्तिकालीन साहित्य भारतीय भाषाओं में कैसे समान रहा-स्पष्ट कीजिए?
4. विदेशी साहित्य और प्रवृत्तियों के अनुकरण पर लेखक के क्या विचार हैं?

6.5.8 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

एक वाक्य में उत्तर लिखिए-

1. भारतीय साहित्य की एकता से आशय है, भारत की भाषाओं में साहित्यिक समानता है।
2. महाकाव्य का सृजन चरम उत्कर्ष के काल में होता है।
3. 14वीं से 17वीं शताब्दी तक पूरा भारत वर्ष किस तरह के साहित्य का सृजन करता रहा।
4. प्रादेशिक भाषा तथा उसके साहित्य को क्षति पहुचेगी।
5. भारतीय साहित्य की एकता का आदर्श ही राष्ट्रीय एकता का प्रेरणास्रोत है।

जोडि़याँ बनाइये-

(1) ब (2) क (3) अ (4) इ (5) ड

6.6 तुलसी साहित्य के सामंत विरोधी मूल्य
डॉ. रामविलास शर्मा (1912-2005)

6.6.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य

डॉ. रामविलास शर्मा का जन्म 10 अक्टूबर, 1912 में उन्नाव जिले के ऊँचागाँव सानी में हुआ। उन्होंने अंग्रेजी में लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. किया तथा पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आगरा के राजा बलवंत सिंह कॉलेज में वे कई वर्षों तक अंग्रेजी के प्राध्यापक थे। तत्पश्चात् क.मा. मुन्शी हिन्दी विद्यापीठ आगरा के निर्देशक पद पर भी कार्य किया। आगरा विश्वविद्यालय ने अविस्मरणीय साहित्यिक योगदान हेतु डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की।

डॉ. रामविलास शर्मा पहले तारसप्तक के कवि हैं। 'रूपतरंग', 'ऋतुसंहार' इनके काव्य विषयक ग्रंथ हैं। डॉ. रामविलास शर्मा कवि से अधिक आलोचक, भाषाशास्त्री और इतिहासकार के रूप में ख्यात हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, प्रेमचंद और उनका युग, निराला की साहित्य साधना, नई कविता और अस्तित्ववाद, परंपरा का मूल्यांकन, मार्क्सवादी और प्रगतिशील साहित्य, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण आदि आलोचना विषयक ग्रंथ हैं। इसमें उनका प्रमुख स्वर हिन्दी साहित्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की व्याख्या, प्रगतिवादी का रहा है। भाषा और समाज, भारत के प्राचीन भाषा-परिवार और हिन्दी (तीन खण्ड) प्रकाशित हैं। आलोचक, भाषा-विज्ञान, कवि डॉ. रामविलास शर्मा ने निबंधों का सृजन भी किया है। उन्होंने साहित्य, कला, संस्कृति तथा राजनीति संबंधी सौ से भी अधिक निबंधों की रचना की है। उन्होंने अपने निबंधों में प्रगतिवादी दृष्टिकोण से विषय का प्रतिपादन किया है। विराम-चिह्न, पंचदल, स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य ये इनके निबंध संकलन हैं।

6.6.2 निबंध का सारांश

तुलसी साहित्य विद्वानों को अनुकूल और प्रतिकूल सोचने के लिए आकृष्ट करता रहा है। तुलसी का साहित्य, भाषा, संस्कृति और राष्ट्र की अद्भुत धरोहर है। तुलसी द्वारा रचित 'श्रीरामचरितमानस' मानव-संस्कृति का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने तुलसीदास जी के साहित्य के सामंत विरोधी मूल्यों को विविध उदाहरणों, उद्धरणों से आलोचनात्मक प्रणाली से समझाया है। आलोचकीय निरपेक्षता और चिंतन प्रधानता का सामंजस्य इस वैचारिक निबंध में हुआ है।

6.6.2.1 अनुकूल-प्रतिकूल मत

तुलसीदास ने 'श्रीरामचरितमानस' लिखकर इस्लाम के आक्रमण से हिन्दू धर्म की रक्षा की और चरित्रों के द्वारा अमर आदर्शों की स्थापना की। ऐसी तुलसीदासजी के साहित्य के संबंध में अनुकूल मत वाला वर्ग है।

दूसरा मत ऐसा है तुलसीदासजी ने वर्णाश्रम व्यवस्था के भंग होने के बावजूद भी ब्राह्मणवाद का समर्थन किया। नारी की पराधीनता को आदर्श माना और जनता को भक्ति की अफीम में सुला दिया। ऐसे अनुकूल-प्रतिकूल मत का सार है कि भारत की विविध संस्कृति की एकता के निर्माण में तुलसी साहित्य कोई मदद नहीं करता।

भारत में सभी भाषाओं में भक्तिकवियों की बाढ़-सी आ गयी थी। जनता की भाषा में जनता से संबंधित रचना लिखी गयी। प्रेम को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया। भले ही यह प्रेम प्रेममार्गियों का हो, निर्गुणियों का हो, सगुणियों का हो, राम का हो या कृष्ण के प्रति हो, हिन्दू-मुसलमान, सवर्ण-अछूत सभी एक ही स्वर में रचनाएँ गाने लगे थे। भक्ति के इस आंदोलन की नींव क्या है? क्या यह देवेच्छा है? या मार्क्सवादियों के मत से समाज-व्यवस्था का मानसिक प्रतिबिंब है? भक्ति आंदोलन पुराने सामंती संबंधों का प्रतिबिम्ब है या विशुद्ध कल्पनाजन्य आंदोलन है? इन दोनों प्रश्नों से हमें भक्ति-आंदोलन का ऐतिहासिक महत्त्व पूर्णरूपेण से ज्ञात नहीं होता।

6.6.2.2 सामंती प्रभुता टूटने के कारण

सच तो यह है कि सामंती संस्कृति की प्रभुता जो परंपरा से चली आ रही थी, टूटने लगी। पुरोहितों के खिलाफ अब तक एक शब्द भी न बोलने वाले लोग खुले आम चुनौती देने लगे। इससे ज्ञात होता है कि सामंती व्यवस्था कमजोर हो गयी थी। इसके अन्य कारण हैं-

(1) नहरों-सड़कों से यातायात के साधन विकसित हुए, जिससे सम्पर्क बढ़ा।

(2) एक ही मुद्रा के चलने से व्यापार बढ़ा।

(3) काश्तकारों से सीधा सम्पर्क होने से अलगाव कम हुआ।

(4) लड़ाई में बारूद के इस्तेमाल से जागिरदारों की स्वच्छंदता कम हुई।

(5) यूरोपीय व्यापारी बड़े पैमाने पर आए।

(6) आजादी के लिए लोगों ने संघर्ष किये।

इन सबसे पुराना सामंती ढ़ांचा क्षत-विक्षत हो गया। एकता की अनुभूति से अलगाव खत्म हुआ और राष्ट्रीयता के रूप में संघटन हुआ। भक्ति-आंदोलन इस राष्ट्रीय आंदोलन का ही प्रतिबिम्ब है।

व्यापारी, जुलाहे (बुनकर), कारीगर, किसान ने सामंती अलगाव को खत्म किया।

ऊपरी तौर पर भक्तों ने संसार से मुक्ति पाने की कोशिश की। काम, क्रोध, मद, लोभ, मनोविकारों से संघर्ष किया। मन:शुद्धि की बात ये भक्त करते हैं। इसी कारण गांधीवादी इनके साहित्य को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा इसका ऐतिहासिक तथ्य, वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.6.2.3 मुक्ति-सामान्य का अधिकार

उस समय मुक्ति और धर्म पर पुरोहित और राजाओं का अपना विशेष अधिकार था। प्रत्येक वर्ण के लिए कर्मकाण्डों की कठोर व्यवस्था इन्होंने तैयार की थी। इस व्यवस्था को तोड़ने वाले को कठोर दण्ड का प्रावधान भी कर रखा था। इसकी प्रतिक्रिया में लोगों ने सांसारिक बंधनों से मुक्ति पाने का अपना अधिकार घोषित किया। सामंतों-पुरोहितों के खिलाफ का यह संघर्ष धार्मिक हुआ, जो उस समय की आवश्यकता थी।

यह सांस्कृतिक आंदोलन निष्क्रियतावादी माना जाता है। कारण इसका कोई एक नेता नहीं था।

गोस्वामी तुलसीदास कहाँ तक भक्ति आंदोलन का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा उनके विचार हमारे सांस्कृतिक विकास में आज कैसे सहायक हो सकते हैं? इन प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में हम विचार करेंगे।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में विप्र-पद पूजा को बहुत बड़ा धर्म माना है और शूद्रों के अपना वर्ण-धर्म त्यागने पर क्षोभ प्रकट किया है। इससे दिखाई देता है कि वे पुरानी व्यवस्था को बनाए रखना चाहते हैं। सच्चाई यह है कि वर्ण-धर्म के समर्थक पुरोहितों ने तुलसीदासजी को सताया था। तुलसी को निर्धनता, अकुलीनता का अपमान बचपन में सहना पड़ा। पर जब उन्हें लोकप्रियता मिली, तब उनके विरोधी लोग उनकी जाति की चर्चा पर उपहास करते थे। इस पर वे कहते जो गोत्र राम का है, वही गोत्र उनके सेवक तुलसी का भी है। विनय-पत्रिका में उन्होंने लिख ही दिया कि आप मेरे कुल-गोत्र की इतनी चिंता क्यों करते हो? चाहे कोई मुझे बेटी दे या चाहे कोई मेरी बेटी से शादी न करे। (धूत कहो, अवधूत कहो) मुझे किसी से लेना-देना नहीं है।

6.6.2.4 वर्ण और जाति व्यवस्था को चुनौती

तुलसीदासजी ने वर्ण और जाति व्यवस्था को कवितावली में व्यंग्यभरी चुनौती दी है। तुलसी ने सभी जातियों और वर्णों के लोगों को मिलाने वाली भक्ति की है।

तुलसीदासजी ने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों को मिलाया है। अपनी एक रचना में उन्होंने मांगकर खाना और मस्जिद में सोने की बात कही है। तुलसीदासजी के राम जातिहीन व्यक्तियों को अपनाते हैं। देहावली, पार्वती-मंगल रामचरितमानस में उन्होंने अकुलता का उल्लेख किया है। तुलसीदासजी की भक्ति, वर्ण, जाति, धर्म आदि के कारण किसी को बहिष्कृत नहीं करती। आभीर, यवन, किरात, खस, स्वपच आदि निम्न जातियों के लोग भी राम का नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं। ऐसा कहकर उन्होंने राम की उपासना का मार्ग सबके लिए खोल दिया। तुलसीदासजी कोल-किरातों को भी नहीं भूलते। (मुगल बादशाह जंगल में जाकर इन्हें पकड़ते थे और काबुल में जाकर बेच देते थे। ब्रिटिश शासन ने भी इन्हें गाँव बहिष्कृत जाति घोषित किया है)। केवट-निषाद जैसे नीची जाति के लोग राम का प्यार प्राप्त कर भरत-लक्ष्मण का-सा दर्जा पा लेते हैं। राज्याभिषेक के समय निषाद को अयोध्यावासी लक्ष्मण जैसा आदर सत्कार करते हैं। जब निषाद विदा लेता है तब राम स्वयं कहते हैं ''तुम मम सखा भरतसम भ्राता''। तुलसीदास ने अपने आदर्श राम-राज्य को वर्णहीन नहीं माना है। फिर भी सरयू के राजघाट पर चारों वर्णों के लोग एक साथ नहाते जरूर हैं।

'श्रीरामचरितमानस' के उत्तरकांड में हम तुलसी को इस बात पर शोक प्रकट करते देखते हैं कि शूद्र, ब्राह्मणों की बराबरी करने लगे हैं। ऐसा होने के दो कारण हो सकते हैं पहला तो यह कि उनके विचारों में अन्तर्विरोध है या दूसरा पुरोहितों ने अपने काम की बात मिला दी है। इससे पूर्व भी लोकप्रिय रचनाओं में पुरोहितों ने अपने स्वार्थ की अनुकूल बातों को घुसेड़ दिया है। जबकि तुलसी ने कभी पुरोहितों की खुशामद नहीं की, कभी किसी से अपनी पूजा नहीं करवाई। तुलसीदास के राम सबको एक समान समझते हैं। तुलसीदास ने जो काम भक्ति के द्वारा किया वह आज मानववाद और जातीय पुनर्जागरण के माध्यम से कर रहे हैं।

6.6.2.5 स्त्रियों के प्रति नया दृष्टिकोण

जो व्यवहार पुरोहित वर्ग ने निम्न जातियों के साथ किया था, वैसा ही व्यवहार स्त्रियों के साथ किया। स्त्रियों को उच्च शिक्षा और उपासना से वंचित किया गया। तुलसीदास ने स्त्रियों के लिए उपासना के द्वार खोल दिये। जनकपुर, अयोध्या, चित्रकूट हर जगह स्त्रियों की भीड़ दिखायी देती है। ग्रामीण स्त्रियाँ, सीता से बातचीत करती है। सीता के पैर छूती और सदा सुहागिन होने का आशीष देती है। राम जब पुन: अयोध्या आते हैं तो खुशी के समुद्र के उफान की लहरें स्त्रियाँ ही है। इन उद्धरणों से यह ज्ञात होता है कि पति ही ईश्वर है। सामंती समाज की पतिभक्ति पर तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में टिप्पणी की है। जहाँ उमा अपनी माँ से बिदा लेती है। तब माँ उसे पति की सेवा का उपदेश देती है। (नारि धरम पतिदेव न दुजा)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तो दूसरी तरफ कह देती है, 'पराधिन सपनेहु सुख नाही'।

तुलसीदासजी स्त्रियों को ये कहने में नहीं हिचकिचाते कि पराधीन को सपने में भी सुख नहीं। आलोचक तुलसीदास को नारी विरोधी मानते हैं। उद्धरण प्रस्तुत करते हैं।

''ढोल गँवार शुद्र पशु नारि। ये सब ताड़न के अधिकारी।''

क्या तुलसीदासजी इतने निर्मम थे? जो एक तरफ कहते हैं, पराधीन को सुख नहीं और नारी पराधीन है तो दूसरी तरफ ऐसा कैसे भला कह सकते हैं, नारी ताड़न की अधिकारी है? पुरुषी सामंती लोगों की यह करामात है कि उन्होंने प्रासंगिक ढ़ंग से यह पंक्ति डाल दी है।

सामंती व्यवस्था में स्त्री और पुरुषों के लिए अलग-अलग धर्म है जबकि तुलसी के रामराज्य में दोनों के लिए एक ही नियम है। स्त्री-पुरुष एकव्रतधारी हो ऐसा तुलसी ने दिखाया है। सीता और राम एकव्रतधारी हैं। परन्तु सामंती समाज चर्चा करता है, सीता के पतिव्रत्य की, राम के एकपत्नीव्रत पर चुप हो जाता है। दूसरे, सामंती समाज में शादी पहले होती है, प्रेम बाद में जबकि तुलसी ने राम-सीता के विवाह में प्रेम की परिणति विवाह बताया है और रूढ़ी को तोड़ने का साहस किया है।

6.6.2.6 तुलसी के अन्य पक्ष

(क) कवि तुलसी

तुलसी मात्र भक्त नहीं वे प्रेम और सौन्दर्य के कवि भी हैं। विवाह मंडप में सीता अपने कंगन के नग में राम के प्रतिबिम्ब को अपलक निहारती है। सीता के अनुपम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तुलसी ने की है। आज की अर्धसामंती व्यवस्था में प्रेम-सौन्दर्य की भावनाएँ बुरी तरह कुचली गयी है। विवाह का आधार कुल और सम्पत्ति हो गये हैं। पत्नी का दायित्व है बच्चे पैदा करें। कारण प्रेम करने के लिए प्रेयसी अलग होती है। वे मानते हैं, सामंती व्यवस्था खत्म होने पर नारी कवियों की नायिका न रहकर श्रमिका, समान अधिकारवाली नागरिक हो जाएगी।

(ख) तुलसी का ज्ञान पक्ष

तुलसीदासजी ब्रह्मचर्य से तपस्या द्वारा प्राप्त ज्ञान का आदर्श भी नहीं रखते। नारद को बंदर का चेहरा मिलता है और वे नारी के पीछे दौड़ते हैं। विंध्यवासियों को जब खबर मिलती है तब तपस्वी खुश होते हैं कि अहिल्या उद्धारक राम के आने से शिलाएँ चन्द्रमुखी हो जाएँगी। तुलसी गृहस्थ धर्म को महत्त्व देते हैं और अहिल्या उद्धारक राम के आने से शिलाएँ चन्द्रमुखी हो जाएँगी। तुलसी गृहस्थ धर्म को महत्त्व देते हैं और योगवादियों के सहज विरोधी हो जाते हैं। योग के चमत्कारों को तुलसीदास सामंती व्यवस्था में ही पाते हैं। तुलसीदासजी रूप को नाम के अधीन मानते हैं। नाम से अर्थ है-भाषा। रूप का अर्थ है-अर्थ। वाणी और अर्थ की एकता की वे घोषणा करते हैं। नाम के बिना ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता। इसलिए वे नाम को ब्रह्म से भी बड़ा मानते हैं। अगोचरता को खारिज कर दिया। इस कारण वे लीला को महत्त्व देते हैं। जो संसार को मिथ्या मानते हैं, उन्हें तुलसीदास गंवार कहते हैं। तुलसीदासजी का यह मत जीवन-दर्शन के निकट हैं। तुलसीदासजी ने सभी देवी-देवताओं को राम-भक्ति के आधार पर एक किया।

(ग) मानव भक्ति

तुलसी की भक्ति मानववाद में डूबी हुई है। तुलसी मनुष्य के उपासक हैं। उन्होंने भक्त को भगवान से बड़ा बताया है। राम के प्रति तुलसी का सेवक भाव है। भूख, गरीबी की पीड़ा से ओत-प्रोत उनके अनेक उद्‌गार कवितावली, विनय-पत्रिका में आत्म-निवेदनपरक हैं। अपने हाथी बल और रनिवास को भरने वाले सामंतों को वे फटकारते रहे हैं। तुलसी के राम भारतीय जनता के नैतिक गुणों का प्रतिनिधित्व हैं। तुलसी के राम न्यास के सक्रिय पक्षधर हैं। लक्ष्मण से ज्यादा धैर्य दिखाते हैं। धैर्य की सीमा जब टूट जाती है, तब जनता की तरह शस्त्र उठाने में पीछे नहीं हटते। तुलसी को धनुर्धर राम प्रिय हैं। परशुराम का क्रोध जब सीमा पार कर जाता है तब राम उन्हें चेतावनी देते हैं। समझाने पर भी कोई बात नहीं मानता तो दंड का भय दिखाते हैं। ऐसा ही नायक आदर्श हो सकता है। देवत्व प्राप्त कर सकता है। समुद्र समझाने, विनती करने पर भी नहीं मानता तब तुलसी कहते हैं। 'भय बिनु होइ न प्रीति' रावण को भी दूतद्वारा समझाने की कोशिश की जाती है। वह नहीं मानता तब राम युद्ध छेड़ देते हैं। राम का चरित्र निष्क्रिय प्रतिरोध (सत्याग्रह) का खंडन करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(घ) व्यंग्य चेता

तुलसी का व्यंग्य और हास्य भारतीय जनता की अमिट जिंदादिली से पैदा हुआ है। मुश्किलों पर वह हँसना जानती है। जब कठिनाई बढ़ती है तब व्यंग्य पैना हो जाता है। व्यंग्य अन्यायों, अत्याचारों के लिए है। पीडक के लिए हैं जो पीड़ितों, दलितों के प्रति सहानुभूति लिए हुए हैं।

तुलसी ने समाज में सामंतों के कुशासन पर प्रश्नचिह्न खडा किया है। राजा यदि स्वार्थी है और प्रजा संघर्ष करती हे तो तुलसी प्रजा के साथ हैं। अवध में स्थित रामराज्य में कोई अल्पायु नहीं होता, किसी को कोई पीड़ा नहीं, दीन, दुःखी दरिद्र कोई नहीं। तुलसीदासजी ने दरिद्रता, विषमता विहीन सुखीसमाज की परिकल्पना प्रस्तुत की है।

तुलसीदासजी की दृष्टि से साहित्य जनता का हित करने वाला होता है।

इस तरह तुलसीदासजी का साहित्य केवल सामंती विचारधारा के खिलाफ नहीं अपितु पूंजीपतियों के खिलाफ भी है। कालावादी साहित्य के दायित्व से मुक्त होकर स्वाधीनता की पुकार करते हैं जो प्रेम, राष्ट्र के प्रति उदासीन हैं, इनकी बुद्धि सीप की तरह न होकर घोंघे की तरह हैं। ऐसे लोगों का विरोध करना तुलसी साहित्य सिखलाता है।

डॉ. रामविलास शर्मा अपने इस वैचारिक निबंध का उपदेश इन शब्दों में बताते हैं, वर्णाश्रम, नारी समस्या, राजा-प्रजा संबंध पर वामपंथी लेखकों पर फैली गुमराहियों का निराकरण करता है। तुलसी के समय जर्जर हुई सामंत की व्यवस्था सामाजिक यथार्थ है। उनकी कविता की आधारशीला जनता की एकता है। जनजागरण के वे सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। एकता ही हमारा शस्त्र है, संघर्ष है, हमारा मार्ग है और कर्मवादी हमारा समाज है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तुलसी साहित्य ही हमारा पथ-प्रदर्शक है।

6.6.3 महत्त्वपूर्ण बातें (सारांश)

1. तुलसी का साहित्य अनुकूल और प्रतिकूल मतवादियों को आज भी आकर्षित करता रहा है। तुलसी हिन्दू धर्म के रक्षक है, उन्होंने आदर्श के प्रतिमान दुनिया के सामने रखे। तो दूसरे पक्ष के अनुसार तुलसी ने लोगों को भक्ति की अफीम में सुला दिया।
2. भारतीय साहित्य में भक्ति धारा प्रवाहित हुई। क्या भक्ति आंदोलन पुरानी सामंती व्यवस्था को कायम रखने के लिए है या विशुद्ध काल्पनिक आंदोलन है?
3. भक्ति आंदोलन सामंती व्यवस्था के खिलाफ जन-आंदोलन है। यातायात से सम्पर्क बढ़ा एक ही मुद्रा से व्यापार बढ़ा, जनपद काश्तकार का अलगाव खत्म हुआ। जागीरदारों की नकेल कसी गई। जातियता-राष्ट्रीयता का भाव वृद्धिंगत हुआ।
4. भक्ति आंदोलन से मुक्ति का अधिकार जनता का हो गया। ऊँच-नीच, स्वदेशी-विदेशी सभी का संबल राम-तुलसी के कारण हो गए। निषाद, किरात, स्वपच, खस, आदिवासी जातियों को भी मुख्य धारा से जोड़ा।
5. तुलसी साहित्य उपास्य-उपासना में एकता की स्थापना करता है।
6. स्त्रियों को उपासना का अधिकार दिया। उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व को मान्यता दी। प्रेम की परिणती विवाह बताकर स्त्री सामान्य नायिका से नागरिक हो गयी। प्रेम और सौन्दर्य की निश्छलता जनता की अनुभूति और अभिव्यक्ति बनाया।
7. नाम-स्मरण को महत्त्व दिया। तुलसी की भक्ति मानवता की भक्ति है। जहाँ मनुष्यता को श्रेष्ठत्व मिलता है।
8. तुलसी के राम धर्नुधारी है। धीरज की सीमा टूटने पर शस्त्र हाथ में लेने से नहीं हिचकिचाते। निष्क्रिय प्रतिरोध का उन्होंने खंडन किया है।
9. साहित्य गंगा की तरह परमहितकारी है।
10. तुलसी साहित्य को विभिन्न प्रसंग विप्र-पद-पूजा तथा नारी ताड़न की अधिकारी सामंती लोगों ने स्वार्थवश जोड़ी हुई अप्रासंगिक बातें है।
11. रामविलास शर्मा एकता के महत्त्व तथा उसकी स्थापना तुलसी साहित्य के माध्यम से करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.6.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए-

1. तुलसीदासजी के साहित्य के संबंध में अनुकूल मत क्या है?
2. तुलसीदासजी के साहित्य के बारे में प्रतिकूल मन की क्या धारणा है?
3. सामंती प्रभुता किन कारणों से टूटी?
4. स्त्रियों के प्रति तुलसीदासजी का नया दृष्टिकोण लेखक ने कैसे बनाया है?
5. तुलसीदासजी ने सुखी समाज की परिकल्पना कैसे प्रस्तुत की है?

6.6.5 शब्दार्थ

सामंत-जागीरदार-छोटी रियासतदार; सामंतवाद-रियासती शोषण प्रधान व्यवस्था, जातीय-राष्ट्रीय; इजारा-अधिकारी; कुल-गोत्र (खानदान); वाजपेयी-वाजपेयी यज्ञ करने वाला, कोल-किरात, निषाद, खस, आदिवासी वन-जातियाँ; बीरज-अनीह, संसृति-संसार-जन्म-मरण की परंपरा; गोचर-इन्द्रिय ग्राह्य रूप; अतीन्द्रिय-इन्द्रियों से परे का; बडवानी-बडवानी बडवानल; दावानल-समुद्र की भीतरी आग, जंगल में लगी आग।

6.6.6 संदर्भ स्पष्टीकरण

''भक्त तुलसीदास मूलत: मानवतावादी है और उनके साहित्य की महत्ता वास्तविक सामाजिक संबंधों का वर्णन करने में हैं। जन-साधारण की वेदना और उससे मुक्ति की कामना का जनता के नैतिक गुणों का चित्रण करने में हैं, न कि सेवक भाव से कृपा की भिक्षा मांगने में।''

संदर्भ-ये पंक्तियां डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा लिखित निबंध ''तुलसी साहित्य के सामनत विरोधी मूल्य'' निबंध से ली गयी है। इस साहित्यिक दृष्टि से लिखे गए निबंध में लेखक ने तुलसी साहित्य का मूल्यांकन सामंती व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में किया है।

स्पष्टीकरण-लेखक ने तुलसी की समसामायिक परिस्थितियों के संबंध में अपना सामाजिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए तुलसी साहित्य के उद्धरण, पक्ष-विपक्ष तथा अन्य विद्वानों के मतों के साथ प्रस्तुत किये हैं। रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, पार्वतीमंगल, दोहावली, विनयपत्रिका आदि रचनाओं में चित्रित रम का चरित्र-अन्य चरित्रों के साथ उनका मानवतावादी व्यवहार, राम का राज्य, उनकी व्यवस्था, नीति को लेकर जो निष्कर्ष विद्वान लेखक ने निकाले हैं, उससे यही स्पष्ट होता है कि तुलसीदास सर्वश्रेष्ठ भक्त होते हुए भी उनका मूलत: दृष्टिकोण मानवतावादी है। पारिवारिक संबंधों का चित्रण भी उन्होंने तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, स्थितियों को देखते हुए किया है। कवि स्वयं उस व्यवस्था का शिकार है, भुक्तभोगी ही दूसरों की वेदना समझ सकता हैं इसलिए तुलसी ने जन-साधारण के कष्ट, यातना, वेदना, अभाव को जिया है, उससे मुक्ति दिलाना ही उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा। जो कुछ अपने आराध्य राम से माँगते है अपने लिए नहीं बल्कि लोक के लिए, विश्व के लिए। केवल अपने लिए कृपा आराध्य की, बनी रहे यह कामना कहीं नहीं है।

विशेष-मार्क्सवादी या जनवादी विचारधारा का समर्थन करने वाले डॉ. रामविलास शर्मा ने इस निबंध में तुलसी साहित्य में विशेषत: 'श्री रामचरितमानस' में तुलसी का जनवादी दृष्टिकोण देखा और उसकी दृष्टिकोण से उनके काव्य का मूल्यांकन किया है।

6.6.7 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए-

1. रामविलास शर्मा ने भक्ति आंदोलन को सामंती मूल्यों के खिलाफ का जन-आंदोलन क्यों कहा है?
2. तुलसी हिन्दू धर्म के उद्धारक क्यों माने जाते हैं?
3. तुलसी के राम एकता और समता का संदेश कैसे देते हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. रामविलास शर्मा ने तुलसी साहित्य में स्थित नारी-मूल्यों की नई व्याख्या किस प्रकार प्रस्तुत की है?

5. विप्र-पद-पूजा एवं नाड़ी ताड़न की अधिकारी इन तुलसी विषयक मान्यताओं को रामविलासशर्मा खारिज कैसे करते हैं?

6. पठित निबंध में व्यक्त नव-मूल्य बोध को अपने शब्दों में लिखिए।

6.6.8 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए-

1. तुलसीदासजी ने 'श्रीरामचरितमानस' लिखकर इस्लाम के आक्रमण से हिन्दू धर्म की रक्षा की और चरित्रों के द्वारा अमर आदर्शों की स्थापना की। ऐसा तुलसीदासजी के साहित्य के संबंध में अनुकूल मत है।

2. प्रतिकूल मन की धारणा है कि तुलसीदासजी ने वर्णाश्रम व्यस्था के भंग होने के बावजूद भी ब्राह्मणवाद का समर्थन किया। नारी की पराधीनता को आदर्श माना और जनता को भाक्ति की अफिम में सुला दिया।

3. यातायात से सम्पर्क बढ़ा, एक ही मुद्रा से व्यापार बढ़ा, जनपद-काश्तकार का अलगाव खत्म हुआ। जागीरदारों की नकेल कसी गयी। इन सबसे सामंती प्रभुता टूटी।

4. लेखक बताते हैं कि तुलसीदासजी ने स्त्रियों के लिए उपासना के द्वार खोल दिये। जनकपुर, अयोध्या, चित्रकूट हर जगह स्त्रियों की भीड़ दिखायी देती है। ग्रामीण स्त्रियाँ, सीता से बातचीत करती है। सीता के पैर छूती है। राम जब अयोध्या लौटकर आते हैं तो खुशी के समुद्र के उफान की लहरें स्त्रियां ही हैं।

5. अवध में स्थित रामराज्य में कोई अल्पायु नहीं होता, किसी को कोई पीड़ा नहीं, दीन, दुःखी, दरिद्र कोई नहीं। तुलसीदासजी ने दरिद्रता, विषमता विहीन सुखी समाज की परिकल्पना प्रस्तुत की है।

6.7 निषाद बाँसुरी

कुबेरनाथ राय (26 मार्च, 1933-5 जून, 1996)

6.7.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य

कुबेरनाथ राय हिन्दी के ललित निबंधकार के रूप में ख्यात हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जिस ललित निबंध विधा का बीज बपन किया उसे पल्लवित-पुष्पित और फलित करने का काम कुबेरनाथ राय ने किया। कुबेरनाथ राय के ललित निबंध संदर्भ बहुलता के कारण ज्ञान के भंडार है। कुबेरनाथ राय का व्यक्तित्व दार्शनिक और बहुज्ञता के रूप में निबंधों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है।

कुबेरनाथ राय उत्तरप्रदेश के गाजीपुर जिले के मतसा गांव में जन्मे। एम.ए. की शिक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय से ग्रहण की। वे असम में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे। जीवन के सायंकाल में वे गाजीपुर के स्वामी सहजानंद सरस्वती महाविद्यालय में प्राचार्य बनें।

15 मार्च, 1964 में धर्मयुग में राय जी का पहला निबंध 'हेमंत की संध्या' प्रकाशित हुआ। 'प्रिया नीलकंठी' उनका पहला निबंध संग्रह है।

कुबेरनाथ राय ललित निबंध को स्वतंत्र विधा मानते हैं। उनके मत से विषय के आस-पास शिव के साँड की भांति मुक्त चरण और विचरण ललित निबंध है।

कुबेरनाथ राय के निबंधों में चार दार्शनिक बातें दिखायी देर्त है-1. भारतीय संस्कृति, 2. प्रकृति, 3. गांधी दर्शन, 4. रामकथा।

कुबेरनाथ राय के निम्न निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं। प्रिया नीलकण्ठी, रस आखेटक, गंधमादन, निषाद बाँसुरी, विषाद योग, पर्ण मुकूट, महाकवि की तर्जनी, मणिपुतुल के नाम, कामधेनू, किरात नींद में चंद्रमधु, मन पावन की नौका, दृष्टि अभिसार, चेता का बृहत्साम आदि।

कुबेरनाथ राय ने अपने निबंधों में भारतीय संस्कृति में आर्येतर तत्त्वों को बतलाते हुए रामकथा के अनेक प्रसंगों की मौलिक व्याख्या की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निषाद बाँसुरी में पूर्वी उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा असम की लोक-संस्कृति का मनोहारी विवेचन हुआ है। आर्येतर तत्त्वों का भारतीय संस्कृति में नीर-क्षीर वत् घुलमिल जाने को बड़े ही मर्मस्पर्शी ढ़ंग से उद्घाटित किया है।

6.7.2 निबंध का सारांश

6.7.2.1 निषाद चंदर माँझी

कुबेरनाथ राय के बालसखा चंदन माँझी हैं, जो नौकानयन करते हैं, गीत भी सुनाते हैं। ये बादशाही स्वभाव के धनी है, बात के पक्के, मन से उदार और मुसीबत में मुकाबला करने में कभी पीछे नहीं हटते, जल-थल के किसी भी पशु से वे कभी हार नहीं मानते। उनकी दो पत्नियाँ हैं-रूपसी और पियासी। वैसे ये दोनों नाम मछलियों के हैं। उनके मित्र चंदर कहते हैं, बेटे का नाम रोहित रखेंगे। लेखक को लगता है, मीन, मिथुन-सी दो पत्नियों के बीच उनका मित्र पद्मफूल है। लेखक जब भी गाँव आते हैं तो एक पूरी शाम और रात चंदर के यहाँ गुजारते हैं। गंगा में रात्रि का नौकाविहार तथा मित्र से गपशप लेखक को ऊर्जा प्रदान करते हैं। लेखक सारी थकावट भूल जाते हैं। गीत गाते हुए चंदर लेखक को भूत-प्रेत या आत्मा से लगते हैं। चंदर के गीत का भावार्थ है-गंगामैया उठो, मेरी नाव बालू में अटक गयी है, मैं तुम्हारी शरण में रहने वाला निषाद हूँ। राजा रणभूमि के शिविर में सोता है, रानी सुवासिक बेला वन में सोती है-मैं निषाद तुम्हारे तट की बालू पर सोता हूँ। तुम्हारे बल पर ही मैं आश्रित हूँ। नदी रात भर पशुओं-पक्षियों को पानी पिला-पिला कर अभी-अभी सोयी है। उसकी कच्ची (बालिका) नींद में निषाद का करुण आवाहन शांति को भंग कर रहा है। इस गीत से नदी की नींद टूट जाती है। आशीर्वाद देती है, रक्षाकवच देती है और नाव को बाहर निकालने में मदद करती है। कर्म का भार लादे हुए नाव धर्म के धार पर सुरक्षित लग जाती है।

6.7.2.2 निषाद गीत

निषाद के गीत अपदेवताओं, निशाचरों, क्रुद्ध लहरों को बशीकरण से बाँध देते हैं। इसलिए एक के बाद एक गीत माँझी गाते हैं। एक अन्य गीता का भावार्थ हैं। मेरी नाव पूरब देश से लौट रही है। तिरंगी चुनरी, पूजा की सामग्री मेरी नाव में लदी है, तुम्हारे श्रृंगार के लिए हार-फूल जवाँ कुसुम, कनेर, केले के पत्ते, शेफाली के फूल हैं। माँग के लिए सिंदूर, शरीर के लिए हल्दी रखी हुई है, चरणों का अर्ध्य के लिए लौंग, मधु, दूध के सात घट रखे हैं। धीमे-धीमे निर्भय चलने का आशीर्वाद प्रदान करों और नदी मुक्तकण्ठ से कल-कल ध्वनि से आशीर्वाद देती हैं-तू भी मेरी तरह अखण्ड, अछेद्य है। जब तक मैं हूँ, जब तक धारा है तब तक तू भी हैं। नदी अपना हाथ उठाकर चंदन के कानों में और कुछ कहती हैं। लेखक को लगता हैं, नदी कह रही है, हे निषाद, तेरी संस्कृति, तेरे संस्कार, तेरा मन सब कुछ मेरे जल की तरह है जो कभी टूटता नहीं, कटता नहीं। दब जाता हो आकार बदल लेता हो पर अस्तित्त्वहीन नहीं होता। बादल बनकर पुन: लौटता है।

6.7.2.3 कृषि जन्मदाता-निषाद

कुबेरनाथ राय कहते हैं कि भारतीय भूमि के पहले मालिक निषादन ही हैं। उन्होंने भारतीय भाषाओं में मूल संज्ञाएँ, खेती के मूल तरीके और संस्कार दिये हैं।

निषाद, द्रविड़, आर्य, किरात अग्रज है। शिरा-धमनियों में निषामन खून के रूप में प्रवाहित है। द्रविड़ संस्कृति स्नायु मंडल है। किरात अस्थि-चर्म है और मनोमय गंगातीरी निषाद है। जो कुल का है। प्रभु रामचन्द्रजी इसी कुल के घर पधारे थे।

निषाद ही है, जिसने गंगा की घाटी में धान-चावल को बोया था। भैंस को दुधारू बनाया था। जड़ी-बुटी और फलों को पहचानता था। उसी के द्वारा इनके प्रदत्त नाम है, खेती के औजार भी इसी कृष्णवर्णीय निषादों की ही देन है।

चंदन भोले मन से कहता है, अरे हम तो जरा से काले हैं, नहीं तो आप लोगों से नीचे थोड़े ही हैं। अपनी बात की पुष्टि के लिए वह अपने गुरु राम देवाजी का सिद्धांत और तर्क रखता है। चंदर गोस्वामी तुलसीदास के वह प्रसंग की दुहाई देता है और कहता है, सोचो, रामचन्द्रजी जानकी की ओर देख कर क्यों हँसे? लक्ष्मण की ओर देखकर क्यों नहीं हँसे? यह सुन लेखक की बोलती बंद हो जाती है। तब चंदर समझाता है कि तुलसीदासजी के कहने का आशय यह कि प्रभु सीता की और इशारा कर कह रहे हैं कि यह निषाद तो समवर्ण का है, अत: कहीं पाँव धोने के हठ के बहाने कन्यादान करने की, कोशिश तो नहीं कर रहा है। इस रहस्य को सबके सामने कैसे कहें? इसीलिए राम, सीता की ओर नजर कर हँस देते हैं।

6.7.2.4 अवतारवाद

निषाद वृषा, कपिदेवों और अपदेवताओं को पूजने वाली जाति है। आर्यों में अवतारवाद का प्रवेश निषाद-द्रविड़ों के कारण हुआ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.7.2.5 राम कथा का उत्सव

रामायण का मिथक भी निशादों की ही देन है। राम गाथा का प्रकटीकरण निषाद द्वारा किये गए क्रौंच वध के कारण हुआ। निषाद जाति परम-पुरुष के अवतरण की प्रतिक्षा कर रही थी। दुर्वादल श्याम (नीलवर्ण के राम) के आगमन की प्रतीक्षा थी। इसी बीच इक्ष्वाकू आर्यकुल में एक प्रतापी राजपुरुष का जन्म हुआ। उसके शील, स्नेह, चरित्र में बहुप्रतिक्षित देवकल्पना में समानता दिखायी दी और यह राजा महादेवता का अवतार बना। राम को वाल्मिकी ने अपने महाकाव्य का नायक चुना तो उनकी प्रज्ञा में यही निषाद विश्वास सक्रिय रहा। गौर वर्ण आर्यवंशीय कुमार को दुर्वादल श्याम और निलोत्पल श्याम में देखा। वाल्मिकी गंगा और तमसा नदी के बीच के अरण्य में रहते थे और प्रचालित निषाद विश्वासों से वे भला कैसे अप्रभावित रह सकते थे? रामकथा में यह प्रमाण है कि गंगातीर के निषादों का जीवन रामचन्द्रजी ने संस्कारित और समृद्ध किया।

शायद यह भी निषादों की ही कल्पना हो कि उनका प्रिय देवता जब माया-मनुष्य बनेगा तो सौतेली माँ दु:ख देगी। उसे वन-वन भटकना पड़ेगा। यही दु:खी देवता निषादों को गले लगाएगा, उन्हें पावन करेगा, उन्हें शुद्ध करेगा। ये देवता धरती पर सुशासन स्थापित करेगा, जिससे धरती के रोग-शोक-पाप हठ जाएँगे। दु:खी कोई नहीं बचेगा। इस विषाद कल्पना को वाल्मिकी ने रामायण में साकार किया।

असम, बंगाल तथा अन्य प्रदेश की निषाद जातियाँ केवट, धीवर तीयर, मध्यप्रदेश के मुंडा, कौल आदि जातयों में गंगातीरी केवट और माँझियों को पवित्र माना जाता है। उनके द्वारा स्पर्श किया हुआ जल प्राचीन काल से ही ग्रहण किया जाता है। कारण प्रभु रामचन्द्रजी तथा उनके कुलपुरोहित वशिष्ट ने निषाद राज (गुह) को गले लगाकर उनकी अस्पृश्यता खत्म कर दी और वे इन गंगातीरी निषादगणों ने आर्य सभ्यता और आर्य भाषा को स्वीकार लिया। कल्पना यह है कि रामजी ने उन्हें दो आज्ञाएँ दी-नाव को बालू में घसीट कर खड़ी नहीं करना, पानी में ही बाँध देना। दूसरी आज्ञा यह कि हमेशा नमक, हल्दी, सरसों में मछली को भून कर खाना। अर्थात् निषाद लोग सभ्य भोजन करने वाले सभ्य नागरिक बनें। शायद इसी कारण अपने-अपने लोककाव्य होने के बावजूद वे तुलसी की रामायण गाते हैं। राम ही उनके लोकनायक हैं। राम के प्रति सहज समर्पण का भाव उनमें है।

''तुम केवट भव सागर के रे। नदी नाव के हम बहुतेरे।''

6.7.3 निषाद कुल

पूर्वी उत्तरप्रदेश के गंगातीरी निषादों के केवट, चाँई, बथवा, धीवर, तीयर, सोरहिया और मुंडार ऐसे सात कुल हैं। प्रभु रामचन्द्रजी के सखा निषादराज गुह चंदर भाई के मतसे चाँई कुल के हैं। चंदरभाई का मानना है कि गोस्वामी जी ने गलती से चाँई की जगह केवट लिख दिया है-गोस्वामीजी की पंक्ति है।

'माँगी नाव न केवट आना' जबकि चंदर के मत से 'मांगी नाव न चाँई आना' है

कुबेरनाथ राय के मत से क्रौंचवध करने वाला निषाद चाँई ही था, जिसके कारण वाल्मिकी की छंद सरस्वती का जन्म हुआ, चाँई नहीं होता तो रामायण नहीं होती। इसलिए मुझे चंदर का चाँई गौरव स्वीकार लेना पड़ता है।

कुबेरनाथ राय अपने बारे में बताते हैं कि जीविका के लिए मैं जन्मभूमि से दूर लोहित तट पर निवास करने के लिए विविश हूँ। मेरे पाँवों में चक्र है, जो दर-दर भटकाता है। इस शाप के भोग में भी मुझे आनंद आता है। पर कभी-कभी थक जाता हूँ, उदासी मुझे घेर लेती है। ऐसे विकल, व्याकुल क्षणों में मुझे मेरी प्यारी गंगा की दुधियारी धारा, चंदन की, बातें, रूपसी-पियासी नामक दोनों भाभियों के सुरिले कण्ठ से निकले गीत मेरी उदासी को धो डालते हैं। मेरा तप्त मस्तिष्क शीतल फूलों की वर्षा से ठण्डा हो जाता है। दु:ख भूलकर मैं भी गुनगुनाने लगता हूँ। गीता का भावार्थ है, राधा-रूक्मिणी नहाने चली है, पर गंगाजी सूख गयी है। चारों ओर बालू ही बालू है। अखी की लड़की बटोही की बहू रो रही है। निषाद भी मुँह पर रूमाल रखकर रो रहा है अब उसकी नौका बालू में डूब गयी। आगे गीत में आता है कि, पल्लू में बाँधे सात फूल, लौंग रूक्मिणी को देती है, रूक्मिणी लौंग को रगड़ती है। राधा और रूक्मिणी घुटने के बल बैठकर लौंग धार का अर्घ्य देती है, तब गंगा प्रसन्न होकर जल से लबालब भर जाती है और सभी आनंदित हो जाते हैं।

निबंध के दूसरे हिस्से में कुबेरनाथ राय, चंदन माँझी के गुरु रामदेवजी का परिचय देते हैं।

6.7.4 रामदेवाजी

रामदेवाजी कद से छोटे, कृष्णवर्णिय, गठिले शरीर के धनी हैं। पके केश, लालिमायुक्त आँखें, चौड़ा जबड़ा, नुकीली नाक, माथे पर सिंदूर, कंधे पर पीला या गुलाबी गमछा वाले टिपिकल गंगातीरी निषाद है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वे जन्मजात अद्‌भूत हैं। जब वे जन्मे तो हल्ला मचा कि बच्चा मरा हुआ है, दाई ने बच्चा हांडी में डाला। गाँव से बाहर बंजर जमीन में गढ़ा खोद कर हांडी रख दी। अचानक दाई को लगा कि हांडी पर मिट्टी भरने से पूर्व ढक्कन खोलकर देख लें। अब उसने देखा तो पाया कि बच्चा टुकुर-टुकुर देख रहा है। झट से उसने बच्चे को बाहर निकाला, तभी बच्चा रोने लगा और केवटों का उदास मोहल्ला ढोलक-सोहर से भर गया।

बंध्या भूमि में जन्म लेने के कारण वे प्रौढ़ावस्था में भी चिरकुमार ही है। रामदेवाजी की खान-पान की रूचियाँ भी विचित्र हैं। वे तम्बाकू नहीं खाते, परन्तु ताडी और देव अर्पित मदिरा (कारण) खूब पीते हैं। दूध उन्हें पसंद नही परन्तु खट्टी दही बहुत पंसद है। उनका मानना है कि दही जितनी खट्टी होगी, उतना ही उसमें ताडी का मजा आएगा।

वे गंगातट पर छाड़न भूमि में परवल, करेला, खरबूजा आदि उगाकर गुजारा कर लेते हैं। उनकी शादी नहीं हुई, इसलिए पारिवारिक बंधनों से मुक्त है।

6.7.4.1 'जी' से तात्पर्य

रामदेवाजी को जी लगाने का अर्थ। कुबेरनाथ राय अपने दार्शनिक विचार इन शब्दों में रखते हैं। जीव से तात्पर्य अंग्रेजी का क्रीचर न होकर वेदान्त का जीवात्मा है। वेदान्ती के लिए असली बात जीवात्मा है। उनकी दृष्टि से यह सर्वोच्च उपाधि है। भारत में अभिवादन के लिए 'जय जीव' कहा जाता था। तुलसीदासजी का रामचरितमानस मेरे कथन का साक्षी है। मानस में राजा दशरथ के मंत्री जय जीव कहकर सिर झुकाते हैं।

रामदेवाजी के साथ बैठकर लेखक नदी किनारे रात्रि में उनकी बातें सुनते हैं। बातचीत के दौरान ऐसा भय-स्तब्ध वातावरण बन जाता है कि कोई अभी-अभी खिलखिला कर हँस पड़ा है या नदी में से निकलकर कोई पास से गुजरा है। अवचेतन में लगता है कि गहरी लाल साड़ी पहने कोई अपना अस्तित्व जता रही है। सावधान होने पर कोई नहीं दिखता। शायद इसी को भूत-डामर विद्या कहते हैं। इसके लिए वे चावल का नैवेद्य, भूनी मछली, मदिरा, जवाँ कुसूम या पिले कनेर के फूल, सारी सामग्री उपलब्ध करते हैं। जब यक्षिणी नहीं आती, इस पर भी रामदेवाजी का विश्वास है वह, उनके वश हो जाएगी।

कुबेरनाथ राय पुन: अपने बारे में बताते हैं कि मैंने पी.एस. गुहा, डॉ. हटन, डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी के प्रबंधों को पढ़ा है। ऑस्ट्रीक (निषाद) और इंडोमंगोलियन (किरात) संस्कृतियों के बारे में भाषा-वैज्ञानिक और पुरातात्विक चर्चा को पढ़ा-सुना है। परन्तु मुझे चंदर माँझी ओर रामदेवाजी की ऊलजलूल बातों में सच्चाई की झलक मिल जाती है।

गंगातीरी अथवा उत्तर भारत के निषाद को प्राय: मल्लाह कहते हैं, जो मूलत: ऑस्ट्रीक नस्ल के हैं। भारतीय धरती के पहले मालिक हैं। इनका अत्यधिक आर्यिकरण हो गया है। माना जाता है कि भाषा बदलने से संस्कृति बदल जाती है। आज इनकी भाषा आर्यभाषा हो गयी है। अपनी आदिम भाषा, वेशभूषा, भोजन को वे त्याग चुके हैं। इस आर्यीकरण का प्रतीकात्मक संकेत-राम द्वारा निषाद राज के कुल को पावन करने की कथा में है।

6.7.5 आर्य-निषाद संगम

आर्य-निषादों का मिश्रण हुआ, महाभारत में इसे व्यापक तौर पर मान्यता भी मिली। आर्य-निषाद का मिश्रण का फल है-द्वैपायन श्रीकृष्ण और वेदव्यास। निषाद जातियाँ राजनीतिक स्तर पर तो पराजित हो गयी परन्तु मन-बुद्धि को अपने कब्जे में कर लिया। आज निषाद-संस्कृति पूर्ण रूप में मध्यप्रदेश के दण्डकारण्य में भाषा, वेशभूषा, भोजन के साथ दिखायी देती है।

6.7.6 निषाद व्यवस्था

1. मल्लाह

निषादों के लिए मल्लाह शब्द चलता है जो आजकल व्यवसाय सूचक है। नाविक के अर्थ में अधिक प्रचलित है। मल्लाह शब्द अरबी का है जो हिन्दी प्रदेशों में ही चलता है।

2. कारीगर

बुद्ध के जमाने में कारीगर और कामगार निषाद ही थे। वे आर्यों जैसे चिंतन-प्रधान और महत्त्वाकांक्षी नहीं थे। द्रविड़ों की तरह वे भावुक भी नहीं थे। वे तो शुद्ध आनन्दवादी थे। उनका दर्शन था नाचो-कूदो, परिश्रम करो, मौज उड़ाओ। जोगिड़ा सर्रर, होली की विशिष्ट भंगिमा का मूल स्वर निषादों का स्वभाव ही है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.7.7 केवट निषाद स्वभाव

द्रविड़ों ने व्यापार और नगर संस्कृतियों की रचना की कारण वे कल की फिक्र करते थे और संचयवादी थे। निषाद आरण्यक स्वभाव के थे, जो कमाया उसे उसी साल में खत्म कर देते थे। मतसा के केवट चार माह बाहर जाते हैं। तरबूज बेचना, नौका खेना व्यवसाय कर हजार रुपये कमाकर लौटते हैं। और मछली, भात, ताड़ी, जुआ आदि में अपनी सारी कमाई फूँक देते हैं। उन्हें भय होता है कमाया हुआ रुपया जम जाएगा, सड़ जाएगा, इसलिए वे खर्च डालते हैं।

यही वे निषाद हैं जिन्होंने भारतीय खेती का सूत्रपात किया। गंगाकिनारे के जंगल साफ कर उन्हें खेतीयोग्य बनाया। खेती के औजारों के नाम, बीजों के नाम, घास के नाम उन्हीं की देन है। चावल शब्द निषादों का है। यह शब्द जोम-जाम (खाना) से बना है। जोम-जाम, चाम-चाव-चावल। इसके अलावा कदली, नारिकेल, ताल, ताम्बूल, वातिगण (बैंगन), अलाबू (लौकी), नींबू, जंबू, करपास, शाल्मली आदि नामों का मूल स्रोत निषाद भाषा ही है। हिन्दी में काँटेदार एक वृक्ष है, जिससे बबूल कहते हैं। असमिया में इसे तरूकदम्ब कहते हैं, जो शुद्ध निषाद है। अश्व आर्य शब्द है, साद निषाद शब्द है, जिसका अर्थ है टट्टू। साद से ही सातवाहन बना है, जिसका अर्थ है घुड़सवार, कुक्कुट, मोर, मातंग, गंज, बाण, लगूर (लाठी) निषाद शब्द है। निषादों ने हमें गुड़ बनाना सिखाया, पान खाना सिखाया, कोड़ी (बीस) गिनती, बुनाई सिखायी, भैंस आदि पालना सिखाया।

ए.एल. बाशम के मत से संसार में सबसे पहले गंगा घाटी के निशादों ने ही भैंस को पालतू बनाया। श्री विभूतिभूषण बंदौपाध्याय ने अपने उपन्यास आरण्य में बताया कि ऑस्ट्रिक निषाद मूल के आदिवासियों में टाण्डबारो देवता की लकड़ी की मूर्ति स्थापित करने की प्रथा है जो जंगली भैंसों के देवता हैं। महिषबलि, महषिमर्दिनी दुर्गा-शीतला माता की पूजा अपने मूल रूप में निषादों की ही देन है। विवाह के अवसर पर शरीर पर हल्दी लगाना आर्यों ने निषादों से ही सिखा है। देह लगी हल्दी से जल में कूदने से घड़ियाल-मगर पास में नहीं आते। सिंदुर का प्रयोग भी निषादों की ही देन है। इस तरह रामदेवाजी की ऊलजलूल बातों में आधुनिक नृ-तत्त्वशास्त्र और भाषा-विज्ञान का गहरा संबंध है। टोना-टोटका अंग्रेजी के टोटेम, ताबू, भफत-डामर निषाद प्रतिभा की ऊपज है।

पंचांग

रामदेवाजी अपनी विचित्र बोली में गहरा ज्ञान कह देते हैं। एक अनदेखा आकाश केन्द्र में चन्द्रमंडल है। उसमें मुर्गा है। मुर्गा पर देवी सवार है। देवी चारो दिशाओ मे प्रतिक्षण बीज फेंक रही है। घास-पात, लता-तरू, आदमी-जानवर, पंछी-पखेरू सभी इन बीजों से जन्म लेते हैं। देवी की आँखें-दायीं आँख सृष्टि को रंग प्रदान करती है, बाईं आंख रंग खाती है, तीसरी आंख जो ललाट में है, सूर्य के रथ का नियंत्रण करती है, जिससे दिन-रात, ऋतु बदलते हैं। ये बातें सुनते हैं। लेखक को डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी का निबंध याद आता है। वर्तमान में पोलिनिशिया में निषाद पंचाग आज भी चालू है जो चन्द्रमा के आधार पर तिथिगणना करते हैं। चन्द्रमा की कलाओं से तिथि का पता चलता है। पूर्णचन्द्र और नष्ट चंद्र के लिए राका और कहू शब्द आते हैं जो निषाद भाषा के शब्द हैं। हमारे ज्योतिष शास्त्र में भी मातृका नक्षत्र मंडल है, जिसे पोलिनिशियन पंचांग में मातरिकी कहते हैं। इस तरह रामदेवाजी की वाणी नया अर्थ दे देती है।

आर्य चन्द्रमा को औषधियों का स्वामी मानते हैं, जो निषादों से ही ग्रहित है। औषधियों से आरोग्य होता है, कारण उसमें अमृत का अंश है। चाँद औषधियों का राजा है। और चाँद में अमृत है, इसलिए औषधियों से भी अमृत हैं। समुद्रमंथन से अमृत कुंभ के बाद चांद निकला है। इसलिए अमृत का सहोदर चाँद है यह समुद्रमंथन का मिथक भी निषाद प्रतिभा की ऊपज है। सोम नामक जड़ी का पान करके आर्य, उषा और आदित्य के उपासक हैं। निषादों के सम्पर्क में आकर उन्होंने सोम को चाँद से जोड़ा और सोम का अर्थ हुआ चाँद।

ग्रीक महाकाव्यों में भी आर्यों के मुख से सोमरस का उल्लेख है, जिससे आनन्दभरी मस्ती आती है। अमृत की बात कुछ और ही है। अमृत एक औषधी है, जिससे जरा-मरण और रोग तथा मृत्यु से मुक्ति मिलती है। जन्म-मरण पर विजय की कल्पना करने वाली निषाद जाति की प्रतिभा अद्‌भुत है। अमृतमंथन की कल्पना का पातालपुरी की कल्पना निषादों की भोग कल्पना से जन्मी है। पाताल में भोगी जातियों का चरम भोग लोक है, जहाँ मणि, माणिक सिर पर धारण कर रईस दिलवाला नागकुल अमृतपान करता है और सुख भोगता है। इसके बाद आर्यों के चिंतनशील, दार्शनिक, मन ने अपनी बात जोड़ दी और देवासुर संग्राम का मिथक बनाया। इस मिथक से यह पता चलता है कि आज भी भारतीयता का पिता आर्य है, पितामह द्रविड़ है और प्रतितामह निषाद है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.7.8 होली पर्व की निशानी

निषाद मन बड़ा ही परिश्रमी और धीरज वाला है, तो दूसरी ओर खुशमिजाज, बेपरवाह, मनमौजी, नाच-गाने में खुश भी है। होली का त्यौहार उसका प्रतिरूप है। होली के दिन चांडाल स्पर्श पुण्यवान माना जाता है। आर्यों का चार्वाक दर्शन-ऋणंकृत्वा घृतम पीवेत निषादों के समान विचार है। आज भी इनके स्वभात्र में कोई अंतर नहीं आया। मन नहीं करेगा तो काम नहीं करेंगे और जब मन करेगा तब अपनी छोटी-सी जमीन बेचकर होली दिवाली के दिन चमरनट या नर्तकी का नाच करवाएँगे।

6.7.9 निषाद-मन ही निषाद बाँसुरी

लेखक अपना अंतिम संस्मरण लिखते हैं कि गर्मियों की छुट्टियों के बाद बनारस कैंट स्टेशन पर सहपाठी जयमल राय के साथ प्रतिज्ञा की कि इस साल हम दोनों सिनेमा नहीं देखेंगे, जैसे ही रिक्शा आगे बढ़ा, मनमोहक पोस्टर दिखायी दिया और प्रकाश टॉकिज आयी तो मैंने जयमल को वहीं उतार दिया और कहा कि टिकट के लिए तू लाईन लगा, मैं सामान रखकर अभी आया। इसका कारण है मेरी शीरा-धमनियों में निषादरक्त की बांसुरी बज रही है।

6.7.10 महत्त्वपूर्ण बातें

1. कुबेरनाथराय का निषाद बाँसुरी ललित एवं वैचारिक निबंध है। इस निबंध में लेखक का बहुज्ञ व्यक्तित्व झलकता है। लेखक ने बीच-बीच में अपनी उपस्थिति दर्ज की है।

2. लेखक का मित्र चँदर माँझी है। चंदर के साथ चाँदनी रात में घंटों नौका विहार और चँदर के मधुर गीत का आनंद लुटता है। चँदर माँझी की दो पत्नियाँ हैं-रूपसी और पियासी। चँदर के गुरु रामदेवाजी हैं।

3. चँदर के माध्यम से लेखक ने राम कथा रूपक में निषाद संस्कृति के बीज बड़े ही मनोहारी ढंग से खोजे हैं। केवट द्वारा प्रभु रामचन्द्रजी के चरण प्रखालन करने का प्रसंग नई अर्थवत्ता देता है। आदि कवि वाल्मिकी के रामायण लिखने की प्रेरणा निषाद-क्रौंच वध ही है। राम का नील वर्ण नीलवर्ण निषाद संस्कृति की देन है।

4. शिरा-धमनियों में निषाद मन ही प्रवाहित हो रहा है। द्रविड़ संस्कृति स्नायु मंडल है। किरात अस्थि चर्म है। आर्य मनोमय कोश-सरस्वती हैं।

5. निषादों से विशेष गंगातीर के उत्तर भारतीय लोगों ने भाषा-भूषा-संस्कृति आदि आर्यों की अपना ली। प्रभु रामचन्द्रजी द्वारा गुरु वशिष्ट ने निषादों को आर्यव्रत प्रदान किया। नाव नदी में ही बाँधकर रखना। भोज्य पदार्थ नमक-सरसों आदि के साथ पकाकर खाना इन आदतों ने निषादों का जीवन बदल दिया।

6. निषादराज गुह चाँई कुल के हैं।

7. चँदर माँझी के गुरु रामदेवाजी हैं, जो अद्‌भुत जीव है। जन्म भी अनहोने ढंग से हुआ।

8. रामदेवाजी, परवल, करेला, खरबूजा उगाकर जीवन यापन करते हैं।

9. 'जी' से तात्पर्य है जीव, इसका मतलब 'क्रिचर' न होकर जीवात्मा कालस्वरूप जी है। जी शुद्ध वेदांती प्रणाम है।

10. चँदर माँझी तथा रामदेवाजी की अशिक्षितों की मनगढ़ंत बातों में डॉ. पी.एस. गुहा, डॉ. हटन, डॉ. सुनिती कुमार चटर्जी के भाषा-वैज्ञानिक और पुरातात्विक बातों के बीज मिलते हैं।

11. निषाद ऑस्ट्रीक कुल के हैं। भारतीय धरती के पहले मालिक हैं। वर्तमान में मल्लाह या नाविक की इन्हें संज्ञा प्राप्त है। कारीगर और कामगार निषाद ही रहे हैं।

12. निषाद आरण्यव एवं आनंद प्रवृत्ति के हैं। होली का आनंद इनकी ही देन है।

13. निषादों ने खेती विद्या दुनिया को प्रदान की। भैंस को पालतू-दुधारू बनाया।

14. कदली-नारियल, चावल, ताल, तांबूल, वाहिगण, अलाबू (लौकी)। नींब-जंबू कर्यारू, शाल्मली, तसवदम्ब (बबूल), कुक्कुट, मोर-मातंन, गंज, बाण-लगूर-निषादों के शब्द हैं। गुड़ बनाना, पान खाना, गिनती, बुनाई कला-भैंस पालन निषादों की देन है। महिषबली, महिषमर्दिनी, दुर्गा-शीतला माता की पूजा निषादों से मिली है। सिंदूर का प्रयोग, टोना-टोटका, जादू-विद्या निषादों से प्राप्त हुए हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15. चंद्र पंचांग, अमृत मंथन की परिकल्पना द्वैपायन कृष्ण, वेदव्यास, अमृत के औषधीगुण निषादों से हमें हुए।

16. मनमौजीपन निषादों से ही हमें विरासत में मिला है।

6.7.11 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में लिखिए-

1. कुबेरनाथ राय के बाल सखा कौन हैं?
2. चंदर माँझी की पत्नियों के क्या नाम हैं?
3. भारतीय भूमि के पहले मालिक लेखक के मत से कौन है?
4. माँझी एक के बाद एक गीत क्यों गाते हैं?
5. रामदेवाजी का गुजारा कैसे होता है?

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. चंदर मांझी के गुरु .... हैं।
2. भारतीय खेती का सूत्रपात .... ने किया।
3. आर्य .... को औषधियों का स्वामी मानते हैं।
4. निषादराज गुह .... कुल के हैं।
5. उत्तर भारत के निषाद को प्रायः .... कहते हैं।

6.7.12 शब्दार्थ/संदर्भ

हेल जाना-बीत जाना; नष्ट चन्द्र पक्ष-कृष्ण पक्ष दिनों में चाँद क्रमशः छोटा होता है; अमावस को पूर्ण रूप में लुप्त हो जाता है; निशा-रात्रि; प्रहर-तीन घंटे का समय; अगदेवता-यक्ष-यक्षिणी आदि; आर्यीकरण-नागरीकरण/संस्कृतिकरण; मिथक-ध ार्मिक-पौराणिक प्रतीक; शशश्रृंग-खरगोश के सींग। वृषभ-दुग्ध-बेल का दूध, असंभव बातें; संधि-सुलह; जवाकुसुम-जास्वंद/जपा; भूषा-पहनावा।

6.7.13 संदर्भ के लिए पंक्तियाँ

राम-नाम की सील मुहर के आगे मनुस्मृति भी नतमस्तक है।

संदर्भ-ये पंक्तियाँ डॉ. कुबेरनाथ राय द्वारा लिखित निबंध निषाद बाँसुरी से ली गयी है। लेखक पाठकों से कहता है।

स्पष्टीकरण-इक्ष्वाकु कुल के प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के सखा निषादराज गुह थे और राम-राज्याभिषेक के समय रामजी के कुलपुरोहित वसिष्ठजी ने रामजी के सखा निषादराज का सम्मान अलिंगन करके किया। आदिवासी निषादराज रामकुल के बराबरी का हो गया। आर्यमहिमा से मंडित हो गया, जिससे मनुस्मृति के अनुसार आदिवासी-अस्पृश्य माने जाने वाले निषादों की अस्पृश्यता खत्म हो गयी। यहीं से उनका नागरिकरण हुआ। निषादों ने आर्य संस्कृति भाषा-भूषा को संस्कारवत स्वीकार लिया।

विशेष-मिथकीय प्रसंग में निषादों के आर्यीकरण के बीज मिलते हैं जो डॉ. हटन, डॉ. गुहा और सुनीति कुमार चटर्जी के शोध के निष्कर्षों के बीज मनोहारी ढंग से कुबेरनाथ राय ने रखे हैं।

6.7.14 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए-

1. चंदर द्वारा गाए हुए लोक गीतों के माध्यम से निषादों की नदी-विषयक मान्यताओं को लेखक ने कैसे स्पष्ट किया है?

2. राम-कथा के मिथक में निषाद-संस्कृति के बीज मिलते हैं। उदाहरण सहित समझाइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. निषाद-कुल कितने हैं? और कौन-कौन से?

4. रामदेवाजी का चरित्र चित्रण कीजिए?

5. निषाद-भाषा से हिन्दी में कौन-कौन से शब्द आए हैं? विवेचना कीजिए।

6. लेखक ऐसा क्यों कहते हैं ''हमारे मानस में निषाद बैठा हुआ है।''

6.7.15 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

(क) एक वाक्य में उत्तर-

1. चंदर मांझी कुबेरनाथ राय के बालसखा हैं।
2. रूपसी और पियासी-चंदर माँझी की पत्नियों के नाम हैं।
3. लेखक के मत से भारतीय भूमि के पहले मालिक निषाद हैं।
4. उनके गीत अपदेवताओं, निशाचरों, भूपद्य लहरों को वशीकरण से बांध देते हैं। इसलिए एक के बाद एक गीत माँझी गाते हैं।
5. गंगातट पर छाड़न भूमि में परवल, करेला, खरबूजा आदि उगाकर रामदेवाजी गुजारा कर लेते हैं।

(ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति-

(1) रामदेवाजी, (2) निषादों, (3) चन्द्रमा, (4) चांई, (5) मल्लाह।

6.8 हल्दी-दूब और दधि-अच्छत
पं. विद्यानिवास मिश्र (14 जून, 1926-2005)

6.8.1 लेखक परिचय एवं वैशिष्ट्य

पंडित विद्यानिवास मिश्र का जन्म गोरखपुर जिले के पाकड़डीहा गाँव में मकरसंक्राति के दिन हुआ। इन्होंने संस्कृत में एम.ए., पी-एच.डी. की शिक्षा ग्रहण की। विद्यानिवास मिश्र हिन्दी साहित्य-जगत् में ललित निबंधकार के रूप में ख्यात है। छितवन की छाँह, तुम चंदन हम पानी, आंगन का पंछी और बनजारा मन, बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, तमाल के झरोखे से, शेफाली झर रही है आदि उनके प्रमुख ललित निबंध संग्रह हैं।

उन्होंने 'हिन्दी की शब्द संपदा', 'भारतीय भाषाशास्त्रीय चिंतन' नामक भाषा शास्त्र विषयक ग्रंथों का संपादन किया। 'साहित्य अमृत', मासिक तथा 'नवभारत टाईम्स' के संपादक के रूप में भी कार्य किया। वे भूतपूर्व प्रोफेसर भाषा विद्यापीठ आगरा और पूर्वकुलपति काशी विद्यापीठ, वाराणसी रहे हैं।

भारतीय संस्कृति और लोकमन की जीवनधारा इनके निबंधों में सर्वत्र व्याप्त है। संस्कृत का प्रकाण्ड पांडित्य लोक संदर्भों में आकर जीवन की सहजता को रेखांकित करता है। इन्होंने परंपरा का अनुगमन करते हुए उसे आधुनिक चेतना से जोड़ा। इसलिए शास्त्र, परम्परा, लोक और आधुनिकता एक बिन्दू पर मलिकर इनके निबंधों में सौन्दर्य की उद्‌भावना करते हैं। इनके निबंधों में लालित्य का सृजन इनका कवि-मन करता है, वही प्रकृति के सौन्दर्य पर रीझता है, लोक-संदर्भों से प्रतीकों को लाता है, वही कवि-मन अपनी धरती और अपने लोगों के जीवन से बेहद प्यार करता है। जितना उनका गहन अध्ययन शास्त्रों का है, उतना ही गाँव देहात में भी वह अपना मन लगाते हैं। जीवन के प्रति इनका गहरा लगाव हर निबंध में देखा जाता है। ये उस दूब की तितिक्षा की बात करते हैं जो पाँवों से रौंदी जाकर भी लहलहाती है। उद्दाम जिजीविषा और समर्पण इनकी जीवन-दृष्टि का आधार है।

ललित निबंध हिन्दी निबंध का एक मधुर प्रकार है। प्रभाव आकर्षण शक्ति, सुन्दरता में ललित निबंध की कोई सानी नहीं रखता। मनोहारी, मनोरम, लालित्ययुक्त और लेखक के व्यक्तित्व का सम्पर्क प्रतिबिम्ब ललित निबंध में दिखायी देता है। ललित निबंध मनुष्य के सांस्कृतिक अनुभवों की ऐसी चित्रशाला है, जिसमें लालित्य और गाम्भीर्य का विलक्षण समन्वय होता है। शब्द, अर्थ, भाव और विचार सभी स्तरों पर लालित्य का संयोजन करने वाले निबंध ललित निबंध कहलाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कुबेरनाथ राय ललित निबंध के बारे में लिखते हैं-"विषय के आस-पास शिव के साँड की भाँति मुक्त चरण और विचरण ललित निबंध है।"

अर्थात् ललित निबंध निजता और सामुहिकता के मंथन से निकले चिंतन और लालित्य से निर्मित वह गद्य रचना है, जिसमें व्यक्ति की अंतर्चेतना से लेकर सांस्कृतिक परिदृश्य के विस्तार तक को प्रभावित करने का कलात्मक सौष्ठव है।

ललित निबंध में विषय के प्रतिपादन की अपेक्षा शैली की विशिष्टता और रोचकता होती है। इसमें लेखक और पाठक के बीच की दूरी लगभग खत्म हो जाती है। ललित निबंध में लेखक का आत्म-निवेदन होता है। प्रस्तुत ललित निबंध में हल्दी, दुर्वा, दही और अक्षत अर्थात् चावल के माध्यम से सामान्य जन-जीवन के विविध सांस्कृतिक पक्षों का और लेखक के चितन का मनोहारी अभिव्यंजन हुआ है।

6.8.2 निबंध का सारांश

विद्यानिवास मिश्रने अपने आत्मानुभवों को इस ललित निबंध में अभिव्यक्ति प्रदान की है। भारतीय संस्कृति के मांगलिक उपकरण हर घर में हल्दी, दूब, दही, अच्छत है। इनसे पवित्रता का अहसास होता है। गाँव छूट गया, शहर में बसने पर ये उपकरण शहरी औपचारिकता के अंग हो गए। इस कारण वसंत की बयार भी उदास है और अजीब-सा अनमनापन निर्माण कर रही है। उल्लास पथरा गया है। ऐसे में रंगी हथेली, दूब से पुलकित पूजा की थाली, अक्षत से भरा चौक, दधि शोभित भाल मन में उभरता है। इस मांगलिक कल्पना में शहरी जीवन का कोई मेल नहीं। कॉफी हाऊस और कोकाकोला की सभ्यता में यह सब गँवारपन है। गांव में वही बांसुरी की टेर ध्वनि, वे ही गोपाल, शुभंकर, हल्दी का वरदान, नई यात्रा की शुरुआत दही शकुन से और साधना का अभिषेक दुर्वा से, पूर्णता का आशीष अक्षत से है।

6.8.2.1 दूब

बहुत सारे रँग घिरे हुए हैं। पर नवांकुरित दूब की हरित पीत आभा में ही मन बार-बार अटकता है। लोकमानस से उठे लोकगीत बार-बार अपने व्यक्तित्व को त्यागकर पंक्ति बंधन के लिए निमंत्रित करते हैं। लोक केवल लोक की शैली या तर्ज अपनाते हैं, लोकचेता देह भी नहीं देख पाए तो आत्मा बहुत दूर की चीज है। कारण तुम्हारे चश्मे पत्थर के हैं। ये संस्कृति के उपादान कठोरतम पाषाण को भी पिघला देते हैं। तुम्हारे रोल्ड-गोल्ड की चमक भी इनके आगे फिकी है। साठी के चौरा की वे बात करते हैं। लेख को अपने बचपन की दूब से चूमने की घटना याद आती है। यह चूमना ऐसा था जो मादकता उत्पन्न नहीं करता था, शोले नहीं भड़काता था। अधर नहीं मिलते थे बल्कि दूब-अक्षत मस्तक से लेकर घूटनों तक छुआया जाता था। लेखक को अनोखी तृप्ति मिलती है। दूब पशुओं के खूर से कुचली जाती है। खूरपी से छीली जाती है, कुदाली से खोदी जाती है, हल्की-सी नोंक से उलट जाती है, पशु निर्ममता से चर जाते हैं। खेतीहर से सतायी जाती है, परन्तु दूब पलक-पाँवड़े बिछाती है, चलने वालों को फिसलने से बचाती है। दो खेतों की शांति-रेखा है वह। मंगल-गीतों का वह उच्छ्वास है, शरद की प्रात:कालीन ओस है, ग्रीष्म मं धरती की बाँह-रूपी छाँह है। यह दूब भारतीय नारी का प्रतीक है। उपादान त्रास सहन कर भी देने में नहीं चूकती। दूब तितिक्षा की मूर्त व्यंजना है। जितने आघात होते हैं, उतनी ही वह पनपती है, इसी कारण वह मांगलिक उपकरण है। दुर्वा की नोंक जब हल्दी छीड़कती है, तो लगता है सौभाग्य छीड़का जा रहा है। हल्दी-दूब चिद् और आनंद का परिधान है। इसी कारण राष्ट्रध्वज में हल्दी और दूब का संयोग दिखायी देता है।

6.8.2.2 हल्दी

सफेद परिधान अशुभ माना जाता है। हल्दी लगने पर शुभ हो जाता है। हल्दी लगते ही रसवती प्रेय हो जाती है। अक्षय तृतीया को हल-बैल-हलवाहा को हल्दी का टीका लगाया जाता है। बुवाई के समय भी हल्दी के छींटे डाले जाते हैं। मातृत्व का गौरव तभी सफल होता है जब उसके पीहर से हल्दी से रँगी साड़ी और झंगुली (छोटे बच्चे का परिधान) आते हैं तभी सौभाग्य सफल हुआ, ऐसा माना जाता है। हल्दी सुहागिन बनाती है, आकांक्षा पूर्ण करती है, स्नेहा और अनुराग का प्रतिरूप है हल्दी की गाँठ, जिसे पल्लू में बांधा जाता है। हल्दी से रंगकर श्याम दुर्वाभिराम (हरितद्युति) हुए। हल्दी मंगल की प्रतिष्ठा करती है। हल्दी को वर्णक भी कहा जाता है। वर्णक से तात्पर्य है सुवर्णमयी।

6.8.2.3 अच्छत

अच्छत से अर्चन की थाली भर जाती है। अंतरात्मा का आसन है। ब्रह्म का नाद है। अच्छत एक वचन में कभी नहीं आता। इस कारण वह बहुजन हिताय का बोध कराता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.8.2.4 दधि

दही संस्कृति की रसमयी प्रतिमा है। दूध में यौवन का उफान होता है, माखन से मन की एकता का बोध होता है, घी से आयुष्य बोध होता है, परन्तु ये सब मिलकर जो बनता है, वह दही है। दही ही गोरस है, दही खटाई, मिठाई, लुनाई सभी स्वादों से युक्त विलक्षण आस्वाद है। इस दही के लिए परब्रह्म हाथ पसारते हैं। दही से बनी छाछ के लिए तो इन्द्र तक तरसते हैं। परब्रह्म श्रीकृष्ण को तो अहीर की लड़कियाँ छछिया भर छाछ पर नचाती हैं। भारतीय संस्कृति दही और छाछ की तरह है। सभी रसों को अपने में समाते हुए भी अपना अस्तितव बनाए हुए हैं।

6.8.3 मंगल के अभिव्यंजन

हल्दी, दूब, दधि, अच्छत अर्थशून्य आडंबर न होकर मंगल के अभिव्यंजन हैं। रसमय आस्वाद्य है।

विद्यानिवास मिश्र ने भारतीय संस्कृति के महत्त्व को रोजमर्रा के मांगलिक प्रतीकों को आत्म-निवेदन शैली में पूर्ण तथा निजी भाव को समष्टि रूप बनाकर प्रस्तुत किया है।

6.8.4 महत्त्वपूर्ण बातें

1. भारतीय संस्कृति के मांगलिक उपकरण हल्दी, दूब, दही, अच्छत है।
2. दूब भारतीय नारी की प्रतीक है।
3. मेहंदी रंगे हाथ, दूब से सजी पूजा-थाली, अच्छत भरा चौक, दही शोभित थाल का मांगल्य चित्र मानस में उभरता है।
4. पूजा-आराधना दूर्वा अभिषेक से सम्पन्न होती है, यात्रा पर जाते समय दही खाना शुभ है, प्राप्ति का आशीष अच्छत से दिया जाता है।
5. दूब जीवन, हल्दी सौभाग्य मातृत्व, स्नेह-अनुराग तो अच्छत बहुजन हिताय द्योतक है।
6. यौवन (दूध), मन की एकता (माखन), आयुष्य (घी) सबका मिला-जुला दही है। खटाई-मिठाई-लुनाई का प्रतिरूप दही जो भारतीय संस्कृति का प्रतिरूप है।
7. हमारी मांगलिक वस्तुएँ ग्रामीण और कृषि जीवन की है।

6.8.5 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए-

1. कुबेरनाथ राय ललित निबंध की परिभाषा किन शब्दों में करते हैं?
2. लेखक की दृष्टि में दूब भारतीय नारी की प्रतीक कैसे है?
3. मातृत्व का गौरव कब सफल होता है?
4. लेखक के मन से अच्छत क्या है?
5. दही और भारतीय संस्कृति में कौन-सा साम्य है?

(ख) एक वाक्य में उत्तर दीजिए-

1. हल्दी, दूब, दही, अच्छत क्या है?
2. लेखक को अपने बचपन की कौन-सी घटना याद आती है?
3. दूब किसका प्रतीक है?
4. बहुजन हिताय का बोध कौन कराता है?
5. हल्दी को क्या कहा जाता है?

6.8.6 शब्दार्थ

उपादान-उपकरण; बयार-हवा का झोंका; चौक-पीढ़ा, चौरंग (लकड़ी का); अच्छत-अक्षत (चावल); वसन-वस्त्र; पाहन-पत्थर; साठी के चौरा-एक धान, जो बहुत जल्दी तैयार होता है; परती-अनउपजाऊ; तितिक्षा-सहनशीलता, क्षमा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.8.7 स-संदर्भ स्पष्टीकरण

''हल्दी दूब इस देश की संस्कृति को रूप और सौन्दर्य स्पर्श देते रहे हैं, कमल गंध देता रहा है, पर दधि-अच्छत रस तथा शब्द देते रहे हैं।''

संदर्भ-ये पंक्तियाँ पंडित विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित ''हलदी, दूब, दधि, अच्छत'' इस सांस्कृतिक निबंध से ली गयी है।

स्पष्टीकरण-ललित निबंधकार होने के नाते भारतीय स्ंस्कृति के प्रति गहरा लगाव उनके प्रत्येक निबंध में देखा जाता हैं इस निबंध में भी संस्कृति के मंगल प्रतीक हल्दी, दूब, दधि, अच्छत से संबंधित अपने आत्मीय भाव प्रकट किये हैं।

हल्दी के बिना कोई संस्कार-मंगल कार्य पूर्ण नहीं होता। विवाह के अवसर पर कुमारी के अंग-अंग को हल्दी असीस देती है, उसी से सौन्दर्य भी निखरता है। हल्दी के गर्भ में ही धरती का सच्चा अनुराग छिपा होता है तो दूब के साथ वह अभिराम बन जाती है। कमल भी हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है परन्तु दधि-अच्छत रस तथा शब्द देते रहे हैं। दही संस्कृति की कपिला वाणी की रसमयी प्रतिमा है। सभी स्वादों से समस्त होने वाला दही धीमी आँच में तपने के कारण स्थिररूप रहता है। वैसी ही भारतीय संस्कृति सभी रसों से मेल खाती हुई भी अपने रस में सबको समाविष्ट करती हुई अप्रभावित रहती हुई साम्य निदर्शन करती है। जबकि अक्षत से अर्चन की थाली भरी होती है। देवताओं को भी उसी का आसन दिया जाता है। वह अक्षत संस्कृत व्याकरण की महिमा से बराबर बहुवचन में इसीलिए प्रयुक्त हुआ है-बहुजन हिताय का बोध होता रहा है।

विशेष-पंडित विद्यानिवास मिश्र भारतीय संस्कृति के पक्षधर हैं। इसलिए संस्कृति का कोई भी पहलू उनकी दृष्टि से छूटा नहीं है। निबंध के शीर्षक से ही यह बात साफ झलकती है कि संस्कृति के इन प्रतीकों के प्रति लेखक का लगाव है।

6.8.8 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न

1. दूब भारतीय नारी का प्रतीक कैसे है?
2. हल्दी को प्रेम का प्रतिरूप कैसे माना गया है?
3. दही से भारतीय संस्कृति की तुलना लेखक क्यों करते हैं?
4. हल्दी, दूब, दधि, अच्छत-लेखक के मत से मांगलिक उपकरण क्यों हैं?

6.8.9 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए-

1. कुबेरनाथ राय ललित निबंध की परिभाषा इन शब्दों में करते हैं-विषय के आस-पास शिव के साँड की भांति मुक्त चरण और विचरण ललित निबंध हैं।
2. दूध उपादान भास सहन कर भी देने में नहीं चूकता। दूब तितिक्षा की मूर्त्त व्यंजना है, जितने आघात होते हैं, उतनी ही वह पनपती है। भारतीय नारी भी ऐसी ही है। इसलिए लेखक दूब को भारतीय नारी का प्रतीक मानते हैं।
3. मातृत्व का गौरव तभी सफल होता है जब उसके पीहर से हल्दी से रंगी साड़ी और झंगुली आते हैं तभी सौभाग्य सफल हुआ, ऐसा माना जाता है।
4. लेखक के मन से अक्षत अंतरात्मा का आसन है। ब्रह्म का नाद है। अक्षत से ही अर्चन की थाली भरती है।
5. दही खटाई, मिठाई, लुनाई सभी खादों से युक्त विलक्षण आस्वाद हैं। सभी रसों को अपने में समाते हुए भी अपना अस्तित्त्व बनाए हुए है। भारतीय संस्कृति भी ऐसी ही है, यही साम्य दोनों में है।

(ख) एक वाक्य में उत्तर दीजिए-

1. हल्दी, दूब, दही, अच्छत भारतीय संस्कृति के मांगलिक उपकरण हैं।
2. लेखक को अपने बचपन की दूब से चूमने की घटना याद आती है।
3. दूब भारतीय नारी का प्रतीक है।
4. अच्छत बहुजन हिनाय का बोध कराता है।
5. हल्दी को वर्णक भी कहा जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संवर्ग–3 : कहानी

इकाई–7 : कहानी का उद्‌भव एवं विकास

संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 कहानी की परिभाषा
7.2.1 कहानी के तत्त्व
7.2.2 कहानियों का वर्गीकरण
7.2.3 हिन्दी कहानी ऐतिहासिक विकास
7.2.4 सारांश
7.2.5 अभ्यास के प्रश्न
7.3 उसने कहा था–चंद्रधर शर्मा गुलेरी
7.3.1 कथा सारांश
7.3.1.1 अमृतसर का बाजार
7.3.1.2 युद्ध भूमि पर
7.3.1.3 पच्चीस वर्ष की स्मृतियाँ
7.3.2 उसने कहा था– का शिल्पसौंदर्य
7.3.3 चरित्र प्रधान कहानी 'उसने कहा था'
7.3.4 चरित्रांकन में मनोविज्ञान की सहायता
7.3.5 जीवन मूल्यों का निर्वाह
7.3.6 कठिन शब्दार्थ
7.3.7 निष्कर्ष
7.3.8 अभ्यास के प्रश्न
7.4 पुरस्कार–जयशंकर प्रसाद
7.4.1 कथा सारांश
7.4.2 पुरस्कार कहानी में आदर्श का चित्रण
7.4.3 पुरस्कार कहानी का शीर्षक
7.4.4 नायिका प्रधान कहानी
7.4.5 कठिन शब्दार्थ
7.4.6 सारांश
7.4.7 अभ्यास के प्रश्न
7.5 मंत्र–प्रेमचन्द
7.5.1 मंत्र कहानी का सारांश
7.5.1.1 कर्तव्य से मुँह मोड़ने वाला डॉ. चड्ढा
7.5.1.2 कैलाश को सांप पालने का शौक
7.5.3 शीर्षक की संर्पकता
7.5.4 कठिन शब्द
7.5.5 सारांश
7.5.6 अभ्यास के प्रश्न
7.6 पाजेब–जैनेन्द्र कुमार
7.6.1 कहानी का सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.6.2 पाजेब कहानी में मनोविज्ञान
7.6.3 कहानी का अंत चरमसीमा पर
7.6.4 कहानी का शीर्षक
7.6.5 चरित्र चित्रण
7.6.6 पाजेब कहानी का उद्‌देश्य
7.6.7 कठिन शब्द
7.6.8 सारांश
7.6.9 अभ्यास के प्रश्न
7.7 गुलकी बन्नो–डॉ. धर्मवीर भारती
7.7.1 कहानी का सारांश
7.7.1.1 गुलकी का परिचय
7.7.1.2 बच्चो का खेल
7.7.1.3 गुलकी की काल्पनिक जिन्दगी– बदसलूकी नियति
7.7.1.4 सुप्त इच्छा भी पूरी नहीं होती
7.7.1.5 मिरवा–मटकी भी अलग हो गए
7.7.1.6 सत्यानाशी घेघा बुआ
7.7.1.7 नया मोड़
7.7.1.8 बुआ का काम हड़पना
7.7.1.9 गुलकी विदाई
7.7.1.10 गुलकी का मुन्नाभाई
7.7.2 कठिन शब्दार्थ
7.7.3 सारांश
7.7.4 अभ्यास के प्रश्न
7.8 राजा निरबंसिया–कमलेश्वर
7.8.1 राजा निरबंसिया का कथानक
7.8.2 लोककथा
7.8.2.1 आधुनिक कथा–राजा जगपति रानी चंदा
7.8.2.2 हादसा डाके का एवं परिवर्तन जीवन का
7.8.2.3 सोने का कड़ा–शक की जड़
7.8.2.4 बाँझ पन का ताना
7.8.2.5 बचनसिंह का पुनरागमन
7.8.2.6 चंदा का माँ बनना
7.8.2.7 चंदा का स्वाभिमान
7.8.2.8 जगपति का जीवन सूना
7.8.2.9 चंदा का दूसरा ब्याह–एक खबर
7.8.2.10 ग्लानि बोध
7.8.2.11 जगपति का आत्महत्या
7.8.2.12 मृत्य वरण–न्याय चंदा के साथ
7.8.3 शैल्पिक नवीनता
7.8.4 कठिन शब्दार्थ
7.8.5 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.8.6 अभ्यास के प्रश्न

7.9 वापसी–डॉ. उषा प्रियंवदा

7.9.1 वापसी कहानी का सारांश

7.9.2 वापसी कहानी के चरित्र

7.9.3 चारपाई का प्रतीक

7.9.4 पत्नी की दृष्टि से–शिकायती पेटी

7.9.5 शिल्पविधान

7.9.6 कहानी का शीर्षक

7.9.7 कठिन शब्दों के अर्थ

7.9.8 सारांश

7.9.9 अभ्यास के प्रश्न

7.10 पथ के साथी– महादेवी वर्मा

7.10.1 उद्देश्य

7.10..2 प्रस्तावना

7.10..3 महादेवी वर्मा का परिचय

7.10.3.1 जन्म

7.10.3.2 विवाह

7.10.3.3 शिक्षा एवं व्यवस्था

7.10.3.4 काव्यसृजन

7.10.3.5 पुरस्कार

7.10.3.6 गद्य सृजन

7.10.3.7 स्वयं–बोध के प्रश्न

7.10..4 पथ के साथी का वैशिष्ट्य

7.10.4.1 चित्रोपमता

7.10.4.2 कवित्वपन

7.10.4.3 सहानुभूति

7.10.4.4 हास्य व्यंग्यात्मकता

7.10.4.5 यथार्थबोधता

7.10.4.6 वैचारिकता

7.10.4.7 स्वयं–बोध के प्रश्न

7.10.5 पथ के साथ : एक परिचय

7.10.5.1 गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर –पथ प्रदर्शक

7.10.5.2 दर्शन–कला–सुधारक कथा संगम–युगद्रष्टा निर्माण

7.10.5.3 महाकवि

7.10.5.4 वात्सल्य युक्त पिता

7.10.5.5 अमिट छाप

7.10.5.6 भारतीयता के व्याख्यान

7.10.5.7 गुरुदेव को प्रणाम

7.10.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

7.10.7 शब्दार्थ

7.10.8 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न

7.10.9 ससंदर्भ व्याख्या

7.10.10 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.11 मैथिलीशरण गुप्त

7.11.1 परिचय

7.11.2 वेशभूषा

7.11.3 स्वभाव

7.11.4 स्थितप्रज्ञ व्यक्तित्व

7.11.5 रामकथा–लेखन का उत्स

7.11.6 सबके द्‌ददा

7.11.7 लोक समष्टि ही अभिष्ट

7.11.8 स्वयं बोध के प्रश्न

7.11.9 कठिन शब्दार्थ

7.11.10 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न

7.11.11 ससंदर्भ व्याख्या

7.11.12 स्वयं बोधके प्रश्न के उत्तर

7.12 सुभद्राकुमारी चौहान

7.12.1 पहचान

7.12.2 व्यक्तित्व

7.12.3 विपन्न गृह

7.12.4 आदर्श गृहिणी

7.12.5 विद्रोही व्यक्तित्व

7.12.6 अन्याय से मुकाबला

7.12.7 जीवन के प्रसंग

7.12.8 अंतिम इच्छा

7.12.9 स्वयंबोध के प्रश्न

7.12.10 कठिन शब्दार्थ

7.12.11 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न

7.12.12 संसदर्भ व्याख्या

7.12.13 स्वयं बोध प्रश्नों के उत्तर

7.13 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला

7.13.1 पहली स्मृति –राखी का भाई

7.13.2 अनिर्बन्ध दानी व्यक्तित्व

7.13.3 निराला आतिथ्य

7.13.4 सघन संवेदनशीलता

7.13.5 महामानव निराला

7.13.6 युगस्रष्टा

7.13.7 स्वयं बोध के प्रश्न

7.13.8 कठिन शब्दावली

7.13.9 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न

7.13.10 स–संदर्भ व्याख्या

7.13.11 स्वयं बोध प्रश्नों के उत्तर

7.14 जयशंकर प्रसाद

7.14.1 देवदार–प्रसाद

7.14.2 सूंघनी साहू से मुलाकात

7.14.3 व्यक्तित्व

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.14.4 विनोदवृत्ति
7.14.5 विदाई
7.14.6 रोग पीड़ित पर स्वाभिमानी
7.14.7 साहित्य की सभी विधाओ में लेखन
7.14.8 वेदना की प्रतिक्रिया
7.14.9 स्वयं बोध के प्रश्न
7.14.10 कठिन शब्दावली
7.14.11 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न
7.14.12 स–संदर्भ व्याख्या
7.14.13 स्वयं बोध प्रश्नों के उत्तर
7.15 सुमित्रानन्दन पंत
7.15.1 पहला परिचय
7.15.2 गोपा बदत बने सुमित्रानन्दन
7.15.3 सुकुमार सौंदर्य के कवि
7.15.4 वीतराग स्वाभिमानी
7.15.5 प्रियानुरागी केश
7.15.6 कोमल वृत्ति कठोर साधक
7.15.7 स्वयं बोध के प्रश्न
7.15.8 कठिन शब्दार्थ
7.15.9 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न
7.15.10 स–संदर्भ व्याख्या
7.15.11 स्वयं बोध प्रश्नों के उत्तर
7.16 सियारामशरण गुप्त
7.16.1 व्यक्तित्वः ठेठ भारतीय
7.16.2 वियोगी सियाराम
7.16.3 उम्र से बड़े लेकिन छोटे भाई
7.16.4 मीठा–खारा जीवन के धनी
7.16.5 सरस्वती साधक
7.16.6 गांधी निष्ठाःबापू
7.16.7 स्वयं बोध के प्रश्न
7.16.8 कठिन शब्दार्थ
7.16.9 अतिरिक्त अभ्यास के प्रश्न
7.16.10 स–संदर्भ व्याख्या
7.16.11 स्वयं बोध प्रश्नों के उत्तर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.0 प्रस्तावना

कहानी अत्याधिक लोकप्रिय साहित्य विधा है। कहानी कला का मूल कारण, मनुष्य अपने अनुभव और भावों को घटना, प्रसंग और कथानक के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। कहानी की इस विश्वव्यापी लोकप्रियता का रहस्य है कि मानव के जीवन में जो भी घटनाएं घटती हैं, उन्हें वह दूसरों को सुनाना चाहता है। यही घटनाएं कहानी का रूप धारण कर लेती है। यही कारण है कि कहानी कहने–सुनने का प्रचलन सभ्य–असभ्य सभी जातियों में समान रूप से पाया जाता है। कहानी प्रारंभ से ही मनोरंजन का प्रमुख साधन रही है। मनोरंजन के साथ–साथ वह शिक्षा का भी साधन है। जिसे हम कहानी का उद्देश्य कह सकते हैं।

कहानी सही अर्थों में युग का दर्पण है। वर्तमान कहानी न उपदेश देना चाहती है न ही सिद्धान्त प्रतिपादन करती। वह केवल मनोरंजन के लिए भी नहीं लिखी जा रही है बल्कि उसका प्रधान प्रयोजन है जीवन के किसी एक मार्मिक पक्ष का उद्घाटन। जीवन के तथ्य और सिद्धान्त वर्तमान कहानी से व्यंजित हो जाते हैं। आज की कहानी की दृष्टि से उपदेश और मनोरंजन ।जिमत मॅमिबज का तत्व हैं कहानी अपने प्रयोजन के अनुरूप चाहे जहाँ से घटना का सूत्र पकड़ सकती है, चाहे जहाँ से सूत्र छोड़ सकती है। घटनाचक्र को वहीं छोड़ देती है, जहाँ पर पाठक के हृदय पर प्रभाव की स्थायिता निर्माण हो सके। चरम अवस्था पर पहुँचकर ही कहानी समाप्त हो जाती है। पाठ्यक्रम की कहानियों के अध्ययन से कहानी विधा को अच्छी तरह समझा जा सकता है।

7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन से हम–

1. हम कहानी के उद्भव एवं विकास की जानकारी कर सकेंगे।
2. कहानी के तत्वों का ज्ञान कर सकेंगे।
3. कहानियों का वर्गीकरण समझ सकेंगे।
4. पाठ्यक्रम के कहानियों का सांगोपांग विवेचना कर सकेंगे।

7.3 कहानी की परिभाषा

पश्चिम के एडगर एलन पी कहानी विधा के जन्मदाता माने जाते हैं। उनके मत से "कहानी–रसोद्रेक करने वाला एक आख्यान है जो एक ही बैठक में पढ़ा जा सके। उसे पाठक पर प्रभाव डालने के लिए लिखा जाता है। वह अपने में पूर्ण होता है।"

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कथाकार एच.जी. वेल्स के अनुसार "कहानी तो बस वही है जो लगभग बीस मिनट में साहस और कल्पना के साथ पढ़ी जाए।"

'इन साइक्लोपीडिया आफ ब्रिटानिका' में कहानी को संक्षिप्त, अत्याधिक संगठित तथा पूर्ण कक्षा का रूप माना गया है।

वे परिभाषाएं कहानी की संक्षिप्ता, प्रभावात्मकता पर बल देती है। अब हम भारतीय विद्वानों की परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

हिन्दी साहित्य जगत् के मूर्धन्य 'कहानी सम्राट' प्रेमचंदजी कहानी के स्वरूप को इन शब्दों में परिभाषित करते हैं।

"कहानी (गल्प) एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली या कथा–विन्यास सब उसी एक याद को पुष्ट करते हैं। ....उपन्यास की भांति उसमें मानव–जीवन का संपूर्ण तथा वृहद रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। न उसमें उपन्यास भांति सभी रसों का सम्मिश्रण ही होता है। वह एक रमणीय उद्यान नहीं, जिसमें भांति–भांति के बेलबूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक ऐसा गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।"

इसमें प्रेमचंदजी मन पर पड़ने वाले स्थायी प्रभाव को प्रमुखता देते हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कहानीकार अज्ञेय का कहानी के बारे में कहना है कि, "कहानी जीवन की प्रतिच्छाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है। एक शिक्षा है, जो उम्र भर मिलती है और यह समाप्त नहीं होती।"

अर्थात् कहानी और जीवन एक दूसरे से जुड़े हैं। जिन में से मनुष्य निरंतर सीखता ही है। बाबू गुलाबराय कहानी के उद्देश्य और स्वरूप को बताते हुए कहते हैं।

"छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है, जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति केन्द्रित घटनाओं के आवश्यक उत्थान– पतन और मोड़ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतुहलपूर्ण वर्णन हो।"

इन परिभाषाओं से कहानी के प्रमुख तीन अंग सामने आते हैं– 1. उत्सुकता उत्पन्न करने की शक्ति (2) तीव्रता (3) घनत्व

सफल कहानी वही मानी जा सकती है जिसमें एक संक्षिप्त कथा हो, जिसकी रूपरेखा पूर्णतः स्पष्ट और संतुलित हो। वह अपने आप में पूर्ण हो, घटनाएं कौतुहल द्वारा चरम–बिन्दु की ओर अग्रसर हो, कथानक का अप्रत्याशित ढंग से विकास हो, कार्य व्यापार की तीव्रता हो, घटनाएं व्यक्ति केन्द्रित हो, पात्रों का सम्पूर्ण चरित्र उद्घाटित न कर उसका एक पक्ष ही अंकित किया गया हो, सम्पूर्ण जीवन का चित्रण न होकर जीवन के किसी एक अंग, एक मनोभाव का चित्रण हो, कल्पना और नाटकीयता हो, आकार में लघु हो, आरंभ और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अंत चमत्कारपूर्ण हो तथा वह अपने विभिन्न तत्वों को एकाग्र कर पूर्ण और गहरा प्रभाव डालने में समर्थ हो।

7.2.1 कहानी के तत्त्व

कहानी के निम्न तत्व बताये जा सकते हैं– 1. कथावस्तु 2. पात्र 3. कथोपकथन 4. देशकाल परिवेश 5. भाषा शैली 6. उद्देश्य

1. कथावस्तु–

कथानक के लिए अंग्रेजी में च्सवज जीमउम ये शब्द प्रयुक्त होते हैं। कहानी में घटित घटनाएं कार्य कारणभाव से जुड़ी होती है। वे पात्रों के कार्यों से निर्माण होती है। कहानी आगे इससे विकसित होती है। इस घटनाक्रम को कथावस्तु कहते है। इ.एम. फास्टर के मत से कथा घटनाओं का क्रममात्र है जब कि कथानक इनके बीच कार्य कारण भाव को महत्व देता है। कहानी के कथानक के गुण हैं– संक्षिप्ता मौलिकता, रोचकता, विश्वसनीयता, क्रमबद्धता, उत्तुकता शिल्पगत नवीनता और प्रभावात्मक एकता।

कथानक की प्रस्तुति के सोपान इस प्रकार बताये जा सकते हैं–कहानी का शीर्षक, कथानक से संबंधित, संक्षिप्त, व्यंजक होना आवश्यक है। जो मुख्य पात्र के आधार पर, (राजा निरबंसिया) प्रधान विषय या भाव या इस के आधार पर, (पाजेब) प्रधान घटना के आधार पर, (पुरस्कार, मंत्र) मुख्य वस्तु के आधार पर (वापसी) हो सकता है।

दूसरा सोपान है कहानी का आरंभ। यह अंग पाठक को कहानी पढ़ने के लिए विवश करता है। कहानी आरंभ करने की अनेक प्रणालियां हैं– जैसे वर्णन (पुरस्कार) प्रधान पात्र का चरित्र अंकन(राज निरबंसिया), वार्तालाप (पाजेब) आदि।

तीसरा सोपान है– कहानी का विकास। जिसे हम कहानी का मध्य भी कह सकते हैं। घटनाओं का चयन, प्रवाह आदि के द्वारा कौतुहल बनाए रखा जाता है। 'पाजेब' कहानी में यह बात दिखायी देती है। (आशुतोष)

चरमसीमा जो कहानी के अंतिम सोपान के पहले का चरण है, जहां कहानी नया मोड़ भी ले सकती है। जैसे'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू वापस जाने का निर्णय ले लेते हैं।

कहानी का पांचवां सोपान है– कहानी का अंत। चरमसीमा के तत्काल बाद कहानी का अंत आ जाता है। 'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू के चले जाने के बाद उनके परिजनों की प्रतिक्रिया का अंकन किया गया है।

2. चरित्र चित्रण–

कथानक की घटनाएं जिस पर अवलंबित रहती है उन्हें पात्र कहते हैं। पात्रों का आचरण, उनके मनोभाव से उनकी विशेषताएं प्रकट होती हैं, इन्हें पात्रों का चरित्र–चित्रण कहते हैं। लेखक पात्रों के चरित्र के आधार पर कथानक की योजना बनाता है और लक्ष्य तक पहुंचता है। 'गुलकी बन्नो' कहानी में बच्चों का खेल, प्रताड़ना से गुलकी का कारूणिक चित्र प्रस्तुत हुआ है।

कहानी के पात्र सजीव, वास्तव, प्रभावशाली हाते हैं। जो लेखक के हाथों की कठपुतली नहीं है। कहानी के पात्र प्रतिनिध और व्यक्तिनिष्ठ दोनों प्रकार के होते हैं। पात्रों का चरित्र–चित्रण, वर्णन के द्वारा जैसे–परिचयात्मक, विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से हो सकता है। कहानीकार अपने पात्रों का चित्रण वार्तालाप से भी कर सकता है। इसके अंतर्गत संवाद, आत्मकथन, एकालाप, नाटकी पद्धति से भी हो सकता है।

चरित्र–चित्रण की अन्य पद्धतियों में घटना से चरित्र–चित्रण या सांकेतिकता के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। 'मंत्र' कहानी में घटना से चरित्र–चित्रण हुआ है। वापसी में सांकेतिकता से (चारपाई के) चरित्र–चित्रण हुआ है।

3. कथोपकथन (वार्तालाप, संवाद)

कथालोचन का शास्त्रीय शब्द कथोपकथन है। हमारी दृष्टि से वार्तालाप से कहानी की घटनाओं में गतिशीलता और स्वाभाविकता आती है। पात्रों के हृदयगत भावों को जानने का समर्थ साधन वार्तालाप ही है। वार्तालाप से देशकाल, परिवेश का बोध होता है। आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी इस संदर्भ में लिखते हैं। "कथोपकथन कहानी का छोटा, स्वाभाविक और प्रभाविष्णु अंश होता है। उसका प्रत्येक शब्द सार्थक और सोद्देश्य होना चाहिए। बड़े संवादों के लिए कहानी में स्थान नहीं होता। कहानी के कथोपकथन ऐसे नहीं होने चाहिए जो कथा प्रवाह में किसी प्रकार का विक्षेप डाले।"

कहानी के वार्तालाप की विशेषताएं इस प्रकार बतायी जा सकती हैं– स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, अनुकूलता, सुसंबद्धता और मार्मिकता। वार्तालाप के प्रमुख भेद हैं सांकेतिक, नाटकी, भावप्रधान, मनोवैज्ञानिक और हास्य–व्यंग्यात्मक। वार्तालाप के कारण ही कहानी नीरसता से बचती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वार्तालाप के प्रयोग से कहानी अनावश्यक विस्तार से बचती है। वार्तालाप से चरित्र के वैशिष्ट्य का सूक्ष्मतापूर्वक अंकन होता है। स्थान विशेष के शब्द, मुहावरे, लोकोक्तियां वार्तालाप में प्रयुक्त होने से परिवेश का यथार्थ अंकन हो जाता है। वार्तालाप ही लेखक के उद्देश्य को प्रकट करता है।

4. देशकाल, परिवेश (वातावरण)–

कहानी का आकार लघु होने से परिवेश का अंकन संक्षिप्त होता है। सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासक, राजनीति, आंचलिकता में परिवेश के अंकन का बहुत ही महत्व है। आवश्यक स्थानों पर संक्षिप्त एवं संश्लिष्ट चित्रण कहानी के प्रभाव को बढ़ाता है। परिवेश अंकन के कारण कहानी में विश्वसनीयता का गुण स्वयंमेव आ जाता है।

पात्रों के स्थान पद भाव के अनुसार स्थल वर्णन एवं स्थानिक भाषा प्रयोग आवश्यक है। जासूसी तिलस्मी आदि रोमांचक कहानियों में ये तत्व अवश्य महत्वपूर्ण है।

5. भाषा शैली–

कहानी की भाषा विषयानुकूल एवं रसानुकूल होना आवश्यक है। कहानी एक साहित्यिक विधा है इसलिए साहित्य की अपनी विशिष्ट लक्षणायुक्त तथा व्यंजक भाषा का प्रयोग कहानी के लिए होना आवश्यक है। कहानी की भाषा प्रवाहात्मक चित्रात्मक, व्यंजक एवं पात्रानुकूल होती है। मुहावरें, कहावतें, लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा प्रभावक हो जाती है।

शैली मनुष्य के व्यक्तित्व का दर्पण है। जैसा लेखक होगा वैसी ही शैली होगी। शैली के दो पक्ष होते हैं। क. विषयी एवं ख. छंद आकार। शब्द पद वाक्य और प्रसंग की योजना शैली के आयाम है।भाषा के ये अंक सार्थक प्रभावक होने चाहिए आलंकारिता का प्रयोग पुरानी कहानियों में मिलता है। प्रतीकात्मकता शैली सांकेतिक बौद्धिक गुण से संपन्न आधुनिक कहानियों में प्रयुक्त होती है। प्रवाहात्मकता, प्रभावात्मकता, व्यंग्यात्मकता, आंचलिकता, मनोवैज्ञानिकता आदि शैली की प्रमुख विशेषताएं हैं।

हिन्दी कहानियाँ अनेक शैलियों में लिखी जाती है। नित्य नवीन शैली का प्रयोग कहानीकार करता हुआ अपने पाठकों को झंकृत एवं आह्लादित करता है। वर्णनात्मक शैली सब से आसान, सरल एवं साधारण शैली हैं विश्लेषणात्मक शैली तर्क एवं विचार प्रधान होती है। मनोवैज्ञानिक कहानियों में प्रायः इसी शैली का प्रयोग किया जाता है। आत्मकथात्मक शैली में लेखक उत्तम पुरुष सर्वनाम में 'मैं' के रूप में कहानी कहता है। संवादात्मक शैली में पात्र अपने वार्तालाप से कथानक को विकसित करते हैं। पत्र शैली में पत्र लेखन प्रणाली का प्रयोग किया जाता हे। पत्राचार से कहानी आगे बढ़ती है। डायरी शैली में 'डायरी' के रूप में कहानी लिखी जाती है। इनके अलावा स्वप्न शैली, स्मृतिपरक शैली, लोक कथात्मक शैली का प्रयोग कहानीकार करता है। शैली ही पाठक के ध्यान को आकृष्ट करती है।

6. उद्देश्य–

कहानीकार कोरे मनोरंजन के लिए कहानी नहीं लिखता। मनोरंजन उसके लिए एक साधन है जिससे वह मानव–जीवन संबंधी विभिन्न रूपों और दृष्टियों की व्याख्या कर पाठकों पर विशिष्ट प्रभाव डालता है। मूलतः कहानी के तीन उद्देश्य बताए जा सकते हैं–

1. किसी विशिष्ट प्रवृत्ति को जगाकर दृश्य को संवेदनशील बनाना।
2. किसी विचार, सिद्धान्त, मत का प्रतिपादन करना।
3. मनोरंजन के माध्यम से जीवन की व्याख्या करना।

प्रेमचंदजी की दृष्टि से कहानी का उद्देश्य इस प्रकार है "तत्वहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले ही हो जाए किन्तु मानसिक तृप्ति नहीं होती। यह सब है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते, लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए, मन के सुंदर भावों को जागृत करने के लिए कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं। वही कहानी सफल होती है, जिस में इन दोनां में से मनोरंजन और मानसिक तृप्ति में से एक अवश्य उपलब्ध हो।

उद्देश्य के कारण ही लेखक की सामाजिक प्रतिबद्धता एवं जिम्मेदारपन का पता हमें चलता है। परिवर्तन का मिलना आज के साहित्य कहानी का उद्देश्य है।

7.2.2 कहानियों का वर्गीकरण

कहानियों के वर्गीकरण के आधार निम्नानुसार है– 1. कहानी के तत्वों के आधार पर 2. विषय के आधार पर। 3. शैली के आधार पर 4. प्रवृत्ति के आधार पर 5. विकासक्रम के आधार पर।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कहानी के तत्त्वों के आधार पर कहानी का वर्गीकरण

प्रारंभ की पंक्तियों में हमने कहानी के तत्त्वों पर विचार किया है। तत्त्वों के आधार पर वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत है।

क. घटना प्रधान कहानी में घटनाओं, प्रसंगो को महत्व दिया जाता है। तिलस्मी ऐय्यारी जासूसी कहानियां घटना प्रधान होती है। प्रेमचंदजी तथा उनके पूर्व के लेखक ऐसी कहानियां लिखते थे।

ख. चरित्र प्रधान कहानी में पात्र विशेष के चरित्र पर ध्यान दिया जाता है। मनोवैज्ञानिक कहानियों में चरित्र चित्रण पर बल रहता ही है। आज–कल चरित्र को प्रधानता देने से घटना प्रधान कहानियां कम लिखी जाती है।

ग. संवाद प्रधान कहानी में घटना, चरित्र, उद्देश्य आदि पात्रों के वार्तालाप से व्यक्त होते हैं।

घ. परिवेश प्रधान कहानी में वातावरण–स्थल–काल के परिवेश को अधिक महत्व दिया जाता है। आंचलिक एवं ऐतिहासिक कहानियां परिवेश प्रधान होती है।

विषय के आधार पर वर्गीकरण

च. ऐतिहासिक कहानी इतिहास की किसी घटना पर आधारित होती है। विश्वसनीयता जगाने में ये कहानियां उत्कृष्ट हैं। जयशंकर प्रसाद की कुछ कहानियां इस प्रकार की है।

छ. पौराणिक कहानी पौराणिक परंपरा, घटना, देवी–देवताओं से संबंधित होती हे। जो पाठकों की श्रद्धा पर टिकी होती है। पौराणिक प्रसंगों–घटनाओं का प्रयोग वर्तमान जीवन को उद्‌घाटित करने के लिए आजकल होता है। इसे मिथकीय कहानियां भी कहते हैं।

ज. सामाजिक कहानी में व्यक्ति के आपसी संबंध, रूढ़ियों के बंधन, कुरीतियां, शोषण, अन्याय, गरीब स्त्रियों की समस्याएं आदि का अंकन करती है। आजकल ऐसी कहानियां ही अधिक मात्रा में लिखी जाती है।

झ. राजनीतिक कहानी स्वतंत्रता के बाद इस तरह की कहानियां अधिक मात्रा में लिखी जाती रही है। वे व्यंग्य प्रधान कहानियां होती है। मोहभंग, आक्रोश, हताशा, अवसाद, आतंकवाद, देशविभाजन, आपातकाल, दंगे आदि विषय इन कहानियों के होते हैं।

त. तिलस्मी–ऐय्यारी जासूसी कहानियां चमत्कार प्रधान होती है। चोरी, खून, हत्या आदि से संबंधित होती है। साहित्यिक दृष्टि से इन्हें महत्वपूर्ण नहीं माना जाता है।

शैली के आधार पर वर्गीकरण

थ. वर्णन प्रधान में वर्णन द्वारा कथातत्वों का निर्वाह होता है।

द. विश्लेषणात्मक शैली की कहानी में विवेचन एवं तर्क बद्धि पर बल दिया जाता है।

ध. आत्मकथात्मक कहानी में आत्मकथात्मक शैली में कहानीकार स्वयं कहानी कहता है।

न. डायरी शैली की कहानी डायरीनुमा होती है।

प. पत्र–शैली की कहानी पत्राचार से आगे बढ़ती है।

फ. हास्य–व्यंग्य शैली की कहानी मनोरंजन तथा सोच जगाने के लिए लिखी जाती है।

प्रवृत्ति के आधार पर वर्गीकरण

ब. यथार्थवादी कहानी फ्लेयरा देने रेनेसां से प्रभावित हैं। आदर्शवाद के खिलाफ चला हुआ साहित्यिक आंदोलन है, आज की कहानी यथार्थवादी है।

भ. अतियथार्थवादी कहानी। अतियथार्थवादी धारा पश्चिम से भारत में आई है इस मत के अनुसार नैतिक–अनैतिक कहां नहीं होता। रेबो, मलार्मे, हर्बट, रीड से विकसित यह धारा है। फ्रायड से भी प्रभावित अवचेन को उद्‌घाटित करने वाली यह धारा है।

द. प्रगतिवादी कहानी–

कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों से प्रभावित श्रमिकों और शोषितों के पक्ष में प्रगतिवादी धारा है। इस धारा के कारण आम आदमी साहित्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की परिधि में आ गया। यशपाल, संगेय राघव, अमृतराय, हरिशंकर परसाई ने प्रगतिवादी कहानियां लिखी है।

ध. अस्तित्ववादी कहानियाँ–

जां पाल सात्र, किर्के गार्द, अल्बर्ट कामूँ की चिंतन को अस्तित्ववाद कहा जाता है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद विश्व के सभी भाषाओं के साहित्य में यह वाद मुखरित हुआ। इस मत के अनुसार मनुष्य जो क्षण जीता है वही सही है। शिवप्रसाद सिंह की कहानियां इस धारा की कहानियां है।

ध. मनोवैज्ञानिक कहानियाँ–

फ्रायड, एडलर, युंग आदि मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों को अप्ने साहित्य में उतारकर साहित्य निर्माण मनोवैज्ञानिक साहित्यकार का लक्ष्य है। विशेषतया फ्रायड के विचारों का मूल आधार लिखाया जाता है। जिसके अनुसार मनुष्य के समस्त क्रियाकलापों में उसकी काम–भावना ही मूल प्रेरणा में विद्यमान रहती है। वासनाओं की अतृप्ति ही विभिन्न अनुभूतियों और प्रतिक्रियाओं की जन्मदात्री है। जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय, इलाचंद जोशी आदि इस धारा के अंतर्गत आने वाले कहानीकार है।

ल. आंचलिक कहानी–

अंचल विशेष या विशिष्ट भू–भाग की समस्त विशेषताएं– जो प्रकृति, समाज, संस्कृति, इतिहास, परंपरा से संबंधित होती है। इसकी अभिव्यक्ति जब साहित्य में होती है तब वह आंचलिक साहित्य कहा जाता है। इसमें वातावरण का परिवेश का अनन्य महत्व होता है। फणीश्वरनाथ रेणु, रामदास मिश्र इस धारा के सशक्त हस्ताक्षर है।

7.2.3 हिन्दी कहानी : ऐतिहासिक विकास

किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' हिन्दी की पहली कहानी मानी जाती है। 1990 के आसपास हिन्दी कहानी के क्षेत्र में नए प्रतिभाशाली कहानीकार आए। कहानी को एक निश्चत रूप प्रदान किया। इंदु, सरस्वती, हिन्दी अल्पमाला में क्रमशः जयशंकर प्रसाद, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' और इलाचंद्र जोशी, प्रेमचंद, आदि कहानीकार सामने आए। जयशंकर प्रसाद ने ओजपूर्ण, संस्कृतनिष्ठ शैली में कहानियां लिखी। अंतर्द्वन्द्व कथोपकथन, कथा का अद्भुत संघटन, गौरवमय चरित्रचित्रण जैसी विशेषताओं के लिए आकाशदीप, आंधी, पुरस्कार जैसी प्रसाद की कहानियां है। इसी समय जी.पी. श्रीवास्तव ने हास्यरस की कहानियां लिखी।

प्रेमचंद युग की कहानी–

प्रेमचंद ने कहानी को अपनी विचाराधारा और अनुभूतियों को व्यक्त करने का माध्यम बनाया। उन्होंने कहानी को नई तकनीकी दी। 1916 में उनकी 'पंचपरमेश्वर' नामक कहानी प्रकाशित हुई। प्रेमचंद मूलतः प्रसिद्ध साहित्यकार थे। इसलिए उन्होंने पंचपरमेश्वर –मंत्र सी आदर्शवादी कहानियां हिन्दी साहित्य को प्रदान की। साथ–ही 'पूस की रात', 'कफन' जैसी यथार्थवादी कहानियां भी उन्होंने लिखी है। उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं को अपनी प्रगतिशील चेतना से संपृक्त कर कहानियां में अभिव्यक्त किया।

प्रेमचंद के समकालीन कहानीकारों में सुदर्शन, शिवपूजन सहाय, बैचेन शर्मा उग्र, वृंदावनलाल वर्मा, इलाचंद्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, निराला, उल्लेखनीय हैं।

राहुल सांस्कृत्यायन, यशपाल, रांगेय राघव, मन्ममथनाथ गुप्त, ने आर्थिक विषमता और उससे उत्पन्न विकृतियों, विषमताओं का विवेचन करते हुए शोषण, रूढ़ियों पर तीखे प्रहार किये।

व्यक्तिवादी धारा के अंतर्गत जैनेन्द्र कुमार, इलाचंद्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क, अज्ञेय जैसे कहानीकार आते हैं।

आजादी के बाद कहानी

आजादी के बाद विदेशी दासता से हमें मुक्ति मिल गयी परंतु सामाजिक और आर्थिक विषमता और भयानक हो गयी।इस नई विषम स्थिति में कहानी को प्रभावित किया। मोहभंग, कुंठा, आक्रोश को इसने वाणी दी। कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी कहानी ने नवीन जामा पहना। यह आंदोलन 'नई कहानी' कहलाया।

नई कहानी का आंदोलन हिन्दी साहित्य जगत् में 1950 के आस–पास आया। राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर ने कई नई कहानी आंदोलन प्रारंभ किया। नई कहानी इस माने में भिन्न है कि वह सिर्फ संघर्ष नहीं दिखाती, सिर्फ कुण्ठाओं का चित्रण नहीं करती, वह ठण्डे और औपचारिक संबंधों को स्पष्ट करती है। मानव के परिवर्तित जीवन मूल्यों को चित्रित करती है, वह अपने अनुभव–विश्व को व्यक्त करती है।

गुलकी बन्नो, मवाली एक कमजोर लड़की की कहानी, वापसी, नई कहानियां है। भीष्म सहानी, धर्मवीर भारती, उषा पियंवदा, मन्नू

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भण्डारी, अमरकांत, रेणु नए कहानीकार हैं।

साठोत्तरी कहानी

1960 के बाद हिन्दी में धर्मयुग, सारिका, नई कहानी आदि पत्रिकाओं के कारण कहानी जगत् में आंदोलन आए। संत्रास, घुटन, निराशा को ये कहानियां अभिव्यक्त करती है। महानगर की कहानियां, स्त्री–पुरुष संबंधों की कहानियां, आम आदमी के शोषण की कहानियां आयी।

साठोत्तरी कहानी के साथ–साथ अकहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, जनवादी कहानी आदि आंदोलन आए। 'सारिका' नामक पत्रिका ने समान्तर कहानी का आंदोलन चलाया। डॉ. महिपसिंह ने 'सचेतना' पत्रिका के माध्यम से सचेतन कहानी आंदोलन को आगे बढ़ाया।

7.2.4 सारांश

आज का कहानीकार सामान्य मानव का सहभोक्ता और सहयात्री है। इस तरह हिन्दी कहानी समय के अनुरूप अपने आपको ढालकर विकसित होती दिखाई देती है।

7.2.5 अभ्यास के प्रश्न

1. कहानी की परिभाषा लिखिए।
2. कहानी के तत्व पर प्रकाश डालिए।
3. आजादी के बाद की कहानी पर टिप्पणी लिखिए।

7.3 उसने कहा था–चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

(7 जुलाई 1883– 12 सितंबर 1922)

पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी का नाम हिन्दी साहित्य जगत् में कहानी कार के रूप में प्रख्यात हैं। गुलेरीजी का जन्म कांगडा जिले के गुलेर नामक गांव में हुआ। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से बी.ए. प्रथम स्थान से उत्तीर्ण किया। उन्होंने अजमेर के मेयो कॉलेज में संस्कृत प्राध्यापकी की। बाद में उन्होंने वाराणसी के कॉलेज आफ ओरिएंटल लर्निंग के प्राचार्य पद को विभूषित किया।

पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी अपनी तीन कहानियां – सुखमय जीवन, बुद्धू का कांटा और उसने कहा था के कारण अमर हो गये। उनकी कहानियां आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य के प्रारंभ की कहानियां है। दूसरे शब्दों में वे प्रेमचंदजी के पूर्व के कहानीकार हैं। फिर भी कथावस्तु शिल्प और भाषा शैली की दृष्टि से ये कहानियां आज भी संस्मरणीय है।

'उसने कहा था' हिन्दी की आरम्भिक मौलिक कहानियों में से एक है। इस कहानी का रचनाकाल 1915 ई. है। श्री गुलेरी ने इस कहानी में पच्चीस वर्ष के अन्तराल में घटित घटनाओं को श्रृंखला बद्ध करने का प्रयास किया है। युद्ध, भय, आतंक की पृष्ठभूमि में कोमल मानवीय भावनाओं को प्रतिष्ठित करने में कहानीकार सफल हुआ है। कहानी 'फलैश बैक' जैसी आधुनिक शैली में क्रमशः आगे बढ़ती है। कहानी का नायक लहनासिंह युद्ध भूमि में घायल अपने जीवन की पच्चीस वर्ष पुरानी घटनाओं को याद कर रहा है। कहते हैं मृत्यु से पहले अतीत की स्मृति साफ हो जाती है। उसे याद आता है पच्चीस वर्ष पहले अमृतसर की गलियों में एक बालिका से उसकी मुलाकात हुई थी। उस समय उसकी उम्र बारह और लड़की की उम्र आठ वर्ष की थी। दोनों कई दिनों तक मिलते रहे फिर लड़की के द्वारा यह कहने के पश्चात कि उसकी सगाई हो गयी हैं, लड़का उदास मन से घर वापस लौटता है। दोनों के बीच थोड़े समय के लिए पनपा यह आकर्षण प्रेम की पारंपारिक परिभाषा के दायरे में फिट नहीं बैठता। पच्चीस वर्षोपरान्त वह बालिका किसी की पत्नी और किसी की माता के रूप में लहना सिंह से दुबारा मिलती है और युद्ध के मैदान जाते हुए लहना सिंह से अपने पति और बच्चे की रक्षा करने को कहती है। फ्रान्स के युद्ध के मैदान में लहना सिंह ज्वर पीड़ित बोधा और नकली लपटन के चकमें आए हुए सुबेदार हजारा सिंह की प्राणरक्षा करता है और अंत में वजीरा सिंह की गोद में दम तोड़कर प्रेम और कर्त्तव्य के लिए बलिदान देता है।

यह कहानी प्रेम के उदास रूप को प्रस्तुत करती है। त्याग और बलिदान में ही प्रेम सार्थक है कि बात हमारे सामने रखती है। व्यक्तिगत प्रेम हेतु लहना सिंह का बलिदान अपनी व्यापकता से देशभक्ति को जोड़ देता है।

7.3.1 कथा सारांश

'उसने कहा था' कहानी के कथानक स्पष्टः तीन भागों में विभाजित है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.3.1.1 अमृतसर का बाजार

पहला भाग अमृतसर के बाजार का वर्णन को लिए हुए है। रास्तें पर पैदल चलने वाले लोग, इक्के बम्बकार्ट वालों के राहगिरों को ताने, फब्तियां– ऐसे बाजार में एक बारह वर्ष का बालक और एक आठ वर्ष की बालिका एक दुकान पर मिलते हैं। लड़का मामा के केश धोने के लिए दही लेने आता है तो लड़की रसोई के लिए बड़िया। सौदा लेकर दोनों साथ–साथ चलते हैं, कुछ दूर जाने पर लड़का पूछ लेता है, "तेरी कुड़माई हो गयी? इस पर लड़की शरमाई और धत् कह कर दौड़ गयी। इन दोनों की मुलाकात लगभग महीना भर होती रही, कभी सब्जी वाले के यहां, कभी दूधवाले के यहां। हर मुलाकात में लड़का चिढ़ाते हुए पूछता, तेरी कुड़माई हो गयी?" और लड़की हर बार 'धत्' कहती। और एक दिन उसे जबाब मिलता है, "हां, हो गयी, देखते नहीं यह रेसम का कढ़ा हुआ सालू (ओढ़नी)?" यह सुनते ही लड़का रास्ते चलते एक लड़के को मोरी से धकेल देता है, छावड़ीवाले का सामान गिरा देता है, कुत्ते पर पत्थर मारता है, गोभी वाले के ठेले में दूध उंडेल देता है और एक सद्नाता भक्तिन से टकरा जाता है। यहाँ पर कहानी का पहला हिस्सा खत्म होता है। आरंभ का वर्णन सम्पूर्ण कहानी के लिए पृष्ठभूमि सदृश्य है। अमृतसर के बाजार का वर्णन करके एक यथार्थ वातावरण की सृष्टि लेखक पहले कर देता है और फिर उसमें बाल–बालिका के रूप में कहानी के मुख्य पात्र तथा प्रेरणा को उपस्थित करता है।

7.3.1.2 युद्ध भूमि पर

कहानी का दूसरा हिस्सा युद्ध वर्णन का है। सूबेदार हजारासिंह, लहनासिंह और वजीरा सिंह से परिचय इस हिस्से में होता है। जर्मनी के खिलाफ के युद्ध में चार दिन से ये लोग खंदक में ही बिता देते हैं। सूर्य निकलता नहीं, खंदक में पानी के सोते झर रहे हैं। जाड़ा बढ़ गया है कि हड्डियों तक थंस गया है। कोयले की सिगड़ी जलाकर ठंड कम करने की कोशिश की जाती है।

हजारासिंह का बेटा बोधासिंह बीमार हो गया। कंपकंपी छूट गयी, ठंड बढ़ने लगी। लहनासिंह उसे अपनी जर्सी देता है। पिछले चार दिनों से वह बोधा की सेवा कर रहा है, पहरा दे रहा है। अपने पास अतिरिक्त जर्सी होने के झूठमूठ की कथा कह देता है। इतने में एक लपटन खंदक में आकर जमीन लोगों पर चढ़ाई की बात कहता है। लहनासिंह सिगरेट के बहाने नकली लपटन साहब की असलीयत को पहचान लेता है। सभी को आगाह कर देता है। खंदक में उसने छिपाये हुए बत के गोले लहनासिंह निकाल लेता है। लहना को जांच में गोली लगती है और लहना की गोलियों से नकली लपटन मारा जाता है। गोलियों की आवाज सुन कर कुछ जर्मन खाई में घुस जाते हैं। सत्तर जर्मन लोगों में से तिरसठ जर्मन मारे जाते हैं। पंद्रह सिक्खों के प्राण चले जाते हैं। सूबेदार के दाहिने कंधे में से गोली आर–पार निकल गयी थी। लहनासिंह को पसली नें गोली लगी थी। लहना सिंह की तीव्र बुद्धि के कारण सभी के प्राण बच जाते हैं। सूबेदार हजारासिंह लहना की प्रशंसा करते हैं। फील्ड अस्पताल से गाड़ी आती है। एक गाड़ी में घायल लिटाये जाते हैं दूसरी में लाशे रखी जाती है। लहनासिंह घायल होने के बावजूद पट्टी नहीं बंधवाता, अत्याधिक ज्वर से त्रस्त बोधा को तथा उसके पिता सूबेदार को सरदानी की कसम दे कर भेज देता है और कह देता है कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया। ऐसा तुम घर जाकर सूबेदारनी से कहना।

कहानी का यह अंश का विकास अलग–अलग घटनाओं के संयोगों से होता है। घटनाएं इस प्रकार जोड़ी गयी है कि पाठकों का कौतुहल बराबर जागरूक रहता है।

7.3.1.3 पच्चीस वर्ष की स्मृतियां

कहानी का तीसरा अंश स्मृति के रूप में अंकित हुआ है। लहनासिंह को अपने जीवन की सारी बातें एक–एक कर के याद आती है। कहा जाता है कि मृत्यु के कुछ समय पूर्व सारा जीवन दृष्टिपटल पर सिनेमा की रील की तरह साक्षात् होता है।

पहली स्मृति अमृतसर के बाजार की है। लहनासिंह बारह साल का हे। आठ साल की लड़की से पूछता है, "तेरी कुड़माई हो गयी?" और एक दिन वह फूलों वाला रेशम का सालू दिखाकर कहती है, "हो गयी।"

दूसरी स्मृति है–पच्चीस साल बीत जाते है। लहनासिंह फौज में जमादार हो जाता है। फौज में सुबेदार हजारा सिंह और बोधासिंह से मुलाकात होती है। युद्धस्थल पर लौटते समय लहनासिह सुबेदार के घर जाता है। यहाँ सुबेदारनी से मुलाकात होती है। यह वही लड़की है, जो अमृतसर में मिलती थी। सुबेदारनी लहनासिंह से वचन लेती है, "जैसे तुमने मुझे तांगेवाले के घोड़े से बचाया था, वैसे ही सुबेदार हजारासिंह और बोधासिंह पति और पुत्र को बचाना।" इस बिंदु पर कहानी का आरम्भ और मध्य कलात्मक ढंग से जुड़ जाता है। पाठक को एक झटका–सा लगता है और सारा रहस्य स्पष्ट हो जाता है। कहानी का शीर्षक भी स्पष्ट होता है। किसने कहा था, क्या कहा था–का राज खुल जाता है।

वजीरासिंह ने लहनासिंह का सिर अपनी गोदी में रखा हुआ है। जब भी वह पानी मांगता है पिला देता है।कीरतसिहं की याद

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हो आती है। भतीजे के जन्म के समय आम का पेड़ लगाया था और इस आषाढ़ में आम के फल हम दोनों चाचा–भतीजा खाएंगे। इसी स्मृति के साथ जमादार लहनासिंह के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।

7.3.2 'उसने कहा था' का शिल्पसौंदर्य

पंडित चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा लिखित 'उसने कहा था' कहानी शिल्प की दृष्टि से सुगठित सफल कहानी है।शीर्शक से लेकर अंत तक कहानी पाठकों की जिज्ञासा वृत्ति को जगाए रखने में कारगर सिद्ध हुई है। फ्लैश बैक (पूर्व दीप्ति) शैली की सहायता से कहानी आगे बढ़ती है।

कहानी का पहला लम्बा पैरा अमृतसर का बाजार हमारे सामने खड़ा कर देता है, जिसमें एक बालक बालिका महीने भर तक निरंतर मिला करते हैं। इनके बाल–सुलभ क्रिया कलाप और चेष्टाओं को कुछ इंगित कर के कलाकार हमें एकदम से विगत महायुद्ध के रणक्षेत्र में पहुंचा देता है, जिसका संबंध हम कहानी के आरंभिक अंश से जोड़ नहीं पाते, फिर भी चित्रण इतना सजीव है कि एक ही सांस में पढ़ जाते हैं। अंत में, मरते हुए जमादार लहनासिंह की पूर्व स्मृति के रूप में पुनः कहानी अपने आरंभिक अंश में आकर मिल जाती है और वहीं उसकी वे कड़ियां भी प्रकट होती है, जिसमें रस का सारा परिपाक है। शिल्प की प्रतिम बुनावट के कारण कहानी का सौंदर्य दुगुना हो जाता है।

7.3.3 चरित्र प्रधान कहानी 'उसने कहा था'

'उसने कहा था' काहनी का विकास घटनाओं के सहारे हुआ है परन्तु यह घटना प्रधान कहानी नहीं है। कहानी में घटनाओं का संयोजन कथानायक लहनासिंह के व्यक्तित्व रेखा विभिन्न आयामों को उद्‌घाटित करने हेतु हुआ है। संपूर्ण कहानी के केन्द्र में लहनासिंह ही है। चरित्रप्रधान कहानियों की विशेषता होती है कि विभिन्न परिस्थितियों, घटनाओं और प्रसंगों में पात्र को डालकर उसके चरित्र के किसी विशिष्ट पक्ष को उपस्थित किया जाता है। जिससे कि पात्र के मुख्य गुण हमारे सामने आ जाते हैं। प्रेम, कर्त्तव्य, वीरता, साहसिकता, आत्मोत्सर्ग गुणों का प्रतीक लहनासिंह है। लहनासिंह के जीवन की घटनाएं–अमृतसर के बाजार में घोड़े के पैरों से बालिका की रक्षा करना, सुबेदारनी के पति और पुत्र की रक्षा करना, लपटन साहब को ठीक तरह से पहचानना और तुरंत उचित कार्यवाही करना, वीरतापूर्वक युद्ध करना और अंत में बलिदान देना आदि ऐसी घटनाएं है जो लहनासिंह के चरित्र के अनेक पक्षों और अनेक गुणों को उभारती है। इस कहानी का लहना जितना व्यक्तित्व संपन्न है, उतने ही अन्य पात्र भी हैं।

7.3.4 चरित्रांकन में मनोविज्ञान की सहायता

'उसने कहा था' कहानी में गुलेरी जी ने चरित्रोद्‌घाटन में मनोविज्ञान की सहायता ली है। व्यावहारिक मनोविज्ञान के दर्शन कहानी के आरंभ के दृश्य में ही हो जाते हैं। जैसे–बालिका के द्वारा यह कहने पर कि, "हां, हो गयी, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू" यह सुनकर बालक विक्षिप्त सा हो उठता है। जिस का सुंदर चित्रण लेखक के द्वारा किया गया है–जैसे–"लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ीवाले की दिनभर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उंडेल दिया। सामने से नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पाकर तब कहीं घर पहुंचा।"

बालक–बालिका के प्रेम का चित्रण भी मनोवैज्ञानिक धरातल पर ही हुआ है। बाद में प्रौढावस्था में जब मुलाकात होती है तो वह बालिका एक कर्त्तव्य परायणा पत्नी, वात्सल्यमूर्ति , ममतामयी मां के रूप में उसके सामने आती है। दोनों के अपने–ध्येय मार्ग निश्चित होते हैं। इसलिए लहना और सुबेदारनी का यह बचपन का आकर्षण शुद्ध प्रेम ही रहता है और कर्त्तव्य का रूप ग्रहण कर लेता है, जिसकी चरम परिणति आत्मोत्सर्ग में होती है। लेखक ने बड़ी सूझ–बूझ के साथ घटना तथा मानसिक चित्रण के माध्यम से मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि में ही मुख्य चरित्र का उद्‌घाटन किया है।

7.3.5 जीवन मूल्यों का निर्वाह

'उसने कहा था' कहानी जीवनमूल्यों को संप्रेरित करती है। पवित्र प्रेम, कर्त्तव्य निष्ठा, वचन का निर्वाह, आत्मबलिदान देकर करना ये जीवनमूल्य 'उसने कहा था' के लहनासिंह के माध्यम से कहानीकार पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने व्यंजित किए हैं। बचपन में हुआ प्रेम का अंकुरण, प्रेम का विवाह में परिणत न होने पर उत्पन्न गुस्सा और पच्चीस साल बाद इस प्रेम का वास्ता देकर सुबेदार हजारासिंह की पत्नी ने लहनासिंह से वचन लिया और लहनासिंह उसके कहे अनुसार बलिदान देकर प्राण बचाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.3.6 कठिन शब्दार्थ

कुड़माई–सगाई, मंगनी	सालू– ओढ़नी	छावड़ीवाला–खोमचावाला
रिलिफ–मदद	संगीन–बंदूक	खाई–खंदक
पाधा–पंडित, आचार्य	लाडीहोरा–पत्नी के लिए प्रयुक्त सम्बोधन	
मुरब्बा– नई नहरों के पास की वर्गभूमि	बरानकोट– ओवरलोट	
(जमीन का नाप)	जरसी– स्वेटर, ऊनी कपड़ा	धावा करना–आक्रमण करना
मार्च करना–प्रयाण करना	खोता–गधा	

संसदर्भ स्पष्टीकरण–

"कल, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।"

संदर्भ– ये पंक्तियां चंद्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा लिखित 'उसने कहा था' कहानी से ली गयी है। सन् 1915 में प्रकाशित उनकी यह सर्वाधिक प्रसिद्ध कहानी है।

स्पष्टीकारण– प्रथम विश्व–युद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित यह कहानी है। कहानी का नायक लहनासिंह जब बहुत छोटा था, एक बालक, अपने मामा के यहां अमृतसर के बाजार में मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था। उसी दुकान पर एक बालिका रसोई के लिए बड़ियां लेने। वहीं उनका परिचय होता है। बार–बार मिलने के कारण एक सहज स्वाभाविक अनुराग का भाव बालक के मन में जागता है। हर बार वही पूछता 'तेरी कुडमाई हो गयी, और लडकी शरमा कर 'धत्' कह कर भाग जाती ।लगभग महीनाभर यही हाल रहता है और एक दिन लड़की को चिढ़ाने के लिए वैसे ही पूछा तो लड़के की सम्भावना के विरूद्ध वह बोली, 'हां' कब? तब वह कहती है, कल, देखते नही यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।"

इस अप्रत्याशित उत्तर से बालक के हृदय पर अनजाने में आघात सा होता है। सहज आकर्षण से प्रेम का भाव निर्माण हुआ था जो एकदम से उसका दिल तोड़ देता है। इस उत्तर के बाद बालक के द्वारा बदला हुआ व्यवहार कहानी में वर्णित किया गया है।

7.3.7 निष्कर्ष– गुलेरीजी ने केवल तीन कहानियां लिखी–सुखमय जीवन, बुद्धू का कांटा और उसने कहा था। यह उनकी तीन कहानी है। कहानी कला सौंदर्य का चरम विकास इसमें देखा जा सकता है। इसी कारण आज भी इसकी गणना विश्व की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में की जाती है।

7.3.8 अभ्यास के प्रश्न–

1. कुडमाई हो गयी सुनने पर बालक की कौन सी प्रतिक्रिया हुई?
2. लहनासिंह ने नकली लपटन को कैसे पहचाना?
3. 'उसने कहा था' के नायक लहनासिंह का चरित्रचित्रण कीजिए।
4. हजारासिंह और बोधासिंह के प्राण लहनासिंह ने क्यों और कैसे बचाए?
5. शीर्षक के औचित्य पर प्रकाश डालिए।

7.4 पुरस्कार (जयशंकर प्रसाद)

(30 जनवरी 1890 –15 नवम्बर 1937)

जयशंकर प्रसाद बहुविध साहित्यकार थे। इनका जन्म वाराणसी के सुंघनी साहू परिवार में हुआ। जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य में कवि, नाटककार एवं कहानीकार के रूप में जाने जाते हैं। वे छायावादी कवि हैं। छायावाद की विशेशता है–भारत की गरिमामय संस्कृति के पुनरूत्थान का भाव। प्रसाद ने कविता, नाटक एवं कहानियों में इसे वाणी दी है।

जयशंकर प्रासाद 'कामायनी' नामक महाकाव्य से काव्य के क्षेत्र में एवं चंद्रगुप्त, अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी, जैसे ऐतिहासिक नाटक, आकाशदीप, ममता, पुरस्कार जैसी कहानियों के कारण हिन्दी साहित्य जगत् में प्रख्यात है।

जयशंकर प्रसाद ने लगभग 75 कहानियां लिखी। जो पांच कहानी संकलनों में संकलित हैं। वे इस प्रकार है 'छाया' , प्रतिध्वनि',

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'आकशदीप,' 'आंधी', तथा 'इंद्रजाल'। इनकी कहानियों का वैशिष्ट्य है– आदर्श से ओतप्रोत कोमल भाव, आवेग , अंतर्द्वंद्व, गीतिमयता, व्यक्ति। ये कहानियां प्रसाद की कवित्वशक्ति, दार्शनिक दृष्टि और नाटकीय शिल्प के वैशिष्ट्य को लिए हुए हैं। नाटकीयता एवं काव्यमयी भाषा, कहानियों की विशेषता प्रखरता से दिखायी देती है। भारतीय संस्कृति और इतिहास के प्रति उनका लगाव, कहानियों के वातावरण, काल, पात्रों के नाम आदि में स्पष्टतया दिखायी देता है। संस्कृत के शब्दों का अतिशय प्रयोग से कहानी की भाषा तत्सम प्रधान हो गयी।

7.4.1 कथा सारांश

ऐतिहासिक घटनाचक्र के ताने–बाने से बुनी 'पुरस्कार' प्रसाद की महत्वपूर्ण कहानियों में से एक है। इस कहानी में नारी हृदय की अत्यंत कोमल भावना 'प्रेम' और 'कर्त्तव्य परायणता' के द्वंद्व का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। मधुलिका अपना सब कुछ देश के हित अर्पित कर निर्जन वन प्रदेश में एकांकी जीवन व्यतीत करती है। अभावग्रस्त अवस्था में उसे मगध राज्य के कुमार अरूण की स्मृति बेचैन करती है। अरूण से मधुलिका की पहली मुलाकात कौशल राज्य के 'कृषिउत्सव' के दिन हुई थी। उस दिन अपना खेत राजा को अर्पित कर मधुलिका ने उसके बदले कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया था। उस संध्या जब अरूण ने प्रेम का प्रस्ताव किया तो वह उसे स्वीकार न कर सकी थी। आज वर्षोपरांत वह जीवन के उस बीते हुए क्षण को लौटा लाने के लिए विकल थी।

अरूण दुबारा मधुलिका के सामने आता है किन्तु तीन साल पुराने अरूण के रूप में नहीं बल्कि मगध के विद्रोही राजकुमार के रूप में। मधुलिका को अरूण के साथ अपना प्रेम साकार होता दिखलाई देता है। वह अरूण के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत होती है। अरूण कौशल राज्य पर जंगलों के रास्ते आक्रमण करना चाहता है, जिसके लिए मधुलिका राजा से दखिणीनाले के पास कुछ जमीन मांग लेती है।

आक्रमण की पूर्व संध्या पर अरूण द्वारा कौशल के पराधीन हो जाने की संभावना मधुलिका को उद्विग्न कर देती है। वह अंधेरी रात में ही महाराज के सम्मुख जाकर सब कुछ बतला देती है। कुमार अरूण बन्दी बनाया जाता है, उसे मृत्युदण्ड मिलता है। तथा मधुलिका से अपनी इच्छा के अनुरूप पुरस्कार मांगने की घोषणा होती है। मधुलिका पुरस्कार में अरूण के साथ ही मृत्यु दण्ड मांगती है। पहले अरूण को बन्दी बनवाकर वह अपने व्यक्तिगत प्रेम को देशप्रेम पर निछावर कर देती है तो दूसरी तरफ अरूण के साथ ही मृत्युदण्ड की मांग कर प्रेम के पथ पर स्वयं को उत्सर्ग कर देती है। लेखक ने इस कहानी में व्यक्तिगत प्रेम और देशप्रेम का द्वंद्व दिखलाते हुए देशप्रेम को अन्य सभी प्रेमों से ऊंचा और सर्वश्रेष्ठ बताया है।

7.4.2 'पुरस्कार' कहानी में आदर्श का चित्रण

जयशंकर प्रसाद संकल्पात्मक अनुभूति और जीवन के सुन्दर दर्शन के खोजी हैं। उन्होंने मानवता के शाश्वत मूल्यों की स्थापना पर बल देते हुए त्याग, कर्त्तव्यपालन के लिए आत्म बलिदान देशप्रेम का अद्भुत चित्र 'पुरस्कार' कहानी में प्रस्तुत किया। 'पुरस्कार' कहानी मधुलिका के माध्यम से देशप्रेम और वैयक्तिक प्रेम के आदर्श को अनूठे ढंग से उपस्थित करती है।

सिंहमित्र की लड़की मधुलिका का खेत कृषिमहोत्सव के लिए चुना गया। राजा ने कृषक बन कर खेत को जोता। इस ऐवज में खेत का पुरस्कार स्वर्ण मुद्राओं के रूप में दिया जाता था। इसे लेने से मधुलिका ने इन्कार किया। कारण, पितृ–पितामहों की भूमि का मूल्य आंकना सामर्थ्य के बाहर है। इस प्रसंग के माध्यम से जयशंकर प्रसाद ने मधूलिका का स्वाभिमान, पुरखों के प्रति आदर, श्रद्धा का भाव, महाराज को भूमि समर्पण कर राजा और राज्य के प्रति प्रेमभाव व्यक्त किया।

मधुलिका ने राजा का प्रतिपादन 'अनुग्रह' नहीं लिया। मधुक वृक्ष के नीचे पर्णकुटी बनाकर रहने लगी। दूसरे के खेतों में काम करने लगी।

इसी उत्सव के समय मगध राजकुमार अरूण से मुलाकात होती जो उसके ग्राम्य, प्राकृतिक, भोले सौंदर्य पर मोहित हो जाता है और मधुलिका के समक्ष प्रेम का प्रस्ताव रखता है पर वह कहती है,–"आप नन्दन बिहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम कर जीने वाली इसलिए तुमसे प्रेम नहीं हो सकता।" परंतु राजकुमार अरूण उसके हृदय में बस जाता है। राजकुमार अरूण कुछ दिनों के बाद कौशल में जीविका खोजने आता है। कारण वह मगध से निर्वासित हो चुका है। उसके साथ कुछ सैनिक भी है। बातों ही बातों में अरूण के षडयंत्र का पता मधुलिका को चलता है। मधुलिका आहत हो जाती है, मैनें कौशल के शत्रु से प्रेम कर लिया। वैयक्तिक प्रेम से ऊंचा राष्ट्रप्रेम है, राष्ट्रीय कर्त्तव्य को याद कर आधीरात में ही मधुलिका सेनापति के पास पहुंच जाती है और मगध के आततायियों के आक्रमण की सूचना देती है। सेनपति हरकत में आते हैं। राजा के पास मधुलिका को ले जाते हैं। राजकुमार अरूण का आक्रमण विफल कर दिया जाता है। राजा खुश होकर पुरस्कार मांगने के लिए कहता है तो वह अपने प्रेम रक्षा हेतु अरूण के साथ प्राणदंड मांगती है। और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

देशप्रेम की मिशाल उपस्थित करती है।

7.4.3 'पुरस्कार' कहानी का शीर्षक

जयशंकर प्रसाद ने 'पुरस्कार' को केन्द्र में रखकर कहानी का तानाबाना बुना है। पहला प्रसंग कृषक महोत्सव पुरस्कार (जमीन का चौगुना मूल्य) इसे मधुलिका अस्वीकार कर देती है। अंतिम प्रसंग मगध के आततायियों से कौशल की रक्षा का है। इस ऐवज में राजा पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा करता है तब मधुलिका मांग लेती है–प्राणदण्ड। 'पुरस्कार' आदर्शों की स्थापना और प्रेरणा का प्रमुख अंग है। इस बात को 'पुरस्कार' कहानी में प्रकट किया गया है।

7.4.4 नायिका प्रधान कहानी

'पुरस्कार' कहानी की प्रमुख पात्र मधुलिका है। मधुलिका कहानी की नायिका है। इसलिए वह कहानी नायिका प्रधान है। मधुलिका प्रभावशाली नायिका है जो अपने निश्चित विचार, दृढ़ आचार से पाठक पर अमिट प्रभाव छोड़ती है। मधुलिका के चरित्र की बातें निम्न प्रकरण से प्रकट होती है।

1. उसे अपने राष्ट्र तथा राजकीय परंपराओं पर अभिमान है।
2. प्रतिदान को स्वीकार नहीं करती।
3. कर्त्तव्यपालन, त्याग, निष्ठा पर अडिग रहती है, समझौता नहीं करती।

'पुरस्कार' कहानी ऐतिहासिक वातावरण को साकार करती है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग वातावरण का निर्माण करने में सहयोग सिद्ध हुए हैं– जैसे–शैलमाला, हेमकिरण, अश्वारोही, स्वर्णमल्लीका, आम्रलपल्लव, कृषकबालिका, भावना का अवगुंठन, प्रहर, श्रमजीवी, आलोक आदि।

7.4.5 कठिन शब्दार्थ–

स्वस्त्ययन– आशीर्वचन	खील–लाड	ऊर्जस्वित– ओजस्वी	कपोत–कबूतर	प्राची–पूर्व
अवगुण्ठन–आचरण	छाजन–छत	निविड तम– घना अंधकार	आलोक–प्रकाश	

संसंदर्भ स्पष्टीकरण–

"महाराज को भूमि–समर्पण करने में मेरा कोई विरोध न था और न है, किन्तु मूल्य स्वीकार करना असम्भव है।"

संदर्भ– इन पंक्तियों को जयशंकर प्रसाद की कहानी 'पुरस्कार' से लिया गया है। जो मधुलिका कृषि उत्सव में पुरस्कृत होने पर राजा के मंत्री से कहती है।

स्पष्टीकरण– ऐतिहासिक पृश्ठभूमि में लिखी गयी 'पुरस्कार' कहानो में नायिका मधुलिका अपने पूर्वजों के खेती पर आजीविका चलाती है। कौशल राज्य में प्रतिवर्ष 'कृषि उत्सव' मनाया जाता था। उस दिन महाराज स्वयं कृशक बनते। जिस कृषक का खेत इस उत्सव के लिए चुना जाता वह बीज देने का सम्मान पाता। इसके एवज में राजकीय अनुग्रह के रूप में स्वर्ण मुद्राएं जो खेत के मूल्य से कई चौगुनी होती, मिलती। यह पुरस्कार जिसे मिलता उस खेती को वही व्यक्ति करता पर वह राजा का खेत कहा जाता।

इस वर्ष मधुलिका के खेत को 'कृषि उत्सव' के लिए चुना गया इसलिए बीज देने का सम्मान पाने में वह गौरव का अनुभव करती है। उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त होने पर थाल में स्वर्ण मुद्राएं पुरस्कार रूप में दी जाती है। मधुलिका थाली सिर से लगा लेती है, साथ ही वे स्वर्ण मुद्राएं महाराज पर न्यौछावर कर देती है। महाराज तनिक रोष में आते हैं तब मधूलिका सविनय कहती है ये मेरे पितृ पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है। भूमि समर्पण करने नें मेरा विरोध नहीं है किन्तु मूल्य स्वीकार असंभव है।

7.4.6 सारांश–

एक नारी ह्रदय की भावना के अंकन के साथ इसमें आदर्शवाद की चरमसीमा बतायी गयी है। त्याग, बलिदान एवं कर्त्तव्य भावना से पूर्ण कहानी राष्ट्रप्रेम का भी संदेश देती है।

7.4.7 अभ्यास के प्रश्न–

1. 'पुरस्कार' कहानी के शीर्षक के औचित्य को स्पष्ट कीजिए।
2. 'मधुलिका' की चरित्रगत विशेषता पर प्रकाश डालिए।
3. 'पुरस्कार' कहानी के कथानक की विशेषताएं बताइए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.5 मंत्र (मुन्शी प्रेमचंद)

(31 जुलाई 1880–8 अक्टूबर, 1936)

कहानी और उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने वाले प्रेमचंद का स्थान सर्वोपरि है। प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में 'उपन्यास सम्राट' के रूप में जाने जाते हैं। सच बात तो यह है कि प्रेमचंद के पूर्व कहानीकला से हिन्दी जगत् के लेखक अपरिचित से ही थे। साथ ही विषय और कथ्य की विविधताओं से भी अनभिज्ञ थे। प्रेमचंद पूर्व कहानी जासूसी, तिलस्मी, ऐय्यारी जैसी सस्ती मनोरंजन जानकारी अथवा पारंपरिक पंचतंत्र, हितोपदेश–जैसी नीति–उपदेश प्रधान कहानियां ही लिखी जा रही थी। इसलिए ऐसा कहा जाए, प्रेमचंद ने हिन्दी कहानियों को शून्य के स्तर से उठाकर ऊंचाइयों के शिखर तक पहुंचाया।

जैसे चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने 'उसने कहा था' कहानी लिखकर हिन्दी कहानी साहित्य की अपार संभावनाओं की तरफ संकेत किया था परंतु कहानी साहित्य की पुष्ट परंपरा का आरंभ प्रेमचंद से ही होता है। आपने अपनी रचनाओं के द्वारा मानदंड स्थापित किए। साथ–ही–साथ युगीन कहानीकारों को प्रेरणा भी दी। प्रेमचंद की जीवन दृष्टि, समझ, प्रतिभा, चतुराई के कारण हिन्दी कहानी साहित्य प्रौढ़ हो गया।

1907 से लेकर 1915 तक प्रेमचंद ने 'नवाबराय' नाम से उर्दू में कहानियां लिखी। उर्दू कहानियों की संख्या लगभग पौने दो सौ है। 1915 के बाद 'प्रेमचंद' नाम धारण कर हिन्दी में कहानियां लिखी। 'सप्तसरोज' प्रेमपच्चीसी', 'प्रेमपूर्णिमा', आदि पच्चीस से अधि ाक कहानी संग्रह प्रसिद्ध है। प्रेमचंद की कहानियां, मानसरोवर के आठ खंडों में संग्रहित है।

प्रेमचंद प्रतिबद्ध कहानीकार हैं। उन्होंने कहानियों के द्वारा मानव जीवन के सभी अंगों का स्पर्ष किया है। इनकी कहानियों में समाज की कुरीतियां, राजनीतिक उथल–पुथल, किसानों–मजदूरों की दयनीय दशा, सामाजिक बंधनों में तड़पती भारतीय नारी के अंतर्मन का सूक्ष्म एवं मार्मिक चित्रण हुआ है। दलित और शोषित के प्रति आंतरिक संवेदनाओं से ओतप्रोत प्रेमचंद की कहानियां पाठकों को सोचने के लिए विवश करती है और आदर्श उपस्थित करती है। मनोविश्लेषण और आंतरिक द्वंद्व को भी उन्होंने अपनी कहानियों में आधारशिला प्रदान की है। प्रेमचंद ने यथार्थवादी कहानियां भी लिखी है। 'ठाकुर का कुआं', 'पूस की रात', 'कफन' इस तरह की कहानियां है।

'मंत्र' कहानी डॉक्टर व्यवसायी आदर्श को आंतरिक द्वंद्व एवं हृदय परिवर्तन को व्यक्त करती है। डॉक्टर पेशे का आदर्श है। मनुष्य जीवन बचाना, अपने बुद्धि ज्ञान की सहायता से मनुष्य को मरने न देना। भगत अपनी मंत्र शक्ति और वनौषधी द्वारा डॉक्टर चड्ढा के इकलौते बेटे के प्राण बचाता है। जबकि पढ़ा–लिखा व्यवसायी डॉक्टर मांत्रिक भगत के इकलौते बेटे का इलाज करना तो दूर देखता तक नहीं। कारण उसे गोल्फ खेलने में देरी हो जाएगी। ऐसे अमानवीय, बर्बर, पढ़े–लिखे व्यवहार के सर्प विष पर बूढ़े –भगत के मंत्र से पुनर्जीवन का उपचार की विजय 'मंत्र' कहानी में दिखायी गयी है।

7.5.1 'मंत्र' कहानी का सारांश

7.5.1.1. (अ) कर्त्तव्य से मुंह मोड़ने वाला डॉ. चड्ढा

डॉ. चड्ढा मशहूर डाक्टर थे। उनके हाथों में चमत्कार था। जिस मरीज को वे देख लेते मौत के मुंह में गया मरीज जी उठता। एक शाम डाक्टर चड्ढा गोल्फ खेलने के लिए तैयार हो रहे थे, इतने में दो कहार एक डोली लिए हुए आए। डोली के साथ–साथ एक बूढ़ा लाठी टेकते हुए आया। बूढ़े ने अपने बेटे की बीमारी की बात कह कर लड़के को देखने की विनती की। डॉक्टर साहब ने अपनी कलाई की घड़ी की ओर देखा, केवल दस मिनट ही शेष थे। इसलिए उन्होंने कहा– कल सबेरे आओ, हम इस वक्त मरीजों को नहीं देखते। इस पर बूढ़े ने पगड़ी उतारकर चौखट पर रखी ओर रोते हुए बोला, "केवल एक निगाह देख लें, सात लड़कों में यही एक बचा है–आप यदि नहीं देखेंगे तो लड़का हाथ से चला जाएगा।" बूढ़े की गिड़गिडाहट को डाक्टर चड्ढा ने अनसुना कर दिया। डॉक्टर मोटर में जाकर बैठ गये, बूढ़ा उनके पीछे दौड़ा, बूढ़े की याचना का डॉ. चड्ढा पर कोई असर नहीं हुआ। निर्विकार भाव से कहा– कल सवेरे आना और वे चले गये।

डॉक्टर ने अपने आमोद–प्रमोद के लिए अपने कर्त्तव्य से मुँह फेर लिया। फलतः बूढ़े का सात साल का बच्चा उसी रात स्वर्ग सिधार गया। बूढ़ापे की लाठी छूट गयी, आशा का दीपक बुझ गया। मानवता कलप कर रह गई।

7.5.1.2 (आ) कैलाश को सांप काटने का शौक–

डॉक्टर चड्ढा नियम और संयम का पालन बड़ी–कड़ाई से करते थे। उन्होंने यश और धन के साथ–साथ स्वास्थ्य भी कमाया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

था। उनके दो बच्चे थे एक लड़का–एक लड़की। लड़का कॉलेज में पढ़ता था, लड़की का विवाह हो चुका था। लड़का अपने माता–पिता के जीवन का आधार था, उसका नाम कैलाश था। कैलाश की आज बीसवीं वर्षगांठ थी।

शाम के समय हरी–हरी घास पर कुर्सियाँ लगी हुई थी। शहर के रईस तथा अधिकारी, कॉलेज के छात्र तथा उसके मित्र आए हुए थे। आमोद–प्रमोद का खुशहाल वातावरण था। कैलाश की भागदौड़ जारी थी। प्रहसन की भी वह तैयारी कर रहा था। इतनी व्यस्तता में कैलाश की सहपाठिन मृणालिनी ने कैलाश से आग्रह किया, मुझे साँप दिखाओ। कैलाश ने हाथ से इन्कार करते हुए कहा, "इस वक्त नहीं कल दिखाऊंगा।" कैलाश को साँपों को पालने, खिलाना, नचाने का शौक था। उसने अनेक सर्प पाल रखे थे। साथ ही साँप–विष को उतारने वाली जड़ी–बूटियाँ (वनौषधियाँ) इकट्ठा करने का भी उसे शौक था। इस शौक पर उसने हजारों रूपये खर्च कर डाले थे और आज बेवक्त मृणालिनी ने कैलाश पर अधिकार जमाने की भावना का प्रदर्शन करने हेतु साँप दिखाने की जिद्द कर बैठी। अन्य मित्रों ने उसकी हाँ में हाँ मिलायी। मृणालिनी को यह ठीक नहीं लगा, उसने कहा– मैं इस वक्त साँप देखना नहीं चाहती, इस पर एक व्यक्ति ने चिढ़ाया, देखना तो आप सब कुछ चाहे पर कोई दिखाए तो?" प्रीतिभोज की समाप्ति पर गाना शुरू होने पर कैलाश–मृणालिनी और अन्य मित्रों को साँपों के दरबे के सामने ले गया और महुआ (बीन) बजाने लगा। एक–एक कर साँप दिखाने लगा। एक मित्र ने टोकते हुए कहा–दाँत तोड़ डाले होंगे। कैलाश हंसकर बोला–दाँत तोड़ना मदारियों का काम है। किसी भी साँप के दाँत नहीं तोड़े गये? दिखाऊँ और उसने सबसे जहरीले साँप को हाथ में ले लिया। देखो इसके दाँत। मृणालिनी ने हाथ जोड़े और मना किया। दूसरे मित्रों ने भी कहा ठीक है, तुम कहो तो हम मान लेते हैं। पर कैलाश पर तो जूनून सवार था। उस पर किसी की बात का कोई असर आज नहीं हुआ। उसने सांप की गर्दन जोर से दबा दी। साँप का मुँह लाल हो गया। सारी नसें तन गई। साँप भी इस अप्रत्याशित व्यवहार से चकित हुआ। आत्मरक्षा के लिए तैयार हो गया। सभी मित्रों ने साँप का जहरीला दांत देखा और चकित हो गये। कैलाश ने सांप की गर्दन ढीली की और छोड़ना चाहा तो साँप ने उसकी उंगली को काट लिया। उंगली से खून निकलने लगा। जहर सारे बदन में फैल गया।

जहरीले काले सांप के काटने से उंगली से खून बहने लगा। मेज की दराज की ओर भागा और जड़ी निकाली। सालगिरह की महफिल ने जब यह खबर सुनी तो सन्न रह गयी। डॉक्टर चड्ढा भी दौड़े। उँगली कस कर बाँध दी गई और उंगली का डसा भाग काटना चाहते थे। पर कैलास का जड़ी पर विश्वास था। जड़ी लगाई गयी। कैलाश की आंखे झपकते लगी। ओठ पीले पड़ गए वह फर्श पर बैठ गया। कैलाश की आंखे बंद होने लगी। वह लेट गया। टेबल पंखा चालू किया गया। आधा घंटा बीत गया। नाड़ी मंद हो गई। मौत के लक्षण दिखाई दिए। मृणालिनी अपने आपको अपराधिनी मानकर सिर पीटने लगी। मां पछाड़कर रोने लगी। डाक्टर चड्ढा को किसी तरह रोका गया। मांत्रिक बुलाए गए। पर कुछ न हो सका। जहाँ हंसी थी वहीं आँसू बन गए। मान लिया गया, कैलाश अब बचेगा नहीं।

मांत्रिक बूढ़े का अंतर्द्वंद्व–

मांत्रिक बूढ़ा शहर से कई किलोमीटर दूरी पर रहता था। सन की रस्सी बटकर उसे बेचना और जीविका चलाना ही उनकी जिंदगी थी। पर आज सन भी खत्म हो गई। इतने में दरवाजे पर आवाज आई क्या सो गए, जरा किवाड तो खालो। एक आदमी भीतर आते हुए बोला। छावनी में रहने वाले डॉ. चड्ढा के इकलौते बेटे को साँप ने काट लिया। यदि तुम वहाँ गए तो काफी धन कमाओगे।

इस पर बूढ़े ने कठोरता से कहा। मैं नहीं जाऊंगा। यह वही चड्ढा है। जिसने मुझसे सीधे मुँह बात नहीं की। बेटा उसी के कारण मर गया। बेटे के गम का उसे अब पता चलेगा। भगवान बड़ा दयालु है। आज मेरा कलेजा ठंडा हो गया। आज मैं चैन से सोऊँगा। एक बार देखने जाऊंगा और मिजाज का हाल पूछूंगा। बुढ़िया ने कहा, इतनी रात गए जाड़े में कौन जाएगा? इस पर बूढ़े ने कहा दुपहर होती तो भी न जाता, सवारी आती तो भी न जाता। मेरा बेटा पन्ना इसी के कारण हमसे छूट गया। 80 वर्ष के जीवन में पहली बार भगत सांप की खबर पाकर दौड़ा नहीं। चाहे लू हो, चाहे बाढ़ हो नदी नाले कभी उसने पर्वाह नहीं की पर आज खबर सुनकर भी सोने चला गया।

भगत ने कुप्पी बुझाई और सोने की कोशिश करने लगा। मन उसे खाने लगा तब भगत उठा–लकड़ी उठाई– धीरे से किवाड़ खोले। बुढ़िया ने पूछा–कहीं जा तो? कितनी रात बाकी है यह देख रहा था। सो जाओ। नींद नहीं आती। बुढ़िया ने उलाहना दिया। मन तो चड्ढा के घर लगा है। नहीं, उसने मेरे साथ नेकी नहीं की, जो मेरे लिए काँटे बोए उसके लिए मैं क्या फूल बोऊँगा। बुढ़िया और भगत सो गए पर नींद नहीं आई। धीरे से उठा, बाहर निकला चौकीदार मिला। पूछा कितने बजे? एक बजा होगा। उसने भी डॉक्टर चड्ढा के बेटे की बात कही, यदि तुम चले जाओ तो शायद बच जाए। दस हजार देने को तैयार है। भगत ने कहा दस लाख दे तो भी नहीं जाऊंगा। पर भगत के पैर उसी राह पर उसे ठेलने लगे। रास्ते में उसने सुना चड्ढा बाबू का घर उजड़ गया, तो उसकी चाल और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तेज हो गई। उसने मन को समझाया डॉक्टर साहब का रोना–पीटना देखेंगे। क्या वे भी गरीब की तरह दुखी होते हैं। भगत दौड़ते–दौड़ते डॉ. चड्ढा के घर पहुंच गया।

भगत द्वारा कैलाश के प्राण बचाना–

रात के दो बज गए थे। लोग इंतजार करने लगे कि सुबह हो तो लाश गंगा की गोद में दे दी जाए। इतने में भगत पहुँचा। डॉक्टर साहब को पुकारा। आज डॉक्टर ने उसे दुत्कारा नहीं अपनी हालात सूचित की। भगत ने कहा मैंने यह बात सुनी है, इसलिए आया हूं। लड़का कहां है। दयाभाव से डाक्टर कैलाश के पास ले आए। भगत ने देखा और मुस्कराकर कहा अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। आधे घंटे में भईया उठ बैठेंगे। कहारों से कहिए पानी भरे। कहार, मेहमान, मृणालिनी पानी भर कर लाने लगे। बूढ़ा मंत्र पढ़ने लगा। मंत्र समाप्त हो जाता तो जड़ी सूंघा देता। कैलाश के सिर पर असंख्य घड़े जब डाले गए। उषा की ललिमा क्षितिज पर फैली इधर कैलाश ने अंगडाई ली। डॉक्टर भगत का यश गाने लगे।

भगत का चुपचाप चला जाना

इधर भगत लौट आया। वहाँ की चिलम भी नहीं ली। एक चिलम तम्बाखू का भी वह हकदार नहीं हुआ। कैलाश की मां नारायणी ने कहा– मैंने सोचा इसे कोई बड़ी रकम दूंगी। डॉक्टर चड्ढा को सहसा याद आया। एक बार मरीज लेकर आया था और मैने इन्कार कर दिया। मुझे ग्लानि हो रही है।

डॉ. चड्ढा का कर्तव्य बोध जागना

बूढ़े भगत को मैं खोज निकालूंगा। उसके पैरों पर गिरकर अपने अपराध की क्षमा मांगूगा। आगे से मैं कभी ऐसा बर्ताव नहीं करूंगा।

पैसा, धन के लालच से रोगी को रोग मुक्त करना। डाक्टरी सेवा के खिलाफ है। यदि ऐसा ही हुआ तो गरीब बिना इलाज के मर जाएंगे। भगत डांक्टर के वहां एक चिलम तंबाखू तक नहीं लेता। सवारी की बात तो दूर। भले ही डॉ. चड्ढा ने मेरे बेटे को देखने से इन्कार कर दिया। मैं ऐसा नहीं करूंगा। बिना बुलाए पैदल ही डॉक्टर के घर जाकर कैलाश को पुनर्जीवित कर देता है। भगत का यह आदर्श व्यवहार पढ़े–लिखे, शरीर डॉक्टर की आंखे खोल देता है।

7.5.3 शीर्षक की संपर्कता

मंत्र नया जीवन प्रदान करने वाली अमोघ शक्ति का नाम है। भगत के मंत्र से डॉ. चड्ढा के बेटे कैलाश को सांप–विष से नया जीवन मिलता है। डॉक्टर चड्ढा का हृदय परिवर्तन होता है। बूढ़े भगत से पांव पकड़कर क्षमा मांगने की बात कहता है। यह घटना प्रस्तुत कहानी की मुख्य और चरम घटना है। अतः शीर्षक छोटा आकर्षक और कहानी के केंद्रीय भाव को वहन करने वाला होने से समृद्ध है।

7.5.4 कठिन शब्द

कहार–डोली ढोने या पानी भरने का
काम करने वाली एक हिंदू जाति
सन–एक पौधा, जिसकी छाल के रेशों से रस्सी आदि बनाते हैं
मिजाज करना–घमंड, गर्व करना
अमोद–प्रमोद, मौज चैन
ठहाका लगाना–ठठाकर हंसना
उपचेतना–अंतश्चेतन

प्रहसन–हास्य नाटिका
बाकमाल–
चिक–झीना परदा
कुप्पी
कारसाज–काम बनाने संवारने वला
ऐब–खामी
पोपला मुंह–जिसके मुंह में दांत न हो

ससदर्भ स्पष्टीकरण–

अच्छा किया, कलेजा ठण्डा हो गया, आंखे ठण्डी हो गयी, लड़का भी ठण्डा हो गया! तुम जाओ। आज चैन की नींद सोऊंगा।"

संदर्भ–ये पंक्तियां प्रेमचंद द्वारा लिखित कहानी 'मंत्र' की है। जो बूढ़े भगत के द्वारा अनजान आदमी को कही गयी। डाक्टर चड्ढा के बेटे को सांप काटने की खबर जब वह आदमी सुनाता है तब वह कहता है।

स्पष्टीकरण– 'मंत्र' कहानी के आरंभ में ही बूढ़े भगत का इकलौता बेटा बीमार पड़ जाता है। देहात से वह उसे शहर में डॉक्टर चड्ढा के यहां इलाज के लिए लाता है परंतु गोल्फ खेलने का समय हो गया कह कर उसकी बिनती भी नहीं सुनते। वह गिड़गिड़ता ही रहता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। इतनी गंभीर हालत में बालक को बूढ़ा अपने गांव वापिस ले जाता है और उसी रात वह लड़का दम तोड़ देता है। सात बेटों में से वही एक उम्मीद की किरण था जो हमेशा के लिए उनके जीवन में अंधकार कर जाता है। बूढ़े माता–पिता का दिल टूट जाता है।

कई वर्ष बाद उसी डॉ. चड्ढा के इकलौते जवान बेटे को सांप काट लेता है। उसे सांप पालने का शौक रहता है। अपने मित्रों के आग्रह पर भीड़–भाड़ में वह सबके सामने एक–एक सांप दिखाने लगता है। पर एक जहरीले सर्प के दांत दिखाने के लिए उसकी गर्दन कसकर पकड़ लेता है। अपनी आत्मरक्षा हेतु पकड़ ढीली होते ही वह सर्प उसे डस लेता है। जड़ी–बूटी स्वयं लेता है। डॉ. पिता को नश्तन लगाने से टोंकता है, जिससे सारा जहर शरीर में फैल जाता है। सब लोग उम्मीद छोड़ देते हैं। तब इस भगत को बुलाने की बात होती है। यह खबर उसे मिलती है पर बेटे की कृत्य का यह प्रसंग वह अभी भी भूला नहीं हैं। इसलिए भूखों मर रहा है, पर बेटे के एवज में जायदाद लूटा देने को तैयार डॉ. चड्ढा के पास जाने को मना कर देता है। समाचार देने वाले आदमी से कहता है, अच्छा किया कलेजा ठण्डा हो गया, आंखे ठण्डी हो गयी। आज मैं चैन की नींद सोऊंगा।

7.5.5 सारांश–ग्रामीण परिवेश तथा चरित्रों का अंकन करने वाले प्रेमचंदजी ने 'मंत्र' कहानी में मानवता का आदर्श उदाहरण बूढ़े भगत के द्वारा उपस्थित किया है। डॉक्टर के द्वारा बेटे का इलाज न होने पर भी उसके बेटे की जान बचाने पैदल ही चला जाता है। बिना कुछ लिए रातभर जागकर मंत्र पढ़ता है। जिससे डॉक्टर के बेटे के प्राण बच जाते हैं। डॉक्टर चड्ढा का अभिमान भरा विष भगत के मंत्र से उतर जाता है।

7.5.6 अभ्यास के प्रश्न–

1. डॉ. चड्ढा ने भगत के साथ कैसा व्यवहार किया?
2. भगत का चरित्र–चित्रण कीजिए?
3. कैलाश को सांप ने क्यों तथा कहां काटा?
4. 'मंत्र' कहानी की सीख अपने शब्दों में लिखिए।

7.6 पाजेब (जैनेन्द्र कुमार–1905–1988)

जैनेन्द्र कुमार हिन्दी कथा साहित्य में अपनी नवीन दृष्टि और शैली के कारण विशिष्ट स्थान रखते हैं। जैनेन्द्र कुमार का जन्म अलीगढ़ जिले के कौड़िया गंज में 1905 को हुआ। उनका मूल नाम आनन्दीलाल था। जैन गुरूकुल हस्तिनापुर में उनकी प्रारंभिक शिक्षा हुई। यहीं उनका नाम जैनेन्द्र कुमार रखा गया। विश्वविद्यालयीन शिक्षा हेतु उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। 1921 में उन्होंने असहयोग आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए विश्वविद्यालय को छोड़ दिया। उन्हें जेलयात्रा भी करनी पड़ी इसका उनके जीवन और साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। यहीं से उन्हें ज्ञानार्जन और साहित्य सृजन की प्रेरणा प्राप्त हुई।

जैनेन्द्रजी जैन धर्म में विश्वास करते थे। जैन धर्म के अहिंसावाद का उन पर काफी प्रभाव था। गौतम बुद्ध की करुणा और गांधीवाद का मैत्रीभाव, सर्वोदयवाद तथा हृदय परिवर्तन से भी वे प्रभावित रहे हैं। जैनेन्द्रजी के चिंतन के दो पहलू बनते हैं–प्रथम–दार्शनिकता द्वितीय –मनोविज्ञान। इससे जैनेन्द्र का मनोविश्लेशण प्रेमचंद की तरह अनुभवपरक नहीं हैं तथा प्रसाद की तरह भाव मूलक भी नहीं है। अपितु उनका मनोविश्लेशण गंभीर चिंतन से जुड़ा तर्क मूलक है। इसलिए उसमें सूक्ष्मता और विश्लेषण की बारीकियां मिलती हैं।

जैनेन्द्र के प्रमुख उपन्यास हैं–परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतित, जयवर्धन आदि। जैनेन्द्र ने लगभग 150 से अधिक कहानियां लिखी हैं–जो 'जैनेन्द्र की कहानियां' (सात भागों में) प्रस्तुत है।

जैनेन्द्रजी की अधिकांश कहानियां मनोवैज्ञानिक है। उनकी कहानियां मनोविश्लेषण मूलक चरित्र चित्रण प्रधानता को लिये हुए हैं। अपनी कहानी के संदर्भ में जैनेन्द्र कुमार लिखते हैं।

"कहानी तो एक भूख है जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती है। हमारे अपने सवाल होते है, शंकाए होती हैं, चिंताएं होती है और हम ही उनका उत्तर समाधान खोजने का सतत प्रयत्न करते रहते हैं। हमारे प्रयोग होते रहते हैं। उदाहरणों और मिसालों की खोज होती रहती है। कहानी उस खोज के प्रयत्न का एक उदाहरण है। वह एक निश्चित उत्तर ही नहीं दे देती, पर वह अलबत्ता कहती है कि शायद उस रास्ते मिले। वह सूचक होती है, कुछ सुझाव देती है और पाठक अपनी चिंतन क्रिया के सहारे उस मुद्रा को ले लेते हैं।" इससे स्पष्ट है कि वे अपनी कहानियों की विषय सामग्री इसी संसार और समाज से चुनते हैं। जैनन्द्रजी की कहानियों में वर्णन–विवरण की अपेक्षा चिंतन, मनन, विश्लेषण विवेचन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रधानता मिली है। उनकी कहानयिां गांधीवादी अहिंसा और फ्रायडवादी अचेतन मन और बुद्ध की करुणा से अनुप्रेरित है।

जैनेन्द्रजी ने बालमनोविज्ञान को अपनी अनेक कहानियों की आधारभूमि बनाया है। बालकों का स्वभाव और उसके प्रति अपने परिस्थितियों में ग्रस्त माता–पिता या अभिभावकों का व्यवहार जब आपस में संतुलित नहीं होता, एक–दूसरे को नहीं समझते तब अनेक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समस्याएं उत्पन्न होती है। इन समस्याओं के सामने अभिभावक की बोलती बंद हो जाती है। वात्सल्ययुक्त प्रेमभाव सबमें है परन्तु सब उसे ठीक से समझ नहीं पाते। उसे तो कलाकार की प्रतिभा संपृक्त दृष्टि ही समझ पाती है। मानवमन के इस यथार्थ को 'पाजेब' कहानी उद्घाटित करती है। 'पाजेब' कहानी में बाल मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को आधार बनाकर कथा को पिरोया गया है। लेखक की चार साल की लड़की मुन्नी पाजेब की मांग करती है। लेखक उसे समझा देते है पर बुआ से वह पाजेब तोहफे में ले ही लेती है। मुन्नी का बड़ा भाई आशुतोष मुन्नी को पाजेब पहले देखकर खुश होता है परन्तु एक पाजेब न जाने कहां खो जाती है। पहला शक बन्सी नामक नौकर पर होता ह। लेखक की पत्नी बन्सी को डांटने के लिए कहती है। उसके बाद शक आशुतोष और उसके मित्र छुन्नू पर उन्होंने मिल कर पतंगवाले को पाजेब बेचकर यह सामग्री खरीदी है। पैसे कैसे लिए ये इकन्नी, दुअन्नी या पैसों में, इसकी पूछताछ होती है पर सत्य सामने आता ही नहीं। लेखक का संयम टूट जाता है, आशुतोष को कमरे में बंद कर दिया जाता है पर वह कुछ बता नहीं पाता। बुआ आती है और बास्केट से पाजेब निकाल कर देती है तब पिता की बोलती बंद हो जाती है। इस कहानी में बालक से पूछताछ का तरीका, बच्चों का नयी चीज के प्रति, लगाव, हठ, संशय, प्रताड़ना, दंड आदि सीढ़ियों को तार्किकता और कौतुहल को बनाये रखते हुए सफलतापूर्वक पार किया गया है। रहस्य को अंत तक बनाये रखने में लेखक को सफलता मिली है।

7.6.1 कहानी का सारांश

जैनेन्द्र कुमार द्वारा लिखित 'पाजेब' कहानी में मुख्य पात्र आशुतोष है। इसके अलावा लेखक, उसकी पत्नी, छोटी बेटी मुन्नी, बुआ, नौकर बन्सी और छुन्नू कथानक में अपनी भूमिका निभाते हैं। कहानी के आरंभ में लेखक की चार वर्ष की बेटी पाजेब की जिद करती है तो लेखक उसे हाँ कह कर उस वक्त टाल देते हैं पर दोपहर में फिर से अपनी बुआ से सामने पाजेब की मांग करती है तो बुआ रविवार के दिन पाजेब ले आती है जिसे पहनकर खुशी से आस–पड़ोस में दिखाकर आती है। बड़ा भाई आशुतोष भी स्वयं मुन्नी का पाजेब से सजी हँसी देखकर खुश होता है, इतना ही नहीं मुन्नी की पाजेब गौरव वह खुद अनुभव करता हुआ पाजेब का दिखाने आस–पास ले जाता है।

लेकिन थोड़ी देर बाद जब उसे यह एहसास होता है कि छोटी बहन को चांदी की पाजेब दी गयी है तो मुझे भी कुछ क्यों नहीं? वह भी बालसुलभ ईर्ष्या से बाईसिकल मांगने लगता है। जिसे बुआ उसके जन्मदिन पर देने का वादा करती है और आशुतोष मान भी जाता है।

चांदी की पाजेब कहीं खो न जाए इसलिए मुन्नी की मां उसे खोल कर रख देती है। बुआ शाम को चली जाती है। रात को लेखक अपनी मेज पर कुछ लिख रहे होते हैं कि पत्नी आकर पूछती है–तुमने पाजेब तो नहीं देखी? एक है पर दूसरी मिल नहीं रही है। लेखक वहीं ढूंढने के लिए कहते हैं पर लेखक की पत्नी को शक होता है बल्कि पक्का विश्वास होता है कि नौकर बंसी ने ही वह ली है। उससे कबूल करवाने के लिए लेखक को कहती है पर लेखक का मन कहता है कि पाजेब यहीं कहीं होगी या फिर आशुतोष को पूछने की बात करता है। क्योंकि वह उसी दिन नयी पतंग और डोर लाता है। पतंग उड़ाने का वह बड़ा शौकीन है। दूसरे दिन आशुतोष से पूछताछ शुरू होती है, वह इनकार करता है पर बोलता कुछ नहीं। बच्चों से कैसे पेश आना चाहिए इस बात के किताबी सिद्धान्त लेखक के मन में आते हैं–जैसे अपराध के प्रति करूणा का होना, प्रेम से जीतना, बालक का कोमल मन, स्वभाव, स्नेहपूर्ण व्यवहार, जिसके कारण क्रोध को काबू में रख कर उसे प्रेम से पूछताछ करता है। फिर भी उसका इनकार करना जारी रहता है। बालक की दिल की बात जानने के लिए इनाम देने को भी तैयार होता है। अपना ही आत्मपरीक्षण कर मन ही मन मान लेता है कि आशुतोष अगर चोरी करता है तो दोषी वह अकेला नहीं वह स्वयं भी है। इसलिए ज्यादा सहानुभूति दिखाता है–अपने अनुकूल उसके बर्ताव का अर्थ निकालकर पाजेब उसी ने चोरी की और बेची है यह मानकर अनेक प्रकार से उसके ही मुख से उगलवाना चाहता है। छुन्नू से मिलकर वह ले आने को कहता है पर बार–बार आशुतोष यही कहता है–'पाजेब छुन्नू के पास न हुई तो वह देगा कहां से?'

लेखक को लगता है छुन्नू और आशुतोष ने पतंग वाले को वह बेच दी है इसलिए उसका आग्रह है कि वह जाए और पाजेब ले आए। पर वह जाने को तैयार ही नहीं था। छुन्नू की मां भी उसे बहुत पिटती है– यह खबर पड़ोस भर में फैल जाती है। छुन्नू की मां पाजेब की एवज में दाम देने को तैयारी होती है, पर लेखक शांति से पूछताछ में विश्वास करता है। छुन्नू बताता है–मैनें पाजेब आशुतोष के हाथों में देखी थी। दोनों एक–दूसरे को झूठा साबित करने की कोशिश में दोनों के पारिवारिक संबंध गिरने की नौबत तक आ जाती है। पर लेखक प्यार से सारे मामले को सुलझाना चाहता है। पत्नी को उससे बात उगलवाने की सूचना देता है।

लेखक की पत्नी आशुतोष द्वारा दी गयी जानकारी से खुश होती है कि कितने प्यार से उसके दिल की बात जान ली। जैसे ग्यारह आने पैसे में पाजेब पतंगवाले को दी है। पैसे उसने थोड़े–थोड़े करके देने को कहा है। जो पांच आने दिये थे वह छुन्नू के पास है।

ये सारी बाते सुन लेखक को पतंगवाले के प्रति क्रोध जागता है कि कैसे, बच्चों के हाथ से ऐसी चीजें लेता है। बंसी को साथ भेज

कर पतंगवाले से, पैसे देकर पाजेब प्राप्त करना चाहता है। पर अभी आशुतोष वही रट लगाये हुए है। जाने में अत्याधिक आनाकानी करता है।

फिर से पूछताछ शुरू होती है। पैसे किसके खर्च किये? पैसे किस रूप में थे? इकन्नी दुअन्नी पर मारे डर के वह कुछ बोल नहीं पाता आखिर में लेखक उसे कोठरी में बंद कर देते हैं। दस मिनट बाद देखने पर भी उसके चेहरे पर वही दृढ़ता, हठ, जिद, अकड़ के भाव, मुँह सूजा हुआ कोठारी में बंद करने पर भी आँखों में आँसू आने से रोके रखे हुए गुमसुम–सा।

लेखक फिर वही सिलसिला जारी रखकर पतंगवाले के बारे में पूछते हैं। कौन सा पतंगवाला, दांई तरफ चौराहे वाला था या और कोई? जबरदस्ती बच्चे के मुंह से हां निकलते ही चाचा के साथ पतंगवाले के पास जाने को लेखक कहते हैं। पांच आने के पैसे पतंगवाले को देकर पाजेब लाने की सूचना अपने भाई को देते हैं–पतंगवाला न माने तो पुलिस वाले के हवाले करने तक की बात कहते हैं। पर फिर भी आशुतोष टस से मस नहीं होता। उठाकर ले जाते वक्त हाथों–पैरों से प्रतिकार करता है। उसकी बढ़ती हुई जिद्द देखकर लेखक का गुस्सा बढ़ता जाता है। किसी भी हालत में पाजेब प्राप्त करनी है। बच्चे को सबक सखाना ही है, इसीलिए वह भी हार मानने को तैयार नहीं है। आठ साल के बच्चे के साथ कैसे पेश आना है वह लेखक जानते हैं इसलिए गुस्से पर काबू रखकर जबरदस्ती आशुतोष को अपने चाचा के साथ भेजते हैं थोड़ी ही देर बार प्रकाश और आशुतोष खाली हाथ लौट आते हैं।

चलने में आनाकानी करने वाला आशुतोश देखकर कहीं वह भाग न जाए, इसलिए नौकर बंसी को भी साथ भेजते हैं। इसी समय बुआ आती है। इन तीनों को जाते हुए देखकर वह पूछती है–बात क्या है, सब कहां जा रहे हैं? आशुतोष नाराज रूठा हआ क्यों है।? उसके लिए मिठाई और केले साथ में लेते आयी थी, पर लेखक उन्हें समझा–बुझा देते हैं। इधर–उधर की बातें उनके साथ करते हैं। बातों–ही–बातों में बुआ एक बक्सा सरका कर लेखक को देती है जिसमें कुछ काम के कागजात हैं और बास्केट की जेब में हाथ डालकर पाजेब निकालकर सामने रखती है और कहती है कि भूल से वह मेरे साथ ही चली गयी थी। वहां पर कहानी खत्म होती है।

7.6.2 'पाजेब' कहानी में मनोविज्ञान

'पाजेब' कहानी बालमनोविज्ञान पर आधारित है। मुन्नी और उसका बड़ा भाई आशुतोष इन दो बच्चों के आचरण को आधार बना कर जैनेन्द्र कुमार ने 'पाजेब' कहानी लिखी है। घात–प्रतिघात, मानसिक उधेड़बुन को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में लेखक पिता है, निवेदक है,निरीक्षक है और घटना को आगे बढ़ाने का काम भी करते हैं। पत्नी की मानसिकता जो अपने बच्चों के प्रति है, उसको भी लेखक ने विश्लेषित किया है। इस कहानी में मनोविज्ञान को इन पादानों में प्रस्तुत किया गया है।

1. बालक की ललक– बच्चे का स्वभाव होता है, जो चित्र किसी के पास देखे या उसे बारे में सुने तो उसकी मांग करता है । नई पाजेब को देख कर मुन्नी भी मांग करती है–"बाबूजी हम पाजेब पहनेंगे" यह पाजेब रूकमन और शीला पहनती है वैसी ही हो–आज ही पाजेब चाहिए। बुआ से भी वह पाजेब की मांग करती है। बालक वह नहीं सोचता कि मेहमानों से मांग नहीं की जानी चाहिए। बुआ अपनी भतीजी के लिए पाजेब ला देती है।

2. अपने पास की नयी चीज को सबको दिखना–बुआ इतवार को पाजेब ला देती है। पहनकर मुन्नी बहुत खुश होती है। रूकमन,सीला को भी पाजेब दिखाती है वे प्यार और तारीफ पाती है।

मुन्नी का बड़ा भाई आशुतोष मन्नी को सजा देखकर (पाजेब पहन) खुश होता है। मुन्नी की तारीफ और गौरव आशुतोष को अपना जान पड़ता है।

3. आशुतोष भी हठ करता है–हम भी बाइसिकल लेगे। बुआ कहती है–जन्म दिन पर देंगे–आशुतोष कह उठता है अभी चाहिए। उसे समझाया जाता है–तू लड़की थोड़े ही है जो जिद्द करता है, रोता है, बाबू रोते थोड़े ही है? आशुतोष को लड़का होने का गर्व होता है, वह मान जाता है–जन्मदिन पर बाइसिकल जरूर लूंगा।

दिन भर पाजेब मुन्नी पहने रहती है। खो न जाए या टूट न जाए इसलिए माता–पिता आदतन सहेज कर रख देते हैं। वयस्क आदमी के अंतस् में हीं–न–कहीं बालक बैठा होता है। पत्नी कहती है–मैं भी पाजेब बनवा लूं? पति का अभिभावक रूप मुखरित हो उठता है–तुम कौन चार बरस की नहीं हो?

4. खोज का मनोविज्ञान– वस्तु जब खो जाती है तब मिलती नहीं। संभावित स्थान पर बार–बार ढूंढा जाता है। न मिलने पर शक किया जाता है। यह शक चोरी का रूप धारण करता है। चोरी का शक गैर या अजनवी, छोटा आदि पर किया जाता है।

मुन्नी की पाजेब खो जाती है। एक पैर की पाजेब मिलती नहीं। मेज के कागज उठाये जाते हैं, आलमारी की किताबें टटोली जाती है पर याद नहीं आता कहां रखी थी? ढूंढने वाला विश्वास से कहता है मैनें यहीं–कहीं रखी थी। इस कारण पत्नी भी कहती है–मैने संजोकर रखी थी पाजेब। पत्नी ये भी कहती है– कि मैंने जब पाजेब रखी तब बंसी नौकर भी मौजूद था। उसी ने ली होगी। पूछने पर वह इनकार करता है।

5. आशुतोष पर शक होना– आशुतोष को पतंग उड़ाने का शौक है– उसी दिन वह नयी पतंग और डोर लाता है, तो पिता को उसी पर शक होता है कि हो न हो पाजेब उसी ने चुरायी है। आशुतोष अपनी मां को इस संदर्भ में कोई जबाब नहीं देता। अतः लेखक पर जिम्मेदारी आ जाती है कि आशुतोष से पूछताछ की जाए।

6. पूछताछ का मनोविज्ञान–पिता अपने आपको बालमन का जानकार मानता है। अपराध के प्रति करूणा होनी चाहिए, रोष का अधिकार नहीं है। प्रेम से ही अपराधवृत्ति को जीता जा सकता है, आतंक से दबाना ठीक नहीं, बालक का स्वभाव कोमल होता है, स्नेह से व्यवहार करना चाहिए इनको आधार बना कर पिता अपने पुत्र आशुतोष की पूछताछ करता है।

पहले तो आशुतोष कुछ बोलता नहीं, केवल सिर हिलाकर इशारे से बात करता है, मुंह फूला लेता है और गुमसुम बैठ जाता है। माथे पर बल पड़ते हैं। अंततोगत्वा आशुतोष रुआंसी आवाज में चिल्लाता है– मैने नहीं ली, नहीं–नहीं ली।' रुआंसा होने पर भी उसकी आंखों में आंसू नहीं आते। आशुतोष पर शक पक्का हो जाता है।

इस समय लेखक के मन में ख्याल आता है– आशुतोष को सहानुभूति से बंचित नहीं करना चाहिए। कारण बच्चे की यह आदत अभिभावकों पर इल्जाम है। बच्चा चोर नहीं मां–बाप चोर हैं।

लेखक आशुतोष को दूसरी बार बुलाकर पूछताछ करता है–झूठमूठ का एक नाम लेता है– :पाजेब तुमने छुन्नू को दी है–'जो आशुतोष का मित्र है। पहले तो आशुतोष जबाब नहीं देता पर बार–बार पूछने पर सिर हिला देता है "हां –आ आ" कहता है। लेखक खुश होता है–पाजेब छुन्नू को दी गयी है, मां भी खुश हो जाती है। और उसे प्यार करती है।

पूछताछ का तीसरा दौर–लेखक को पता चल गया कि पाजेब छुन्नू के पास है। आशुतोष से आग्रह किया जाता है वह पाजेब लेकर आए तो वह कह पड़ता है –पाजेब छुन्नू के पास न हुई तो वह देगा कहां से। पाजेब आशुतोष ने ही उठायी है और छुन्नू को दी है इसको आधार बनाकर पूछताछ करता है। पर आशुतोष यही रट लगाए हुए है कि छुन्नू के पास न हुई तो वह देगा कहां से? यह सुनते ही लेखक को गुस्सा आता है। उनके सारे के सारे सिद्धान्त धरे के धरे रह जाते हैं। डांटते है–कान पकड़कर घर के बाहर निकाल देते हैं।

बात छुन्नू की मां तक पहुंच जाती है। आशुतोष अपने आपको बचाने हेतु कहता है–मैंने छुन्नू को दी–छुन्नू की बहुत पिटाई होती है। छुन्नू की मां पाजेब के दाम देने को राजी होती है।

आशुतोष अपनी मां से कहता है, पाजेब पतंगवाले को दी है। पांच आने छुन्नू के पास है।

आशुतोष से पुनः पूछताछ होती है। पतंगवाले ने पांच आने के पैसे कैसे दिये थे? इकन्नियां थी? दुअन्नी थी या पैसे थे। पर आशुतोष ठीक–ठीक बात नहीं बता पाता तो लेखक बंसी से कहकर आशुतोष को कोठरी में बंद करवा देता है।

लेखक पतंगवाले के पास अपने भाई को भेजना चाहते हैं पर परिणाम कुछ नहीं निकलता। आशुतोष बार–बार कहता है–पाजेब पतंगवाले के पास न हुई तो कहां से देगा।

इतनी पूछताछ, डांट–फटकार, सजा से भी खोई हुई पाजेब लेखक को नहीं मिलती और न ही वास्तविक चोर का पता चलता है। ये सारे घटनाचक्र और प्रसंग मनोवैज्ञानिक ढंग से लेखक ने 'पाजेब' कहानी में प्रस्तुत किये है।

7.6.3 कहानी का अंत चरम सीमा पर–

जैनेन्द्र कुमार द्वारा लिखित 'पाजेब' कहानी में मुख्य घटना है– पाजेब का खोना, शक होना, चोरी का, शायद बच्चे ने पाजेब चुराकर पतंगवाले को बेच दी, पर चोर का पता कहानी के अंत में चलता है– जो कल्पनातीत है। ऐसी घटना घटित होती है कि पाठक को गहरा आघात लगता है जिसकी कल्पना भी पाठक ने नहीं की। बुआ आती है और बास्केट में से पाजेब निकालकर लेखक के हाथ में देती है और कहती है–"भूल से एक पाजेब मेरे साथ ही चली गयी थी।" लेखक सकपका जाता है और हक्काबक्का रह जाता है। साथ पाठक भी इसी अनुभूति का अनुभव करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.6.4 कहानी का शीर्षक

प्रस्तुत कहानी का कथासूत्र है–पाजेब –ललक चाह–पाजेब को पाना–खुशी–एक पाजेब का खो जाना, दुख, चोरी का इलजाम बंसी के बाद आशुतोष पर। आशुतोष और उसका मित्र छुन्नू ने निल कर पाजेब को बेच दिया ऐसा मान कर– बार–बार पूछताछ, आशुतोष को डांटना, फटकारना, घर से बार करना, कान उमेठना, कोठरी में बंद करना–चांटा लगाना सजा के सारे सोपान पार करने पर पाजेब बुआ के पास मिलती है। अतः कथासूत्र का केन्द्रीय भाव पाजेब ही है। शीर्षक संक्षिप्त, आकर्षक, रोचक, प्रभावशाली और केन्द्रीय कल्पना को आधार बनाने के कारण समीचीन है।

7.6.5 चरित्र चित्रण

'पाजेब' कहानी में मुन्नी,आशुतोष इन दो बाल पात्रों के अलावा बाबूजी और मुन्नी–आशुतोष के पिताजी–मां, बुआ, ये प्रमुख पात्र हैं। गौण पात्रों के रूप में नौकर बन्सी, छुन्नू, छून्नू की मां, चाचा प्रकाश और संकेततीत पात्र पतंगवाला है।

'पाजेब' कहानी का संबंध मुन्नी की पाजेब से है। परन्तु केन्द्र में आशुतोष नामक पुत्री मुन्नी का भाई है। उस पर पाजेब चुरा कर बेचने का इलजाम लगता है। उसके पिताजी उससे बार–बार पूछताछ करते हैं। आशुतोष की मानसिकता उसके बर्ताव, व्यवहार से प्रकट होती है। कहानी के अंत में बुआ के पास से जब पाजेब मिल जाती है। तब आशुतोष की निर्दोशता आइने की तरह साफ होती है। आशुतोष के पिता 'पाजेब' कहानी के दूसरे प्रमुख पात्र हैं, जो बालकों की मानसिकता से और मनोविज्ञान से परिचित हैं। इस कारण वे प्यार से समझा बुझाकर आशुतोष से पूछताछ करते है। परन्तु पाजेब जब नहीं मिलती तो वे उसे उग्रतापूर्वक डांटते हैं, फटकारते हैं, कान उमेठते हैं, कमरे में बंद कर देते हैं। कारण उनके धैर्य की सीमा टूट जाती है। पिता ही इस कहानी के संवाद स्थापित करने वाले प्रमुख निवेदक भी हैं।

बुआ अपने भतीजे–भतीजी को लाड़–प्यार करती है। बच्चों की मांग को आसानी से पूरा करती है। समझाती– बुझाती है और खोयी हुई पाजेब लाकर भी देती है।

'पाजेब' कहानी में आशुतोष और उसके पिता की मानसिकता आपसी संवादों के माध्यम से सफलतापूर्वक व्यंजित की है। इसी कारण गंभीर, तनावपूर्ण प्रसंग और विषय संवादों के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत हुए हैं और इन्ही के माध्यम से चरित्रांकन भी संपन्न हुआ है।

7.6.6 'पाजेब' कहानी का उद्देश्य

'पाजेब' कहानी का उद्देश्य एक और मनोविश्लेषक है तो दूसरी ओर अभिभावक पिता–माता की व्यवस्थापरक मानसिक अवस्था को संकेतित भी करता है। आशुतोष के चोरी न करने पर भी उसे चोर मान कर पिता–माता का व्यवहार अंत में उन्हें लज्जित कर देता है। पूरी बात को जाने बिना इलजाम लगाना क्या बच्चे को बुराई की ओर नहीं ले जाता? इस बात की और सम्पर्क पद्धति से लेखक ने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है।

7.6.7 कठिन शब्द

सुजुक–सुन्दर (सुबक), बारीक कलात्मक काम

सहजोर–सिरजोर

पित्रा–बखेड़ा–झगड़ा–टंटा

इकन्नी–एक आना अर्थात् छह पैसे

दुअन्नी–दो आने अर्थात् बारह पैसे

पैसा–(रूपए का सबसे छोटा रूप) एक आना रूपए का सोलहवा भाग जो छह पैसे का होता था। अठन्नी तीन पैसे की होती थी। दशमलव प्रणाली के आगमन के पूर्व भारत में यह चलन प्रचलित था।

ससंदर्भ स्पष्टीकरण–

"हो न हो, बंसी नौकर ने निकाली है। मैने रखी, तब वह वहां मौजूद भी था।

संदर्भ– ये पंक्तियां जैनेन्द्र कुमार द्वारा लिखित 'पाजेब' कहानी से ली गई है। लेखक की पत्नी पाजेब की चोरी हो जाने पर शक करती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है और कहती है कि नौकर बंसी ने पाजेब चुराई है कारण में जब रख रही थी तब वह कमरे में वहीं मौजूद था।

स्पष्टीकरण—लेखक की चार वर्ष की लड़की नई पाजेब पहनने की जिद्द करती है, पर लेखक उसे जैसे—तैसे समझा देते हैं। दोपहर में बुआ के सामने भी पाजेब मांगने लगी। बुआ इतवार को अपनी भतीजी के लिए पाजेब लेकर आती है। पाजेब पहन मुन्नी सबको बता आती है, वह बहुत खुश होती है। शाम को उसकी मां चांदी की पाजेब गुम हो जाए इसलिए सहेजकर रख देती है।

दूसरे दिन उठा पटक शुरू होती है। पता चलता है एक पैर की पाजेब नहीं मिल रही है। लेखक बार—बार अपनी पत्नी से जहां रखी है वहीं ढूंढने के लिए कहता है। इस बात को लेकर लेखक की पत्नी बड़े ही आत्मविश्वास से कहती है कि पाजेब जब रखी तब बंसी नौकर वहां पर मौजूद था। सो उसने ही वह चुरायी होगी।

7.6.8 सारांश— घर में जब कोई भी चीज खो जाती है और ढूंढने के बाद भी वह नहीं मिलती तब उसके चोरी हो जाने की आशंका होने की प्रवृत्ति देखी जाती है। चोरी का इल्ज़ाम सबसे पहले घर में काम करने वाले नौकरों पर ही जाता है। चाहे वह कितना ही बूढ़ा, कितना ही पुराना कितना ही ईमानदार क्यों न हो। शक करने की आदत मध्यवर्गीय सामान्य परिवार में देखी जाती है। निम्नवर्गीय, गरीब, या नौकर पर ही शक स्वभावतः होता है, क्योंकि यह लोग अभावग्रस्त, विवश होते हैं। इसलिए इस कहानी में भी लेखक की पत्नी पहला शक बंसी नौकर पर ही करती है।

7.6.9 अभ्यास के प्रश्न

1. आशुतोष का चरित्र—चित्रण प्रस्तुत कीजिए।
2. आशुतोष के पिता के व्यवहार के द्वारा पिता की मानसिकता को विवेचित कीजिए।
3. मनोवैज्ञानिक कहानी की विशेषताओं के आधार पर 'पाजेब' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
4. शीर्षक के औचित्य पर प्रकाश डालिए।

7.7 गुलकी बन्नो (डॉ. धर्मवीर भारती)

(25 दिसम्बर 1926 —4 सितंबर 1997)

डॉ. धर्मवीर भारती चिरंजीवलाल वर्मा की पांच संतानों में से एक थे। धर्मवीर भारती का जन्म 1926 को प्रयाग में हुआ। वे जब आठवीं कक्षा में थे तभी पिता का स्वर्गवास हुआ तत्पश्चात उनका जीवन गरीबी में बीता। 1942 के आंदोलन में सक्रिय सहभाग लिया, जिससे पढ़ाई एक साल रूक गई। 1945 में प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.ए. किया। हिन्दी में सर्वाधिक अंक मिलने के कारण वे चिंतामणि घोष मेडल से सम्मानित हुए। 1947 में प्रथम श्रेणी में यहीं से एम.ए. किया। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में 'सिद्ध साहित्य' विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। अर्थाभाव के कारण ट्यूशन उनकी आजीविका का साधन थी।1948 से इलाचंद जोशी के संपादकत्व में निकलने वाली 'संगम' पत्रिका के सहयोगी संपादक का काम दो साल तक किया। वे हिन्दुस्तानी अकादमी के उपसचिव भी थे। इसके बाद हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय में प्राध्यापकी का काम 1960 तक किया। 1960 के बाद 'धर्मयुग' के संपादक बने और 1987 में वहां से सेवानिवृत्त हुए।

धर्मवीर भारती 'पद्श्री' से अलंकृत हुए है। उन्हें महाराष्ट्र सरकार, बिहार सरकार, नाटक अकादमी पुरस्कार, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान में सम्मान मिला है।

धर्मवीर भारती ने साहित्य की सभी विधाओं में विपुल लेखन किया है। 'ठण्डा लोहा', 'अंधा युग' 'सात गीत वर्ष' 'कनुप्रिया, 'सपना अभी भी', 'अद्‌भुत्' —कविताएं हैं।

'गुनाहों का देवता', 'सूरज का सातवां घोड़ा (उपन्यास), मुर्दो का गांव, स्वर्ग और पृथ्वी, चांद और टूटे हुए लोग, बंद गली का आखरी मकान कहानी संग्रह है। ठेले पर हिमालय, पश्रंती कहनी—अनकहनी, कुछ चेहरेः कुछ चिंतन, 'शब्दिता' निबंध संग्रह है। इसके अलावा यात्रावर्णन , आलोचना, अनुवाद, रिपोर्ताज, साक्षात्कार विधाओं मे भी लिखा है। नौ खण्डों में उनकी ग्रंथावली प्रकाशित हुई है।

7.7.1 कहानी का सारांश

गली में सन्नाटा था। घेंघा बुआ के चौतरे पर मिरवा (मिहिरलाल), बैठा करता था। उसके साथ झबरी कुतिया, मिरवा की छोटी बहन मटकी, ड्राइवर की लड़की निरमल, मैनेजर साहब का लड़का मुन्नाबाबू सभी आ जाते थे। इनका आना गुलकी की तरकसरी की दूकान के कारण प्रारंभ हो गया था। पहले तो सारे बच्चे हकिमजी के वहाँ खेलते थे। गुलकी धूप निकलते—निकलते बाजार से अपनी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कुबड़ी पीठ पर तरकारियां खरीदकर लाती थी। गुलकी कुबड़ी और मिरवा–मटकी विक्षिप्त और विकलांग बच्चे थे। झबरी कुतिया को भी कोई पास फटकने नहीं देता था। केवल गुलकी के वहां पर वे आते थे।

आज भी मिरवा ने गुलकी को सलाम किया। मटकी ने गुलकी से मूली मांगी। गुलकी नाराज थी। मन ही मन गालियों देने लगी तो मटकी ने रट लगायी। जब गुलकी ने अनसुना कर दिया तब वह मूली को खिंचने लगी। गुलकी चिल्लायी पर मटकी ने अनसुना कर दिया और मूली खींच ली तो उसने बांस की खपच्ची उसके हाथ पर झट से मार दी। मटकी रोने लगी। गुलकी चिल्लाने लगी, शोर सुनकर घेंघा बुआ ने अंदर से जोर से आवाज लगायी। झबरी भी भौंकने लगी। इतने में लेफ्टराईट करता हुआ तीन–चार बच्चों का जूलूस आया। जूलूस के आने पर मुन्ना को कहा, हमें गुलकी ने मारा है। मुन्ना ने संटी हिलाकर कहा, किसने मारा इसको? गुलकी ने कष्ट से कहा हमने मारा है, क्या करोगे? हमे मारोगे? मुन्ना ने हां कहा। मेवा ने पीछे से आकर कहा, कुबडी अपना कुबड दिखाओ, मुट्ठी भर धूल उसकी पीठ पर डालकर भाग गया। गुलकी भयभीत हो गयी, सभी बच्चों ने धूल की मुट्ठी भर ली। घेंघा बुआ ने बचाव किया। आंसू पोंछ कर गुलकी अपने काम में लग गयी।

7.7.1.1 गुलकी का परिचय

गुलकी 25–26 साल की थी फिर भी चेहरे पर झुर्रियां आने लगी थी, पीठ पर कुबड आने लगा था। मानों अस्सी साल की बुढ़िया हो। गुलकी को पति ने छोड दिया था। गुलकी के पिता स्वर्गवासी हो गये थे। अकेली गुलकी ही उनकी संतान थी। घेघा बुआ ने ड्राइवर से कह कर गुलकी के लिए एक दुकान अपने चौतरे पर खुलवा दी। जब गुलकी ने चौतरें के खंबों पर बांस बांधे तो गली के बच्चों को लगा कि हमारे खेलने की जगह पर दुश्मन ने आक्रामण कर दिया। निर्मल ने अपने साथियों को बताया कि गुलकी चोर है। इसका बाप सौ रूपये चुरा कर भाग गया था। ससुराल से यह भी पैसे चुराकर लायी, इसलिए भगवान ने कुबड निकाल दिया। कुबड नहीं, धन की पोटली है वह। साबुनवाली सत्ती गुलकी की हमदर्द थी।

7.7.1.2 बच्चों का खेल–

बच्चों ने गुलकी को चिढ़ाने का और अपना गुस्सा उतारने का एक नया तरीका खोज निकाला। मटकी को कुबड़ी बनाया गया और बच्चों ने मटकी से सवाल–जबाब करने शुरू किये। अंत में जब वह कहती –भात खाबे– तो बच्चे कहते हैं, भात के बदले लात खाबै और जोर से लात उसे मारते। मटकी मुंह के बल गिर जाती, कुहनी, घुटने छील जाते हैं, पर वह रोती नहीं, बच्चे चिल्लाने –मार डाला कुबड़ी को।

7.7.1.3 गुलकी का काल्पनिक जिंदगी–बदसलूकी नियति

एक दिन इसी तरह का खेल चल रहा था। अनजाने में किसी ने मटकी को जोर से धकेल दिया। मटकी सीधे मुंह के बल गिरी, नाक, ओंठ, भौंह खून से सन गये। मटकी जोर से चिल्लायी, लड़के भी चिल्लाये, कुबड़ी मर गयी और ठिठक गये। इतने में गुलकी उठी मटकी को गोद में लिया पानी से उसका मुंह धोया धोती से खून पोंछा, बच्चों को लगा कि वह मटकी को मार रही है। बच्चे गुलकी पर टूट पड़े। गुलकी के बाल बिखर गये, मुंह से खून आने लगा, तरकारी सड़क पर बिखर गयी। घेघा बुआ ने उसे संभाला। इसके कुछ दिनों तक बच्चे शांत रहे। परन्तु बच्चे तैसा ही जुलूस पुन' निकालने लगे।

कहानी के इस हिस्से में लेखक ने कुबड़ी, परित्यक्ता गुलकी, जो मैके में आकर आत्म निर्भर बनने हेतु दुकान लगाती है। बच्चे उसके साथ बदसलूकी से पेश आते हैं। ताने,उलाहने के अलावा मारपीट भी करते हैं।

गुलकी अपने तकदीर को कोसती है। बदसलूकी ही उसके जीवन की नियति बनकर ठहर गयी है।

7.7.1.4 सुप्त इच्छा भी पूरी नहीं होती–

'गुलकी बन्नो' कहानी का दूसरा भाग गुलकी के जीवन के दूसरे आयाम को प्रस्तुत करता है। पांच दिन से झंडी लगी हुई थी। सूरज के दर्शन तक नहीं हुए। छठे दिन जैसे–तैसे झड़ी रूकी, बच्चे हकीमजी के चौतरे पर जमा हुए। मिकोड़ी, बिलबोटों से मेवा और निरमल ने दुकान सजायी। और गुलकी की तरह आवाज लगाने लगे। कुछ शिशु ग्राहक भी आ गये। तभी बच्चों ने देखा कि मटकी खीरा खा रही है। मिरवा गाना गा रहा है। मेवा ने ज्ञात किया कि इन दोनों को गुलकी ने एक अठन्नी दी हैं बच्चों ने मटकी और मिरवा को अपने समूह से बाहर कर दिया। मुन्ना ने घृणा से थूका, गुलकी को इस घृणा में भी रस आने लगा। दोनों को और एक अठन्नी दी और जोर से गाने के लिए कहा। दोनों ने गाना शुरू किया–मार कटारी मर जाना, पर आखियां किसी से ....वह सुन कर घेंघा बुआ आंगन में गरजती आयी और कहा, 'यह कोई चकलाखाना नहीं है, जो वहां मुजरा हो रहा है। गुलकी ने कहा, बच्चे हैं क्या कसूर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हो गया हमसे। घेंघा बुआ का गुस्सा फुट पड़ा–'पांच महीने से किराया नहीं दिया है, वहां दुनिया भर के अंधे, कोडों पैसे पा रहे हैं। यहां से दुकान उठाओं। यह सुनकर गुलकी सकते में आ गयी। सच ही था, किराया नहीं दिया गया था। धोती में पैबंद ही पैबंद थे। महीने में बीस दिन भूखी सोती थी 'बाजार में उसका उधार भी बहुत चढ गया था।

7.7.1.5 मिरवा–मटकी भी अलग हो गए

मटकी ने दस पैसे वाला फुट उठा लिया और खाने लगी। गुलकी का गुस्सा आया, पीटा, फूट नाली में गिर गया। मिरवा वह देख कर हक्का–वक्का रह गया। गुलकी उसे भी मारने लग गयी। निरमल की दुकान पर आकर मिरवा ने मुन्ना से कुबड़ की शिकायत की। मुन्ना पहले तो कुछ नहीं बोला, मेवा से कहलवाया, तुम बीमार हो, इसलिए हम तुम्हें छुएंगे, साथ नहीं खिलाएंगे। यदि तुमे निमकोडी खरीदना हो तो दूर से फेंक देगें। इस तरह मिरवा और मटकी बच्चों से अलग–थलग पड़ गये।

7.7.1.6 सत्यानाशी बुआ

घेघा बुआ ने आवाज लगायी, बच्चों दूर खेलो यहां पानी गिरने वाला है। उसने कूड़े से भरी हुई नाली को खोलने की कोशिश की। गुलकी ने कहा, इधर की नाली मत खोलो, मेरी दुकान इधर लगी हुई है। इस पर   घेंघा बुआ ने कहा, किराया देते हुए तो हृदय फटता है और टर्राती हो। गुलकी ने तड़पकर कहा, खोलो तो देखे। पांच महीने के हमने दस रुपये नहीं दिये जबकि तुमने घर की धन्नी बसंतु के हाथ बेची। पश्चिम का दरवाजा चीरकर जलाया, हम गरीब है, हमारा बाप नहीं है, सब मिल कर मार डालो। यह सुन बुआ को गुस्सा आया कल की पैदा हुई छोकरी चोरी का इलजाम लगाती है। गुलकी बोल पड़ी–तुमने, ड्राइवर चाचा ने,चाची ने सबने मिलकर हमारा मकान उजाड़ा है अब दुकान भी उजाड़ दो, निरबल के भगवान है।

बुआ ने पागलों की तरह दौड़ कर नाली में जमा कूड़ा लकड़ी से ठेल दिया। गंदे पानी की मोटी धारा तरकारियों पर गिरी और इधर'उधर उठल गयी। गुलकी दीवार पर सर पटक–पटक कर रोने लगी। सारे बच्चे घबराकर सहमें हुए यह दृश्य देख रहे थे। मटकी, जो खीरा नाली से निकालने लगी तो मुन्ना ने डांट दिया। दूसरे दिन चौतरा खाली हो गया। दुकान के बांस उखड़ गये। और तुरई की बेल चढ़ गयी। बच्चे भी उस चौतरे पर नहीं गये मानों कोई मर गया हो। पुनः बारिश प्रारंभ हो गयी। बादल गरजने लगे, बिजलियां चमकने लगी। बारिश होने लगी। घने अंधेरे में सोए हुए मुन्ने ने सुना, गुलकी का मकान गिर गया। यह भी सुना कि गुलकी मेवा के वहां सोती है। मुन्ना कांप गया। मां के पास घुस गया। परन्तु मुन्ना को गुलकी के रोने की आवाज बेचैन कर रही थी।

कहानी के इस दूसरे अंश में लेखक गुलकी तथा मुहल्ले के बच्चों का अजीब–सा अबूझ रिश्ता स्थापित कर देते हैं। गुलकी की दुकान, घर सब कुछ खत्म हो जाते हैं। इसके पीछे घेघा बुआ की साजिश है। ऐसा हमें ज्ञात होता है।

7.7.1.7 नया मोड़

कहानी के तीसरे हिस्से में गुलकी के जीवन का नया मोड़ सामने आता है। आस–पड़ोस की मानसिकता ऐसी है कि गुलकी को जब उसका पति अपने स्वार्थ के कारण लेने जाता है तो उसके घर को सब हड़पना चाहते है। समाज की स्वार्थी प्रवृत्ति के साथ ही स्त्री के प्रति उसका दृष्टिकोण, स्त्री का अकेलापन, उसकी उपेक्षा सब इस अंश में प्रस्तुत हुआ है।

गुलकी ने वह गली ही छोड़ दी, मांग कर खाने लगी और साबुनवाली सत्ती के गलियारे में सोने लगी। बच्चे, जो जाड़े के मौसम के आ जाने के कारण शाम को इकट्ठा होने लगे थे, म्युनिसीपालिटी के हुए चुनाव में जो नारे लगे थे, उसी की तर्ज पर घेघा बुआ को वोट दो गला फाड़कर चिल्लाते।

एक दिन जब घेंघाबुआ के धैर्य का बांध टूट गया और बच्चों को डांटने ही वाली थी कि पोस्टमैन को आते देखती है। वह गुलकी के नाम का पोस्टकार्ड लाती है। जिसे पढ़ते ही उसकी जबान बदल जाती है। निरमल की मां, ड्राइवर की पत्नी, घेघा बुआ कुछ सलाह मशविरा करती है–गुलकी को बुलाने मेवा को भेजती है। वह आ जाती है। सत्ती जो इन सबको अच्छी तरह जानती है। गुलकी को क्यों बुलाया, दस रूपये बाकी था इसलिए। परन्तु 25 रूपये का सौदा उजाड़ा उसका क्या। परन्तु बुआ कोमल स्वर में कहती है–गुलकी को ससुराल बुलाया है–उन सबमें बहस होती है–सत्ती एक तरफ बाकी स्त्रियां एक तरफ –सत्ती को समझाया जाता है कि गुलकी को जाना चाहिए, क्योंकि वह आखिर उसका पति है।चाहे रखैल रखे, घर के काम के लिए ही क्यों न बुलाएं?

परन्तु सत्ती गुलकी को भेजने के लिए तैयार नहीं। तीसरे दिन जब बच्चे बर्रे उड़ाते हुए गली से गुजरते है तब देखते हैं। बुआ के चौतरे पर अजीब सी शक्लवाला एक आदमी कुर्सी पर बैठा है। मटकी बनाती है, गुलकी का आदमी है। निरमल की मां चाय का गिलास पकड़ती हुई निरमल से कहती है–हाथ जोड़ो, जीजाजी है। हमारे लिए जैस निरमल वैसे गुलकी। दोनों के पिता की दांवकारी दोस्ती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

थी। इकलौता मकान ही बचा है उनकी निशानी के तौर पर।

7.7.1.8 बुआ का काम हड़पना–

बुआ बोलती है, सौ रूपये तुमने पहले ही उन्हें दिये हैं और तीन सौ रूपये दे दो और मकान अपने नाम करा लो। लेकिन वह आदमी पांचसौ से कम लेने को तैयार नहीं है।

तभी सत्ती गुलकी को लेकर वहां आती है, जो आदमी को देखते ही सर पर पल्लू ले लेती है तब सत्ती कहती है–यही कसाई है, आगे बढ़ और दो झापड़ दे। परन्तु गुलकी बजाय उसे मारने के उस आदमी के पांव पर गिर के गिड़गिड़ाने लगती है। उसका बदला हुआ रूप देखकर सत्ती गुस्से से वहां से निकल जाती है।

सत्ती जो एक मात्र इस सौदे के विरोध में थी उसके जाते ही निरमल की मां, बुआ गुलकी को, बेटी–बेटी कह कर उसे विदा करने की तैयारी करती हैं। निरमल के बाबू गुलकी का पति कचहरी जाकर पक्का कागज बना लेते हैं–लगभग मुफ्त में यह काम होते ही दोनों को विदा करने की सूचना देता है। निरमल की मां, सौ रूपये बुआ को देने की बात कहती है। सौ रूपये ऐंठ लेती है।

7.7.1.9 गुलकी की विदाई

कहानी का चौथा और अंतिम अंश गुलकी की विदाई से संबंधित है। निरमल की मां के यहां मकान खरीदने की कथा थी। गुलकी और उसका पति भी उन्हीं के यहां थे। उस समय गुलकी मेवा से जो बात करती हैं उससे स्पष्ट होता है कि वह पति के साथ जाने में ही अपनी भलाई समझती है। बच्चा छीन लिए जाने को पति से दूर रहने की स्थिति को वह अपनी ही खोट समझाती है। भगवान से क्षमा–याचना भी करती है और सोचती है कि पति के पास जाकर रहने से ही उसके दिन बदलेंगे, संतान होगी फिर पति खुश होगा, मौत का भी हुक्म नहीं चलेगा।

दूसरी तरफ बेमन से गुलकी को अपने घर ले जाने वाले पति बुआ से कहता है– गुलकी को समझा दें कि वह केवल दासी बनकर ही रह पाएगी। मेरी औरत की सेवा करने के लिए ही उसे मैं ले जा रहा हूं। इसके बदले में केवल दो रोटी पाएगी। अधिकारों की उम्मीद वह न करें, न ही जुबान लड़ाए, नहीं तो मैं जान भी ले सकता हूं। जिसे बुआ ने हां में हां मिला दी।

शाम को गुलकी तथा उसका पति जाने वाले हैं, इसका आभास पता नहीं कैसे झबरी कुतिया को हो जाता ह।– वह पागल सी इधर–उधर दौड़ रही है जैसे कोई सदा के लिए उससे बिछुड़ने वाला हैं। इक्का आते ही मेवा ने गठिरयां रखी। मटकी और मिरवा जो गुलकी के अब तक के साथी थे वे गुमसुम–से खड़े हो गये। गुलकी उन दोनों को एक–एक अठन्नी देती है पर हमेशा लेने के आतुर दोनों ही हिचाकिचाते है।गुलकी ने प्रेम से कहा तब दोनों वे पैसे लेते हैं और उसे सलाम करते हैं।

7.7.1.10 गुलकी का मुन्ना भाई–

जैसे ही गुलकी मुड़ती है मुन्ना की मां कपड़े और नारियल लेकर आती हैं गुलकी जो सारे मुहल्ले की बिटिया है उसे सूना–सूना कैसे विदा करें? रोली–चावल, सिंदूर से टिका कर के उसे कपड़े दिये जाते हैं, जिसे देखकर गुलकी की रूलाई फूट पड़ती है। उसे लगता है वह अपने मां–बाप, भाई–बहन सबको छोड़ कर सुसराल जा रही है। मुन्ना से वह गुलकी के पांव पड़ने के लिए कहती है तो वह अचकचा जाता है। उसकी समझ में कुछ नहीं आता, उसकी भी आंखों में आंसू आने को होते हैं जिसे वह मुश्किल से रोकता है। उस आदमी के आवाज देने से गुलकी मुन्ना की मां का सहारा लेकर इक्के पर बैठ जाती है। इक्के को आखों से ओझल होते सब लोग देखते हैं।

उसके जाते ही बुआ व्यंग्य करती है–एकाध बिदाई का गाना भी गाओ, गुलकी बन्नो ससुराल जो जा रही हे। मुन्ना की मां उसे कुछ जबाब दिये बिना निकल जाती है।

मिरवा और मटकी दोनों गाने लगते हैं– "बन्नो डाले दुपट्टे का पल्ला, मुहल्ले में चली गयी राम!" बुआ उन्हें डॉटती है तब वे बेझिझक कहते हैं–काहे न गाव, गुलकी ने पैसा दिया है, दोनों सुर में गाते हैं" "बन्नो तल गयी लाम! बन्नो तल गयी लाम!"

दोनों ही मुन्नाबाबू से कहते हैं कि गुलकी ने उन्हें पैसे दिये है ले लें? मुश्किल से अपने आंसुओं को रोक कर कहता हैं, ले ले! वह ओझल हाते हुए इक्के की ओर देखता है। जहां गुलकी आंसू पोंछते हुए पर्दा उठाकर सबको मुड़–मुड़ कर देख रही थी। इस तरह गुलकी ससुराल चली जाती है।

7.7.2 कठिन शब्दार्थ

नीमकौड़ी–नीम का फल (निंबोली)

ससंदर्भ स्पष्टीकरण–

"अरे मोर बाबू– हमें कहां छोड़ गये– अरे मोरी माई! पैदा होते ही हमें क्यों नहीं मा डाला! अरे धरती मैया हमें काहे नहीं लील लेती?

संदर्भ – वे पंक्तियां डॉ. धर्मवीर भारती द्वारा लिखित कहानी गुलकी बन्नो की है। घेघा बुआ के चौतरे पर गुलकी की सब्जी की दुकान है। पांच महीने से किराया गुलकी दे नहीं पाती –ऊपर से घर उजाड़ने का इलजाम बुआ पर लगाती है तब गुस्से में नौ दिन का जमा बरसात का पानी वह खोल देती है। सारा सौदा पानी में बह जाता है तब रोते हुए गुलकी उपरोक्त पंक्तियां कहती है।

स्पष्टीकरण– 'गुलकी बन्नो' लेखक ने एक ऐसी स्त्री का चित्रण किया है जिसे पति ने घर से निकाल दिया है। संसार में उसका कोई नहीं है। बच्चे तक उसका मजाक उड़ाते हैं, कुबड़ी कह कर चिढ़ाते हैं। मुहल्ले वालों की दया पर वह जीती है। उसके पिता के हाथों का मकान है जिसका एक–एक हिस्सा मुहल्लेवाले बेच देते हैं। सब्जी की दुकान लगाकर वह आत्मनिर्भर बनना चाहती है। घेघा बुआ अपना चौतरा उसे किराये पर देती है। पर लोग उससे सब्जी खरीदते ही नहीं। इसलिए पांच महीने का किराया गुलकी पर चढ़ जाता है। तभी सब बच्चे शोर करते हैं। मिरवा–मटकी उसके साथ बैठते हैं। वक्त–वेवक्त गाना गाते हैं। जो बुआ को जरा भी नहीं सुहाता। इसलिए सारा गुस्सा गुलकी पर टूट पड़ता है।

बरसात का जमा पानी कूड़ा कचरा से भरी नाली वह खोल देती है। तब गुलकी की सारी सब्जियां बह जाती है, अपने आपको विवश–लाचार मान कर वह विलाप करती है। मां–बाप उसे याद आते हैं। तब वह कहती है–पैदा होते ही मुझे माता–पिता ने क्यों नहीं मार डाला, संसार में मुसीबते झेलने के लिए अकेला छोड़ गये। धरती मैया तो भी हमें लील ले तो अच्छा हो–उसका आक्रोष, करूणा रूलाई में फूट पड़ती है।

7.7.3 सारांश– अकेले होने की असहायता, उसकी मजबूरी का नाजायज फायदा उठाने वाले लोग, परित्यक्ता स्त्री की विवशता, समाज का स्त्री की तरफ देखने का दृष्टिकोण 'गुलकी बन्नो' कहानी में लेखक ने प्रकट किया है।

7.7.4 अभ्यास के प्रश्न–

1. गुलकी बन्नो स्वाभिमानी भारतीय नारी की करूणा गाथा है स्पष्ट कीजिए।
2. लेखक ने बच्चों के क्रियाकलापों द्वारा गुलकी की करूणा को तीव्रता प्रदान की है–समझाइए।
3. घेघा बुआ का चरित्र–चित्रण कीजिए।

7.8 राजा निरबंसिया (कमलेश्वर)

(6 जनवरी 1932)

हिन्दी कहानी को नए युग के भावबोध के साथ जोड़ कर नई दृष्टि कमलेश्वर ने दी है। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश की तिकडी 'नई कहानी' आंदोलन की जनक है। इसी कारण कमलेश्वर को नई कहानी के प्रबुद्ध प्रवक्ता भी कहा जाता है।

कमलेश्वर का जन्म उत्तर प्रदेश के मैनपुरी में 6 जनवरी 1932 में हुआ। प्रयाग विश्वविद्यालय से इन्होंने हिन्दी में एम.ए. किया। इनकी पहली कहानी 'कामरेड; 1951 में एटा से निकलने वाली 'अप्सरा' में प्रकाशित हुई। इसके बाद राजा निरबंसिया, कस्बे का आदमी, खोई हुई दिशाएं, मांस का दरिया, जाज, पंचम की नाक,बयान, कोइरा आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। कमलेश्वर ने उपन्यास भी लिखे हैं।–एक सड़क सत्तावन गलिया, डाक बंगला, तीसरा आदमी, समुद्र में खोया आदमी, आगामी अतीत, सुबह दोपहर शाम, कितने पाकिस्तान आदि।

इन्होंने 1963 से 1965 तक 'नई कहानियां; पत्रिका का संप दन किया साथ ही वे 'सारिका', 'गंगा', के भी ये संपादक रहे है। कमलेश्वर दूरदर्शन के महानिदेशक पद पर भी कार्य करते रहें। 'आंधी' फिल्म के लेखक भी रहे हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.8.1 राजा निरबंसिया का कथानक

दो समान्तर चलने वाली कथाओं में एक कहानी लोककथा है तो दूसरी आज के यथार्थ को अंकित करने वाली चंदा और जगपति की कथा है। राजा निरबंसिया की कथा मां अपने बच्चों को सुनाया करती थी जो इस प्रकार है।

7.8.2 लोककथा

एक राजा निरबंसिया थे, उसके एक प्यारी–सी, चंद्रमा–सी सुंदर रानी थी। उनके राज में सब ओर खुशहाली थी सब सुखी थे। एक दिन राजा शिकार पर जाते हैं। हमेशा वे शिकार पर से सातवें दिन लौट कर आते थे। इस बार सात दिन हो गये। तो रानी को चिंता हुई लेकिन राज्य नहीं लौटे वे अपने एक मंत्री को साथ लेकर उन्हें खोजने निकल पड़ी। वे कहीं नहीं मिले। जब रानी मंत्री के साथ निराश होकर लौटती है तो देखती है राजा महल में उपस्थित थे। उसे बहुत खुशी होती है पर राजा को रानी का मंत्री के साथ जाना उचित नहीं लगा। यह सब केवल राजा के प्रति अटूट प्रेम के प्रति हुआ । दोनों एक–दूसरे को बहुत चाहते थे। केवल एक दुःख था कोई संतान न थी।

राजा को सवेरे–टहलने की आदत थी। एक दिन जब मेहतरानी उनका मुख देख लेती है। तो अपने आपको निरबंसिया का मुख देखने के कारण कोसती है। वह दुःख राजा को बर्दाश्त नहीं होता और वे राजसी वस्त्र उतार कर उसी समय जंगल की ओर चले जाते हैं। रानी उसी रात देर सपना देखती है कि उसकी मनोकामना पूरी होने वाली है। वह तुरंत राजा को खोजने निकलती है। वेष बदलकर जिस सराय में राजा ठहरे हैं वहां उनकी सेवा करती है। रात भर रहकर सुबह से पहले महल लौट आती है। राजा के निकल जाने की खबर चारों तरफ फैल जाती है।

कई वर्षों बाद जब राजा परदेश से बहुत धन कमाकर लाते हैं, देश में आने के बाद महल लौटते समय उनकी गाड़ी का पहिया झाड़ी में फंस जाता है। एक पंडित बताता है कि संकट के दिन जन्मा बालक अपने घर की सुपारी लाकर उसे घुमा दे तो पहिया निकल जायेगा। वहीं खेल रहे दो बालक आकर कहते हैं कि हमारी पैदाइश संकट की है पर आधा धन देते तब ही हम सुपरी लायेंगे। राजा मान लेता है। सुपारी छुआते ही घर का रास्ता बताते हुए आगे–आगे चलते हैं। आखिर गाड़ी महल के सामने रोक ली। राजा को आश्चर्य होता है महल में ये बालक कहां से आ गये? रानी से पूछने पर पता चलता है कि वे उन्हीं के बालक है। राजा विश्वास नहीं होता तब रानी कुलदेवता के मंदिर में आकर अपने सतीत्व को सिद्ध करने के लिए घोर तपस्या करती है, जिससे देवता प्रसन्न होकर बालकों को शिशुओं में बदल देते हैं। रानी की छातियों से दूध की धारा फूटकर शिशुओं के मुख में गिरने लगती है। तब राजा को रानी के सतीत्व का प्रमाण मिलता है और वह रानी के चरण पकड़ कर कहता है–तुम देवी हो, ये मेरे पुत्र है– सब कुछ उस दिन से सुचारू रूप से चलने लगता है।

इस लोककथा के साथ–साथ मुख्य कथा के रूप में लेखक ने जगपति, चंदा तथा बचनसिंह की कथा को पिरोया है जो इसी कथा से मेल खाती है पर परिणाम अर्थात् निष्कर्ष, अंत अकल्पित है।

7.8.2.1 आधुनिक कथा–राजा जगपति रानी चंदा–

राजा की जगह जगपति, रानी की जगह चंदा तथा मंत्री की जगह बचनसिंह। लेखक के सामने वे सारे पात्र प्रसंगानुरूप उभरते हैं। लेखक के मित्र की आधुनिक कथा 'राजा निरबंसिया' है। जगपति खयालों का राजा है, जिससे लेखक की दोस्ती थी। साथ पढ़े थे, एक–सी हैसियत वाले थे, लेखक ने मैट्रीक पास कर स्कूल में नौकरी कर ली। जगपति वकील के यहां लिपिक हो गया। जगपति की शादी हुई, पहले तो उसकी पत्नी नहीं आयी। बाद में वह आ जाती है। जगपति की माँ बहू को समझाती है और कहती है, इस घर की लाज तुम्हारे हाथों में है। चार वर्ष बीत गये पर जगपति के कोई संतान नहीं हुई। वह बिना पोते का मुंह देखे ही स्वर्ग सिधार गयी।

7.8.2.2 हादसा डाके का परिवर्तन जीवन का

जगपति रिश्तेदारों में विवाह में जाता है वहाँ डाका पड़ता है। जगपति डाकुओं का मुकाबला करते हुए घायल हो जाता है। जगपति को अस्पताल में भर्ती करवा दिया जाता है। उसकी पत्नी चंदा देखभाल के लिए आ जाती है और अस्पताल की कोठरी में ही रहने लगती है। प्रारंभ में रिश्तेदार दयाराम मदद करते रहे बाद में वह बंद हो जाती है। कस्बे का अस्पताल होने से कंपाउंडर बचनसिंह ही वहां डाक्टर का काम करता था। जो दोनों के निजी जीवन में भी आ जाता है। बचनसिंह जब पट्टी करता है जो जगपति के जख्म को देख कर चंदा चीख पड़ती है। उसकी आंखों से आंसू आते हैं जो बचनसिंह की बांह पर पड़ते हैं। दोनों की आंखें लड़ जाती है। बचनसिंह अच्छी–अच्छी दवाईयां दूसरे अस्पताल से लाकर देता है। उसके मन में अपनेपन का भाव जग जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.8.2.3 सोने का कड़ा–शक की जड़

बचनसिंह जगपति को कई दवाईयां और चंदा के लिए चारपाई तक पहुंचा देता है। जगपति प्रश्नाकूल नजर से देखता है तो चंदा कह देती है हाथ का कड़ा बेच कर दवाइयां आई है। जगपति को लगता है इतना बड़ा निर्णय लिया और मुझे पूछा तक नहीं जगपति सोचता है नाहक ही मैं बड़ी–बड़ी बातें कह गया। इससे तो अच्छा होता बचनसिंह की दवा पर ही जी लेते।

चंदा, अंधेरा होते ही अपनी कोठरी से कड़ा लेकर बचनसिंह को देने जाती है। जहां वह अकेला लेटा था। वह क्षणभर को सोचती है अंदर जाएं या न जाएं, बचनसिंह अंधेरे में भी चंदा को पहचान लेता है और चंदा को पुकारता है, उस आवाज में एक खामोश अर्थ है जिसे चंदा भी समझ जाती है। चंदा के हाथ से कड़ा लेकर वह फिर से उसकी कलाई में पहना देता है। कालिख बुरी तरह बढ़ जाती है। सुबह चंदा जगपति के पास जाती है तो उसे उदास पाता है। पश्चाताप का भाव चेहरे से छलकता है। उसे पता चलता है बचनसिंह का तबादला उन्हीं के गांव मैनपुरी हुआ है, उसे अच्छा लगता है। पर जैसे ही चन्दा का ख्याल आता है तो नुकीले कांटे की चुभन वह महसूस करता है। दिल में संदेह के बादल मंडराने लगते हैं।

7.8.2.4 बाँझपन का ताना

पंद्रह–बीस दिन बाद जगपति की हालत सुधरते ही वे गांव लौट आते हैं, उन्हें देखकर जगपति की चाची ताना कसती है–'राजा निरबंसिया लौट आए है।' ये शब्द सुनकर जगपति अपना गुस्सा चंदा पर निकालता है। अंधेरे में लालटेन जलाकर लाने के लिए कहता है– तो तेल न होने की बात चंदा कहती है। वह उसे कहता है तुम्हारे कभी कुछ नहीं होगा। बात वह चंदा के मातृत्व पर गहरी चोट करता है, वह आहत होती है।

रोती हुई चंदा सो गयी पर जगपति को नींद नहीं आती। उसे पछतावा हुआ कि बिना वजह चंदा को कोसता है, कितनी मासूम, भोली निरीह है, उसे चंदा पर प्यार आता उसके पास जाता है, छवि निहारता है और जैसे ही अपने अंक में भरने का प्रयास करता है, उसके हाथ कठोर चीज से टकराते हैं, देखता है कि वही सोने के कड़े, जो चंदा बेचकर उसका इलाज कर रही थी–वे दवाइयां,टानिक–फिर कैसे आए? इतना बड़ा झूठ, इतना दुराव किसलिए? उसका रक्त पानी–पानी हो गया।

उस रात के बाद से जगपति कड़े बेच कर कुछ कारोबार करना चाहता है, पर मांगे कैसे? नौकरी छूट चुकी थी, उसे लगा कड़ा मांगकर कहीं वह चन्दा का पत्नीत्व का पद तो नहीं छीन रहा है. मातृत्व पद तो भगवान ने छीन ही लिया है, क्या उसे यह अधिकार है? कोई कर्ज देने वाला भी नहीं था, क्या करें?

7.8.2.5 बचनसिंह का पुनरागमन

शाम को घर लौटता है तो घर में किसी पुरुष का स्वर सुनता है, बाहर साइकिल भी है, पर कौन हो सकता है? दोनों की बाते सुनकर पहचान लेता है पर अनजान बनते हुए घर में आता है, तो चंदा को बहुत खुश देखता है, जगपति भी परिस्थिति स्वीकार करते हुए कंपाउंडर से बातें करता है।

उसके जाने के बाद वह बचनसिंह के बारे में बोलती है, मानो वह जगपति के दिल की बात जानना चाह रही हो। जगपति उसे कहता है, "बचनसिंह आड़े वक्त काम आनेवाला आदमी है, पर ऐसा जिससे कुछ लिया जाएगा उसे दिया भी तो जाएगा।"

उस दिन से बचनसिंह लगभग रोज आने लगा। जिसकी उपस्थिति में जगपति को अजीब घुटन सी महसूस होती है। खालीपन को वह काम से पाटना चाहता है, वह समस्या भी उसकी हल हो जाती है। लकड़ी का टाल चालू कर अपने को बांधे रखना चाहता है। शाम को बचनसिंह के आने तक एकाध बिक्री हो जाती तब दोनों घर की ओर बाते करते हुए आते दोनों का खाना अक्सर साथ होता, चन्दा सामने बैठकर दोनों को खिलाती। जगपति महसूस करता है, चन्दा का ध्यान बचनसिंह की ओर अधिक है, उसकी तरफ कम, वह दुखी हो जाता। खाना खाने के बाद वह टहलने चले जाता, चौकीदार न होने से रात वहीं काट लेता। लकड़हारे आने पर वह घर लौटता।

7.8.5.6 चंदा की मां बनना–

एक दिन उसे पता चलता है चन्दा मां बनने वाली है। मुहल्ले में सभी अचरज करते हैं। जगपति की बेवा चाची भेद भरे स्वर में औरतों के जमघट में कहते सुना–छह साल हो गये शादी को न बाल, न बच्चा न जाने किसका पाप है उसके पेट में............और किसका होगा सिवा उस मुसटण्डे कम्पोटर के कूल, गली, मुहल्ले के नाम मर्यादा को कलंकित किया चंदा ने?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.8.2.7 चंदा का स्वाभिमान–

वह खबर जगपति को स्वयं मुहल्ले वालों के साथ ही मालूम होती है। वह अपने आपको मुँह दिखाने के काबिल नहीं मानता। रात के अंधेरे में चोरों की तरह आता और सुबह होने से पहले टाल पर चल देता, मानों दूसरे ही पल बरबस गुस्सा आता है, जिससे चंदा पर क्रोध करते हुए एक जोरदार थप्पड़ चंदा की कनपटी पर रख देता है। वह कहती है.........जब तुमने ही मुझे बेच दिया....... ।" दूसरे ही दिन वह अपने गांव चली जाती है।

7.8.2.8 जगपति का जीवन सूना

चंदा के मैके चले जाने से जगपति के शरीर से मानों प्राण ही निकल जाते है। तन जर्जर, मन मुर्दा, अपाहिज, रेंगता क्रीड़ा, जिसके न मन है न इच्छा। चंदा के वे शब्द–'लेकिन जब तुमने मुझे बेच दिया...... ।' क्या बचनसिंह ने टाल के लिए दिये रूपयों का ब्याज ऐसे वसूल किया? उन रूपयों की आग में उसके विश्वास, आदर्श, सहनशीलता मोम से पिघल गये।

7.8.2.9 चंदा का दूसरा व्याह–एक खबर

लकड़ी काटकर गाड़ियों में लादकर अपने टाल पर लाते समय मुंशीजी से उसे पता चलता है–चन्दा के लड़का हुआ है। वे ही आगे कहते है–चंदा दूसरा विवाह कर रही है। अगर तुम चाहो तो अदालत से तुम्हें बच्चा मिल सकता है।" वह कहता है अपना कह कर किस मुँह से मांगू? हर तरफ कर्ज से दबा हूं । तन से, मन से पैसे से इज्जत से, किसके बल पर दुनिया संजोने की कोशिश करूं?

मुहल्ले में घर के पास जा रहा होता है चाची का अन्य स्त्रियों से वह कहना सुनता है कि–आ गये सत्यानाशी!कुलबोरन!"

7.8.2.10 ग्लानि बोध

यह वाक्य जीवन की घृणा को जगपति मन में उभरते हैं। कारण उसे चन्दा की याद आती है, मेरे ही कारण वह नर्क में गयी पर वह मेरे पास नहीं आती क्योंकि मैं कायर हूं, नीच हूं।

7.8.2.11 जगपति का आत्महत्या

जीवन की तरह जगपति घर में भी अंधेरा छा गया। जीवन चला भी तो चंदा की संपत्ति पर ही। जगपति अपने आप को उखड़ा हुआ पेड़ मानता है। दिल से वह चंदा को चाहता रहा पर उसके दिल में चाहत नहीं जगा पाया। इसी कारण वह दूसरे के घर बैठ रही है। उसी रात जगपति ने अफीम और तेल खा लिया।

7.8.2.12 मृत्यु वरण–चंदा एवं बेटा के साथ

मरते समय जगपति ने दो पर्चे छोड़े–एक चंदा के नाम जिसमें लिखा कि मेरी अंतिम इच्छा है, बच्चे को लेकर मायके से चली आना। दूसरी चिट्ठी कानून के नाम लिखी–किसी ने मुझे नहीं मारा–मेरा कर्ज मेरा आत्मघाती है। रूपयों के कर्ज के जहर ने मुझे मारा है। मेरी लाश तब तक न जलायी जाय, जब तक चंदा बच्चे को लेकर न आए। मेरा दाहकर्म बच्चा करें। जगपति चंदा को पत्नी का हक ताकि बेटे को दाहकर्म का हक दे देता है। मर कर बेटे को अपना स्वीकार लेता है।

7.8.3 शैल्पिक नवीनता

'राजा निरबंसिया' कहानी कथ्य से ज्यादा अपने शिल्प के लिए चर्चित हुई। राजा निरबंसिया एक लोककथा है तो दूसरी तरफ जगपति नामक निसंतान व्यक्ति की कथा है। लोक कथा में निरबंसिया राजा सम्मानित होता है तो जगपति स्थितियों से जुझते आत्मघात के लिए विवश हो जाता है। वह कहानी लोककथा के यथार्थ और आज के यथार्थ से संगुफित है। तुलना प्रणाली से कमलेश्वर ने आम आदमी की विवशता को मार्मिकता से रेखांकित किया है। सूक्ष्म संवेदनाओं का चित्रांकन दूसरे कथ्य से अधिक प्रभावशाली हो गया है।

7.8.4 कठिन शब्दार्थ –व्याख्याएं

मुहर्रिक–लिखनेवाला, मुंसी	तुमाट खड़ा करना (मुहावरा) लड़ाई झगड़ा कराना।
सायत–शुभ दिन शगुन मुहुर्त	मुखबिर–जासूस (सरकारी माफीदार)
जिंगला–(खटिया)	खसरा–पटवारी की बही, जिसमें गांव के हर खेत का नंबर,रकबा आदि लिखे रहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मौजान–तराजू बरोठा–बरामदा

पतेल–झाड़ी

स–संदर्भ स्पष्टीकरण–

"चन्दा, आदमी को पाप नहीं पश्चाताप मारता है, मैं बहुत पहले मर चुका था। बच्चे को लेकर जरूर चली आना।"

संदर्भ–ये पंक्तियां कमलेश्वर द्वारा लिखित 'राजा निरंबंसिया' कहानी की है। जगपति कहानी का नायक आत्महत्या करते वक्त दो चिट्ठियां लिखता है। एक चिट्ठी चन्दा के नाम तथा दूसरी कानून के नाम। चन्दा के नाम की चिट्ठी में वह अपनी अंतिम इच्छा लिखता है।

स्पष्टीकरण– एक निःसंतान जगपति 'निरबंसिया' होने के ताने सना–सुना कर टूटता है। उसकी बीमारी के दौरान उसकी पत्नी चन्दा पति की मदद करने वाले व्यक्ति से संबंध स्थापित करने को विवश हो जाती है। एक निरबंसिया राजा की कथा को भी लेखक बीच–बीच में बताते चलता है। जिसमें निःसंतान राजा को संतान प्राप्त होने पर सम्मान प्राप्त है। पर आज के जगपति की पत्नी को जब लड़का होता है। तो पति अपनी विवशता, प्रताड़ना के कारण मुंह दिखाने लायक नहीं समझता। इसलिए आत्महत्या का निर्णय लेता है। पर पत्नी को भी चाहता है। उसे उसका हक भी मिलना चाहिए तथा बेटे को नाम भी। इसलिए आत्महत्या के पहले दो चिट्ठियां लिखता है। एक कानून के नाम तथा दूसरा चंदा के नाम।

चंदा के नाम लिखी चिट्ठी में वह अग्नि बेटे द्वारा दी जाय यह इच्छा करता है और कहता है कि मायके से तुम बच्चे के साथ चली आना। रूपये का कर्ज जहर था जिसने मुझे मारा है। मेरे कारण तुम्हें पाप करने के लिए विवश होना पड़ा। यह पाप का बोझ मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। वैसे मेरे जीवन में था ही क्या केवल शरीर भर सेजी रहा था। आत्मसम्मान तो कब का मर चुका था। पर तुम बच्चे के साथ आओगी तो मुझे शांति मिलेगी।

7.8.5 सारांश–

नई कहानी के प्रवर्तक कमलेश्वर ने इस संबंध की कहानी में मुख्यतः पति–पत्नी के संबंधों की टूटने को रेखांकित किया है। दो कथाओं की तुलना के शैल्पिक विधान के द्वारा आम आदमी की विवशता इस कहानी में चित्रित की है।

7.8.6 अभ्यास के प्रश्न–

1. पति के पत्नी के संबंधों की टूटन को मार्मिक अभिव्यक्ति कम्लेश्वर ने कैसे प्रदान की है?
2. जगपति का चरित्रांकन मनोवैज्ञानिक प्रणाली से हुआ है इस कथन के आलोक में नायक का चरित्र चित्रण प्रस्तुत कीजिए।
3. 'राजा निरबंसिया' नूतन शैल्पिक वैशिष्ट्य को विवेचित कीजिए।
4. कमलेश्वर ने राजा निरबंसिया की लोककथा को आधार क्यों बनाया है?
5. स्वाभिमानी नारी के रूप में चंदा के स्वभाव वैशिष्ट्य को चित्रित कीजिए।

7.9 वापसी–डॉ. उषा प्रियंवदा

(24 दिसम्बर 1931)

उषा प्रियंवदा का जन्म कानपुर में हुआ। इन्होंने एम.ए., पी.एच.डी. की शिक्षा अंग्रेजी भाषा–साहित्य में अर्जित की है। विदुषी प्रियंवदा का हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत पर खास अधिकार है। उन्होंने अमेरिका में हिन्दी, भारतीय साहित्य–संस्कृति विषय की प्रोफेसरी की है। उषा प्रियंवदा हिन्दी साहित्य जगत में एक सफल महिला कहानीकार के रूप में ख्यात है। कथात्मक साहित्य सृजन में वे सिद्ध हस्त है। उन्होंने पचपन खंबे लाल दीवारें, रूकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा उपन्यास लिखें है।जिंदगी और गुलाब, फिर वसंत आया, एक कोई दूसरा, कितना बड़ा झूठा आदि कहानियां लिखी है। उषा प्रियंवदा के लिए लेखन एक संजीवनी शक्ति के समान है। विदेश में रहते हुए भी हिंदी और लेखन के माध्यम से वे भारत से जुड़ी है। अपने लेखन के संबंध में वे लिखती है– "मेरी कहानियों के पीछे एक बीज जरूर होता है– एक विचार, एक इमेज, एक अनुभव या अनुभूति का। ....मेरी प्रिय कहानियां वे हैं जो एक फ्लैश में जन्मी और मैने लिख डाला । ...सृजन–क्रिया मेरे अन्दर, मन में बराबर चलती रहती है। ....हर दिन इस इन्तजार में गुजरता है कि न जाने कब, क्या मन को यों छू ले कि एक नई कहानी की शुरूआत हो जाए।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उषाजी की कहानियों की उत्सभूमि कोई गहरी अनूभूति होती है, जिससे उनकी कहानियों में स्वभाविकता और यथार्थता का अनायास गुण आ जाता है। फलतः कहानी प्रभावशाली और ह्रदयस्पर्शी हो जाती है।

वापसी कहानी का प्रेरणा स्रोत—उषा प्रियंवदा को 'वापसी' कहानी लिखने की प्रेरणा एक थके हारे, वयस्क, निराश बूढ़े व्यक्ति को देखकर मिली। वह व्यक्ति उनकी मां के पास अपने बच्चों की लापरवाही, उपेक्षा का बयान करते थे। समूची जिंदगी जिनके लिए व्यतीत की, बदलें में उन्हें मिली लापरवाही और उपेक्षा। परिवार से दूर रहकर परिवार के भविष्य को बनाया। बीवी—बच्चों की इच्छाओं के आगे अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। पारिवारिक सुख के लिए सेवावकाश की सुंदर कल्पना का जो सुंदर सपना उन्होंने देखा था वह अवकाश के बाद टूट गया।

उस व्यक्ति की पीड़ा ने प्रियंवदा जी को 'वापसी' कहानी लिखने की प्रेरणा दी।

7.9.1 'वापसी' कहानी का सारांश—

कहानी के मुख्य पात्र गजाधर बाबू रेलवे में पैंतीस वर्ष की नौकरी करने के बाद रिटायर होकर अपने गांव, अपने परिवार के पास वापस जाने के लिए तैयार हो रहे है। रेलवे क्वार्टर में गनेषी नामक नौकर उनकी देखभाल करता था। उसे बहुत दुःख हो रहा है कि बाबूजी जो उनके सुख—दुख में शामिल थे अब उनके साथ न रहने से विषाद का अनुभव करता है तो बाबूजी अपनी पत्नी, बाल—बच्चों के साथ रहने की कल्पना से खुशी का अनुभव करते हैं। शेष जीवन स्नेह और सुख से बिताने की मधुर कल्पना करते हैं। उन्हें वह सारी बातें याद है जो परिवार के साथ जुड़ी थी, पत्नी तथा बच्चों का अपनापन, लगाव, सेवा, सम्मान, सब कुछ फिर से प्राप्त करने की उम्मीद उनके मन में है। तबादले की नौकरी के कारण इस अपनाने से वे वंचित थे।

घर आकर उन्हें बहुत खुशी होती है। परिवार के लोगों के साथ घुल—मिल जाना चाहते हैं। सब—कुछ पहले जैसा परंतु उनकी यह खुशी क्षणिक ही ठहरती है। परिवार में आते ही सब अपने अपने कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं उनसे बात करने में भी कतराते हैं। बाबूजी की अनुपस्थिति में सब मनोविनोद—उन्मुक्त रूप से करते हैं, परंतु बाबूजी के आते ही मानों पाबंदी लगी है ऐसे चुप हो जाते है। जो उन्हें बहुत अखरता है। पत्नी है कि अपने काम में लगी है। उनके चाय—नाश्ते तक की परवाह कोई नहीं करता तब उन्हें गनेषी की याद हो आती है कि वह कैसे गजाधर बाबू के उठकर तैयार होते ही गरमागरम पूरियां और जलेबी ला देता। जैसी चाय उन्हें पसंद थी गिलास पूरा लबालब भरा, ढाई चम्मच चीनी और गाढ़ी मलाईवाली चाय उनके सामने हाजिर हो जाती।

पत्नी जब भी बोलती तो केवल सबकी शिकायत। सारा दिन मुझे घर में काम करना पड़ता है, बहू—बेटी काम नहीं करती, पढ़ाई के बहाने सहेली से मिलने जाती है; कोई सुनता ही नहीं। तब बाबूजी बहू को सबेरे का खाना तथा बेटी को शाम को खाना बनाने की सूचना देते हैं, पत्नी का पक्ष लेते हैं। पत्नी से कहते है कि खर्च में काट—छांट करनी होगी। तो वह शिकायत भरे स्वर में तंगी का जिम्मेदार मानों बाबूजी ही है, इस लहजे में कहती हैं। सहानुभूति के अभाव की उन्होंने ऐसी उम्मीद नहीं की थी। उन्हें उसका पुराना रूप याद हो आता है—एक लावण्यमयी, कोमल रूप और आज का उसका व्यवहार, जैसे वह गजाधर बाबू की आंतरिक अभिव्यक्ति से बिलकुल ही अपरिचित हो।

लड़की ने शाम को जानबूझकर ऐसा खाना बनाया कि खा नहीं पाये—बाबूजी ने तो अनमने ढंग से खा लिया पर जब बेटे—नरेंद्र को यह पता चलता है कि बसंती को खाना बनाने के लिए बाबूजी ने कहा, तो कहता है, बाबूजी को बैठे—बैठे यही सूझता है। नरेंद्र के लिए मां कुछ दूसरा बनाकर खिला देती है। दूसरे दिन मां को रसोई में देखकर बसंती कपड़े बदलकर शीला के घर जाने के लिए निकलती है तब बाबूजी उसे वहां जाने से रोक कर पढ़ाई करने के लिए कहते हैं। जिससे बिना खाना खाए मुंह फुलाएं रहती है और उस दिन से वह पिता से रूठ जाती है। उसके तेवर देखकर गजाधर बाबू नाराज हो जाते है। सोचते है—क्या उन्हें इतना भी अधिकार नहीं कि वे बेटी से कुछ कहें?

एक दिन पत्नी आकर बताती है कि अमर और उसकी पत्नी अलग रहने की सोच रहे हैं। कारण पूछने पर पता चलता है कि गजाधर बाबू के आ जाने से बैठक में उनकी व्यवस्था की गयी थी सो आने—जाने वाले लोग उनके मित्रों के लिए जगह नहीं थी। गजाध ार बाबू का वहां होना, सबको टोकना, बात में दखल देना, उन्हें अच्छा नहीं लगता था। इतना ही नहीं बेटी भी उनके आने से खुश नहीं थी। उनके आने से पहले बैठक में ही सब लोग अड्डा जमाएं बैठे रहते थे, चाय, नाश्ता, फिल्म देखना, घूमना उन्मुक्त रूप से चलता था जो अब संभव नहीं था।

दूसरे ही दिन गजाधर बाबू देखते है कि बैठक से उनकी चारपाई कोठरी में है। तभी उन्हें लगता है कि वे अपने ही घर में एक ऐसे अनचाहे मेहमान बन कर रह गये है, जिन्हें उनके अपने ही परिवार वाले एक व्यर्थ का व्यक्ति समझने लगे हैं, जिसने आकर उनकी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्वच्छंदता में बाधा डाल दी है। उन्हें अपना बड़ा खुला हुआ क्वार्टर याद आता है। निश्चित जीवन, स्टेशन की चहल–पहल, वहां का माहौल उन्हें खोई निधि–सा प्रतीत हुआ। उन्हें अहसास हुआ कि पत्नी तथा बच्चों के लिए वे केवल धनोपार्जन के निमित्त थे। पत्नी के द्वारा भी उनकी वेदना न समझने से वे टूट गये और किसी काम में, बात में हस्तक्षेप करना छोड़ दिया फिर भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक हिस्सा नहीं बन पाया। घर लौटने की खुशी एक गहरी उदासीनता में परिवर्तित हो गयी।

दखल न देने का निश्चय करने के बावजूद जब पत्नी के द्वार नौकर की शिकायत सुनते है तो उसी दिन उसकी घुट्टी कर देते हैं। शाम को जब अमर आता है तो यह सुनकर गुस्सा हो उठता है और नौकर के द्वारा किये जाने वाले काम करने से इनकार करता है, बेटी भी हां में हां मिलाती है। उन्हें पता नहीं की चारपाई पर लेटे–लेटे गजाधर बाबू यह सब सुन रहे है। अमर भुनभुनाता है–"चुपचाप पड़े रहे। हर चीज में दखल क्यों देते हैं? पत्नी भी उसी की हां में हां मिलाती है तब यह सारी स्थिति गजाधर बाबू को असह्य हो उठती है और अगले दिन गजाधर बाबू सेठ रामजीमल की चीनी–मिल मे नौकरी करने का निश्चय कर लेते हैं खाली बैठे रहने से चार पैसे मिल जाएगें। अपना निर्णय जब वे सुनाते हैं और पत्नी से पूछते हैं कि "तुम भी चलोगी?" तो वह सकपकाकर कहती है, "मैं चलूंगी तो यहां का क्या होगा, इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की.... ।" अर्थात् वह इनकार कर मन ही मन खुश होती है, इसका एहसास उन्हें है। छोटा बेटा नरेन्द्र तत्परता से बिस्तर बांधता है और रिक्शा भी बुला कर लाता है। गजाधर देखते हैं– किसी को कोई परवाह नहीं है, वे मुंह फेर लेते हैं, और रिक्शा चलने लगता है।

उनके जाने के बाद बहू अमर से सिनेमा चलने के लिए कहती है और बसंती भी। पत्नी अपने काम में जुट जाती है और कोठरी से चारपाई निकलवा लेने के लिए कहती है। गजाधर बाबू की यह वापसी हमारे आज के पारिवारिक संबंध को उजागर करती है।

7.9.2 'वापसी' कहानी के चरित्र

'वापसी' कहानी गजाधर बाबू के इर्द–गिर्द कथानक का ताना बाना बुनती है। गजाधर बाबू की पत्नी, बेटे नरेन्द्र, अमर, बेटी बंसती और बहू तथा गजाधर बाबू की अपनेपन से सेवा करने वाला गनेषी इन पात्रों को लिए हुए है।

गजाधर बाबू रेलवे की नौकरी से रिटायर होकर अपने घर बीबी, बच्चों के पास आते हैं। वर्षों तक परिवार से अलग रहने वाले गजाधर बाबू परिवार के साथ रहने और बचा हुआ जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा से जब अपने ही बनाये हुए संपन्न घर में आते हैं तब अपने आपको मिस–फिट पाते हैं। नरेंद्र का उल्लसित नाच–खेल, बसंती का हंस कर दुहरी होना, बहू का बिना घूंघट होना, सारा हंसता–खेलता वातावरण गजाधर बाबू के आगमन से शांत हो जाता है, सब चुप्पी साथ लेते हैं। यह चुप्पी साबित करती है कोई अजनबी, अनचाहा आ गया है। जैसे दूध में नमक पड़ गया हो। गजाधर बाबू की पत्नी भी हमेशा अपने में व्यस्त, झुंझलाहट लिए होती है। जब भी मौका मिलता है गजाधर बाबू को उससे शिकायत के अलावा कुछ सुनने को नहीं मिलता।

7.9.3 चारपाई का प्रतीक–

गजाधर बाबू के अरांगत पारिवारिक जीवन को चारपाई के गाध्यग रो लेखिका ने राफलता पूर्वक व्यक्त किया है। पहले उनकी चारपाई बैठक में कुर्सियों के बीच लगायी होती है। उसके बाद स्टोर रूप में कनस्तरों के बीच चारपाई लगा दी जाती है। जब गजाधर बाबू वापस नौकरी पर चले जाते हैं तो वहां से भी चारपाई बाहर निकल दी जाती है। इससे यह बोध होता है कि गजाधर बाबू का अस्तित्व अपने घर का हिस्सा नहीं बन पाया है। गजाधर बाबू अकेले पड़ जाते हैं। पीढ़ियों के आए हुए अंतर को वे बाट नहीं पाते।

7.9.4 पत्नी की दृष्टि से–शिकायती पेटी–

गजाधर बाबू की पत्नी अपने बच्चों के साथ शहर में रहती है। बच्चों की पढ़ाई, बच्चों की सेवा, घर संभालना आदि काम वह ओढ़ लेती है। फलतः गजाधर बाबू से सूक्ष्म दूरी उसके जीवन में आ जाती है। गजाधर बाबू के सेवानिवृत्त होने पर वे जब अपने घर वापस आते हैं तब उनके आगमन को मानसिक तौर पर पत्नी स्वीकार नहीं पाती और उनसे दो प्रेम की बातें भी नहीं कर पाती। जिससे गजाधर बाबू का अकेलापन और भयावह हो जाता है। जब गजाधर बाबू को फिकी चाय मिलती है तब वे पत्नी से वह कहते हैं तो वह झुंझला जाती है। गजाधर बाबू के वापस लौटने पर उनकी पत्नी अपने बेटे से कमरे से चारपाई वापस निकालने को कहती है और उसके अपने जीवन से गजाधर बाबू वापस लौट पड़ते हैं।

अमर,बहू, बसंती, नरेंन्द्र के माध्यम से ऊषा प्रियंवदा ने पिता के, ससुर के अस्तित्व का कोई महत्व नहीं है, इसको विभिन्न प्रसंगो के माध्यम से व्यंजित किया है। गजाधर बाबू के आने से अमर और उसकी पत्नी ने अलग रहने का प्लान बना लिया। बेटी बसंती भी उनके टोकने से खुश नहीं थी। उसने जान बुझकर खाना ऐसा बनाया की कोई खा न सके। गजाधर बाबू नौकर की छुट्टी करा देते

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है तो अमर की नाराजगी प्रकट होती है।

ऊषा प्रियंवदा ने चरित्रांकन स्नेप शाट की तरह किया है।

7.9.5 शिल्पविधान–

उषा प्रियंवदा द्वारा लिखित 'वापसी' कहानी नयी कहानी के अर्थ को स्पष्ट करती है। मार्कंडेय के शब्दों में–"नई कहानी से तात्पर्य है, जो सच्चे अर्थों में कलात्मक निर्माण है, जो जीवन के लिए उपयोगी है और महत्वपूर्ण होने के साथ ही उसके किसी न किसी नये पहलु पर आधारित है या जीवन के नये तत्त्वों को एकदम नई दृष्टि से दिखाने में समर्थ है। नवीनता इसमें नहीं है कि उसमें किसी अछूते भू–भाग अजीब प्राणियों का वर्णन है, बल्कि इसमें है कि साधारण मानवीय जीवन में वह कौन–सा विशेष नयापन है जो सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण पैदा हो गया है या बिना किसी परिवर्तन के भी। जीवन का कौन–सा ऐसा पहलु है जो साहित्य में अब तक अछूता है।"

मानव के सभी संबंधों और मूल्यों के टूटते हुए एवं नये बनते हुए रूपों का चित्रण करती है। ये संबंध फिर भाई–बहन के हो, पिता–पुत्र,पिता–पुत्री, माता–पुत्र,माता–पुत्री, प्रेमी–प्रेमिका की जर्जरता और टूटन को अंकित करती है। संबंधों का ये विघटन परिवार का ही विघटन एवं टूटना है।

'वापसी' कहानी में न कोई गढ़ा गया कथानक, न काव्यात्मक शब्दावली की अतिरिक्त चेतना, न बहुत–सी घटनाएं, न चरमसीमा, न आरंभ–अंत का कोई चमत्कार। बस एक चमत्कार पूरी कहानी में व्याप्त है, सहज घटित होने वाले छोटे–छोटे पारिवारिक चित्र है जो कुल मिलाकर आधुनिक संदर्भ को, पीड़ा और विशाद के गहरे बोध को सहज गति के साथ प्रस्तुत करते हैं।

आधुनिकता के कारण जीवनमूल्यों का विघटन हो गया। आपसी रिश्ते बिखर रहे हैं। अपरिचय बोध के भाव से मनुष्य त्रस्त हो रहा है। परिणामतः अकेलेपन को झेलना उसकी नियति हो गयी है। गजाधर बाबू के माध्यम से इस मानसिकता को पूरी सच्चाई के साथ लेखिका ने अभिव्यक्ति दी है।

लेखिका ने अपनी ओर से कुछ नहीं कहा। प्रसंगनुमा दृष्य ही सब कुछ कहते हैं। जैसे–गनेशी का गजाधर बाबू को बेसन के लड्डुओं का डिब्बा देना (अपनापन), छुट्टी के दिन नरेन्द्र का उल्लास, बसंती का हंसना–खिलखिलाना, बहू का बेपर्दा होना (खुशीभरा स्वच्छंद माहौल), गजाधर बाबू के आगमन से सब का चुप हो जाना, गजाधर बाबू के द्वारा बसंती को खाना बनाने के लिए कहना, ऐसा बनाना कि कोई न खा सके, नरेन्द्र का गुस्सा, मां द्वारा नया खाना बनाना, बाबूजी की चारपाई बैठक से स्टोररूप में डाल देना, पत्नी का उलाहना–चुपचार पड़े नहीं रहते? (उपेक्षा का भाव) इन प्रसंगों के माध्यम से उषा प्रियंवदा ने गजाधर बाबू के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं जतायी अपितु उनके असंगत होने के भाव को चारपाई के सामान्य प्रतीक द्वारा व्यक्त किया है।

गजाधर बाबू के वापस नौकरी पर चले जाने पर बसंती का उछलना, बहू का अमर से सिनेमा का प्रस्ताव और पत्नी द्वारा बाबूजी की चारपाई को बाहर निकालने के लिए कहना–प्रसंग मुख्य संवेदना को व्यक्त करते है।

7.9.6 कहानी का शीर्षक

'वापसी' कहानी का कथ्य गजाधर बाबू के घर से नौकरी पर जाने, नौकरी से घर आने तथा वापस चले जाने के घटनाक्रम को लिए हुए है। परिवार में असंगत व्यक्ति की बुढ़ापे में रिटायर होने के बाद भी वापस नौकरी पर चले जाने की गहरी संवेदना को व्यक्त करती है। उद्देश्यानुकूल, उत्सुकता जगाने वाला, औचित्यपूर्ण और मार्मिकता लिए हुए यह शीर्षक है।

7.9.7 कठिन शब्दों के अर्थ–

डोलची– बास्केट (बांस की) टोपली
रिटायरमेंट–सेवानिवृत्ति
अगहन– मार्गशीर्ष महीना
अलगनी–कपड़े टांगने की रस्सी

ससंदर्भ स्पष्टीकरण–

अरे नरेन्द्र, बाबूजी की चारपाई कमरे में से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।

संदर्भ– ये पंक्तियां 'वापसी' कहानी से ली गयी है। इसकी लेखिका उषा प्रियंवदा है। कहानी के नायक गजाधर बाबू। रिटायरमेंट के बाद फिर से रामजीमल की चीनी–मिल में नौकरी करते हैं। वे जब चले जाते हैं तो उनकी पत्नी, बेटे नरेन्द्र से यह कहती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्पष्टीकरण–बदलते हुए पारिवारिक संबंध पर प्रकाश डालने वाली यह कहानी दो पीढ़ियों के बदलाव की मानसिकता भी उजागर करती है। रेलवे में 35 वर्ष तक नौकरी करने वाले गजाधर बाबू रिटयर होते ही पारिवारिक सुख तथा स्नेह में शेष जीवन बिताना चाहते हैं। परिस्थितियां भले ही उन्हें परिवार से दूर कर देती है पर उनका मन पुराने संबंधों की मधुर स्मृति में ही डूबा रहता है। घर आकर बड़े खुश होते हैं। परन्तु यह खुशी क्षणिक ही बन कर रह जाती है। पत्नी, बेटे, बहू, बेटी के लिए वे अनचाहे मेहमान बन कर रह जाते हैं। इतने बड़े घर में उनके लिए जगह नहीं । किसी को भी उन्हें समझने के लिए वक्त नहीं है। पत्नी भी घर–गृहस्थी के जंजाल में इतनी उलझी है कि प्रेम से दो शब्द बोलने के लिए उसके पास नहीं बैठती।

उनके घर में आते ही ड्राइंग रूम में दोस्तों का आना–खिलखिलाना, चाय–नाश्ता सब बंद हो जाता है। बहू–बेटी की स्वच्छंदता में बाधा उत्पन्न हो जाती है। चारपाई कोठरी में रख दी जाती है पर सब उनसे दूर–दूर भागते हैं। यह स्थिति गजाधर बाबू के लिए असह्य हो उठती है और एक दिन वे नई नौकरी करने पुनः अकेले, सबको छोड़छाड़ घर से चल जाते हैं।

बेटे, बहू,बेटी सिनेमा जाने का प्रोग्राम बनाते हैं। पत्नी अपने घर के काम में जुट जाती है। मां कोठरी में आकर बेटे से कहती है, अरे नरेन्द्र! बाबूजी की चारपाई कमरे में से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।

7.9.8 सारांश–

गजाधर बाबू के जीवन की विडम्बना हमारे आधुनिक मध्यवर्गीय समाज का ऐसा रूप है जो हमारी आस्था, विश्वास को हिला देता है। दो पीढ़ियों का संघर्ष मान्यताओं, रहन–सहन विचारों के कारण होता आया है। यही इस कहानी की मूल संवेदना है।

7.9.9 अभ्यास के प्रश्न

1. नई कहानी के परिप्रेक्ष्य में 'वापसी' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
2. गजाधरबाबू अपने आपको परिवार में असंगत महसूस क्यो करते हैं?
3. 'वापसी' कहानी हमारे आज के पारिवारिक संबंधों को उजागर करती है कथ्य के आधार पर समझाइए।
4. गजाधर बाबू पुनः नौकरी पर क्यों चले जाते हैं?
5. पत्नी की खीझ, झुंझलाहट, शिकायती स्वर से गजाधर बाबू का कौन सा सपना टूट जाता है?
6. 'वापसी' कहानी के शीर्षक के औचित्य पर प्रकाश डालिए।
7. 'वापसी' कहानी का उद्देश्य अपने शब्दों में लिखिए

7.10 'पथ के साथी'– महादेवी वर्मा

7.10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–
रेखाचित्र और संस्मरण के बारे में जान सकेंगे।
महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
'पथ के साथी' के वैशिष्ट्य को समझ सकेंगे।
'पथ के साथी' में समाविष्ट साहित्यिक 'पथ के साथियों' का महादेवी पर पड़े प्रभाव से परिचित हो सकेंगे।
सम्मिलित साहित्यकारों के व्यक्तित्व में समाहित समान सूत्र को विवेचिन कर सकेंगे।
गद्यकार महादेवी वर्मा के योगदान को बना सकेंगे।
सम्मिलित साहित्यकारों के व्यक्तित्व के अज्ञान पहलुओं और उनके छायाचित्र तथा हस्ताक्षर से परिचय पायेंगे।

7.10.2 प्रस्तावना

'पथ के साथी' का प्रकाशन 1956 में हुआ। महादेवी वर्मा ने अपने समकालीन रचनाकारों की जीवनी का परिचय इसमें दिया है। महादेवी वर्मा के जीवन से जुड़े ये संस्मरण है। इसमें कुल सात रचनाकारों की स्मृतियॉं है। जो इस प्रकार है –

कविवर रविन्द्रनाथ टैगोर से संबधित प्रणाम, दूसरा, दद्दा उर्फ मैथिलीशरण गुप्त, तीसरा सूँघनी साहू उर्फ जयशंकर प्रसाद, चौथा निराला उर्फ सूर्यकान्त त्रिपाठी, पाँचवा सुभद्राकुमारी चौहान, छठा सुमित्रानन्दन पंत और सातवाँ सियारामशरण गुप्त। ये सातों ही महादेवी वर्मा के 'पथ के साथी है।'

'पथ के साथी' में महादेवी ने अपनों–अग्रजों और सहयोगी रचनाकारों के बारे में लेखकीय तटस्थता से लिखा है। इनके महादेवी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वर्मा के मानस पर पड़े प्रभाव को अंकित किया है। लेखिका 'दो शब्द' में लिखती है,–''दृष्टि के सीमित शीषे में वे जैसे थे दिखाई देते है – उससे भी, वे बहुत उज्ज्वल और विशाल है, इसे मानकर पढ़नेवाले ही उनकी कुछ झलक पा सकेंगे।

'पथ के साथी' मूलतः संस्मरणनुमा ऐसे रेखाचित्र है जो जीवनी के भी निकट है। इसलिए इन्हें महज स्केच नहीं कहा जा सकता। ये तो लाइफ स्केच कारण है। कारण इनमें महादेवी वर्मा केवल तथ्यपरक जन्म–मृत्यु का लेखा–जोखा प्रस्तुत नहीं करती अपितु अपनी स्मृतियों आत्मानुभूतियों के परिप्रेक्ष्य में उनके व्यक्तित्व का अंकन भी करती है। जिसमें उनके निरिक्षण, मनोविश्लेषण को प्रधानता मिली है।

प्रवणता

'पथ के साथी' में लेखिका ने अपने मन पर पड़े प्रभाव तथा उनके वैयक्तिकता के मूल्यांकन पर आधारित अपने समकालीन सात दिग्गज कवियों को स्थान दिया है। रविन्द्रनाथ टैगोर, जयशंकर प्रसाद और सुमद्राकुमारी चौहान के प्रति इनके हृदय से श्रद्धाभाव है। रवीन्द्रनाथ गुरूवर है। जयशंकर प्रसाद अग्रज है तो सुभद्राकुमारी उनकी ऐसी गुरू है जो अन्तरंग भी है। हिन्दी साहित्य जगत् में इस तरह की और कोई कृति आज तक उपलब्ध नहीं है। उन्होंने इसमें स्थान–स्थान पर इनके संबध में मौलिक उद्गार प्रकट किये है।

तटस्थता गरी आत्मीयता

'पथ के साथी' में महादेवी वर्मा ने अपने समकालीन कवियों के जीवन वृत्तांत, परिवेश और सृजन कर्म पर सम्यक् विचार करते हुए उनकी उपलब्धि का तटस्थ दृष्टि से मूल्यांकन किया है। इस विश्लेषण में अति राग–द्वेष नहीं है। वे लिखती है, ''अपने अग्रजों और सहयोगियों के संबंध में अपने आप को दूर रखकर कुछ कहना सहज नहीं होता।''

पर महादेवी ने इस दायित्व का भलीभांति निर्वाह किया है। उन्होनें निर्वैयक्तिकता राग–द्वेश रहित गुणग्राहकता और सहनशील न्यायनिष्ठा के द्वारा 'पथ के साथियों' का व्यक्तित्व गरिमा मंडित किया है। इनमें आत्मसंस्मरण के तत्व भी मौजूद है। ये ऐसे चित्र है जो जीवनी के निकट है।

विरहदग्ध पथ के साथी

पथ के सारे साथी दुःख दग्ध जीवन को जीने वाले है। वियोग का दुःख इन सभी को झेलना पड़ा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और सियारामशरण गुप्त पत्नीविहिन व्यक्ति है। सुमित्रानंदन पन्त ने विवाह ही नहीं किया तथा मातृवात्सल्य विहिन भी हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान भी विपन्न दाम्पत्य की भोक्ता रही है।

जीवन के मनोहारी वक्ष

'पथ के साथी' विभिन्न पक्षों के प्रतिरूप है। जैसे मोहक सौंदर्य रवीन्द्रनाथ, आस्था मैथिलीशरण गुप्त, ओजस्विता सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', उदारता जयशंकर प्रसाद, ओज सुभद्रा कुमारी चौहान, सुकुमारता सुमित्रानंदन पंत और संयमित जीवन के सियाराम शरण गुप्त प्रतिनिधि है।

दृश्य का गहरा रिश्ता

ये सातों लोग जगत में क्रमशः गुरूदेव, दद्दा, राखी से बना भाई, पथ निर्माता, सहेली, पथ का साथी और अनुज है।

7.10.3 महादेवी वर्मा का परिचय

हिन्दी साहित्य की छायावादी युग की लोकप्रिय लेखिका महादेवी वर्मा है। महादेवी वर्मा ने कवयित्री के रूप में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की है। साथ ही वे सफल गद्यकार भी हैं। महादेवी के काव्य को जानने के लिए उनके गद्य का अनुशीलन भी आवश्यक है। इसलिए महादेवी साहित्य रूपी सिक्के के गद्य और पद्य दो पहलू हैं और वे हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ गद्य–पद्य लेखिका हैं।

7.10.3.1 जन्म

महादेवी वर्मा का जन्म 1908 में उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद में हुआ। माताजी हेमरानी देवी और पिता श्री गोविन्दप्रसाद वर्मा थे। इनके पिताश्री इन्दौर के डेली कॉलेज में प्रोफेसर थे। महादेवी के नानाजी ब्रज भाषा के उत्कृष्ट कवि थे। इस तरह महादेवी वर्मा बचपन से ही कला–सृजन के वातावरण में रही। इनका स्वर्गवास 1987 में हुआ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.10.3.2 विवाह

महादेवी वर्मा का विवाह ग्यारह वर्ष की अल्पायु में डॉ. स्वरूपनारायण वर्मा से हुआ परन्तु वे सांसारिक बंधनों में रम न सकी।

7.10.3.3 शिक्षा एवं व्यवसाय

विवाह के पश्चात् इन्होंने सत्रह वर्ष की उम्र में ही मैट्रीक परीक्षा पास की। तत्पश्चात् इन्होंने बी.ए. तथा 1933 में संस्कृत में एम. ए. किया और इलाहाबाद के प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका के रूप में इन्होंने नियुक्ति पाई। इन्होंने कुछ दिनों तक 'चाँद' पत्रिका का संपादन भी किया है।

7.10.3.4 काव्य संग्रह

महादेवी वर्मा के पाँच काव्य–संग्रह हिन्दी साहित्य जगत को सुपरिचित है। नीहार (1930), रष्मि (1932), नीरजा (1934), सांध्यगीत (1936) और दीपशिखा (1940) 'यामा' में नीहार, रष्मि, नीरजा, सांध्यगीत संकलित है। इसके अलावा उनकी एक 'आधुनिक कवि महादेवी वर्मा' कविता का संकलन प्रकाशित हुआ है।

7.10.3.5 पुरस्कार

नीरजा' पर सेक्सरिया पुरस्कार, 'यामा' पर मंगलाप्रसाद पुरस्कार तथा 'यामा' पर ही भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

7.10.3.6 गद्य रचनाएं

महादेवी वर्मा की गद्य रचनाएँ है –'स्मृति की रेखाएँ' (1943), 'अतीत के चलचित्र' (1941), 'श्रृंखला की कड़ियाँ' (1950), 'पथ के साथी' (1956) महादेवी की इन पाँच पुस्तकों में कुल रचनाएँ पच्चीस रेखाचित्र और पैतीस निबन्ध है ।

कविता के क्षेत्र में महादेवी वर्मा वेदनामयी, कोमलहृदयी दिखाई देती है। तो गद्य में वे ओजपूर्ण, बुद्धिवादी, बुराइयों के प्रति कठोरहृदया प्रस्फुटित होती है। महादेवी वर्मा ने गद्य का आश्रय इसलिए लिया कि नारी जीवन और समसामयिक जीवनबोध विषयक विचार जो काव्य में व्यक्त होना कठिन था तब उन्होंने गद्य की सहायता ली। महादेवी वर्मा का गद्य लेखन विचार–वेदना की देन है। दूसरे इनका गद्य लेखन कविता की तरह चिंतन और चित्रण का सम्मिश्रण है। इसी कारण उन्होंने रेखाचित्र, संस्मरण जैसी विधाओं की सहायता ली है। महादेवी वर्मा का इस संदर्भ में कथन है, ''शैशव की चित्रषाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखाएँ और रंग इतने चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते है, पर जिनसे ऐसा संबध नहीं होता, वे फीके होते–होते इस प्रकार स्मृति से धुल जाते हैं कि दूसरों के स्मरण दिलाने पर भी उनका स्मरण कठिन हो जाता है।''

7.10.3.7 स्वयं बोध के प्रश्न

1. महादेवी वर्मा का जन्म कब और क्यों हुआ?
2. 'यामा' पर उन्हें कौन सा पुरस्कार मिला?
3. महादेवी की गद्य रचनाएं कौन सी है?
4. महादेवी ने गद्य क्यों लिखा?
5. महादेवी की पद्य रचनाओं के क्या शीर्षक हैं?

'पथ के साथी' के चरित्रों की विशेषता निम्नानुसार बताई जा सकती है।

7.10.4.0 पथ के साथी का वैशिष्ट्य

7.10.4.1 चित्रोंपमता :–

प्रस्तावना

अभिव्यक्ति के दो रूप होते हैं। एक साकार मूर्त चित्रमयी, दो शब्दबद्ध। चित्र में प्रमुखतयाः दो बाते होती है– डिजाइन और पेन्टिंग। डिजाईन लाइन के द्वारा निर्माण होता है जिसे एक निश्चित आकार (वितउ) बनाना है। चित्र के दो रूप होते है – व्यक्ति विशेष की विशेषता–क्लोजअप अथवा सामान्यः। जो समूह में आता है इसे हम ग्रुप फोटो कह सकते है। 'पथ के साथी' में महादेवी वर्मा ने चित्र की इन सारी विशेषताओं को समेटा है। जैसे जयशंकर प्रसाद का चित्र विधान देखिए–'' न अधिक ऊंचा और प्रशस्त, बाल न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बहुत घने न विरल, कुछ भूरापन लिए काले, चौड़ाई लिये मुख की तुलना में कुछ हल्की सुडौल नासिका, आँखों में उज्ज्वल दीप्ति, होठों पर अनायास आने वाली हँसी, सफेद खादी की धोती–कुर्ता।'' (पृष्ठ 70)

सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को साकार करना उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। कारण वे एक सफल चित्रकार भी है। 'पथ के साथी' में उन्होंने अपने बनाए हुए सम्मिलित चरित्र नायकों के चित्र तथा हस्तलिपि भी प्रस्तुत की है। इसलिए यह संकलन फोटोग्राफिक स्नेप शॉट है। उनके शब्दचित्र चाक्षुष बिम्बविधान है। जैसे सियारामशरणजी का यह चित्रांकन – ''कुछ नाटा कद, दुर्बल शरीर, छोटे और कृष हाथ–पैर, लम्बे उलझे–रूखें से बाल, लम्बाई लिए सूखा मुख, होंठ और विशेष तरल आँखों के साथ .... मानों ठेठ भारतीय मिट्टी से बनी हुई कोई मूर्ति हो, जिसकी ऑखों पर स्निग्धता का गाढ़ा रंग फेरकर शिल्पी शेष अंगों पर फेरना भूल गया है।'' (पृ0 89)

निरालाजी की विपन्नावस्था का अंकन उन्होंने उनके घर के भीतरी चित्रण से किया है।

7.10.4.2 कवित्त्वपन :–

महादेवी वर्मा के 'पथ के साथी' की दूसरी विषेशता है – कवित्त्वपन। उनके ये चित्र गद्य में होते हुए भी काव्यनिधि है। विचार–वेदना से सृजित होकर भी बौद्धिकता से बोझिल नहीं है। उनका गद्य कविता की तरह भाव से आपूरित है। उबाऊ, नीरस, कार्य को जयशंकर प्रसाद के चित्र में 'गद्यात्मक कार्य' की संज्ञा वे देती है। ....''प्रसाद जैसा महान कवि तम्बाकू की दूकानदारी जैसा गद्यात्मक कार्य कैसे कर सकता है ?'' (पृ. 68)

चित्रण की तल्लीनता से उनके द्वारा चित्रों में अनेक विदग्ध कल्पनाएँ, समर्थ काव्यानुभूतियाँ और गूढोक्तियाँ प्रकट हुई है। उनके ये शब्दचित्र रंगीन और चटकीले है। रविन्द्रनाथ टैगोर के बंगले के बारे में उन्होंने लिखा – ''हरितिमा में पीले केशर के फूल जैसा बंगला।'' यह कथन महादेवी के बिम्बविधान और कल्पना वैदग्धता का प्रमाण है। प्रकृति चित्रण के संदर्भ में उन्होंने सांगरूपक की निर्मिति की है। दृश्यमान जगत् को कल्पना के माध्यम से सांगरूपक और विराट बिम्ब में परिणत करना कठिन काम है, पर महादेवी के लिए यह सहज साध्य है। सुमित्रानन्दन पन्त के चित्र में कौसानी का वर्णन द्रष्टव्य है – ''हिमश्रेणियाँ रजत वर्णमाला में लिखें सौन्दर्य के उज्ज्वल पृष्ठ के समान खुली रहती है। उस कल्यूर घाटी के बीच में खड़े होकर जब–जब हम एक और हिम दुकुलिनी चोटियों को और दूसरी और चीड़, देवदारूओं की हरितिमा से अवगुंठित कौसानी को देखते है तब हमें ऐसा जान पड़ता है मानों हिम–शिखरों की उज्ज्वल रेखाओं ने कौसानी के सौन्दर्य की कथा लिखी है और कौसानी ने अपने मरकत अंचल में हिमानी का छंद आँका है।'' (पृ0 83) वेदना की अभिव्यक्ति के लिए भी प्राकृतिक उपकरणों की सहायता ली है। महाप्राण निराला की गतिविधियों का चित्र कितना अनुपम है, जो देखते ही बनता है – ''उनकी झुकी पलकों से घुटनों पर चूने वाली आँसू की बूंद बीच–बीच में ऐसे चमक जाती थी मानों प्रतिमा से झड़े जूही के फूल हों।'' रात्रि के अंधेरे में टपकती आँसू बूंदों को जूही के फूल कहना वक्र कल्पना है। (प0 56) महादेवी वर्मा की यहीं चित्रोपमता काव्यबिम्बों का सृजन करती है और स्मृति की ये रेखाएँ काव्यात्मकता के स्पंदन से जीवित हो जाती है।

7.10.4.3 सहानुभूति :–

सहानुभूति का जन्म संवेदना से होता है। महादेवीजी के चरित नायक वेदना लोक के जीव है। इन्हें रेखाओं में बाँधनें का उपक्रम अनुकरणीय है। संवेदना के कारण उनके चित्र रेखाओं में न उलझकर भावमय हो गए हैं। महादेवी वर्मा का इस सन्दर्भ में कथन है कि –''करूणा की भाषा शब्दहीन होकर भी बोलने में समर्थ है।'' 'पथ के साथी' में वे लिखती है –''आँसू के खारे पानी में डुबाए बिना सौन्दर्य के चित्र रंग पक्के नहीं हो सकते।''

पथ के साथियों में विरह–वेदना का भाव संवेदना को जन्म देता है।

7.10.4.4 हास्य–व्यंग्यात्मकता :–

महादेवी ने यथा अनुकूल हास्य–व्यंग्य के माध्यम से प्रभावात्मकता और प्रेषणीयता को बढ़ाया है। उनके हास्य में विषाद का प्रस्तावन और व्यंग्य में विद्रोह की अन्तर्ध्वनी है। महादेवी ने स्वयं को भी हास्य का आलम्बन बनाते समय हिचकिचाहट नहीं दिखायी। जैसे – ''प्रयत्न करते–करते मेरे हाथ और माथे पर स्याही से हिन्दुस्तान की रेल्वे लाइन का नक्शा बन गया और सरकण्ड़े की कलम की नोंक टूट गई, पर वह उक्ति न मिल सकी।''

सुमित्रानन्दन पन्त से भावी पत्नी के प्रति कविता पर उन्होंने कटाक्ष कर चिकौटी ली है – ''उस अलक्ष्य गृहिणी की ओर से सब महिलाओं को साधुवाद देना उचित होगा।'' (पृ. 88) उनके कुँवारेपन पर ली गई चिकौटी सुरूचि सम्पन्न है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.10.4.5 यथार्थ बोधता :–

'पथ के साथी' के चित्र यथार्थबोधता को भी लिए हुए है लारण ये सारे चरितनायक उनके समकालीन है और इनसे वे मिल चुकी है। इनकी रचनाओं को जाना और पढ़ा है। साहित्य–संसद, कवि सम्मेलन आदि के माध्यम से उनका साथ रहा है। निराला तो उनके राखी बँधे भाई थे। निराला का निरालापन उनकी विपन्नता, आतिथ्यशीलता, अपरिग्रहता के प्रसंगों से अभिव्यक्त हुआ है। तो जयशंकर प्रसाद का 'मौन मौत वरण' भाव, यथार्थ कथन पाठक को हिला देता है तो सियारामशरण गुप्त एक अच्छे, श्रेष्ठ साहित्यकार बनने से कैसे वंचित रहे यह बात पाठकों के दिल को कचोंट देती है। सुभद्राकुमारी चौहान का गृहस्थिन का जीवन तथा अभाव की स्थितियाँ यथार्थ से उपजी हुई है।

7.10.4.6 वैचारिकता :–

महादेवी वर्मा के गद्य का प्रमुख वैशिष्ट्य वैचारिकता है। वे दर्शन की विदुषी है। जीवन दर्शन के स्वाभाविक दृष्टांत तथा व्यक्ति और समाज का विश्लेषण कहीं सूर्यरूप में प्रस्तुत किया है, कहीं भाष्य रूप में प्रकट हुआ हैं। महादेवी का चिंतन तर्क और आस्था समन्वित है। इसलिए न तो इसमें अंधानुकरण है, न अतिशयता ही।

महादेवी वर्मा का घृणा के संबंध का तर्क आचार्य रामचंद्रशुक्ल से अधिक भावपूर्ण बन गया है। जैसे –

''घृणा का भाव मनुष्य में असमर्थता का प्रमाण है, जिसे तोड़कर हम इच्छानुसार गढ़ सकते है, उसके प्रति घृणा का अवकाश हीं नही रहता। जिससे अपनी रक्षा के लिए हम सतर्क है, उसी की स्थिति हमारी घृणा का केन्द्र बन जाती हैं। जहाँ सुरक्षित दोष नहीं वहाँ सुरक्षित घृणा भी संभव नहीं।'' (पृ. 61)

महादेती नर्मा के पथ के साथी में साहित्य से संबंधित विचारों को अभिव्यक्ति मिली हैं। उनके मत से साहित्यकार बुद्धि से दार्शनिक, हृदय से कलाकार और कर्म से सुधारक होते हुए इन सबका सामंजस्यपूर्ण संघात होता है। साथ ही वे साहित्य में आत्मीयता अर्थात् विषय–विषयी का तादाम्य अनिवार्य मानती है। (पृ. 31)

श्रेष्ठ साहित्यकार विषय में डूबकर मनःसमाधि लेता हैं। जैसे ''पत्थर को तिल–तिल तराश कर उसमें अपनी कल्पना को उतारना और उस मूर्ति को अपने भाव की परिधि मान लेना एक ही मानसिक वृति से संभव नही। मूर्तिकार तो अपनी कल्पना को आकार देकर सफल होता है और पुजारी उस आकार में अपने आपको मिटाकर पूर्णता पाता है। एक में अभाव की भाव–परिणति है और दूसरें में भाव का रूप में विलयन।''(पृ. 85)

इस तरह महादेवी वर्मा ने सामाजिक, वैयक्तिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, दार्शनिक, सभी पक्षों पर निष्कर्ष प्रस्तुत किए है। 'पथ के साथी' उनकी विचार संपदा का चरितनायकों को दिया गया अर्घ्य ही है। अपने समय का जीता जागता इतिहास, प्रत्यक्षदर्शी की अनुभूति 'पथ के साथी' के संकलन है।

7.10.4.7 स्वयं बोध के प्रश्न :–

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. पथ के साथी में .... संस्मरण अंकित है?
2. पथ के साथी का प्रकाशन .... में हुआ?
3. पथ के सारे साथियों को .... दु:ख सहना पड़ा है?
4. पथ के साथी ये संस्मरणनुमा रेखाचित्र .... के निकट है?
5. पथ के साथी में .... ने विवाह नहीं किया था?

स्वयं बोध के प्रश्नो के उत्तर :–

1. महादेवी वर्मा का जन्म 1908 में फर्रुखाबाद में हुआ।
2. 'यामा' पर उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला।
3. स्मृति की रेखाएं, अतीत के चलचित्र, श्रृंखला की कड़ियां, पथ के साथी' – महादेवी की गद्य रचनाएं हैं।
4. नारी जीवन की समसामयिक जीवन बोध विषयक विचार जो काव्य में व्यक्त होना कठिन था, तब उन्होंने गद्य की सहायता ली।
5. महादेवी की पद्य रचनाओं के शीर्षक है' नीहार,रश्मि, नीरजा, सांध्यगीन, दीपशिखा और यामा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जोड़ियां बनाओ–

1. प्रणाम (अ) मैथिलीशरण गुप्त
2. दद्दा (अ) सुभद्राकुमारी चौहान
3. निराशा (ब) सुमित्रानन्दन पंत
4. सहेली (स) रवीन्द्रनाथ टैगोर
5. सुकुमारता (द) सूर्यकान्त त्रिपाठी

स्वयं बोध के प्रश्नो के उत्तर :–

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1.सात 2. 1958 3. वियोग का 4. जीवनी 5. सुमित्रानन्दन पंत

जोड़ियां बनाओ–

1. (द) 2. (अ) 3. (य) 4. (ब) 5. (स)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.10.5 पथ के साथी – एक परिचय

(क) 'प्रणाम'

7.10.5.1 गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर पथ–प्रदर्शक

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर उर्फ कविन्द्र रवीन्द्र जो काव्यजगत् के ही नहीं तो भारत देश के गुरुदेव है– को महादेवी वर्मा ने 'प्रणाम' के माध्यम से अभिवादन किया है। महादेवी इन्हें पथ का साथी न कहकर 'पथ–प्रदर्शक' कहती है।

7.10.5.2 दर्शन–कला : सुधारक का संयम–युगद्रष्टा निर्माण

महादेवी वर्मा का मत है कि भावना ज्ञान और कर्म का जब संगम होता है तभी युग प्रवर्तक साहित्यकार जन्म लेता है। बुद्धि से दार्शनिक, हृदय से कलाकार और कर्म से सुधारक जन्म लेते हैं। परन्तु जब तीनों एक हो जाते है तब इनकी समग्रता से युगद्रष्टा का निर्माण होता है।

7.10.5.3 महाकवि

रवीन्द्रनाथ कोई सामान्य कवि न होकर महाकवि थे। उनके व्यक्तित्व की विशालता और व्यापकता को देखकर महादेवी वर्मा उनके व्यक्तित्व–कृतित्व के सामंजस्य को इन शब्दों में हमारे सामने रखती हैं।

''जहां व्यक्ति को देखकर लगता है–मानों काव्य की व्यापकता ही सिमटकर मूर्त हो गई है और काव्य से परिचित होकर जान पड़ता है–मानों व्यक्ति ही तरल होकर फैल गया है।'' (पृ.1)

7.10.5.4 वात्सल्य युक्त पिता

महादेवी वर्मा अपनी विद्यार्थी दशा में कविन्द्र रवीन्द्र के अमिट प्रभाव को भूला नहीं पाई हैं। वे कल्पना विहारी कवि होने के बावजूद भी सहृदय पड़ोसी, वात्सल्ययुक्त पिता की तरह स्नेह प्रदान करते है। इससे महादेवी के जीवन का अभाव मिट जाता है।

7.10.5.5 अमिट छाप

रवीन्द्रनाथ टैगोर कविकुल–गुरू के रूप में ख्यात हैं। युग–प्रवर्तक हैं। साथ ही महादेवी उनकी स्नेह पात्रा रही है। इसलिए उनके हृदय में गुरूवर के प्रति आस्था है। इसके साथ हीं वे अन्य कारण भी बताती हैं – अपने मानस के आदिकवि का बिम्ब रवीन्द्र में सजीव और मूर्तमान होता है। दूसरे, रवीन्द्रनाथ से पहली मुलाकात हिमालय पर्वतीय अंचल में हुई और हिमालय के प्रति मेरी आसक्ति

जन्मजात है। ऐसे में ....उस हिमालयी वातावरण में समाधिस्थ पर्वत–शिखर, मौन हिमानी, मुखर निर्झर, निर्जन वन, कलरव भरा आकाश और वहीं हरितिमा में पीले केसर के फूल जैसा रवीन्द्र का बंगला ये सब महादेवी जी के मानस पर ऐसी स्मृतिरेखा अंकित कर गए जो अमिट है। इस प्रथम दर्शन से अभिभूत होकर महादेवी जी उनका पुनः– साक्षात्कार करती है। उन्हें शांतिनिकेतन में अर्थसंग्रह हेतु रंगमंच पर सूत्रधार के रूप में रखती है और उनके लोकसंग्रह के शुभसंकल्प से प्रभावित होकर उन्हें गुरूदेव स्वीकार कर लेती है।

7.10.5.6 भारतीयता के व्याख्याता

रवीन्द्रनाथ टैगोर भारतीयता के आस्थावान व्याख्याता हैं। उन्होंनें कल्पना को जीवन में उतारा है। उनके स्वर्गवास पर हर कोने की मानवता ने अर्घ्य दिया, उन पर हर ओर से फूल बरसे और हर कण्ठ से उनका स्वस्तिवाचन हुआ। उन्होनें अपनी रचनाओं में शिव पर अशिव का दावा प्रमाणित किया। कारण विशाल शिव और सुन्दर का समर्थन सभी करते हैं जो स्वयं प्रमाणित है। पर इन पर क्षूद्र, अशिव और विरूप का दावा प्रमाणित कर विशाल शिव और सुन्दर में परिवर्तित करना महान सृजन है। जैसे कोई जानकार वैद्य विष में रासायनिक परिवर्तन कर उसमें छिपे अमृतत्व को प्रत्यक्ष कर देता है।

7.10.5.7 गुरुदेव को प्रणाम

गहादेवी वर्गा कविवर रवीन्द्र को इन शब्दों गें प्रणाग करती है–''दीपक चाहे छोटा हो या बड़ा, सूर्य जब अपना आलोकवाही कर्तव्य उसे सौंपकर चुपचाप डूब जाता है तब जल उठना ही उसके अस्तित्त्व की शपथ है। जल उठना ही उसका जाने वाले को प्रणाम है।'' (पृ. 13)

इस तरह महादेवी वर्मा ने रवीन्द्रनाथ टैगोर के गुरूवर व्यक्तित्व को सश्रद्ध प्रणाम किया है। लेखिका ने इस संकलन में दो बातें और बतायी है वह यह कि स्वयं की कुंजिया द्वारा उकेरित कविन्द्र का चित्र और उनकी हस्तलिपि का छायाचित्र। जिससे रवीन्द्र शब्द और चित्र दोनों रूप में पाठक के सम्मुख साकार हो जाते है।

7.10.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्न (प्रणाम–रवीन्द्रनाथ टैगोर)

एक वाक्य में उत्तर लिखिए–

1. लेखिका गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर को पथ का साथी न कहकर क्या कहना चाहती है?
2. महादेवी वर्मा ने 'प्रणाम' के माध्यम से किसका अभिवादन किया है?
3. रवीनद्रनाथ सामान्य कवि न होकर क्या थे?
4. रवीन्द्रनाथ से पहली मुलाकात लेखिका की कहां हुई?
5. महादेवी के मत ये युग प्रवर्तक साहित्यकार कब जन्म लेता है?

7.10.7 शब्दार्थ

झीना	–	महीन,पतला
रंध्रहीन	–	चिकना, छिद्रविरहित (ईंट के विलोम में)
दुग्धोज्ज्वल	–	दूध–सी सफेद
वैतालिक	–	शिवशंकर

7.10.8 रिक्त अध्ययन के प्रश्न

1. विद्यार्थी दशा में लेखिका .... के अमिट प्रभाव को भूला नहीं पाई।
2. रवीन्द्रनाथ .... की तरह स्नेह प्रद न करते हैं।
3. कवि रवीन्द्र काव्य जगत के ही नहीं तो .... के गुरुदेव हैं।
4. बुद्धि से दार्शनिक, हृदय से कलाकार और कर्म से सुधारक इन तीनों की समग्रता से........................का निर्माण होता है?
5. प्रणाम में लेखिका ने रवीन्द्र के ....और ....ये दोनों रूप पाठक के सम्मुख रखे हैं।

प्रश्न :–

1. रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व की कौन सी विशेषताएँ इसमें मुखरित हुई है ?

2. लेखिका की दृष्टि में रवीन्द्रनाथ महाकवि क्यों हैं ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. महादेवी वर्मा ने रवीन्द्रनाथ को गुरूवर के रूप में कब और कैसे स्वीकार किया ?

4. इस संस्मरण का शीर्षक 'प्रणाम' क्यों दिया गया है ?

7.10.9 स–संदर्भ व्याख्या

''वस्तुतः कविन्द्र के व्यक्तित्व रूप और उनके व्यक्तिगत जीवन का अनुमान मुझे जिन परिस्थितियों में हुआ उन्हें नितांत गद्यात्मक ही कहा जाएगा।''

संदर्भ :– उपर्युक्त पंक्तियां महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'पथ के साथी' इस संकलन की पहली ही रचना 'प्रणाम' से ली गई है। संकलन का यह पहला ही संस्मरण है। जिसमें लेखिका ने कवीन्द्र रविन्द्र के व्यक्तित्व से परिचय कराया है।

व्याख्या–

महादेवी वर्मा मूलतः कवि हृदया है। कविता की तरह गद्य में जिन पुस्तकों का सृजन हुआ उनमें 'पथ के साथी' महत्त्वपूर्ण है। आदरणीय गुरूवर से परिचय होने का अवसर कब और कैसे आया इसके बारे में लेखिका ने बताया है। साथ ही उन परिस्थितियों से भी अवगत कराया जिन परिस्थितियों में उनका व्यक्तिगत जीवन तथा उससे जुड़ी हुई स्मृतियाँ सामने आई। कविमना लेखिका इसे गद्यात्मक कहती है। परंतु रचना में वह अत्यंत काव्यात्मक ही लग रहा है। गद्य लेखन आरंभ करने का एक पहलू यह भी है कि सभी बातें पद्य में संभव नहीं, उसके लिए गद्य ही आवश्यक है।

विषेश :– लेखिका महादेवी वर्मा ने 'प्रणाम' के जरिए कविवर,, गुरूवर रवीन्द्र को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके व्यक्तित्व के अनेक आयामों को अपने ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। तथा गद्य के लिखे जाने की भी।

7.10.10 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

एक वाक्य में लिखिए–

1. लेखिका गुरुदेव को पथ का साथी न कहकर 'पथ–प्रदर्शक' कहती है।
2. महादेवी ने 'प्रणाम' के माध्यम से रवीन्द्रनाथ टैगोर अर्थात् गुरुदेव का अभिवादन किया है।
3. रवीन्द्रनाथ सामान्य कवि न होकर महाकवि थे।
4. रवीन्द्रनाथ से पहली मुलाकात हिमालय पर्वतीय अंचल में हुई।
5. भावना ज्ञान और कर्म का जब संयम होता है तब युगप्रवर्तक साहित्यकार लेखिका के मत से जन्म लेना है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. कवीन्द्र रवीन्द्र 2. सहृदय पड़ोसी, वात्सल्ययुक्त पिता 3. भारत देश के

4. युगद्रष्टा 5. शब्द और चित्र

7.11 एक – मैथिलीशरण गुप्त

7.11.1 परिचय

महादेवी वर्मा ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का परिचय प्रस्तुत रचना में दिया है। परिचय का संदर्भ सूत्र वे इस प्रकार बताती है कि, 'अतीत के एक धूमिल पृष्ठ, जिस पर न वर्ष–तिथि आदि की रेखाएं है और न परिस्थितियों में कोई रंग, इसलिए मैं उन्हें कब से जानती हूं इस सीधे–से प्रश्न का मेरे पास कोई सीधा–सा उत्तर नहीं है। जिस दिन मैंने खड़ी बोली में तुकबंदी आरंभ की उसी दिन को मैं गुप्त जी का प्रथम परिचय मानती हूं।'' (पृ. 17)

7.11.2 वेषभूषा

गुप्त जी का बाहरी रूप कोई विशिष्टता लिए हुए नहीं है। इस कारण उन्हें देखने मात्र से असाधारण कवि के रूप में उन्हें कोई पहचान नहीं सकता। उनकी वेशभूशा और उनकी कद–काठी दोनों ही साधारण हैं। उनका व्यक्तित्व भारतीयता को लिए हुए है। एक भारतीय व्यक्ति सा हल्का सांवला रंग, साधारण–सी सिर पर पगड़ी अथवा गांधी टोपी, अंगरखा और धोती अथवा कुर्ता–धोती, गले में तुलसीमाला। इसलिए उनका रूप और वेश दोनों ही राष्ट्रीय है। उनको यदि पहचानना हो तो उनकी हँसी से पहचाना जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.11.3 स्वभाव

मैथिलीशरणगुप्त का स्वभाव प्रसन्न और विनोद है। इस प्रसन्न्ता और विनोदी की अस्थिर सतह के नीचे गहन सहानुभूति और गृहस्थ विवेक का अस्थाई संगम है। इसलिए उनकी कवि दृष्टि इतनी पैनी है कि आसानी से जीवन के बाहरी आवरणों को भेद लेती है।

7.11.4 स्थितप्रज्ञ व्यक्तित्व

गुप्तजी अपने जीवन के तीस वसंत अर्थात् वर्ष पार करने के पूर्व ही दो बार विधुरता का दु:ख झेल चुके हैं। दस संतानों में से अब एक हैं। जिसके संबंध में महादेवी वर्मा को वे लिखते है–''यहां भी एक घीसा है, यदि आप उसका भार ले लें तो उसे भेजनें का प्रबंध किया जाए।''(पृ. 25)

गीता के स्थित प्रज्ञ–सा उनका व्यक्तित्व है। इसका कारण उनकी आस्था है। इसलिए हर्ष और विषाद में वे समान भाव से रहते हैं। दु:ख समुद्र को आसानी से तैरकर अंगारों के पथ से अपनी मंजिल तक पहुंचते हैं।

7.11.5 रामकथा उनके लेखन का उत्स

गुप्त जी कवि भी है और भक्त भी। गुप्तजी एक पूर्णकाम भक्त है। कारण कि वे जीवन की परीक्षाओं से विचलित नहीं हुए।दूसरी ओर गुप्त जी मुक्त कवि भी हैं कारण उन्होनें अपने अहं का समष्टि में विलयन कर दिया है। कविवर लोक का निर्माण भी अपनी भावना के अनुरूप करते हैं। इसलिए उन्होंने ऐसी कथाओं को आधार बनाया जो लोकमानस में सुप्रतिष्ठित हैं। फिर भी उन्होंने नवसृजन किया है। जैसे वे रामायण को नहीं भूलते, पर रामायणकार जिन्हें भूल गया उन चरित्रों को अपने ढ़ंग से स्मरण करतें हैं। .... साकेत में उन्होंने लक्ष्मण पत्नी उर्मिला को नायकत्व प्रदान कर बिसराए व्यक्तित्व को महत्ता प्रदान की है । यही बात महाभारत में भी दिखाई देती है। 'हिडिंबा' नामक साधारण पात्र को भी उन्होंने खोज निकाला। ये पात्र आँसुओं से धुल कर नये बन गये है।

गले में तुलसीमाला होने के बावजूद मुंशी अजमेरी के लिए उनके मन में अनन्य साधारण स्थान है। बैठक की एक ओर मुंशी अजमेरी के लिए मोटा गद्दा बिछाये रखते थे। आर्थिक विवेचना को उन्हें झेलना पड़ा कारण ऋण का भार उनके कन्धों पर आ गया। दूसरे, उनको मोलभाव करना नहीं आता। इसलिए उनके लेखन पर पानधन के रूप में कुछ नहीं मिला। जैसे 'रंग में भंग' छापकर भी इण्डियन प्रेस ने उन्हें कुछ नहीं दिया। साहित्यकार संसद को अपना प्रेस अर्पित करने का विचार रखा। उनके हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में आयोजित समारोह में गुप्तजी को प्राप्त दस हजार की थैली संस्कृत को ही प्रदान कर दी।

7.11.6 सब के दद्दा

इस कारण गुप्तजी 'दद्दा' के रूप में भी जाने जाते हैं। वे केवल नगरदद्दा न होकर प्रान्त तथा साहित्य जगत् के दद्दा है। वे सबकी समस्याएँ सुनते हैं और सबके काम आते हैं। बनते हुए मकान को देखना, नई दूकान का निरिक्षण करना, छप्पर के बारे में सलाह देना, खेती संबधी बातें पूछना उनका सहज स्वभाव है। उनकी बैतक में सभी जन मुक्त रूप से एक होकर आ सकते हैं। पण्ड़ित, मियॉ, दारोगा, अपराधी, व्यापारी, मजदूर, गॉधीवादी, क्रान्तिकारी सभी के लिए उनकी बैठक खुली है।

7.11.7 लोक समश्टि ही अभिष्ट

मैथिलीशरण गुप्त कंजूस के प्रति असहिष्णु, स्पष्टवादी व्यक्तित्व के धनी हैं। कलेक्टर के प्रति उग्रता, गोपनीयता के भंग की बात, साहित्यकार संसद के भवन खरीदी की बात में उनके स्वभाव के विभिन्न पहलू दिखाई देते हैं। इसलिए कवयित्री महादेवी वर्मा उनके बारे में लिखती हैं कि, 'वे बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के कवि है। उनके लिए लोकसमष्टि ही इष्ट है और यही उनके काव्य का अभिष्ट है।

7.11.8 स्वयं बोध के प्रष्न

संक्षेप में उत्तर लिखिए–

1. लेखिका गुप्तजी का पहला परिचय किस दिन से मानतं हैं?
2. उनकी वेशभूषा का वर्णन लेखिका ने कैसे किया है?
3. गुप्तजी ने किन चरित्रों का स्मरण किया है?
4. गुप्तजी की बैठक किनके लिए खुली है?
5. गुप्तजी का सहज स्वभाव के बारे में लेखिका ने क्या बताया है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक वाक्य में उत्तर दीजिए—

1. राष्ट्रकवि के रूप में कौन जाने जाते हैं?
2. गुप्ताजी की पहचान लेखिका ने क्या बताई है?
3. गुप्तजी की कितनी संताने थी?
4. गुप्तजी के मन में किसके लिए अनन्य साधारण स्थान है?
5. गुप्तजी के काव्य का अभिष्ट क्या है?

7.11.9 कठिन शब्दार्थ :—

धूमिल	—	धुंधला, अस्पष्ट
अनुष्ठान	—	आराधन / प्रांरभ
उक्तिअहेर	—	कथन शिकार
झकोरे	—	झोंके
घोंधा	—	शंखनुमा
दुर्वह	—	कठिन
बवंडर	—	आंधी
खपरैल	—	घर का छाजन
मोमजामा	—	ऐसा जामा जिस पर पानी नहीं रूकता / रेनकोट

7.11.10 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न

<u>प्रश्न</u> :—

1. मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तित्व का परिचय दीजिए।
2. गुप्तजी सबके दद्दा कैसे हैं।
3. महादेवी वर्मा ने मैथिलीशरण गुप्त की कौन सी नवीन बातों पर प्रकाश डाला है।
4. गुप्तजी के व्यक्तित्व कृतित्व का विश्लेषण हमें कौन सी सीख देता है।

7.11.11 स—संदर्भ व्याख्या

"अरे महाराज, हमारा तो कभी आपने अपमान नहीं किया, जो अब सम्मान की आवश्यकता हो। हमें बहुत सम्मान मिल चुका है, अब किसी नये का सम्मान होना चाहिए।"

संदर्भ

उपर्युक्त पंक्तियाँ श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'पथ के साथी' में 'एक' शीर्षक के अन्तर्गत समाविष्ट है। मैथिलीशरण गुप्तजी से संबधित इस संस्मरणात्मक रचना में उनके जीवन के अनेक पहलुओं को उद्‌घाटित किया है।

व्याख्या

सभी के प्रति आस्थावान रहने वाले मैथिलीशरण गुप्तजी के मन में किसी के प्रति भेदभाव होने की गुंजाइश ही नहीं थी। सबकी समस्या सुनते हैं, उनके प्रति सहानुभूति ही नहीं रखते अपितु अपनो तरफ से हर संभव सहायता भी करते हैं। साहित्यकार संसद की कल्पना भी उन्हीं की है। लेखकों के हित में पारिवारिक संरक्षण, आर्थिक सहायता वे करना चाहते हैं। सभी का सहयोग आसानी से मिल गया। लोगों ने उन्हीं को अध्यक्ष बना दिया। तब स्वयं का प्रेस उन्होंने प्रदान कर दिया। हीरक जयन्ती के समय मिलने वाले सम्मान की रकम दस हजार की राशि भी संस्था को ही दे देते हैं।

लेखिका इस प्रसंग के बारे में कहती हैं कि उनमें हीनता या उच्चता की कोई ऐसी विशेष ग्रंथी नहीं है। सबके लिए समान भाव वे रखते थें। इसलिए स्वयं के सम्मान के प्रसंग में भी कहने से नहीं चुकते कि आपने जब हमारा अपमान किया ही नहीं तो सम्मान की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

क्या आवश्यकता है। यह भी मान लेते है उन्हें बहुत सम्मान मिला है, दूसरों का भी, किसी नये का भी सम्मान होना चाहिए। दूसरो के सम्मान का ख्याल भी उन्हें कितना रहता है, यह लेखिका बताना चाहती है।

विशेष :– महाकवि केवल प्रतिभा से ही महान नहीं होता बल्कि वह दूसरों को भी अपने नजरिये से देखता है। उपर्युक्त पंक्तियॉ इसी बात की पुष्टि देती है। गुप्तजी स्वभाव से भी उदारमना, संवेदनशील, महान है।

7.11.12 स्वयं बोध के प्रश्न के उत्तर

1. जिस दिन से खड़ी बोली में उन्होंने तुकबन्दी आरंभ की उसी दिन की वे गुप्तजी का पथ परिचय मानती है।
2. साधारण –सी सिर पर पगड़ी अथवा गांधी टोपी, अंगरखा और धोती अथवा कुर्ता–धोती, गले में तुलसीमाला ऐसी गुप्तजी की वेशभूषा है।
3. रामायणकार जिन्हें भूल गया है उन चरित्रों का स्मरण गुप्तजी ने किया है।
4. पण्डित, मियों, दारोगा, अपराधी, व्यापारी, मजदूर, गांधीवादी, क्रांतिकारिसरें के लिए गुप्जजी की बैठक खुली है।
5. बनते हुए मकान को देखना, नई दुकान का निरीक्षण करना, छप्पर के बारे में सलाह देना, खेती संबंधी बातें पूछना गुप्तजी का सहज स्वभाव है।

एक वाक्य में उत्तर लिखिए–

1. मैथिलीशरण गुप्त जी
2. उनकी हंसी गुप्तजी की पहचान जो दस संताने थी।
3. मुंशी अजमेरी के लिए
5. लोक समष्टि उनके काव्य का अभिष्ट है।

7.12 दो – सुभद्राकुमारी चौहान

7.12.1 पहचान

ओज गीतों की रचयिता, राष्ट्रभावना की हुंकार भरनेवाली चौहान कुल की सुभद्राकुमारी का स्थान हिन्दी साहित्य जगत् में अग्रणी है। सुभद्राकुमारी चौहान महादेवी वर्मा की वरिष्ट सहपाठिन थी। महादेवी वर्मा जब पाँचवीं कक्षा में पढ़ती थी तब सुभद्राकुमारी साँतवी में पढ़ती थी। इन दोनों की पहचान कविता से होती है। महादेवी वर्मा गणित की कॉपी में कविता करती थी और सुभद्राकुमारी ने इस बात को प्रत्येक कक्षा में जा–जा कर घोषित किया। कारण, उस काल में कविता करना अच्छा नहीं माना जाता था। पर महादेवी वर्मा इस सार्वजनिक घोषणा पर न रोई न धीरज टूटा तो सुभद्रा बोल पड़ी, ''अच्छा तो लिखती हो और मैंने इसलिए बताया कि कविताई के कारण जो मैं अकेली झेलती थी, दोनों मिल कर सहेंगे।''

इस तरह महादेवी ने सुभद्राजी से पहला परिचय स्कूल की अल्लहड़ सीनियर बालिका के जोर जबरदस्ती वाले रूप से पाया।

7.12.2 व्यक्तित्व

रौद्र रस की कविताएँ करने वाली कवयित्री सुभद्राजी का कद मझला था, कृष या दुबला शरीर, गोल मुख, चौडा माथा, सरल भौंहे, बड़ी और भावभरी ऑखें, छोटी नासिका, हँसोड होंठ और दृढ़ ठुड्डी से वे एक भारतीय नारी लगती थी। जो निश्छल, कोमलमना और उदार थी।

7.12.3 विपन्न गृहस्थिन

सुभद्राजी जब आठवी कक्षा में थी, तभी उनका विवाह हो गया। वे उन्हें (पति को) जानती थी। उनके विचारों से परिचित थी। पर उनके विवाह का मंगल कंकण रण कंकण बन गया और गृहस्थी कारागार में बसी। इनके पति का नाम लक्ष्मणसिंह जी था। जेल से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण उन्हें भूख से रोती बच्ची को महिला कैदी से माँगी हुई अरहर–दाल को तवे पर भून कर खिलाना पड़ा। चावल के धुले पानी को (अश्वत्थामा की तरह) दूध समझकर पिलाना पड़ा।

7.12.4 आदर्श गृहिणी

सुभद्रा जैसी कवयित्री जो घर से बाहर ओज छंद में रचना करती थी तो घर में उन्हीं हाथों से गोबर के कंड़े पाथती थी, आंगन लिपती थी, बर्तन मांजती थी। सुभद्राकुमारी एक आदर्श गृहिणी थी। उन्होंने अपने घर को माँ की ममता से संवारा। नारी के हृदय की गंभीर ममता से जब सजल वीरभाव उत्पन्न होता है तब वह पुरूष के उग्र शौर्य से अधिक उदात्त और दिव्य रहता है। पुरूष व्यक्तिगत या समूहगत रागद्वेष से भर कर वीरता को अपनाता है अथवा अपने अहंकार के तोष के लिए वीर की सहायता लेता है। पर नारी सृजन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की बाधा दूर करने अथवा कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए ही रूद्र बनती है। इस कारण चण्ड़ी भी वत्सला, अम्बा है, मातृशक्ति है। इस कारण सुभद्राजी का वीरत्व भाव वरेण्य हैं।

महादेवी वर्मा ने सुभद्राकुमारी चौहान के आतिथ्य धर्म और गृहकौशल की भी चर्चा की है। उन्होंने गृहस्थी के छोटे साम्राज्य को अपने ममत्व के जादू से इतना विशाल और व्यापक बना दिया कि उनके द्वार पर न कोई अनाहुत रहा, न कोई निराश लौटा।

7.12.5 विद्रोही व्यक्तित्व

महादेवी वर्मा के मत से सुभद्रा जी ने नारीत्व बंधन परंपरा का डटकर विरोध किया। उन्होंने कन्यादान की प्रथा के विरूद्ध घोषणा की कि मैं कन्यादान नहीं करूंगी। क्या मनुष्य, मनुष्य को दान करने का अधिकारी है ? क्या विवाह के बाद मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी ? सुभद्राकुमारी को परिस्थितीवश विश्वविद्यालयीन ऊँची शिक्षा नहीं मिल सकी परंतु उन्होंने जो कुछ अनुभव से सीखा वह किसी उच्च शिक्षा से कम नहीं है। 'झांसी की रानी' जैसी कविता भाषा, भाव, छंद की कसौटी पर खरी उतरती है।

सुभ्रदाजी अपने पति की सच्ची मित्र थी।

7.12.6 अन्याय का मुकाबला

बापू की अस्थि विसर्जन के समय उनकी उग्रता का परिचय मिलता हैं। सैकड़ो हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा किनारे पहुँची और अस्थि प्रवाह के बाद की सभा में महिलाओं के साथ इन्हें स्थान नहीं मिला तो वे क्षुब्ध हो गई और इन्होंने संघर्ष कर सभी के लिए स्थान बनाया।

7.12.7 जीवन के प्रसंग

महादेवी वर्मा ने इनके अपनत्व के प्रसंग भी प्रस्तुत किए हैं। सुभद्राजी के सामने भक्तिन को डाँटना संभव न था का प्रसंग हो अथवा पत्थर, शीशे की प्यालियां, मिर्च का अचार, बासी पुड़ी, पेढ़े, रंगीन चकला–बेलन, तरह–तरह चुडियाँ पहनाना और एक मिनट बात करना और पाँच मिनट हँसना का जिक्र किया है।

7.12.8 अंतिम इच्छा

बसंत पंचमी को उनका स्वर्गवास हुआ। उन्होंने कुछ समय पूर्व अपनी मृत्यु के बारे में बताया था कि, ''मुझे तो उस लहर की सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक आकर चुपचाप समुद्र में लौटकर समुद्र बन जाती है''। (पृ.49) ....मैं चाहती हूँ मेरी एक समाधि हो जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहे, स्त्रियाँ गाती रहे और कोलाहल होता रहे। (पृ.50) उनके पार्थिव अवशेष को त्रिवेणी में प्रवाहित करते समय ये बातें महादेवी जी के मानस में कौंध जाती हैं।

इस तरह सुभद्राकुमारी नारी व्यक्तित्व को सम्मान देने वाली, जातियता की कट्टर विरोधी, परंपरा विरोधी, सहिष्णु और उदार विचारों वाली हैं। वे अपने लक्ष्य पथ पर चलने वाली एक अडिग महिला है।

7.12.9 स्वयं बोध के प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. सुभद्राकुमारी चौहान महादेवी वर्मा की .... थी?
2. सुभद्राकुमारी चौहान ने ....की प्रथा के विरुद्ध घोषणा की है?
3. सुभद्राजी की उग्रता का परिचय ....के समय मिलता है।
4. सुभद्राजी की प्रसिद्ध कविता... है।
5. सुभद्राजी का स्वर्गवास .... को हुआ।

जोड़ियां बनाओ–

(अ)	(ब)
1. ओज गीतों की रचयिता	1. सुभद्राजी की मृत्यु
2. सुभद्राजी से पहला परिचय	2. पति की सच्ची मित्र
3. बसंत पंचमी	3. सुभद्राकुमारीजी
4. सुभद्राजी	4. स्कूल की अल्लहड़ सीनियर बालिका
5. महादेवीजी	

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.12.10 कठिन शब्दार्थ :–

अभियुक्त – आरोपी
उत्स – स्त्रोत

7.12.11 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न :–

1. आदर्श गृहिणी के रूप में सुभद्राजी का व्यक्तित्व विवेचित कीजिए।
2. महादेवी वर्मा की उनसे पहली मुलाकात कब और कैसे हुई।
3. सुभद्राकुमारी के विद्रोही व्यक्तित्व का परिचय दीजिए।
4. सहेली के रूप मे महादेवीजी के साथ उनके संबध कैसे थे।
5. वे अपने मृत्यु के संबध में क्या सोचती हैं।

7.12.12 स–संदर्भ व्याख्या

''मैं कन्यादान नहीं करुगीं। क्या मनुष्य, मनुष्य को दान करने का अधिकारी है ? क्या विवाह के उपरान्त मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी ?

संदर्भ

उपर्युक्त पंक्तियाँ महादेवी जी वर्मा द्वारा लिखित 'पथ के साथी' 'दो' शीर्षक से ली गई है इसमे महादेवी जी ने अपनी अभिन्न सखी तथा ओजपूर्ण कविता की रचयिता सुभद्राकुमारी चौहान के व्यक्तित्व तथा उनके स्वभाव से परिचित कराया है। उनके जीवन के साथ जुड़ी होने के कारण उनकी प्रकृति से वे परिचित थी ।

सुभद्राकुमारी जी राजनीतिक जीवन में विद्रोही थी। कारावास मे भी उन्हें अपना समय काटना पड़ा जिससे वे पारिवारिक जीवन में भी विद्रोहिणी बन गई। कन्यादान का महत्व भारतीय परम्परा से इतना जुडा है कि इससे आज भी लोग हृदय से जुड़े है, उसका पालन करते रहते हैं परन्तु सुभद्राकुमारी विद्रोही स्वभाव की थी वे अपनी पुत्री के विवाह के समय कह देती हैं कि मैं कन्यादान नहीं करूंगी। क्या मनुष्य, मनुष्य को दान करने का अधिकारी है ? विवाह के उपरान्त मेरी बेटी आखिर बेटी के रूप में तो मेरी ही रहेगी। इसलिए इस प्रथा को उन्होंने ठुकरा दिया।

विषेश :– उपर्युक्त पंक्तियों में सुभद्राकुमारी चौहान के विद्रोही व्यक्तित्व की झलक मिलती है।

7.12.13 स्वयं बोध प्रश्नोत्तर

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए– 1. वरिष्ठ सहपाठिन 2. कन्यादान 3. बापू की अस्थि विसर्जन 4. झांसी की रानी 5. बसंतपंचमी

जोड़िया बनाओं– 1-III 2.IV 3.I IV.II

7.13 तीन–सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

7.13.1 पहली स्मृति–राखी का भाई

हिन्दी के सुप्रसिद्ध छायावादी कवि महादेवी वर्मा के समकालीन थे।वे वैरागी साहित्यकार थे। नाम की तरह तेजस्वी और निरालापन लिए हुए थे। उग्रता, अक्खडता, विद्रोहीपन के साथ–साथ सौहार्द्रता, आत्मीयता और संवेदनशीलता का अद्भूत समन्वय निरालाजी के व्यक्तित्व में है। निरालाजी के बारे मे पहली स्मृति राखी पूनम की है। राखी पूनम के दिन महादेवी को निराला भाई के रूप में प्राप्त हुए। ऐसा भाई जो लौकिक दृष्टि से निसत्व, निराला, हृदय की निधि में सबसे समृद्ध भाई है। निराला जी को किसी ने भी राखी नहीं बांधी कारण, ''कौन बहन ऐसे भुक्कड़ को भाई बनावेगी।'' और महादेवी ने उनको भाई बना लिया और उन्होंने ने भी राखी के कच्चे सूत के बंधन को दृढ़ता और दिप्ति प्रदान की।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.13.2 अनिर्बन्ध दानी व्यक्तित्व

निरालाजी का जीवन अस्तव्यस्त था। अनिर्बंध उदारता उनके जीवन की पहचान थी। महादेवी ने उनको इस संबध में कहा तो उन्होंने व्यवस्थित रहने का वचन दिया। एक दिन उन्हे तीन सौ रूपये मिले तो उन्होंने ये सारे पैसे महादेवी के पास जमा करवा दिये। उन्होंने बजट बना दिया। परन्तु पचास रूपये किसी विद्यार्थी के परीक्षा शुल्क के लिए, साहित्यिक मित्र को साठ रूपये, दूसरे दिन तांगेवाले की माँ को चालीस रूपये की मनीऑर्डर, स्वर्गीय मित्र की भतीजी के विवाह के लिए सौ रूपये देने पड़े। तो ये तीन सौ रूपये तीन दिन में ही समाप्त हो गए और सारा बजट चरमरा गया। पैसे ही नहीं तो रजाई, कोट जैसी वस्तुएँ भी बेहिचक दूसरों को दे डालतें।

7.13.3 निराला आतिथ्य

मैथिलीशरण गुप्त ने निरालाजी का आतिथ्य ग्रहण किया। इसका संस्मरण महादेवी की स्मृति का अद्‌भूत प्रसंग है। निरालाजी गुप्तजी का बिछौना बगल में दबाए, दियासलाई के क्षीण प्रकाश में सीढ़ियों से अपने कमरे मे ले गए, जहॉ मिट्‌टी का दिया आले में रूक रूक कर जल रहा था। रसोईघर में कुछ अधजली लकड़ियाँ, औंधी पड़ी बटलोई और आटे की छोटी सी गठरी इतना सामान था। इस तरह निराला का घर सुख–सुविधा शून्य था। पर उनका ह्रदय विशाल तथा आत्मीयता से भरा था। इस कारण मैथिलीशरण गुप्त की सुविधा के लिए एक नया घड़ा खरीदा और गंगाजल भर कर ले आए। तख्त पर चादर बिछायी और रातभर दोनों की बातें हुई। सुबह गुप्तजी को ट्रेन में बिठा कर महादेवी को समाचार देना भी नहीं भूलें। निरालाजी अतिथि को देवता मानते थे और भोजन बनाने से लेकर उनके झूठे बर्तन मांजने तक का काम स्वयं करते थे। अतिथि सेवा हेतु महादेवी से सामान मॉगने में भी नहीं हिचकिचाते थे। अतिथि सेवा के मामले में उनके संस्कार भारतीय ग्रामीण किसानों की तरह के थे।

7.13.4 सघन संवेदनशीलता

निराला के संवेदनशील ह्रदय की वेदना की सघनता का बोध कराने वाले प्रसंग भी कम रोमहर्षक नहीं है। सुमित्रानंदन पंत दिल्ली में टाईफाईड से बीमार थे। किसी समाचार पत्र ने उनके स्वर्गवास की झूठी खबर छाप दी। निराला जी से यह खबर छुपाना असंभव था ज्योंही उन्होनें खबर जानी उनकी आँखों से झर–झर आँसू झरने लगे। उन्हें स्थिर करने के लिए महादेवी जी को सांत्वना देनी पड़ी और कहा कि मैनें तार दिया है सही खबर पता चलेगी। वे वहीं बैठे रहे जब तक फाटक बंद होने का समय नहीं हुआ। वे रात में बाहर चले गए पर सुबह चार बजे ही फाटक खट–खटाकर तार के संबंध में जानना चाहा। तब महादेवी को अहसास हुआ कि वे रात भर पार्क में ओस पर भीगी दूब में खुले आकाश के नीचे सुबह की प्रतीक्षा करते रहे।

7.13.5 महामानव निराला

निराला विषयक महादेवी के संस्मरण निराला के निरालापन को प्रकट करते है। यह प्रकटन सहज नहीं, सरल नहीं परन्तु महादेवी ने उनके इस व्यक्तित्व का पूर्णः अवगाहन कर प्रस्तुत किया है। इसलिए वे कहती है–''जीवन की दृष्टि से निराला जी किसी दुर्लभ सीप में ढ़ले सुडौल मोती नहीं वे तो अनगढ़ पारस के भारी शिलाखंड थे........... इस मार्ग के हर फूल पर उनके चरण का चिन्ह और हर शूल पर उनके रक्त का रंग है।'' (पृ. 64) महादेवी जी निराला जी के जीवन और साहित्य की प्रत्यक्ष द्रष्टा रही है। इसलिए उनका कथन एक निश्चित वज़न रखता है। उनके मत से निराला जीवंत बवंडर, उच्छ्ल महानद के साथ–साथ महामानव भी है। निराला का व्यंग्य ह्रदय का सद्‌भाव भरे बादल की तरह सब पर बरस पड़ता है। उनका विरोध द्वेषमूलक न होकर प्रतिकारजन्य है। उनमें संदेह का स्थान न होकर प्रगाढ़ आत्मविश्वास है। वे भग्नमूर्ति नहीं काव्य के महाप्राण देवता है। इस कारण उन्हें भयंकर अभिशाप झेलने पड़े थे। निराला नीलकंठ है पर औढ़र दानी भी है। इसी कारण उन्हें गैरुवें वस्त्र भी पहनने पड़े हैं जिसकी निधियों से साहित्य कोश समृद्ध है। उसने मधुकरी मांगकर जीवन निर्वाह किया है यह कटु सत्य है। पारिवारिक संरक्षण बचपन से ही नहीं था। माँ, भाई, बहन का पारिवारिक जीवन उनके हिस्से में नहीं आया। बचपन इन सबके स्नेह के अभाव में ही बीता। युवावस्था में पत्नी का वियोग सहना पड़ा। आर्थिक अभाव का निरंतर सामना करना पड़ा, पारिव रिक दायित्वों को भी वे इस कारण निभा नहीं सके। पुत्र को उचित शिक्षा नहीं दे पाए इसलिए वह निरंतर उनकी उपेक्षा करता रहा तो पुत्री का वियोग उन्हें बर्दाश्त करना पड़ा। उनकी आँखों के सामने ही उसने दम तोड़ दिया और वे कुछ नहीं कर पाए, इसका अफसोस जीवन पर्यन्त उन्हें सालता रहा।

7.13.6 युगस्रष्टा

निरालाजी युगस्रष्टा साहित्यकार और विद्रोही साहित्यकार जीवन के अनुभवों के दंश के विष से उन्होनें जागरूकता और मानवता का अमृत प्राप्त किया। वे अपने बचाव के प्रयासों को कायरता मानते हैं। उनकी वीरता राजनैतिक कुशलता न होकर साहित्यिक एकनिष्ठता का पर्याय है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निरालाजी का मूल्यांकन करना इसलिए मुश्किल है कि हम दंभ, स्पर्धा, ज्ञान और भ्रांति के कुहरें में जी रहे है। ऐसे में जहां स्वयं को पहचानना मुश्किल है वहां सहयात्रियों (पथ के साथियों) को कैसे भला जाना जा सकता है। इस तरह महादेवी ने निराला के समग्र जीवन को प्रस्तुत किया है।

7.13.7 स्वयं बोध के प्रश्न

प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए–

1. निरालाजी के व्यक्तित्व में कौन से गुण है?
2. मैथिलीशरण गुप्त की सुविधा के लिए निराला ने क्या किया?
3. निरालाजी अतिथि सेवा कैसे करते थे?
4. निरालाजी का पारिवारिक जीवन कैसा था?
5. लेखिका की दृष्टि में निरालाजी का मूल्यांकन करना मुश्किल क्यों है?

एक वाक्य में उत्तर दीजिए–

1. कौन से हिन्दी के छायावादी कवि महादेवी के समकालीन थे?
2. कौन बहन ऐसे भुक्कड़ को भाई बनावेगी? यह वाक्य किसने किससे कहा है?
3. किसने निरालाजी का आतिथ्य ग्रहण किया?
4. अतिथि को निरालाजी क्या मानते हैं?
5. किसके स्वर्गवास की झूठी खबर समाचार पत्र में छपी ?

7.13.8 कठिन शब्द

भुक्खड़	–	कंगाल, गरीब
भारती	–	सरस्वती
अतीत	–	बीता हुआ कल, भूतकाल
आलोचना	–	प्रताड़ना
नापित	–	नाई
औढ़रदानी	–	शंकर, जो सहजता से प्रसन्न होकर सबकुछ दे देता है ।
नीलकंठ	–	जिसने विष पीया है, विष पीने के कारण इनका कंठ नीला हो गया।
तंग	–	संकरी
बालिश्त	–	एक बीताभर
इक्का	–	तांगा, एक घोड़े की गाड़ी
छिछला	–	उथला, उच्छृंखल
पाशाण	–	पत्थर
क्लांत	–	थका हुआ
उत्तरीय	–	ऊपर के कपड़े
अंगराग	–	उबटन
मधुकरी	–	संन्यासी के लिए नियत भिक्षाटन
अनुताप	–	पश्चाताप
अविराम	–	बिना रूके

7.13.9 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न

1. महादेवी ने निराला को भाई कैसे बनाया ? इससे उन पर कौन सी जिम्मेदारियाँ आई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. निरालाजी ने गुप्त जी का आतिथ्य कैसे किया ?
3. निरालाजी को औघड़ दानी क्यों कहा हैं ?
4. निरालाजी के निराले व्यक्तित्व को प्रकट करने वाली घटनाएँ कौन सी हैं ?
5. सुमित्रनंदन पंत की मौत की खबर सुनकर उन पर क्या बीती ?

7.13.10 स–संदर्भ व्याख्या

''कौन बहन हम जैसे भुक्खड़ को भाई बनाएगीं।''

संदर्भः–उपर्युक्त पंक्तियाँ 'पथ के साथी' इस संस्मरणात्मक रचना से ली गई है। महादेवी वर्मा द्वारा लिखित इस रचना में उन्होंने अपने साहित्य से संबंधित मित्र परिवार के जीवन तथा स्वभाव पर लेखन किया है। इस रचना में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के जीवन के कुछ पहलुओं को उद्‌घाटित किया है।

निराला के परिवार में कोई भी सदस्य नहीं था। निराला की आर्थिक विपन्नता किसी से छुपी नहीं थी। इसलिए भाई–बहन का स्नेह भरा त्यौहार राखी पूनम पर मिलने वाला स्नेह से वह वंचित थे। उनकी कलाई वंचित थी। जबकि सभी भाईयों की कलाई राखियों से सजी थी। ऐसे में जब महादेवी वर्मा ने उनसे पूछा कि आप को किसी ने राखी नहीं बाँधी कारण पीले कच्चे सूत की ढ़ेरो राखियाँ लेकर घूमने वाले कलाई खोजी का चित्र लेखिका के मानस में था। पारिवारिक स्नेह के रिश्ते भी बिना पैसों के नहीं बनते, नहीं रहते। इस सच्चाई को निराला के उपरोक्त वाक्य प्रस्तुत करते है।

विशेष :– इस कथन में आर्थिक विपन्नता, अर्थाभाव के लिए ठेठ देशी शब्द भुक्खड़ का प्रयोग हुआ है।यह शब्द निराला के मानसिक क्षोभ को व्यंग्यतिक्तता को समर्थ अभिव्यक्ति देता है। और उनके अख्खड़पन और निरालेपन को दर्शाता है।

7.13.11 स्वयं बोध प्रश्नों के उत्तर–

1. निरालाजी के व्यक्तित्व में उग्रता, अक्खड़ता, विद्रोहीपन के साथ–साथ सौहार्द्रता, आत्मीयता और संवेदनशीलता आदि गुण है।
2. मैथिलीशरण गुप्ताजी की सुविधा के लिए निराला ने एक नया घड़ा खरीदा और गंगाजल भर कर ले आए। तख्त पर चादर बिछायी।
3. निरालाजी अतिथि के लिए भोजन बनाने से लेकर उनके झूठे वर्तन मांजने तक का काम स्वयं करते थे।
4. निरालाजी के जीवन में मां, भाई, बहन का पारिवारिक जीवन उनके हिस्से में नहीं आया। युवावस्तथा में पत्नी का वियोग सहना पड़ा। आर्थिक अभाव के कारण पुत्र को उचित शिक्षा नहीं दे पाए। पुत्री का वियोग भी उन्हें बर्दास्त करना पड़ा।
5. लेखिका के मत से हम दंभ, स्पर्धा, ज्ञान और भ्रांति के कुहरे में जी रहे हैं। जहां ऐसे में स्वयं को पहचानना मुश्किल होता है, वहां अन्य सह–यात्रियों को कैसे भला जाना जा सकता है। इसलिए निरालाजी का मूल्यांकन करना मुश्किल है।

एक वाक्य में उत्तर दीजिए–

1. हिन्दी के प्रसिद्ध छायावादी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला महादेवी के समकालीन थे।
2. यह वाक्य निरालाजी ने महादेवी से कहा है।
3. मैथिलीशरण गुप्तजी ने निराला का आतिथ्य ग्रहण किया।
4. निरालाजी अतिथि को देवता मानते थे।
5. सुमित्रानन्दन पंत के स्वर्गवास की झूठी खबर समाचार पत्र में छपी।

––––––

7.14 चार– जयशंकर प्रसाद

7.14.1 देवदार–प्रसाद

इनका जन्म 30 जनवरी 1890 तथा स्वर्गवास 15 नवंबर 1937 में हुआ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हिन्दी के महाकवि और सुप्रसिद्ध युगचेता नाट्यकार, छायावाद के प्रणेता और तत्सम प्रधान हिन्दी के संवाहक जयशंकर प्रसाद का परिचय महादेवी वर्मा ने 'पथ के साथी' के रूप में दिया है। महादेवी ने अपनी एकमात्र भेंट के माध्यम से जयशंकर प्रसाद के संघर्षशील मूक व्यक्तित्व और उनके कृतित्व का मूल्यांकन किया है। इस हेतु उन्होंने देवदार वृक्ष के रूपक का आधार लिया है।

जयशंकर प्रसाद का व्यक्तिगत जीवन 'अकेलेपन' की जैसी अनुभूति देता है वैसी अनुभूति हमें किसी अन्य समसामयिक साहित्यकार के जीवन के अध्ययन से नहीं प्राप्त होती है।

7.14.2 सूँघनी साहू से मुलाकात

भागलपुर से प्रयाग आते समय एक बार प्रसाद के दर्शन हेतु काशी में कुछ घण्टों के लिए महादेवी वर्मा ने यात्रा भंग की। काशी के गली कूचे से महादेवी तथा उनका नौकर अनभिज्ञ था । कविवर प्रसादजी को सभी जानते होंगे इस विश्वास के साथ तांगेवालों से पूछताछ की पर निराशा ही हाथ लगी। हारकर जब वे स्टेशन के वेटिंग रूम पर लौट आए तब एक ने पूछा, क्या सूंघनी साहू के घर जाना है? सुनकर उन्हें लगा, कोई तम्बाकू का व्यापार करने वाला दूकानदार होगा। उन्हें लगा प्रसाद जैसा महान कवि तम्बाकू की दूकानदारी जैसा गद्यात्मक कार्य कैसे कर सकता है? इसलिए उन्होंने तांगेवाले से कहा, मुझे कवि के यहाँ जाना है, तम्बाकू वाले के यहाँ नहीं। तांगेवाला भी हार न मानने की मुद्रा में बोल पड़ा, हमारे यहाँ सूंघनी साहू बड़े–बड़े कवित्त लिखते हैं। शायद ये प्रसादजी को जानते होंगे, इस उद्देश्य से वे तांगे मे बैठकर और कुछ पैदल चलकर उनके घर गयीं। सामान्य मध्यवर्गीय मकान था। कहलवाया, प्रयाग से महादेवी वर्मा आयी है, संदेश पाकर स्वयं प्रसादजी बाहर आए।

7.14.3 व्यक्तित्व

रचनाओं से उनकी छवि धृष्ठ–पुष्ट स्थविर सी बनाती है पर सामने देखा तो मझला कद, मध्यम शरीर, गौरवर्ण, ऊँचा माथा, प्रशस्त भाल, बाल कुछ भूरापन लिए काले, चौड़ा मुख, सुडौल नाक, आँखों में दीप्ति, उजली हँसी, सफेद खादी का धोती–कुर्त्ता। उन्हें उज्ज्वल स्वच्छता की अनुभूति हुई।

7.14.4 विनोदवृत्ति

उन्होंने सूंघनी साहू के नाम पर विनोद किया और हँसती रही तो प्रसादजी ने भी हँसकर कहा, आप तो महादेवी जैसी नहीं जान पड़ती।

इस समय प्रसादजी 'कामायनी' का दूसरा सर्ग लिख रहे थे। उन्होंने 'कामायनी' के संबध में महादेवी से वार्तालाप किया। प्रसादजी की खासियत थी कम शब्दों में अधिक कहना और बहुश्रुतता।

7.14.5 बिदाई

लौटने का जब समय हुआ तब ऐसे जान पड़ा कि काफी दिनों से परिचित हूँ। वे तांगे तक पहुँचाने आए और आँखों से ओझल होने तक वहीं खड़ें रहे। पुनः उनसे भेंट नहीं हो पायी। प्रसादजी का जन्म एक संपन्न परन्तु ऋणग्रस्त परिवार में हुआ। वे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए बादाम खाते और कुश्ती लड़ते थें तो दूसरी और मानसिक विकास हेतु शिक्षकों से संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करते रहें। किशोरावस्था में ही उन्हें पारिवारिक कलह–कटुता का अनुभव हुआ। तरूणाई में ही वे माता–पिता, बड़े भाई, दोनों पत्नियों और पुत्र की वियोग व्यथा झेल चुके थें।

7.14.6 रोग पीड़ित पर स्वाभिमानी

प्रसादजी कृतज्ञ होना या उपकार भार से दबना नहीं चाहते थे। इस कारण जीवन मरण के प्रति वे नियतिवादी होकर क्षय का प्रकोप झेलते रहे। प्रसादजी को साधनहीन न समझकर कोई भी इस सन्दर्भ में उपचार के लिए मदद नहीं कर सका। और अन्त तक सबकों उनके स्वस्थ होने का विश्वास बना रहा। कामायनी के प्रकाशन के अवसर पर इनके महाप्रयाण की बेला भी आ गयी। इस बात पर महादेवी लिखती है कि, ''उनके पास ऐसे आत्मीय लोगों की कमी थी, जो उन्हे उपचार का सहयोग प्रदान करते। वैसे तो आज उनके नैकट्य की घोषणा करने वाले और गप्प–गोष्टी का आनन्द लेने वाले बहुत है पर 'संक्रामक' रोग से ग्रस्त मित्र की निष्प्रभ आँखों में मृत्यु के संदेश असर पढ़कर उसे बचाने के लिए बाजी लगाने वाला उस समय कोई नहीं पहुँचा और प्रसाद जी की मौत को आकस्मिक कह कर चुप हो गए।''

जयशंकर प्रसाद स्वभाव से 'रिजर्व' और गोपनशील तथा संकोची हो गए थे। इसी कारण उन्होंने अपनी बीमारी के संबध में किसी से कुछ नहीं कहा। दूसरे, वे यह जानते थे कि परिवार को स्वयं की वियोग व्यथा के साथ–साथ विपन्नता का भी भार वहन करना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पड़ सकता है। इस कारण स्वयं प्रसादजी चन्द्रगुप्त के शब्दों–सा जीवन समाप्त करने की सोचते हैं। अपने को बचाऊँगा नहीं, जो मेरे मित्र हो आवे और अपना प्रमाण दे। (पृ0 75)

7.14.7 साहित्य की सभी विधाओं में लेखन

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् प्रसाद की प्रतिभा ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिखा। महाकाव्य, खण्डकाव्य, करूण–मधुर गीत, मुक्त छंद, अतुकान्त रचना, कहानियाँ, उपन्यास, नाटक में एकांकी, रूपक, गीतिनाटक, ऐतिहासिक नाटक, निबन्ध, इंदु, जागरण जैसे पत्र और प्रकाशन संस्थान, भारती भंडार का निर्माण किया। उनका जीवन घड़े मे समुद्र हैं।

7.14.8 वेदना की प्रतिक्रिया

जयशंकर प्रसाद के साहित्य सृजन की साधना आघात का प्रतिफल है। इसलिए उनका आनन्दवाद हृदय की गहरी वेदना की प्रतिक्रिया है। इस संदर्भ में महादेवी अपना मत इन शब्दों में प्रकट करती है –''प्रसाद विशुद्ध आनन्दवादी नहीं है क्योंकि कोई भी सिद्ध कवि आनन्दवादी नहीं होता।'' वेदना और करूणा की गायिका महादेवी का यह नीजि दृष्टिकोण हो सकता है।

जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व विश्लेषण का प्रयास करते हुए महादेवी वर्मा ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की है। इस कारण यह रचना तार्किक विश्लेषण और भावना प्रधानता का खट्टा–मीठा मिश्रण है।

7.14.9 स्वयं बोध के प्रश्न

एक वाक्य में उत्तर दीजिए–

1. जयशंकर प्रसाद का व्यक्तिगत जीवन किसकी अनुभूति देता है?
2. जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन करते समय किस वृक्ष के रूपक को आधार बनाया है?
3. जयशंकर प्रसाद किसका व्यापार करते थे?
4. शारीरिक स्वास्थ्य के लिए प्रसादजी क्या करते थे?
5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात किसकी प्रतिभा ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिखा है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. अपने को बचाउंगा नहीं जो मेरे मित्र हो आवै और अपना प्रमाण पत्र दें– ....कहा है?
2. प्रसादजी बीमारी का प्रकोप झेलते रहे?
3. प्रसादजी का प्रसिद्ध महाकाव्य .... है।
4. प्रसादजी का जन्म ....परिवार में हुआ।
5. किशोरावस्था में ही प्रसादजी को ....अनुभव हुआ।

7.14.10 कठिन शब्द :–

ढ़ाल	–	ढ़लान
आतप	–	गर्मी
बवंडर	–	तूफान
प्रयाग	–	वर्तमान नाम इलाहबाद, गंगा, जमना, सरस्वती की संगम स्थली, हिन्दू मान्यता के अनुसार तीर्थराज।
घटाटोप	–	प्रयत्न
स्थिवर	–	अचल, वग्द्ध, ऋषि
हौले	–	धीरे
वरूण	–	वर्शा का देवता
समष्टि	–	समाज
आनन्दवाद	–	कामायनी का प्रमुख दर्शन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.14.11 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न :–

1. सूंघनी साहू से महादेवी की मुलाकात कैसे हुई।
2. प्रसादजी के व्यक्तित्व की महादेवी ने देवदार के वृक्ष से तुलना क्यों की है?
3. प्रसादजी की मौत से क्या सबक मिलता है।
4. प्रसादजी के व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश ड़ालिए।

7.14.12 स–सन्दर्भ व्याख्या :–

''बार–बार उनका अंतिम दर्शन स्मरण आने लगा और साथ ही साथ उस देवदारू का, जिसे जल की शुद्धधारा ने तिल–तिल काट कर गिरा दिया था।''

संदर्भ– महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'पथ के साथी' में जयशंकर प्रसाद के बारे में अपनी संस्मरणात्मक रचना में उनके जीवन तथा साहित्य पर प्रकाश डाला है।

महादेवी जी जयशंकर प्रसाद से काशी में एक ही बार उनसे मिली थी। पर उनसे एक बार मिलने पर भी उनका स्वभाव, कद–काठी, साहित्य में उनका चित्रण बारीकी से किया है। संपन्न, कर्जदार परिवार के पुत्र, स्वाभिमानी, संकोची, मितभाषी, धीर–गंभीर, अंत समय में भी अपनी बीमारी के बारें में कभी पता न चलने दिया। क्षय की बीमारी में तिल–तिल कर गलते रहे फिर भी अडिग, दृढ़ आर्थिक रूप से अभावग्रस्त होने के बावजूद किसी से न कहा। जब उनकी इस स्थिति का पता महादेवी को लगा तब उन्हें सहज ही उस देवदारू के वृक्ष की याद आयी जो हिमालय के ढ़ाल पर उसकी गर्वीली चोटियों से सामना करता हुआ एक सीधा तना हुआ था। अनेक हिमपात, प्रखर धूप, मूसलाधार वर्षा में भी उन्नत था। पर एक हल्की गुदगुदाने वाली पानी की निरंतर गिरने वाली धारा ने उसे जड़ से खोखला कर दिया। और एक दिन चरमराकर टूट पड़ा। जयशंकर प्रसाद का जीवन भी उसी देवदारू वृक्ष का प्रतीक है।

विशेष :– महादेवी ने देवदारू वृक्ष के साथ प्रसाद की तुलना की हैं। और उसका रूपक प्रसाद जी के जीवन की घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

7.14.13 स्वयं बोध प्रश्नों के उत्तर–

एक वाक्य में उत्तर दीजिए–

1. जयशंकर प्रसाद का व्यक्तिगत जीवन अकेलेपन की अनुभूति देता है।
2. देवदार के वृक्ष का रूपक लिया है।
3. तम्बाकू का व्यापार करते थे।
4. बादाम खाते और कुश्ती लड़ते थे।
5. जयशंकर प्रसाद ने समृद्ध साहित्य दिया है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति–कीजिए– 1. प्रसादजी 2. क्षय 3. कामायनी 4. संपन्न और ऋणग्रस्त 5.पारिवारिक कलक–कटुता का

––––––

7.15 पाँच–सुमित्रानंदन पंत

हिन्दी के प्रकृतिपुत्र और प्रकृतिगान के सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत के व्यक्तित्व की रेखाओं से महादेवी जी ने परिचय यहाँ कराया है। सुभद्राकुमारी चौहान की तरह पन्त जी से परिचय का माध्यम कविता ही रही है। पहला परिचय भी ऐसा विचित्र कि स्मरण से हँसी आ जाती है।

महादेवी वर्मा प्रारंभ में ब्रज की समस्यापूर्ति की कविता करती थी। सुभद्राकुमारी के कारण सबको पता चला कि महादेवी कवयित्री है। क्रास्थवेट की छात्रा होने के कारण वाद–विवाद प्रतियोगिता, कवि सम्मेलन में सहभागी होने का जैसे अधिकार प्राप्त हो गया था।

पढाई में वर्मा जी अच्छी थी और उन्हें छात्रवृति भी प्राप्त होती थी, पर पाठ्य पुस्तकों के प्रति उनके मन में घोर अरूचि थी। परीक्षा के दिनों पुस्तकें पढनें के लिए उन्हें आईसक्रीम का प्रलोभन देना पड़ता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.15.1 पहला परिचय

पंत जी से पहला परिचय हरिऔध जी की अध्यक्षता में आयोजित हिन्दी बोर्डिंग के एक कवि सम्मेलन में हुआ। वे गंभीर मुद्राओं में अपनी छात्राओं और सहयोगी शिक्षिकाओं के साथ मंच के एक ओर उपस्थित थी। इतने में एक कोमलकांत कृषांग मूर्ति अविर्भूत हुई। कंधों पर लहराते हुए सुनहरे केश, तीखा नाक–नक्श, गोरा रंग, कोमल, पतली उंगलियों वाले सुकुमार हाथ देखकर ऐसा लगता था कि कोई स्त्री पुरूषों में बैठ गयी है। उस दिन तो उनकी कविता सुनने का योग नहीं हुआ। कई वर्षो बाद डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने अपने विवाह के अवसर पर पन्त जी से परिचय कराया तब कहीं जाकर भ्रम दूर हुआ।

7.15.2 गोपालदत्त बने सुमित्रानन्दन

पन्त जी हिमालय पुत्र है। उनका जन्म स्थान कौसानी कूर्मांचल का सुन्दर हृदय है। सुन्दर, रजत् हिमश्रेणियां, हिमदुकुलिनी चोटियाँ, चीड़, देवदारू, के हरे पेड़ों का घूंघट डाले चेहरा कौसानी है। जब पन्त जी ने आंखे खोली तब माँ ने आंखे मूंद ली। भाईयों में सबसे छोटे होने के कारण तथा मातृहीन होने के कारण उन्हें सबसे अधिक लाड़–प्यार मिला। उनका नाम गोपालदत्त था। इस कारण उनका स्वभाव और शरीर असाधारण कोमलता लिए हुए था। जब वे तीसरी के छात्र थे तभी उन्हें अपने गोपालदत्त नाम की कवित्वहीनता अखरने लगी और अपनी असाधारण बुद्धि से श्रृतिमधुर सुमित्रानंदन नाम खोज लिया। और सृजनशीलता का पहला परिचय दिया।

7.15.3 सुकुमार सौंदर्य के कवि

पन्त जी सुन्दरता के कवि हैं। उन्होनें काव्य में सुन्दरता को उभारा है। कारण वे प्रकृति के कवि हैं। प्रकृति के पास सौंदर्य है आँसू नहीं। सुमित्रानंदन पन्त जी का स्वभाव आज भी कोमल है और शरीर सुकुमार है। अनुभव ने इस कोमलता और सुकुमारता पर आर्द्रता का पानी ही फेरा है।

7.15.4 वीतराग स्वाभिमानी

आर्थिक दृष्टि से संपन्नता की ऊंची सीढ़ियों से विभिन्नता की अंतिम सीढ़ि तक पन्त जी ने अपने जीवन में अनेक चढ़ाव–उतार देखे हैं। जिस अल्मोड़ा में कई मकान थे वहीं पर वे किराए के छोटे कॉटेज में भी रहे। पर उनकी हँसी मलिन न हुई न अभिमान आहत हुआ। वे वीतराग दार्शनिक–सी तटस्थता धारण करके नक्षत्र लोक उर्फ कालाकांकर के निवासी बने रहें।

7.16.6 प्रियानुरागी केश

देहातियों के आश्चर्य और लोगों की हँसी के कारण एक दिन उन्होंने अपने लम्बे बालों को सहजता से काट कर फेंक दिया परन्तु भावी पत्नी की कल्पना करते हुए उन्होंने अपने सिर पर स्वर्गिक उपहार धारण कर लिया।

7.15.6 कोमलवृत्ति कठोर साधक

सुमित्रानन्दन पन्त सृजनशील चिन्तन और पार्थिव भावों की ओर अग्रसर होते गए। इस कारण अस्वस्थ होने के बावजूद भी हमेशा विजयी रहे। कोमलवृति के होकर भी कठोर साधक बनें ओर कल्पनाजीवी सृर्जक होते हुए भी घर के कमाऊ सपूत बने। पन्तजी व्यवहार में शिष्ट, मधुरभाषी और विनोदी रहे हैं। पन्तजी ने प्रारंभ में 'नंदिनी' नाम से रचनाएँ की है।

इस तरह महादेवी ने पन्तजी के सौकुमार्य चित्र का सहमार्गी छायावादी रचनाकार का मनोहारी चरित्र प्रस्तुत किया है।

7.15.7 स्वयं बोध के प्रश्न

लघुत्तरी प्रश्न लिखिए–

1. सुमित्रानन्दन पंत के कोमलकांत व्यक्तिगत का परिचय दीजिए।
2. गोपालदत्त ने अपना कौन सा श्रृतिमधुर नाम धारण किया।
3. सुमित्रानन्दन पंत ने अपने लंबे बाल क्यों काटे तथा बाद में क्यों बढ़ाये।
4. पंत को वीतराग दार्शनिक क्यों कहा है?

7.15.8 कठिन शब्द :–

अवगुण्ठित	:	ढँका हुआ	आकण्ठ	:	गले तक
मरकत	:	पन्ना, हरे रंग का नगीना	तुमूल	:	भंयकर शोर
परिग्रह	:	संग्रह			

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.15.9 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न :–

1. सुमित्रानन्दन पन्त से पहली मुलाकात विनोदी कैसे हो गयी ?
2. पन्तजी के व्यक्तित्व का परिचय दीजिए।
3. सुमित्रानन्दन पन्त इस नामकरण से पन्तजी के कौन से गुण प्रकट होते हैं।
4. वर्माजी का सबसे कोमल और सुकुमार 'पथ का साथी' पन्तजी कैसे हैं ?

7.15.10 स–संदर्भ व्याख्या

"आज फिर वे लम्बे गंगा–यमुनी केशों को लहराते हुए चिरपरिचित कविरूप में उपस्थित है। इसका अर्थ है कि उनकी अनन्त सृजन सम्भावनाओं का कोई त्यौहार निकट है।"

संदर्भ –सुमित्रानन्दन पन्त से संबधित यह संस्मरण महादेवी वर्मा ने 'पथ के साथी' के अंतर्गत दिया है। उपर्युक्त पंक्तियॉ उसी से संबधित है।

व्याख्या–

सुमित्रानन्दन पन्त को अपने बालों से बहुत लगाव था। लम्बे लहराते बालों को वे बड़े सलिके से सजाते–सँवारते थे। इन्हीं बालों के कारण वे ग्रामीणों के लिए कौतुहल तथा हँसी के पात्र भी बने। उनके कविरूप का वह शोभायमान रूप था। केशों को वे स्वर्गीय उपहार मानते थे। जब कोई नया–सृजन का अवसर होता वे अपने बालों का रूप बदलते। एक बार उन्हें काट कर फेंकना लेखिका के लिए कौतुहल का विषय था। पर स्वभाव से परिचित होने पर लगा नया क्षितिज मिलने की वह निशानी है।

इसके बाद कई दिनों उपरान्त फिर से गंगा–यमुनी केशों को लहराते हुए कविरूप में आए तो सहज ही लेखिका ने तर्क कर लिया कि कोई सृजन का क्षण उनके जीवन में जल्द आने वाला है।

पन्त जी के स्वभाव से परिचित होने के कारण उनके अन्तर की हलचल की जानकारी स्वभावतः लेखिका को होने लगी थी। बाहय वेशभूषा यह बाहरी बदलाव तक सीमित न होकर उनके हृदय के सृजन का परिचायक बन जाती थी।

विशेष :– महादेवी वर्मा के सूक्ष्म निरिक्षण शक्ति का परिचय यह विधान देता है। साथ ही एक संवेदनशील हृदय का कवि किस प्रकार बर्ताव कर सकता है यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी प्रस्तुत किया है।

7.15.11 स्वयं बोध प्रश्नों के उत्तर

लघुत्तरी प्रश्न के उत्तर–

1. सुमित्रानंदन पंत भाव और व्यक्तित्व दोनों दृष्टियों से कोमलकांत थे। उनका शरीर कृश था। कंधे पर लहराते लम्बे बाल, तीखा नाक–नक्श गोरा रंग, कोमल पतली ऊंगलीवाले हाथ–लिए व्यक्तित्व एक स्त्री जैसा था।
2. गोपालदत्त ने अपना नाम इसलिए बदल लिया कि यह नाम कर्विवहीन, असुन्दर,रूक्ष उन्हें लगने लगा था। उनका जन्म सुंदर हिमालय की वादियों में हुआ और वे व्यक्तित्व और कृतित्व से कोमल सुंदर रहे हैं इसलिए उन्होंने श्रुतिमधुर नाम से 'सुमित्रानंदन' धारण किया।
3. पंतजी अपने लम्बे बालों के कारण देहातियों के कौतूहल और लोगों की हंसी के आलम्बन बन गये। इसलिए बालों को सहजता से काट लिया। परन्तु भावी पत्नी की कल्पना में उन्होंने अपने सिर पर पत्नी का स्वर्गिक उपहार स्वरूप बाल पुनः बढ़ा लिए।
4. पंतजी सुन्दर कवि हैं। उन्होंने अपने काव्य में सुंदरता को उभारा है। कारण वे प्रकृति के कवि हैं। प्रकृति के पास सौंदर्य है, आँसू नहीं।
5. सुमित्रानन्दन पंत अपने जीवन के प्रारम्भ में अल्मोड़ा के कई मकानों के धनी थे। पर जीवन में उतार भी आता है। इस साखी के अनुसार पंत जी को अल्मोड़ा में किराये के छोटे से काटेज में भी रहना पड़ा। पर उनकी हंसी इससे लुप्त नहीं हुई। वे वीतराग दार्शनिक –से कालाकांकर में बस गये।

––––––

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.16 सियारामशरण गुप्त

'पथ के साथियों' में महादेवी वर्मा ने अपने छोटे भाई सियारामशरण गुप्त का परिचय प्रस्तुत किया है। बडी बहन जीजी महादेवी जी के अनुभव उनकी लेखनी ने चित्ररूप में उकेरे हैं।

7.16.1 व्यक्तित्व ठेठः भारतीय – सियारामशरण जी शुद्ध खादीधारी थे। कपड़ों का वजन दुर्बल शरीर से अधिक न हो इस भय से उन्होंने कम वस्त्रों की व्यवस्था की है। इनकी धोती तीन गज की और चौड़ाई छत्तीस इन्च की हो जाती है जिससे धोती चरणों को नहीं ढ़कती। मिर्जइया कुरता केवल बाहर जाते समय पहनते है। नाटा कद, दुर्बल शरीर, छोटे और दुबले हाथ–पैर, लम्बे उलझे–रूखें से बाल, लम्बोतरा मुँह, आँखें और ओंठ तरल, ठेठ भारतीय मिट्टी के बने लगते हैं।

7.16.2 वियोगी सियारामशरण – इस वेशभूषा से उन्हें कोई साहित्यकार के रूप में नहीं स्वीकार सकता। सियाराम जी परिवार में मझले भाई हैं। इसलिए भाईयों का प्रेम भी उन्हें मध्यम अनुपात में मिला। वे कुशाग्र बुद्धि के और जिज्ञासु हैं । तरूणाई में ही बेटों और पत्नी ने विदा ले ली। राम–सीता के वियोग की सभी मर्म भरी व्यथा सुनते है परन्तु लक्ष्मण–उर्मिला के नाम पर कोई आँसू नहीं बहाता। यदि लक्ष्मण भी अपने बड़े भाई के सामने प्रत्येक वृक्ष के नीचे बैंठकर उर्मिला के नाम पर आँसू गिराते तो क्या होता?

7.16.3 उम्र में बड़े लेकिन छोटे भाई – सियारामशरण जी से छोटे केवल चारूशीलाशरण हैं। वे अंग्रेजी पढ़ाते हैं इसीलिए घर और बाहर मास्टर साहब के रूप में जाने जाते हैं। महादेवी वर्मा से वे उम्र में बड़े है इसलिए उन्हें बड़ा भाई कहना चाहिए पर महादेवी जी के हठ के आगे वे उनके छोटे भाई हो गए और वह इनकी जीजी। पुर्नविवाह के रिश्ते आए पर उन्होनें ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। ऐसा उन्होनें अपने श्वासरोग के कारण नहीं किया अपितु बालसखा पत्नी के एकनिष्ठ प्रेम की रक्षा के लिए किया।

7.16.4 मीठा–खारा जीवन के धनी – सियारामशरण जी लक्ष्मण की तरह आदर्श लघु भ्राता हैं जो गृहस्थ होकर भी संन्यास है। और एक निष्ठ मातृभक्त हैं। उनका अस्तित्व समर्पण का अस्तित्व है जैसे जल की बूंद अपने अस्तित्व को खो देती हैं, और सागर की तरह विशाल हो जाती है। उनका जीवन तो शक्कर–लवण से घुला हुआ रस है।

7.16.5 सरस्वती साधक – लौकिक दृष्टि से वे मिडल के आगे नहीं बढ़े। हाई स्कूल, इंटर कॉलेज, विश्वविद्यालय, मास्टर, लेक्चरर, प्रोफेसर जैसे किनारों के पार बुद्धि उर्फ सरस्वती बैठी थी। उस तक अपनी विनय पत्रिका पहुंचा दी। उनका साहित्य पढ़कर ऐसा लगता है, यदि गांधीजी का संपर्क कुछ कम प्राप्त होता तो वे अच्छे कवि हो जाते और यदि उन्हें कविन्द्र के साहित्य का परिचय कम मिला होता तो इससे बड़े वे साधक हो जातें। फर्श पर पुस्तकें, दीवारों पर शीशीयाँ और डिब्बे इनमें सियारामजी नहीं पहचाने जाते। एक बार वे अलमारी के भीतर तपस्या की मुद्रा में बैठ गए और उनके साथी अलमारी के दरवाजे बन्द कर चले गए। सौभाग्यवश वे जल्दी ही निकाल लिए गए। इनकी साधना को देखकर ऐसा लगता है – "मानों जीवन ने उनके हृदय की तरल ज्वाला को किसी बिल्लोरी परिवेश में बन्द कर दिया है। जिसमें से आलोक सब पाते है, पर जलना उन्हीं का अधिकार रह गया है।" (पृ0 94–95)

सियारामशरण जी सक्रिय राजनीति, सेवावृत्ति, गाँधीदर्शन और रविन्द्र से मिला जुला व्यक्तित्व लिए हुए हैं। बड़े भाई दद्दा मैथिलीशरण जी की घनी वट्छाया को सम्पूर्ण निष्ठा से अंगीकार लिया। पर उसमें भी उन्होंने एक ऐसा अन्तराल पाकर आकाश पाने का रंध्र निकाल लिया। जहाँ प्रभात की किरणें और संध्या नया रंग उँड़ेलती है। गुप्तजी का कर्ममय जीवन सत्य और आनन्द का आधार रहा है। अल्प शिक्षार्जन के बावजुद भी वाग्देवता उन पर प्रसन्न थी। वे कवि है, उपन्यासकार तथा निबन्धकार भी है। अस्वस्थ्ता और दुर्बलता के कारण आना जाना कम है। उनका साहित्यिक पंक का कमल न होकर उनके दुग्धोज्ज्वल चरित्र का स्वच्छ परिचय है।

7.16.6 गांधी निष्ठ बापू – महात्मा गाँधी के प्रति उनके मन में एकान्त निष्ठा थी। फिर भी उन्होंने हिन्दी के प्रश्न संबंधी उनसे कोई समझौता नहीं किया। सियारामजी घर और बाहर बापू के रूप में जाने जाते हैं।

7.16.7 स्वयं बोध के प्रश्न

एक वाक्य में उत्तर लिखिए–

1. सियारामशरण गुप्त का व्यक्तित्व ठेठ भारतीय मिट्टी का कैसे?
2. ऐसा क्यों कहा गया है कि लक्ष्मण–उर्मिला के नाम कोई आँसूं नही बहाता?
3. किसका जीवन शक्कर–लवण से धुला हुआ रस है?
4. सियारामशरण का व्यक्तित्व किससे मिला–जुला है?
5. वे घर और बाहर किस नाम से जाने जाते हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.1.6.8 कठिन शब्द :–

सहोदरा	–	बहन	गज	–	90 सेन्टीमीटर का माप
रंध्र	–	छेद	स्रष्टा	–	निर्माता
श्रांत	–	थका हुआ	बिल्लोरी	–	पारदर्शी
ध्रुव	–	छोर, किनारा			

7.1.6.9 अतिरिक्त अध्ययन के प्रश्न :–

1. सियारामशरणजी को ठेठ भारतीय मिट्टी की बनी मूर्ति क्यों कहाँ है ?
2. सियारामशरणजी मझले होते हुए भी सबसे छोटे (अनुज) कैसे हो गए ?
3. महादेवी वर्मा ने ऐसा क्यों कहाँ है कि हिन्दी साहित्य जगत् ने एक अच्छा साहित्यकार खो दिया ?
4. सियारामशरणजी को अपने जीवन में कौनसे दुःख झेलने पड़े ।

7.1.6.10 स–संदर्भ व्याख्या–

''मर्यादा पुरूषोत्तम राम सीता के विरह में लक्ष्मण से ही न्हीं, हर लता, वृक्ष, पशु–पक्षी से अपनी मर्म व्यथा सुनाते चलते हैं। पर यदि इसी प्रकार लक्ष्मण अग्रज के सामने हर वृक्ष के नीचे बैठकर उर्मिला के नाम पर आँसू गिराते तो आदि कवि से लेकर राष्ट्रकवि तक सबकी प्रतिभा पलायमाना दिखाई पड़ती।''

संदर्भ –उपर्युक्त पंक्तियाँ महादेवी वर्मा ने 'पथ के साथी' संकलन की अन्तिम रचना में सियारामशरण गुप्तजी के बारे में कही है।

व्याख्या– सियारामशरण जी को निजी जीवन में अनेक दुःखों का सामना करना पड़ा। स्वास्थ्य से निरन्तर संघर्ष तो करना ही पड़ा पर युवावस्था में ही श्वासरोग ने ग्रस लिया, कई बालक नहीं रहे, पत्नी का असमय वियोग सहना पड़ा। इतने व्यक्तिगत दुःख हृदय में छिपाना बहुत कठिन है पर वे ऊपर से संयत ही बने रहें। छोटे होने के कारण अपने दुःख को सबके सामने रखना मर्यादा के खिलाफ मानते है। छोटा भाई चारूशीलाशरण छोटा होने पर भी घर में और बाहर बड़े–सा आदर पाता है। उनका दुःख तथा पारिवारिक अवस्था को देख कर महादेवी को सहज ही राम–लक्ष्मण के जीवन की घटना स्मरण हो आती है – सीता वियोग की। राम बड़े है, मर्यादा पुरुषोत्तम माने जाते हैं, पर सीता–वियोग के समय सभी मर्यादाओं को छोड़कर वे सीता का पता सबसे पूछते हैं। जबकि लक्ष्मण की व्यथा क्या उनसे कम थी परन्तु वह इस प्रकार अपनी निजी व्यथा को सार्वजनिक नहीं बनाते। कारण महादेवी बताती है कि बड़े का संयम टूट जाना उसकी दुःख की तीव्रता दर्शाता है जबकि छोटे का इस प्रकार विलाप मर्यादा भंग बन जाता है।

विशेष :– महादेवी वर्मा ने सियारामशरण गुप्त के छोटेपन की व्यथा को उनके निजी दुःख को राम–लक्ष्मण के उदाहरण द्वारा बड़ी ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। लक्ष्मण अगर राम की तरह पत्नी वियोग पर विलाप करते तो वर्णन करने के लिए प्रतिभा किसी कवि के पास नहीं होती।

7.1.6.11 स्वयं बोध प्रश्नों के उत्तर–

1. नाटा कद, खादी के कपड़े, घुटनों तक की धोती, मिरजईया कुरता, उलझे–रूखे बाल–आदिके कारण वे ठेठ भारतीय मिट्टी के लगते हैं।
2. राम–सीता के वियोग की सभी लोग व्यथा सुनते हैं पर लक्ष्मण –उर्मिला के वियोग पर कोई आँसूं नहीं बहाता। लक्ष्मण की तरह ही सियाराम जी का जीवन रहा है। उन्होंने अपने आपको 'दद्दा' मैथिलीशरण जी को समर्पित कर दिया है।
3. सियारामशरण जी का जीवन शक्कर–लवण से धुला हुआ रस है।
4. उनका व्यक्तित्व गांधी दर्शन और रवीन्द्र से मिला–जुला है।
5. वे घर और बाहर 'बापू' के नाम से जाने जाते हैं।

––––––

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ – 341 306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्नातकोत्तर (एम.ए.) पूर्वार्द्ध

विषय – हिन्दी

द्वितीय पत्र – गद्य साहित्य

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. नन्दलाल कल्ला**
पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

2. **प्रो. वेदप्रकाश शर्मा**
पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज)

3. **प्रो. जगमालसिंह**
पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
मेघालय विश्वविद्यालय, मेघालय (आसाम)

4. **डॉ. ममता खाण्डल**
सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग,
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, किशनगढ़, (राज.)

5. **प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी**
निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)

6. **प्रो. समणी ऋजुप्रज्ञा**
आचार्या, जैन विश्वभारती संस्थान,
लाडनूँ (राज.)

लेखक

डॉ. वेद शर्मा

डॉ. सुरेश माहेश्वरी

डॉ. उमाकान्त गुप्ता

डॉ. शैलजा माहेश्वरी

डॉ. सुमन विस्सा

संपादक

प्रो. नन्दलाल कल्ला

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 700

प्रकाशक

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341 306 (राज.)

Printed at

M/s Nalanda Offset,
G1/232, RIICO Industrial Area, Heerawala Ext., Konota, Jaipur (Raj.)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
	गद्य साहित्य	
1.	गोदान – मुंशी प्रेम चन्द	1
2.	चन्द्रगुप्त – जयशंकर प्रसाद	36
3.	आषाढ़ का एक दिन–मोहन राकेश	54
4.	बाणभट्ट की आत्मकथा–प्रो. हजारी प्रसाद द्विवेदी	83
	निबन्ध	
5.	निबन्ध का उद्भव एवं विकास	108
6.	कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता–महावीर प्रसार द्विवेदी	117
7.	होली–बालकृष्ण भट्ट	120
8.	लज्जा और ग्लानि–रामचन्द्रशुक्ल	122
9.	भारतीय साहित्य की एकता–अचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी	127
10.	तुलसी साहित्य के सामंत विरोधी मूल्य–रामविलास शर्मा	130
11.	निषाद बांसुरी–कुबेरनाथराय	136
12.	हल्दी दूब और दधि अक्षत	143
	कहानी	
13.	कहानी का उद्भव एवं विकास	147
14.	उसने कहा था–चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	157
15.	पुरस्कार–जयशंकर प्रसाद	160
16.	मंत्र–प्रेमचंद	163
17.	पाजेब–जैनेन्द्र	166
18.	गुलकी बन्नो–धर्मवीर भारती	171
19.	राजा निरबंशिया–कमलेश्वर	175
20.	वापसी–ऊषा प्रियवंदा	179
21.	पथ के साथी–महादेवी वर्मा	183

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun